

वार्तान्की सैद्धान्तिक संगति

वार्तान्की सैद्धान्तिक संगति

गदाधरदासकी वार्ताप्रसंगः१

गदाधरदासकी वार्ताप्रसंगः२

महावनकी क्षत्राणीकी वार्ताः

दिनकरदास सेठकी वार्ताः

दिनकरदास मुकुन्ददासकी वार्ताः

गोस्वामी श्याम मनोहर



प्रकाशक:

गोस्वामी श्याम मनोहर.
६३, स्वस्तिक सोसायटी
४था रस्ता, जुहुस्कीम
विले-पार्ला, मुंबई.४०००५६

प्रकाशनार्थआर्थिकसहयोग:

प्रवचनकार: गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रथमसंस्करण:

श्रीमहाप्रभु प्राकटयोत्सव श्रीवल्लभाब्द ५३४ वि.सं.२०६७

निःशुल्कवितरणार्थ

प्रति: २०००

मुद्रक:

रमा आर्ट्स,
४, चुनावाला इन्डस्ट्रिअल् एस्टेट,
कोंडिविटा, अंधेरी (पूर्व),
मुंबई:४०० ०५९.

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ भक्त्याचारोपदेष्टे नमः ॥

“जैसे वाणी और अर्थ एक – दूसरेसु जुड़े भये है वैसे ग्रन्थ और श्रीकृष्ण भी महाप्रभुजीके मुखारविन्दमें जुड़े भयें हैं. उनकी वाणी और अर्थ मोकु मिले या लिये मैं नमस्कार करुं हूँ”

वाणी और अर्थ जा बखत छोरकी दृष्टिसु देखे तो भिन्न दीखें, पर भीतरसु वे एक हैं. प्रभुको ही एक रूप वाणी है और दूसरो अर्थ.

या अर्थ/प्रमेयके स्वरूपबोधके लिये प्रमाण अपेक्षित होवे है. प्रत्यक्ष अनुमान ऐतिह्य और शब्द ऐसे चार प्रमाणनुसुं प्रमेयको बोध होवे है.

किन्तु निःसन्दिग्ध या निश्चित प्रमेयबोधके लिये प्रमाणनूकी एकवाक्यता होनी आवश्यक है. जैसे कृत्रिम फूलकी रूपाकृति प्राकृतिक फूलके समान दीखे, पर जब छुवे तब अनुभव अलग होवे. तो आंख और त्वचा को बोध एक न होवेके कारण फूल सच्चो के जूठो या बातको निर्णय नहीं होवे, क्योंकि प्रमाणनूमें एकवाक्यता नहीं भयी. लोकव्यवहारमें प्रत्यक्षादि प्रमाणनुसु वस्तुसिद्धि मान्य होवे किन्तु कृष्णको अर्थत्व वेदादि शास्त्रसु ही प्रकट होवे है.

इन शास्त्रवचननूमें एकवाक्यता ही प्रमाण होवे अन्यथा कृष्णको अर्थत्व नहीं प्रकट होवेगो. आचार्यचरण कहें हैं “श्रुति गीता ब्रह्मसूत्र और भागवत के एकवाक्यतापन्न वचन ही प्रमाण होवें हैं. क्योंकि श्रुतिवचनके आधारपर जो बात स्पष्ट नहीं होवे वो बात गीताके विमर्श करवे पर, वामें जो स्पष्ट नहीं होवे वो ब्रह्मसूत्रसु, वामें स्पष्ट नहीं होवे तो भागवतके अवगाहनसु ही सुस्पष्ट होवे करके चारोंनकी एकवाक्यता ही प्रमाण होवे है.” अर्थापत्तिसु यों केह सकें के एकवाक्यतापन्न वचनसु विपरीत वचनार्थ अप्रमाण मान्यो जाय.

याही तरहसु आचार्यचरणके वचनसु निर्धारित अर्थमें एकवाक्यताको विचार अत्यावश्यक होवे है. आचार्यचरणके द्वारा विरचित कोई भी ग्रन्थ चाहे वो तत्त्व कर्तव्य या लीला निरूपित करतो होवे या वादग्रन्थ होवे या वार्ताप्रकरणमें आते उपदेश होवें, इन सभी वचननूको सन्दर्भ, ग्रन्थको प्रकार, अधिकारिता, देश - काल, नियम - अपवाद वगैरहके विचारसु ही तात्पर्य प्रकट होयेगो माने “कृष्ण एव तात्पर्य” कृष्णरूप अर्थत्व प्रकट होयेगो.

अपने स्वार्थहेतु या दुर्मति या अन्यप्रयोजनसु प्रेरित, किये जाते वचनको तात्पर्य कहीं न कहीं या तो भजनीय भक्ति सेवा शरणागति सेवक के स्वरूपको खंडित करवेवालो या संसृतिप्रेरक ही होयेगो. अपने मार्गकी दुरवस्थाको आज ये हेतु बन्यो है. वार्तान्में आते वचनकु वार्ता - प्रकरणके सन्दर्भमें नहीं लेके असन्दर्भित अर्थकु सिद्धान्त बताके आचार्यचरणके तात्पर्यसु विरोधी या असमन्वित सिद्धान्त बतावेमें लौकिक प्रयोजन तो सिद्ध होयेगो पर आचार्यचरणके प्राकट्यको प्रयोजन सिद्ध नहीं होयेगो.

पूज्य श्रीश्याममनोहरजीद्वारा किशनगढ़में किये त्रिवर्षीय प्रवचनमालाके अवगाहनसु आचार्यचरणको तात्पर्य कैसे समझनो या वचनन्में एकवाक्यता कैसे देखनी वाकी सिफत प्रकट करे है. इतनो ही नहीं साथमें अपने उच्छृंखलभावको निवारण मार्गरीतिबोधन और अन्यथाबोधको अपहरण करवेवारो होयेगो. बहिर्मुखनके लिये विशोधनको विषय होयेगो. आपश्रीके प्रवचनको सार यथामति अब आगे निरूपित करवे जा रहे है.

“इनकी वार्ता कहां ताई कहिये !!!” इन ईशानुकथामें आते आचार्यचरणके उपदेशमें सिद्धान्त और आचरणके कई गंभीरतम रहस्य छुपे भये हैं.

प्रथम वर्षीय प्रवचनमें गदाधरदासजीकी वार्ता - विवेचना बताई है. वामें राजाके चक्रवर्तिताकी हियरार्कीके उदाहरणसु कृष्णकी चक्रवर्तिता/सर्वोपरिता समझाई है. ये चक्रवर्तिता प्रमाण प्रमेय साधन और फल की दृष्टिसु सिद्ध करी है. जैसे, प्रमाण दृष्टिसु कृष्णकी चक्रवर्तिता गीताके वचनन्सु, प्रमेयदृष्टिसु

कृष्णकी चक्रवर्तिता सर्वरूपता और देवाधिदेव होवेके कारण, साधनदृष्टिसु कृष्णकी चक्रवर्तिता सर्वसाधनलभ्यताके कारण और फलदृष्टिसु कृष्णकी चक्रवर्तिता सर्वफलदातृताके कारण बताई है.

द्वितीय वर्षीय प्रवचनमालामें गदाधरदासजीकी ही वार्तामेंसु ‘नियम - अपवाद’को अलग नज़रिया बताया है. यामें प्रथम प्रसंगमें गदाधरदासजीने अव्यावृत्त होके तनुवित्तजाको नियम सच्चाईसु बखूबी कैसे पाल्यो है वो बताया है. द्वितीय प्रसंगमें माधोदासजी स्वेच्छया बथुवाकी भाजी लाये और संवारी वामें तनु - वित्तजाको नियम भक्तिके आवेगमें तोड़्यो है जो अपवादको रंग लेके उभरे है. तृतीय प्रसंगमें बंजाराके सो रूपैयासु भक्तिके आवेशमें वैष्णवन्कुं प्रसाद लिवायो वामें भी स्वोपभोगार्थ दूसरेको वित्त सेवामें नहीं वापर्यो है.

इन सब कथानुसं तनुवित्तजाको सिद्धान्त खंडित नहीं होके कैसे मंडित हो रह्यो है वो रहस्य खोल्यो है. सांप्रत स्थितिमें तो नासमझीके कारण समस्तपदीय तनुवित्तजाकु और उपदेश्य - उपदेशक सम्बन्धकु तोड़के जीवेवालेके लिये एक अच्छी मार्गदर्शिका बन सके है. वार्ताप्रसंगके साथ आपश्रीने षोडशग्रन्थके उपदेश वार्तामें कैसे बुने है वाकी संगति बताके एकवाक्यता सिद्ध की है.

तृतीय वर्षीय प्रवचनमें महावनकी क्षत्राणी, दिनकर सेठ, दिनकरदास मुकुन्ददास की वार्तान्में उन भगवदीयन्कुं पुष्टिमार्गपे चलवेमें जो कठिनाई आ रही हती वाके समाधानरूप उपदेश वार्ताप्रकरणमें बताया है.

क्षत्राणीकी वार्तामें उनकी आचार्यके प्रति स्वरूपनिष्ठा और आचार्यजीकी भगवत्सेवाके प्रति उपदेशमें प्रकट होती निष्ठा; इन विरुद्धतामें अविरोधी समन्वित सिद्धान्तदर्शन या वार्ताको मूल विषय है. क्षत्राणीकु महाप्रभुके स्वरूपमें आकर्षण और अपारनिष्ठा है. आचार्यजीके उपदेशग्रहणमें असामर्थ्य होयवेके बावजूद समग्रताकु स्वीकारके, उपदेशकु इन्कारे नहीं है. इनकु लीलाके स्वरूपको ज्ञान और आचार्यस्वरूपको विज्ञान होयवेके कारण उनमें स्वरूपनिष्ठा तो है, पर ठाकुरजीमेंसु मिठास ग्रहण करवेकी क्षमतामें न्यूनता है. वा न्यूनताकी निवृत्तिके

लिये स्मरणभक्तिसु कृष्णभक्ति बताई है. सिर्फ आचार्यनिष्ठा होवेके बावजूद उनकु चार स्वरूप भी मिले है, संवाद भी भयो है. वा बखतके वचनामृतके अन्तर्गत प्रभुकी सर्वस्वताके भावसु सेवानिर्वाहकी आवश्यकता, भक्त – भगवान्की परस्पर भावविवशता और आचार्यचरणको प्रभुके प्रति सर्वस्वको भाव उदाहरणसु समझायो है.

वार्तान्में आते वचनामृतको स्वारस्य समझवेके बाद हम हमारी निष्ठाकु इतनो तो पूछ ही सकते है के “**क्या व्यापारिक कोन्ट्राक्टमें लिये-दिये प्रभुको सर्वस्व माननो ?**”

दिनकर सेठकी वार्तामें कथासक्तिकी पराकाष्ठा बताई है. आचार्यचरणके द्वारा कीर्तित भगवत्कथाके रसको पान श्रवणभक्तिसु कियो है. कथाकी प्रणालीसु इनके हृदयमें भगवान्को जो भावात्मक रूप निर्मित भयो है वाकु भोग धरवेकी आचार्यचरण आज्ञा दे रहे है “**अन्तःस्थितः प्रभु पुष्टो भवति**” न्यायसु. उपलब्ध साधनसु मानसीसेवाको प्रकार आचार्यचरणने प्रदान कियो है. या ढंगसु कथाकी प्रणालीसु भक्तिको उत्कर्ष प्राप्त भयो है.

दिनकरदास मुकुन्ददास की वार्तामें भगवद्‌रागमूलक भक्तिके रसकी अनुभूति और नामभक्तिसु कृष्णभक्तिकी प्राप्ति भयी है. मुकुन्ददासकु आचार्यचरणने नामनिवेदन करायो और ब्रह्मसम्बन्धमन्त्र स्वहस्ताक्षरालेखित पत्रके रूपमें पधरायो. वाकु भोग धरवेकी आज्ञा करी. क्योंकि मन्त्र प्रभुको दियो भयो है और ये मन्त्र जाको है वाकु भोग धरवेकी कही. ये विज्ञानके साथ और कृष्णके रागके कारण मन्त्रमें नामानुराग भयो है. ये या वचनामृतकी अपूर्वता है के मन्त्रपत्रसु कृष्णकी लीलासरितामें बेहवेको घाट उनकु दिखायो है. सिद्धान्तकी अवज्ञा नहीं है.

इन तीनों वार्तान्में क्षत्राणीकु स्मरणनिष्ठा दिनकर सेठकु श्रवणनिष्ठा और मुकुन्दादसकु नामनिष्ठा के कारण कृष्णभक्तिकी प्राप्ति भयी है.

हम वार्तान्कुं नित्य – नियमरूपसु शायद पढ़ते भी होयें पर यामें रहे वचनामृतकु मथके तात्पर्यरूप ‘अमृत’कु हमकु आपश्रीने पान करवायो. “**वचनसुधा सींचत नित्य निजजन सुखकारी**” चाहे वार्तामेंसु सिद्धान्त छांटने होय या गहनशास्त्रको दर्शन समझानो होय, आपश्री “**शिष्याणाम् उपदेशार्थं कुर्याद् वृत्तिं विलंबिताम्**” न्यायसु हमकु समझा रहे हैं.

इन ध्वन्यात्मक वाणीकु लिपिबद्ध करवेमें श्रीअशोक शर्मा, श्रीअनिल भाटिया, श्रीधर्मेन्द्रसिंह झाला, श्रीमती पद्मिनी झाला, श्रीमनीष बाराई को सहयोग अविस्मरणीय हैं. हमारी भाषाके अज्ञानके कारण कई क्षतियां रेह गई होंगी वाकी हम क्षमा चाहें हैं.

परेश शाह

मनीषा शाह

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठक्रम
गदाधरदासकी वार्ताविवेचना:प्रसंग-१...	१-१४६
(कृष्णचक्रवर्तिता विमर्श)	
वार्ताप्रसंग...	१
उपक्रम...	३
समाजमें ज्येष्ठताको विचार...	४
शास्त्रमें ज्येष्ठता...	५
वैदिककर्मकु आरोग्यप्रद बतावेकी हीनवृत्ति...	८
भगवद्धर्ममें भी स्वार्थमय हेतु खोजवेकी वृत्ति...	८
देवपूजनमें आह्वाहन प्रतिष्ठा और विसर्जन के प्रकार...	११
प्रकरण१: प्रमाणदृष्टिसू कृष्णकी चक्रवर्तिता...	१६-५५
उपक्रम...	१५
शब्दकी मन्त्ररूपता अर्थसुं...	१६
वाणी और अर्थको सम्बन्ध...	१७
ब्रह्मसम्बन्धको अर्थ=घरको ठाकुर...	२०
शब्दकु समझवेकी प्रक्रिया...	२१
शब्द और अर्थको सम्बन्ध...	२४
भागवतार्थ=श्रीनाथजी...	२६
मन्त्र और मन्त्रको अधिदेव...	२७
वेदमें 'ब्रह्म'...	२९
गीतामें 'परमात्मा'...	३०
भागवतमें 'भगवान्'...	३०

'गायत्री'मन्त्रको मन्त्रपनो कब...	३२
देवाधिदेव श्रीकृष्ण...	३४
कृष्णके साथ व्यक्तिगतसम्बन्ध...	३६
भागवत कृष्णप्रधान ऐसे अन्य पुराण अन्यदेवप्रधान...	३८
अनन्याश्रय और अनन्यासक्ति...	४१
गीता कृष्णकी चक्रवर्तितामें प्रमाण...	४५
'देवद्रव्य'को मतलब क्या?...	४६
समर्पित और देवद्रव्य के उपभोगमें अन्तर...	५१
प्रमाण-प्रमेय-साधन-फलकी दृष्टिसू कृष्णकी चक्रवर्तिता...	५२
प्रमाणनकी एकवाक्यताको विचार...	५२
प्रमाणनमें आपसी संवाद...	५३
प्रकरण२: प्रमेयदृष्टिसू कृष्णकी चक्रवर्तिता...	५३-६९
उपक्रम...	५६
वो खुद आ नहीं सके क्या...	५६
जन्म कर्म च मे दिव्यम्...	५८
मोहबन्धन...	६०
वैकुण्ठवासकी शोकसभा...	६१
प्रभुको मोहबन्धन नहीं है...	६२
'मैं'के कारण अहंकारकु ठेस लगे...	६२
भगवान्के 'मैं'कु ठेस नहीं लगे...	६४
कृष्णकी प्रमेयदृष्टिसू देवाधिदेवता और ब्रह्मरूपता...	६५
प्रमाण-प्रमेयकी संवादिता...	६६
प्रमेयकी दृष्टिसू कृष्णकी सर्वरूपता...	६६
'भक्तियोगविधानार्थम्'-कृष्णकी प्रमेयरूपता...	६८
कृष्णकी सर्वरूपता और देवाधिदेवता के कारण	

चक्रवर्तिता...	६९
प्रकरण३: साधनदृष्टिसू कृष्णकी चक्रवर्तिता...	७०-८२
उपक्रम...	७०
महाप्रभुजीकी साधनके प्रति ब्राह्मिकी दृष्टि...	७०
कृष्ण सर्वसाधनसु लभ्य...	७१
प्रकट ब्रह्मके अप्रकट होवेके दो स्थान-१.नामरूप	
२.भक्तको हृदय...	७२
साधनाको सच्चो स्वरूप=प्रभुकी खोज...	७३
खोज रहित साधना कर्मकाण्ड ही होयेगी...	७३
साधनामें शॉर्टकटके कारण होतो महाभारत...	७४
कृष्णार्थ सेवा और सेवामें कृष्णकी खोज...	७६
साधनाप्रणाली-खोजको सम्बन्ध शरीर-आत्मा जैसो होनो चाहिये...	७७
सुसाधन असाधन दुष्टसाधन सु 'कृष्ण' लभ्य हो सके...	७८
मठडीकी खोजसु कृष्ण नहीं मिले...	७९
कृष्णकी सर्वसाधनलभ्यता...	८०
प्रकरण४: फलदृष्टिसू कृष्णकी चक्रवर्तिता...	८३-१४६
उपक्रम...	८३
कर्मफलको सामान्य अर्थ प्रकार और वाकी जटिलता...	८३
साधनात्मक कर्मको फल...	८६
देवताके अनुरूप साधनासु ही देवता फल देवे...	८७
'फल'को विवेक...	८९
प्रभु कर्मनियतिसु बन्धे नहीं...	९०
विवेकहीन साधनाको अभिलषित फल नहीं होवे...	९१
सभी देवता नियत फलदाता है...	९२

कृष्णकी भी सकाम भक्ति अपने यहां अन्याश्रय ...	९३
सकाम भजन प्रभुको विभूति बनावे...	९५
देवतान्को भी रूप ब्रह्मने धारण कियो है...	९६
कर्तृम् अकर्तृम् अन्यथाकर्तृ सामर्थ्य होवेके कारण कृष्ण	
फलमें चक्रवर्ती...	९७
प्रभुमें सर्वफल दातृत्वरूप सामर्थ्य...	९८
कृतिको निर्धारण अपनी कामनासु...	९९
कामनाको स्वरूप...	१००
कामनाकी क्षुद्रता और वाको अन्तहीन चक्र...	१०२
संगसु काम प्रकट होवेकी प्रक्रिया...	१०४
कर्मको साधनात्मक पहेलु धर्मरूप हो जावे...	१०६
प्रभु सर्वफलदाता है...	१०६
सर्वफलदातासु क्षुद्रफलकामना करनी मूर्खता...	१०७
कृष्णकी चक्रवर्तिता सर्वफलदातृताके कारण...	१०९
स्वभावसु काम, कामसु कर्म, कर्मसु फल नियन्त्रित होवे...	११०
सम्प्रदायकी हानिको कारण-स्वभावपरिक्षण रहित	
अनुयायी बनानो...	१११
स्वभावकी महत्ता/रहस्य...	११३
स्वभाव कृति और फल को सम्बन्ध...	११६
कृष्णकी चक्रवर्तिता जीवके स्वभावानुसार प्रकट होनो...	११७
साक्षिभावकी महत्ता ज्ञानमार्गमें हो सके...	११८
सुख-दुःखानुभूतिकी प्रक्रिया...	१२०
साक्षिभावके दो कारण १.निर्ममता २.चेतनाको विषयनसु उर्ध्वगमन...	१२०
चेतनाके स्वभावके दो पहेलू १.सहज २.औपाधिक...	१२१
चेतना और इन्द्रियनके मेलजोलसु विषयनमें व्यापृतता...	१२२
सुख-दुःखकु सहन करवेसु साक्षिभाव होवे...	१२२

चेतना और इन्द्रियन् के संयोगसु सुख-दुःख होवे...	१२५
साक्षिभावके लिये साधनाकी आवश्यकता...	१२६
साधनासु इन्द्रियन्में साक्षिभाव होवे...	१२७
बुद्धि अहंकार चित्त को साक्षिभाव...	१२७
चेतनाको साक्षिभाव और वाकी दुर्लभता...	१२९
नॅगेटिव् साक्षिभाव और पॉज़िटीव् साक्षिभाव...	१३०
पॉज़िटीव् साक्षिभावको औपनिषदिक् सन्दर्भ...	१३२
महाप्रभुजीकी औपनिषदिक् दृष्टि:पॉज़िटीव् साक्षिभाव=लीलानुभूति...	१३३
विभन्न शंकार्ये और समाधान...	१३३
जीवाः स्वभावतो दुष्टाः...	१३३
स्वभावविजयो भवेत्...	१३६
योगक्षेमं वहाम्यहम्...	१४०
उपसंहार...	१४५
गदाधरदासकी वार्ताविवेचना:प्रसंग-२...	१४७-१५९
(उत्सर्ग-अपवाद-प्रतिप्रसव विमर्श.)	
प्रकरण१: पुष्टिभक्तिभावविवेक...	१४७
वार्तामें महाप्रभुके उपदेश ब्रजभाषामें-एक अनुमान...	१४७
वचनमृतमें षोडशग्रन्थमें सिद्धान्तको ही उपदेश ब्रजभाषामें है...	१४८
भगवान्की लीलाके दो पहेलु१.स्वयं भगवान्की लीला	
२.शास्त्रनिरूपित भगवल्लीला...	१४९
जीवको कल्याणःभगवदिच्छा...	१५०
पुष्टिभक्तिको अर्थःभगवदनुग्रहसु प्रकट होती भक्ति...	१५०
भगवान्को अन्यथा कर्तुम् सामर्थ्य...	१५१
अपने सामर्थ्यसु प्रभु नहीं मिले...	१५२
अनवतारकालमें दुष्टसाधनासु प्रभु नहीं मिलेंगे...	१५३

संगके कारण आसक्ति...	१५४
कायिक-वाचिक-मानसिक भगवत्संगसु प्रभुप्रेम प्रकटे...	१५५
आदतनुसु छूटकारा कठिन...	१५५
शास्त्रविरोधी पद्धतिसु कियो श्रवणादि भक्त्यंग नहीं हो सके...	१५६
आचार्यचरणके बताये प्रकारसु ही भक्ति करनी...	१५७
भावनारहित सेवामें प्रवीणता कपालक्रियाके समान है...	१५८
सेवामें भावनाकी महत्ता...	१५८
पुष्टिभक्तिभाव जगावेकी प्रक्रिया...	१५९
प्रकरण२: नियम-अपवाद विवेक...	१६०-१६२
नियम-अपवादकी विवेचना...	१६०
नियम-अपवादकी परस्पर पूरकता...	१६१
प्रकरण३:नवधाभक्त्यात्मिकासेवाऔरपुष्टिभक्तिविवेक...	१६३-१७७
माहात्म्यज्ञान और स्नेह को सतत विनियोग ही	
भावर्यक होयेगो...	१६३
आचार्यचरण निर्दिष्ट भक्तिभावमूलक सेवा ही सेवा है...	१६७
सिद्धान्तमुक्तावली सिद्धान्तरहस्य और भक्तिवर्धिनी की एकरूपता...	१६८
सेवा-भक्ति ...	१७०
गदाधरदासजीकी वार्ताको तात्पर्य...	१७६
सेवारहित भक्ति हो सके...	१७६
सेवारहित भक्तिसाधना अपने यहांकी नहीं है...	१७६
तनुवित्तजा सेवाको अनिवार्य अंग...	१७७
प्रकरण४: तनुवित्तजाको विवेक	१७८-१८४
वित्त=जो अपनेको प्राप्त भयो है वो...	१७८

देहात्माको संघात=तनुजा...	१७९
सोदाहरण तनुजा-वित्तजाको विभाग...	१७९
तनुवित्तजा सेवाको नियम है भक्तिको नहीं...	१८१
तनुवित्तके बिना भक्ति सम्भव है...	१८१
नियम अपवाद को विवेक सेवा और भक्ति में...	१८२

प्रकरण५: वार्ताविवेचना...	१८५-२१३
धनार्थ सेवा-क्रूरताको स्वरूप...	१८५
गदाधरदासजीको सेवाप्रकार...	१८६
यथालब्धोपचारद्वारा प्रभुको सेवन...	१८७
प्रभु भी मानसी करे...	१८७
सेवाके लिये उधार लेनो निषिद्ध प्रकार है...	१८९
तीनो वार्तामें नियम अपवाद की संगति...	१८९
नियम अपवाद सन्दर्भके बिना नक्की नहीं हो सके...	१९१
नियम अपवाद विरोधाभास नहीं है सिस्टम् है...	१९२
सेवा-भक्तिके नियमसु साधनाको चित्र बने है...	१९५
उत्सर्ग अपवाद और प्रतिप्रसव...	१९६

महावनकी क्षत्राणीकी वार्ता...	२१४-२३२
--------------------------------------	----------------

(विरुद्धधर्माश्रयतामें अविरुद्धी समन्वित सिद्धान्त

अथवा स्मरणभक्तिसू कृष्णभक्ति)

उपक्रम-षोडशग्रन्थप्रकरणमें आते उपदेश और	
वार्ताप्रकरणमें आते उपदेशको भेद...	२१४
धर्मनिष्ठा धर्मनिष्ठा को भेद...	२१४
संयोजित वियोजित होवे है. सहजसिद्ध वियोजित नहीं होवे...	२१६
वर्च्युअल् रियालिटी और ओब्जेक्टिव् रियालिटी को भेद...	२१७

अपनी वर्च्युअल् रियालिटी ब्राह्मिकद्रव्यसु बनी भयी है...	२१८
प्रभुकी समग्रताको स्वीकार करके प्रभुकु एकरूपमें देखनो अपनी	
दीनता है...	२१८
धर्म-धर्मी तादात्म्यभावकी वार्ता-प्रकरणमें संगति...	२२१
आचार्यचरणने गज्जनधावनकु दिये प्रभुस्वरूपको	
अपहरण नहीं कियो....	२२३
वार्ताप्रकरणमें आते वचनमृतको तात्पर्य...	२२४
वचनमृतकोप्रथमांश-“येमेरेसर्वस्वहैं”-आचार्यचरणकेयेभावसु	
विपरीतअपनो प्रभुमें तरतमताको भाव...	२२६
वचनमृतकोद्वितीयांश-“तिहारेमाथेपधरायेहै”-प्रभुमेरो सर्वस्व	
है या भावसु सेवा निर्वाहकी आवश्यकता...	२२७
वचनमृतको तृतीयांश-“सेवा प्रीतिसों नीकी भांतिसों करियो.”	
भक्त- भगवान्की परस्पर भावविवशता...	२२८
वचनमृतको चतुर्थांश-“तुमसों न बनी आवे तो हमारे घर	
पधरायियो.”-आचार्यचरणको प्रभुके प्रति अचल‘सर्वस्व’को भाव...	२३०
आधुनिक सन्दर्भ-संशय: कोन्ट्राक्टमें दिये प्रभुको	
सर्वस्व माननो?...	२३१
पूर्वोक्त संशयको निष्कर्ष...	२३१
उपसंहार...	२३२

दिनकरदास सेठकी वार्ता...	२३३-२४७
---------------------------------	----------------

(श्रवणभक्तिसू कृष्णभक्ति)

आचार्यचरणको अद्भुत उत्तरदायित्वको निर्वहन और प्रभुके प्रति सर्वस्वके	
भावकी पराकाष्ठा...	२३३
वार्ता प्रसंग-दिनकरदास सेठको कथासक्तिको असामान्यगुण...	२३६
वार्तामें मिलते वचनमृतको अर्थ सैद्धान्तिक संगतिसु ही देखनो	

चहिये...	२३७
आधिभौतिक स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य को विचार...	२३७
आध्यात्मिक स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य को विचार...	२३८
आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्रदानकी भागवतदृष्टि...	२३९
धर्मसाधनामें अधिकारविवेक छोड़वेसु पनपती आध्यात्मिक अस्वास्थ्यता...	२४०
सहज उपलब्धिसु ही आध्यात्मिक उत्कर्ष होवे है...	२४१
आचार्यचरणकी भागवती दृष्टि...	२४१
वार्ताप्रसंग...	२४२
सहज उपलब्ध साधनसु ही उन्नति होवे...	२४२
गुरुको कर्तव्य धर्मचेला बनावेको है, खुदके चेला बनावेको नहीं...	२४३
कथाके कारण भीतर प्रकट होते प्रभुकु भोग धरवेकी आज्ञा...	२४४
श्रवणभक्तिसू कृष्णभक्तिको संकेत षोडशग्रन्थमें...	२४४
निरन्तर श्रवणके कारण मनमें भावात्मक स्वरूपको प्राकट्य...	२४५
श्रवणभक्तिसु दिनकरदासको उत्कर्ष...	२४५
षोडशग्रन्थ और वार्ता की एकवाक्यता...	२४६
उपसंहार...	२४७
दिनकरदास मुकुन्ददासकी वार्ता	२४८-२६६
(भगवद्भूतमूलक भक्तिरसानुभूति अथवा नामभक्तिसू कृष्णभक्ति)	
उपक्रम...	२४८
भगवान्के छह गुण अपनेमें अनुस्यूत होवें हैं...	२४८
ऐश्वर्य और वीर्य...	२४८
भक्त-भगवान्के यशमें एकरूपता...	२४८
श्री और ज्ञान...	२५१

वैराग्य...	२५१
राग-अनुरागकी स्वरूपमीमांसा...	२५१
अपने अनुराग-विरागकी क्षुद्रता...	२५२
प्रभुकु आत्मराग होवे, अनुराग नहीं...	२५३
प्रभुके गुण आनन्दात्मक होवे, अपने गुण सुख-दुःखात्मक होवे...	२५४
भगवान्को स्वरूप=सच्चिदानन्द...	२५४
भगवान्की लीला=सत्य ज्ञान और अनन्त...	२५५
प्रभुकी सत्यलीला चित्लीला और आनन्दलीला...	२५५
‘विज्ञान’को अर्थ...	२५६
विज्ञान परमात्मरागमूलक होवे है...	२५७
प्रभुकी मुख्यताके ज्ञानसु भक्तिमार्गमें चलनो है...	२५७
प्रभुरागमूलक साधनामें अनुराग होनो चाहिये...	२५८
प्रभुमें रागके कारण विरहमें अनुराग ही ‘विरह’ है....	२५९
धर्मनिष्ठताके कारण धर्मनिष्ठा होनी चाहिये...	२५९
वार्ताप्रसंग और वार्ताविवेचना...	२६०
ब्रह्मसम्बन्धमन्त्रसु उद्धार या कृष्णसु?...	२६१
कृष्णसु ही उद्धार भयो...	२६२
कृष्णभक्तिकी सरितामें नामात्मकमन्त्रके घाटपे स्नानके कारण निरुद्धता...	२६३
तीर्थ प्रभुके प्राकट्यके कारण तीर्थात्मक होवे है-मुकुन्ददासजी तीर्थात्मक हते...	२६४
उपसंहार...	२६६
अमृतवचनावली...	२६७-२९९

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

गदाधरदासकी वार्ताविवेचना : प्रसंग-१

(कृष्णचक्रवर्तिता विमर्श)

(वार्ताप्रसंग)

गदाधरदास मकरस्नानको तीर्थराज प्रयाग बरसके बरस जाते. तो एक समय गदाधरदास प्रयागमें हते तहां श्रीआचार्यजी पधारे. पंडित सब आचार्यचरणसों चर्चा करन् आवते. सो गदाधरदासको काका प्रयाग रहतो, तहां गदाधरदास उतरते. सो गदाधरदासको काका पंडित हतो, परंतु शैव हतो. सो काकाने गदाधरदाससों कही “श्रीवल्लभाचार्यजी पधारे हैं तीनसों कछु संदेह पूछनो है सो मैं जात हों”. तब गदाधरदास कहे “मैं हूं चलूंगो”. सो दोऊ आये. तब गदाधरदासजीके काकाने महाप्रभुजीसों पूछ्यो महाराज ! ठाकुरजी तो एक हैं परंतु वैष्णवसंप्रदायमें न्यारे-न्यारे क्यों मानत हैं ? कोई कृष्णकों कोई रामकों, कोई नृसिंह आदि, कोई नारायण आदि, तामें निश्चय कौन ठाकुर हैं ?

तब आचार्यजी कहे “जैसे चक्रवर्ती राजाको राज तो सगरी पृथ्वी पर, और राजा देस-देसके गाँव-गाँवके, सोऊ ‘राजा’ कहावे परंतु चक्रवर्तीराजाके आज्ञाकारी. तैसे ही पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, सो सर्वोपरी, और अवतार अंशकला करिके होइ, सब कृष्णके आज्ञाकारी. ठाकुर सबकों कहिये.

तब गदाधरदासको काका चुप करी रह्यो. गदाधरदास दैवीजीव तिनके मनमें सिद्धान्त बैठि गयो. जो श्रीआचार्यजीके शरण जइये तो श्रीकृष्णकी प्राप्ति होयगी. तब गदाधरदासने श्रीआचार्यजीकों दंडवत्प्रणाम करि बिनती किये “महाराज ! शरण लीजिये. मैं संसारमें बहोत भटक्यो.” तब श्रीआचार्यजीने कही, जो “तुम अपने काकाकों तो पूछो. इनको चित्त

दुःख पावे तो सेवक काहेको होउ ?” तब गदाधरदासके काकाने कही “हमारे तो गायत्रीमंत्रसों काम है, और तो हम जानें नाहीं. गदाधरदासकी ये जाने. ना हम ‘ना’ कहें ना हम ‘हां’ कहें.” तब गदाधरदासने कही “अब मैं आपको दास भयो. अब संसारी जीवसों व्यौहार मेरे नाहीं है. तातें मैं आपुके शरण आयो हों. कृपा करीके शरण लीजिये. और यह बहिर्मुख कब कहेगो, जो तु सेवक होउ.” या प्रकार गदाधरदासके वचन सुनीके गदाधरको काका उहांते उठिके बाहर आइ ठाड़ो भयो.

तब श्रीआचार्यजी गदाधरदासके ऊपर बहोत प्रसन्न भये. कहे “बिना सेवक ऐसी टेक है तो सेवक भये भलो वैष्णव होयगो.” पाछे श्रीआचार्यजी कहे “जा, त्रिवेणी न्हाइ आव.” तब गदाधरदास न्हाइके अपरसमें आये. तब श्रीआचार्यजीने नाम सुनाई ब्रह्मसंबंध करायो. पाछे गदाधरदासने विनती करी “महाराज ! अब मोकों कहा कर्तव्य है ? सो आज्ञा दीजे.”

तब गदाधरदाससों आचार्यजी कहे “भगवत्सेवा करो. स्वरूप कहूंतें लाओ.”

तब गदाधरदासने विचार्यो जो एक स्वरूप तो मेरे काकाके घर है सो कैसे मिले ? मैं तो या बहिर्मुखसों बोलत नांही हों. यह विचार करत बाहर निकसे माला तिलक करिके. सो गदाधरदासके काकाने पूछी “जो सेवक भये तो भली करी परंतु मेरे घर तो चलो.” तब गदाधरदासने कही मोकों तिहारे घरमें ठाकुर हैं सो देउ तो मैं चलूं.” तब उनने कही जो “ले जाओ मेरे ठाकुरसों कहा काम है !” तब गदाधरदास काकाके संग वाके घर गये. श्रीठाकुरजी मांगे. ...वाके बाद उनने श्रीठाकुरजी दिये और श्रीठाकुरजी पधराके लाये, महाप्रभुजीने पंचामृत स्नान कराके उनको ‘मदनमोहनजी’ नाम धर्यो. और तब तीन दिन गदाधरदास श्रीआचार्यजीके पास रहे. सेवाकी सगरी रीति सीखि. सो श्रीआचार्यजी ‘भक्तिवर्धिनी’ ग्रंथ किये, ताको व्याख्यान किये तामें यह कहे जो -

“अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः ।
व्यावृत्तोपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत् सदा” ॥

(उपक्रम)

कई बातें या वार्तामें आयी हैं जिनमेंसे मुख्य एक वचनामृत यामें सभी वैष्णवसंप्रदाय हैं फिरभी भगवान्‌के अलग अलग रूप क्यों आराध्य ? और वाको श्रीमहाप्रभुजीने उत्तर ये दियो के चक्रवर्ती तो राजा एक होवे, पर छोटे छोटे देशके राजा, छोटे छोटे गाँवके राजा अलग अलग होवें हैं और वो भी ‘राजा’ ही कहवावें. या तरहसु श्रीकृष्ण पूर्णपुरुषोत्तम चक्रवर्ती जैसे हैं और जितने भी भगवान्‌के स्वरूप हैं और वो भी अपने अपने देश और अपने अपने गाँवके तो राजा हैं ही.

यामें अपने संप्रदायके सिद्धांतके हिसाबसु कुछ बातें खास समझवेकी हैं, और वो ये जैसे के पेहलेके भी अपने प्रवचनन्में कई बार बता चुक्यो. प्रभुके ब्रह्म परमात्मा भगवान्‌ ऐसे अनेक रूप हैं और वा भगवान्‌के बाद एक श्रीकृष्णरूप है. अपने यहांकी, जो एक जाकु ‘हिअराकी’ कहें, मने जैसे राजामें, गाँवको राजा देशको राजा चक्रवर्ती राजा ये ‘हिअराकी’ केहवावे. कौनके ऊपर कौन है. बड़े छोटेको हिसाब. वामें अपनो सिद्धांत बड़ो लचीलो सिद्धान्त है और वाको लचीलोपन या बातपे है के अपन् यों नहीं माने हैं के जा देवरूपकु अपन् अपनो इष्ट या अभीष्ट मान रहें हैं वा देवरूपके अलावा दूसरे रूप दैविक रूप नहीं हैं. या वो भजनीय रूप नहीं हैं ऐसे अपन् नहीं माने हैं. पर जो अपनो भजनीय रूप हैं वाकु अपन् सर्वोपरी माने जैसे चक्रवर्ती. महाप्रभुजीने एक उदाहरणसु समझायो. ये चक्रवर्ती और मंडलवर्ती या गाँवको राजा या मंडलाधीश ये सारे जो उदाहरण हैं. वामें खास एक भेद तो ये समझवेको के जैसे राजाको एक पहलु व्यक्ति होवेको है. राजाको एक दूसरो पहलु व्यक्ति होवेको नहीं पर राजा होवेको है. तो अपन् या बातकु ध्यानसु समझ सके हैं के राजा व्यक्ति होवेके रूपमें तो एक व्यक्ति है सामान्य. जैसे कोई भी व्यक्ति होय प्रजा जैसो व्यक्ति, पर राजा होवेके रूपमें वामें व्यक्तिको प्रश्न नहीं आके. और वाके कार्यकलापको प्रश्न है के वो कार्य क्या कर रह्यो है ?

वैसे सामान्य तौरपे ‘राजू दीप्तौ’ कह्यो जाय. जो दीप्तिमान है वो राजा कह्यो जाय. हर चमकतो व्यक्ति, चमक-दमकवालो व्यक्ति राजा होवे ये जरूरी नहीं है. पर यहां जो चमक-दमक है वो चमक-दमक है संरक्षणकी, अब सबकी संरक्षणीय प्रजाको अनुपात एक जैसो तो हो नहीं सके !

(समाजमें ज्येष्ठताको विचार)

जैसे अपन् अपने यहां किशनगढ़के ही उदाहरणसु देखें तो खयाल आयेगो के किशनगढ़ स्टेट् कुल जितनो बड़ो ऐसे तो जयपुर स्टेट्‌के ठिकानायें हते. शायद यासु भी बड़े ठिकानायें होयगे जयपुर स्टेट्‌के. तो वो ठिकानेवाले बड़े के किशनगढ़वाले बड़े ? तो यदि एरिया जापे वो लोग राज कर रहें हैं वा दृष्टिसु देखो तो किशनगढ़सु बड़े वो ठिकानेदार हते. और पावरके एंगलसु देखो तो उनके उन ठिकानेदारन्के अपने एरियामें उतने पावर नहीं हते जितने पावर किशनगढ़ राजाके ये छोटेसे किशनगढ़में हते. ये तो समझो के किशनगढ़ एक कुछ सित्तर-अस्सी माईल्को कुछ होयगो. पर यासु भी ज्यादा कोई छोटी राजा हो सके. सित्तर-अस्सीको नहीं कोई बीस माईल्के एरियाको भी कोई राजा हो सके. पर यदि वो संपूर्ण राजा है तो वो एक वाकी सामर्थ्य अलग मानी जाय और संपूर्ण राजा नहीं है और ठिकानेदार है तो एरिया वाको बड़ो भी हो सके, पर वाके राजापनेकी सामर्थ्य उतनी नहीं मानी जाय. ये एक व्यवस्थाको सिद्धान्त हतो. तो ये व्यक्तिकी सामर्थ्य नहीं है, ये पदकी सामर्थ्य है. व्यक्ति व्यक्ति होवे. जैसे जा जमानामें ये स्टेट् हती सब राजान्की, वा जमानामें भी कई सेठ भी ऐसे हो सकते होयंगे के जिनकी सालियाना इन्कम् इन राजान्‌के बराबर या इनसु ज्यादा भी हो सकती होयगी. अब पैसाकी इन्कम् ज्यादा है करके वो ‘राजा’ नहीं केहवावे. सालियाना इन्कम् जैसे ‘टाटा’ है ‘बिरला’ है. ऐसे टाईप्के जो सेठ होवे उनकी मैं समझु हूं किशनगढ़ जा बखत स्टेट् हतो वा बखतकी एन्युअल् इन्कम् साठहजार कुछ हती. साठहजार आजके साठहजार नहीं वा जमानाके साठहजार. अच्छो खासो मतलब रखते थे, पर वा जमानेमें भी साठहजार बरसकी कमाईवाले बहोत सेठ होयंगे. बम्बईमें कलकत्तामें दिल्लीमें के जो इतनो कमाते होयंगे जितने किशनगढ़ दरबार यहां कमाते हते. पर उनकी वो स्टेटस् नहीं हती जो राजा होवेके कारण इनकी स्टेटस् हती. तो वो राजा जो है वो व्यक्तिको प्रश्न नहीं हतो वो पदको प्रश्न है.

जैसे अपने संयुक्त परिवारन्में, बड़े परिवारन्में अपन् देख सके के कई बखत ऐसी घटना घट जाय के उमरमें भतीजा बड़े होवें और काकायें छोटे होवें. कई छे-सात भाईयें होवें ऐसी सहज घटना घट जाय के बड़े बेटाको लड़का छोटे लड़कासु बड़ो भी हो सके. भतीजा वैसे उमरमें बड़ो होवे काका उमरमें छोटे होवे. पर वहां उमरको बड़ोपन बड़ो नहीं गिन्यो जाय सम्बन्धको बड़ोपन बड़ो गिन्यो जाय. ऐसे कौन बड़ो है ? कौन छोटे है ? याके कई सिद्धान्त हैं.

(शास्त्रमें ज्येष्ठता)

जैसे शास्त्रमें या बातकी स्पष्ट व्यवस्था हती के ब्राह्मणमें बड़ोपन या बातसु नहीं गिन्यो जाय जो कौन ब्राह्मणके बाल सफेद हैं या कौन ब्राह्मणके पास धन ज्यादा है या कौन ब्राह्मणको परिवार ज्यादा बड़ो है उनसु ब्राह्मणकी ज्येष्ठता नहीं गिनी जाती.

“न हायनैः न पलितैः न वित्तैः न च बन्धुभिः ।

ऋषयः चक्रिरे धर्मं यो अनूचानो स वै महान्” ॥

(म.स्मृ.२।१५४).

ब्राह्मणको मतलब है, ‘ब्रह्म’ मने शास्त्र वेदशास्त्र, वेद जाके पास है. वेद जाके पास है वाको मतलब क्या ? के वेद जाने पढ़्यो है, वेदकु जो समझ्यो है, वेदकु जो समझा सके है और वेदके जो सिद्धान्त हैं उनकु जी रह्यो है तो वो ब्राह्मण है. और सच्ची तरहसु वेद जाके पास है. ये तीन तरहसु वेद अपने पास है ऐसे मान्यो जातो. वेद पढ़्यो और समझ्यो है के नहीं ? वेद समझा रह्यो है के नहीं ? वेद शास्त्रकु जी रह्यो है के नहीं ? ये काउन्टिंग् करी जाती. ये काउन्टिंग्पे जो खरो उतरे वो ब्राह्मण. ध्यानसु समझो. वेद पढ़्यो ही नहीं है तो ब्राह्मणमें जो ‘ब्रह्म’ शब्द है, ब्रह्मसु जो रीलेटेड होय वो ब्राह्मण. अब वेद ही नहीं पढ़्यो पेहले ही काउन्टिंग्पे वो ब्राह्मण खतम हो गयो. वेद पढ़्यो ही नहीं, वेद समझ्यो ही नहीं. अब पढ़्यो ही नहीं तो समझेगो कहांसु ! और समझ्यो ही नहीं तो समझायेगो कहांसु ! समझायेगो नहीं तो वाकु आचरणमें कहांसु लायेगो ! तो इन काउन्टिंग्पे

जाको ब्राह्मणत्व खतम हो जाय वाकु ‘जन्मना ब्राह्मण’ केहते. स्वरूपतः ब्राह्मण नहीं मान्यो जातो. ब्राह्मणको बेटा है ब्राह्मण नहीं है. जैसे संस्कृतमें एक बहोत प्रचलित मुहावरा है के कोईकु ‘मूर्ख’ नहीं केहनो होय तो ‘पंडितपुत्र’ कहो. ‘पंडितपुत्र’को मतलब क्या ? याके पिताजी पंडित हते. अब केहवेकी जरूरत नहीं है के पिताजी पंडित हते वाको मतलब साफ है न ! के ये यदि खुद पंडित होते तो इनके पिताजी पंडित हते ये केहवेकी जरूरत क्यों पड़ती ! इन्हीकु ‘पंडित’ केहते ! पर जब अपन् उनकु ‘पंडित’ नहीं केहके उनको परिचय ऐसे दे “ओहोहो ! इनके पिताजी बहोत बड़े पंडित हते.” मतलब समझ जावेकी बात, पिताजी पंडित है, ये पंडित नहीं है. ऐसे इनके पिताजी ब्राह्मण हते यों कह्यो जाय. जब ब्रह्म नहीं हैं तो बाकी ये ब्राह्मण है ऐसे प्राचीन लोग मानते नहीं. ये प्राचीन पद्धति हती. “ऋषयः चक्रिरे धर्मं यो अनूचानो स वै महान्” ऋषिन्ने ये नियम बनायो के बुद्धे ब्राह्मणकु भी जवान ब्राह्मण या बच्चा ब्राह्मण यदि कुछ बात वेदकी ऐसी समझा सके है, कुछ ऐसी गाईडलाइन् दे सके है वेदके आचरणकी के जो बुद्धो नहीं जानतो होय. कुछ ऐसी ग्रंथियें जो नहीं सुलझी होंय वो सुलझाके समझा सकतो होय, तो वाकु बड़ो मानो अपने आपकु छोटे मानो. तुम्हारे बाल सफेद है यासु तुम बड़े और वो छोटे ऐसे नहीं.

अपन् जाने हैं अच्छी तरहसु या बातकु जा बखत शुकदेवजी भागवतपे प्रवचन करवे बिराजे वा बखत उनके दादा और परदादा ऋषियें भी सुनवेके लिये श्रोताकी तरह नीचे बैठे. शुकदेवजीसु ऊपर नहीं बैठे क्योंकि ये ऋषिन्की एक डिसीप्लीन् हती के जो वेदादिशास्त्रनके ग्रंथकु समझा सके वो अपनेमें ज्येष्ठ हैं. जाके बाल सफेद हो गये होंय वो नहीं.

ऐसे जो भी कह्यो हैं शास्त्रमें के, आज अपन् सुने तो आश्चर्य होवे के कैसी मानसिकता वा बखत हती और कौनसी मानसिकता अब अपनी हो गई हैं ! शास्त्र या बातकु स्पष्ट कहें हैं के उमरसु छोटे बड़ो माननो ये तो शूद्रको काम है, पैसासु छोटे बड़ो माननो ये बनियाको काम है, शक्तिसु छोटे बड़ो माननो ये क्षत्रियको काम है और ब्रह्मज्ञतासु बड़ो माननो ये ब्राह्मणको काम है. तो जो छोटे-बड़ेको जो भेद है के कौन ज्येष्ठ है कौन कनिष्ठ है वामें ब्राह्मणमें ज्येष्ठता और कनिष्ठताको निर्धारण यासु होतो थो के कौन वेदादि शास्त्रकु अच्छी तरहसु

समझ्यो है और समझा सके है. यदि जी रह्यो है तो वो ज्येष्ठ है. जो नही समझ्यो है, जो नही समझा सके है, जी नही रह्यो है वो कनिष्ठ है. या जो कम समझ्यो है, कम समझा सके है, कम जी रह्यो है तो वो कनिष्ठ है. या तरीकेकी एक हिअरार्की हती. 'हिअरार्की' मने एक पथ्थरके ऊपर दूसरो पथ्थर रखके दरवाजा बनावे वाके ऊपर पथ्थर रखे तो 'हिअरार्की' कह्यो जाय. कमानके जैसे ये आवे न जैसे ! महेराब जैसे एकपे एक पथ्थर जमाके फिर एक जो पथ्थर है वो सबकु दबाके सबकु सीधो रखे, तो ये जो महेराब है वो हिअरार्की केहवावे जो, कौन के ऊपर कौन कौन के ऊपर कौन.

ऐसे देवन्की भी महेराब है, ये अपनी सामाजिक महेराब हती, वर्णव्यवस्थाकी महेराब हती. जैसे एक महेराब मैने आपकु बताई के आयुसु ज्येष्ठता, उमरमें जो सबसु बड़ो है वो महेराबमें सबसु ऊपर है, जो सबसु छोटो है वो महेराबमें सबसु नीचे है. वैश्यकी महेराबमें जो सबसु ज्यादा धनवान् है वो सबसु ऊपर है. 'शक्ति' मने रक्षण और रक्षणकी जिम्मेदारी वामें जाकी शक्ति सबसु ज्यादा अधिक है वो क्षत्रियकी महेराबमें सबसु ऊपर है. ऐसे ब्राह्मणकी जो जिम्मेदारी है ब्रह्मकु जाननो, ब्रह्मकु समझनो ब्रह्मकु समझानो और ब्रह्मको आचरण करनो वामें वो महेराबमें सबसु ऊपर मान्यो जातो ब्राह्मणमें. वो एक अपनी वर्णव्यवस्थाकी महेराब हती. आश्रम व्यवस्थाकी महेराब ऐसी हती के ब्रह्मचारीसु गृहस्थ, गृहस्थसु वानप्रस्थ, वानप्रस्थसु संन्यास. संन्यासकु महेराबमें सबसु ऊंचो मान्यो जातो. वाको भी कारण बिलकुल साफ हतो. आज अपन् यों समझें जो 'ब्रह्मचारी' माने जाने शादी नही करी वो ब्रह्मचारी, वो तो पीछेसु आयो भयो 'ब्रह्मचारी'को अर्थ है. ब्रह्म मने वेद, वेदको जो अभ्यास कर रह्यो है वाको नाम 'ब्रह्मचारी'. वेदके अभ्यासमें ये नियम हतो के शादी के पेहले अभ्यास करो. क्योंकि शादी करवेके बादमें वेदाभ्यास करोगे तो तुम्हारे ऊपर झंझटें इतनी आ जायेगी के न तो बराबर वेदको अभ्यास होयगो और न शादीको धर्म तुम्हारो बराबर निभेगो. अभी हम यहां आ रहे थे तो, बम्बईमें ही एक व्यक्ति पूछ रहे थे वैसे तो तीन बच्चा हो गये पर ! हम जनोई ले लें ! मैंने कही अब तीन बच्चा ही हो गये अब जनोई लेके करोगे क्या ? (तो कहे) जनोई लेनो भूल गये थे बचपनमें तो अब ले लें. मैंने कही के भई ! जनोई तो कोई रस्सी तो है नही, के डोरी नही है के ले ली और डाल ली. जनोई है वाको मतलब साफ ये है के वेदोक्तकर्म, जिनकु वेद

यों कहें के ये करो ये करो वो करो वो. वेदोक्तकर्म जितने भी हते उन कर्मन्के अधिदेव हते कोई कोई. उन कर्मन्के जो अधिदेव हते उन अधिदेवन्की मूर्तियें नही होती थी. आज भी अपन् जब कर्मकांड करें तो या बातकु ध्यानसु समझो के वामें मूर्ति नही पधराई जाय. आजकल कई लोग पाछी पधरावे लगे हैं अगड़म बगड़म सभी चले वामें ऐसो भी करे. बाकी वैदिक कर्मकांडमें मूर्ति नही पधराई जाय, मंत्रसु देवताको आह्वाहन होवे वो यज्ञके कुंडमें और जो आहुति दी जाय वा यज्ञकुंडमें वो वा देवताकु दी जाय, पर वो यज्ञके देवताकु आह्वाहन करवेको अधिकार कौनको ? और आह्वाहन करके वाकु आहुति देवेको अधिकार कौनको ? तो वाके लिये शास्त्रने एक व्यवस्था बताई थी के तुम यज्ञोपवित धारण करो. और वा यज्ञोपवितमें जैसे अपन् मूर्तिमें प्राणप्रतिष्ठा करें ऐसे यज्ञोपवितमें सारे देवन्की प्राणप्रतिष्ठा की जाती.

(वैदिककर्मकु आरोग्यप्रद बतावेकी हीनवृत्ति)

अभी आजकल लोग अपनेकु बेवकूफ बनावे के जनोई कानपे चढ़ा लेनी चाहिये या लिये के जनोई कानपे चढ़ावेसु वो पिशाब करते बखत जो किडनीकी प्रोबलेम् नही आवे और ब्लडप्रेशर नही बढ़ें ऐसे कहें. सब बेवकूफ बनावेके धंधा है. जनोई कायकु कानपे चढ़ानी डोरा ही या परमनन्ट् रबरबेल्ट् ही बांध लो न फिर ! यदि इतनो याको फायदा होतो होय तो जनोई कानपे चढ़ावेकी क्या जरूरत ! एक रबरबेल्ट् बांध लो कानपे परमनन्ट् आनन्दसु. फिर जब चाहिये तब पिशाब करो. ये सब क्या है जिन लोगन्ने शास्त्र पढ़े नहीं, जिन लोगन्कु शास्त्रकु पढ़नो नहीं हैं, वो लोग पाछे आड़े-टेढ़े सवाल करे के जनोई क्यों चढ़ानी पिशाब करते बखत ? अब कोईकु कुछ सूझे कोईकु कुछ सूझे. जाके मुंहमें जो बात सूझे वो बात लगा दे के - किडनीमें कभी प्रोबलेम् नही आवे, ब्लडप्रेशर ठीक हो जाय. ब्लडप्रेशर ही ठीक करनो होय तो आजकल दवाईयां आ रही हैं ब्लडप्रेशर ठीक करवेकी. जनोई कायकु चढ़ानी ! तो ऐसे अगड़म-बगड़म कुछ-कुछ सोच ले कारण. इन कारणन्को शास्त्रके साथ कोई सम्बन्ध नही है. कोई लोगन्के गले भी उतर जाय वो बात. वो गले उतर जाय बात वो दूसरी है.

(भगवद्धर्ममें भी स्वार्थमय हेतु खोजवेकी वृत्ति)

हमकु एक भाई बता रहे थे ठाकुरजीकु अपन जब-जब आरती करे तब तब दंडवत् क्यों करनी ? बोले, वासु तोंद नही बढ़े. ठाकुरजी भी परेशान न अपने !. क्योंकि ठाकुरजी बिचारे यों समझते होंय के मेरे प्रति दैन्यभाव रखके दंडवत् कर रह्यो है और भीतरखानेसु दानत खराब है के तोंद घटानी है वा लिये दंडवत् कर रह्यो है ! तो तोंद घटावेके लिये दंडवत् करनी के ठाकुरजी के प्रति दैन्यभावसु दंडवत् करनी ? अब तोंद ही घटानी है तो आजकल तो वो जोंगिंग्-वोंकिंग् और बहोत सारी एक्सरसाईज आ गई हैं वासु तोंद घटा लो वाके लिये ठाकुरजीकु बिचारेकु शिकार क्यों बनानो ! के तोंद घटा रहें है. जब आरती कर रहें है तब एक बखत दंडवत् कर रहें हैं भावना क्या ? ठाकुरजीके प्रति दीनताकी भावना नही, अपने तोंद घटावेकी भावना. तो आजकल क्या है के हर धार्मिक क्रियामें अपन या तरीकेके कोई न कोई स्वार्थमय हेतुनकु खोजवे लग गये हैं जासु अपनेकु धर्म सच्चो लगे है. पुराने लोगनकी वृत्ति ऐसी नहीं हती. जो स्वार्थकी वृत्तियें होती थी वामें भी वो लोग कोई न कोई परमार्थकी वृत्ति खोजते थे. याको पारमार्थिक प्रयोजन क्या ? भले स्वार्थ पूरो हो रह्यो होय पर वाको प्रयोजन वो पारमार्थिक कोई खोजते थे के या प्रयोजनसु हम कर रहें हैं. अब ऐसो है के पारमार्थिक कोई कार्य है वामें भी अपन स्वार्थके प्रयोजन खोजें हैं और वो स्वार्थके प्रयोजन कोई अपनेकु समझावे तो अपनेकु वो धर्मको आचरण समझमें आवे के, हां तो ये धर्मको आचरण सच्चो ! नहींतो धर्मको आचरण खोटो अपनेकु लगे. क्योंकि अपनो स्वार्थ पूर्ण नहीं होवें तो धर्माचरण खोटो. अपनो स्वार्थ पूर्ण होवे तो धर्माचरण सच्चो ! ये आखी एक मानसिकता अपनी बदल गई है करके अपन ऐसी उलटबांसी बजा रहें हैं, पर या बातसु ध्यानसु समझो के प्राचीनकालमें ऐसो नही थो. प्राचीनकालमें हर बातमें जो स्वार्थकी बात हती वामें भी कोई परमार्थ खोजते थे.

अभी कुछ साल पेहले एक पुस्तक छपी तो वामें लिख्यो थो के कंठी क्यों पेहननी ? उनने कही के कंठी या लिये पेहननीके कंठी पेहनके अपन नहावें तो बेक्टेरियायें सब मर जाय. तुलसीकी कंठी ठाकुरजीके चरणारविंदमें समर्पे जावेवाले तुलसीकी कंठी वाकु अपन बेक्टेरिया मारवेके लिये (वापरें तो वाके बज़ाय) तो डेटोल् कायकु नही लगा लेनो ! बेक्टेरीया ही मारनो है तो और हर बेक्टेरिया कोई नुकसानदेह भी नही है. जिनने मेडिकल् सायन्स पढ़्यो है वो या बातकु अच्छी

तरहसु समझ सकेंगे के बहोत सारे बेक्टेरिया अपनेकु फायदेमंद होवें हैं. हर बेक्टेरियाकु मारवेकी भी जरूरत नही है. (अब कहें) तिलक क्यों लगानो ? उनने कही यामें हल्दी और चूना हैं. हल्दी जो है वो एन्टीसेप्टिक है और चूना जो है वो पता नही क्या है ! पित्तनाशक है. तो वाके लिये चूना और हल्दीकु मिलाके कंकु लगावेसु पित्त और कफको नाश हो जायगो.

ठाकुरजीको तिलक लगा रहे हो ! ठाकुरजीको चरणारविंद माथेपे धारण कर रहे हो ठाकुरजीके चरणारविंदकु माथेपे धारण करवें इतनो क्षुद्र हेतु सोचनो के पित्त और कफको नाश करवेके लिये हम चरणारविंद धारण कर रहें हैं. ठाकुरजीकु कितनो संकोच होतो होयगो के याके माथेपे चरण धरूं के नही धरूं ? क्योंकि याको मूल हेतु तो मेरो चरण अपने मस्तकपे धारण करवेको नही है पित्त कफ नाश करवेको है जो विक्ससु भी हो सके. कफको नाश विक्सवेपोरबसु भी हो सके और पित्तको डायजीनसु नाश हो जाय. उतने छोटेसे मच्छर मारवेके लिये इतनी बड़ी मशीनगन् !! ठाकुरजीकु जाके केहनो के अब आपको चरण हमारे माथेपे धरो के हमारे पित्तनाश होवे और कफनाश होवे. ऐसे ऐसे क्षुद्र हेतुएं खोजें हैं तब अपनेकु लगे हैं के हां तिलक करनो सच्चो है ! या लिये तिलक करनो सच्चो नही लगे के ऐसे प्रभुको चरण मैं अपने मस्तकपे धारण करूं. क्योंकि मैं हरवक्त अपनो माथा प्रभुके चरणपे झुकाये रख सकूं वा तरीकेको प्रभुचरण और मेरे माथाके बीच उतनो घनीष्ट सम्बन्ध नही हैं, नहीं हैं तो नहीं हैं प्रभुचरणचिन्ह मैं हर वक्त अपने मस्तकपे धारण तो कर सकूं ऐसे एक पारमार्थिक प्रयोजनसु चरणचिन्ह अपने मस्तकपे धारण करनो और वात-कफ-पित्त नाशके लिये चरणचिन्ह धारण करनो कितनी गलीच बात लगे सोचें तो !

ठाकुरजीने तुलसीको अंगीकार कियो अपनी कृपा जताके, अपनी कृपा जताके तुलसीको अंगीकार कियो तो प्रभु तुलसीको जबरदस्ती अंगीकार कर रहें हैं, तो अपन वा तुलसीकु धारण करें तो ठाकुरजीकु ये याद आवे मैं जबरदस्ती चाहूं तो अंगीकार कर सकूं. तो अपन तो अंगीकार होनो चाह रहें हैं तो अपनो क्यों नहीं अंगीकार करेंगे. ऐसी पारमार्थिक भावनासु कंठी धारण करो तो वो समझ नही आवे लोगनकु ! क्यों ? वो कहें फायदा क्या है यामें ! कुछ फायदा बताओ. वो फिर फायदा क्या बतावे ! बेक्टेरिया खतम हो रहे है.

अभी एक और बात उनसे कही बंडी कायकु पेहननी चाहिये ? बंडी पेहनवेसु यहां छातीपे कसाव आवे, कसाव आवेसु छातीमें प्रेम बढे. तो यार ! बनियान ही क्यों नहीं पेहननी ! स्वेटर् ही क्यों नहीं पेहननी ! एकदम टाईट टीशर्ट पेहन लो. पट्टा ही बांध लो तो ओर कसाव आयेगो तो ओर स्नेह बढ़ जायेगो ! ऐसी-ऐसी बेवकूफीकी बातें लोग निरंतर करते रहें. जिनको कोई सम्बन्ध नहीं धर्मके साथ, अपनी प्राचीन संस्कृतिके साथ. अब क्योंकि लोगन्की उटपटांग शंकायें होवें और उटपटांग शंकाके उटपटांग पाछे जवाब कोई लोग रेडीमेड देदें, फिर सब लोगन्कु यों लगे हां बहोत अच्छो समझा दियो ! तो बंडी पेहननी या लिये आवश्यक है के बंडी पेहनवेसु स्नेह बढे. स्नेह बढ़तो होय तो बंडी पेहनवेवालेन्को एक सर्वे करके देखो. बंडी पेहनवेवाले ज्यादा स्नेह कर रहें है के शर्ट पेहनवेवाले ज्यादा स्नेह कर रहें है ? के कुर्ता पेहनवेवाले ज्यादा स्नेह कर रहें है ? सच्चीबात तो देखो एक बात बताउं के मुसलमान सब कुर्ता पेहने उनकु अपने धर्मसु जितनो स्नेह है उतनो हिन्दुन्कु अपने धर्मसु स्नेह नहीं हैं. तो तो वो बंडी कहां पेहर रहें है ! कुर्ता पेहर रहें है. लबड़धोंधो कुर्तायें पेहरे मुसलमान अक्सर और वो अपने धर्मसु अपने मस्जिदसु अपने करमसु कितनो स्नेह रखें. अपन् अपने धर्म करमसु इतनो स्नेह कहां रखे ! तो स्नेहको यदि बढ़नो कोई कारण होतो तो लुज़में ज्यादा दीख रह्यो है. ऐसी उटपटांग बातें करें. खैर !

(देवपूजनमें आह्वाहन प्रतिष्ठा और विसर्जन के प्रकार)

मैं आपको समझा रह्यो थो के तो जनोई जो है वो जनोई कोई कानपे चढ़ाके ब्लडप्रेसर सुधारवेके लिये और किडनीकी कोई प्रोबलेम् नहीं होवे या लिये नहीं है. जनोई जो हती वामें मूलमें सब देवतान्को आह्वाहन करके प्रतिष्ठा करी जाती थी. वा देवकु अपन् अपने शरीरपे धारण करते थे या बातकु ध्यानसु समझो. जब शरीरपे धारण करते थे तब जा कर्ममें, जा देवको आह्वाहन करनो होय वो जनोईमेंसु आह्वाहन कियो जातो थो के अब हमकु आपको आहुति देनी है तो वो आहूतदेवताकु आहुति यज्ञमें दी जाती और उन देवन्की प्रतिष्ठा जनोईमें होती थी. जैसे ठाकुरजीकु अपन् पुष्ट करें या मूर्तिकी अपन् प्राणप्रतिष्ठा करें तब वाकु भोग धर्यो जा सके, तब वाको पूजन हो सके. जो पथ्थरकी मूर्ति दीख गई (वो) हर पथ्थरकी मूर्तिको पूजन होवेको विधान नहीं है. क्यों नहीं है ? क्योंकि पथ्थरकी

यदि मूर्तिमें पूजनीयता होती तो तो फिर जो दुकानमें पड़ी भई है वामें भी पूजनीयता आनी चाहिये ऐसे नहीं है. मूर्तिमें आकृतिके कारण पूजनीयता नहीं है, पूजनीयता है वामें प्राणप्रतिष्ठासु. शास्त्रीयविधिके साथ एक पूजाकी जो पद्धति है. वा पद्धतिकी एक सेन्कटिटीके कारण वामें पूजनीयता आवे है. तो जब अपन् पूजें हैं या बातकु ध्यानसु समझो के देवकु पूजे हैं पथ्थरके रूपमें, के पथ्थरकु पूजें हैं देवके रूपमें ? या बातको भेद सोचो. दोनोंमें दोनों बातें अवेलेबल् हैं पर कर क्या रहें हैं ? कई लोग जैसे मुसलमान ईसाईलोग योंही समझते थे के अपन् पथ्थर पूजें हैं देवके रूपमें. पथ्थर अपन् देवके रूपमें नहीं पूजें हैं, देवकु पूजें हैं पथ्थरके रूपमें. पूजा अपन् देवकी ही करें हैं पर रूप तो जो अवेलेबल् होयगो वोही अवेलेबल् होयगो न ! जा रूपमें देव अवेलेबल् होयगो.

जैसे आपको एक सामान्य बात समझाऊ. कभी बहारगाम गये भये अपने परिचित व्यक्तिसु बात करनी है तो अपन् टेलीफोन जोड़ें. तो अपन् वासु बात कर रहें हैं के टेलीफोनसु बात कर रहें हैं ? टेलीफोनसु यदि बात कर रहे हो क्योंकि वो तो यहां आ नहीं रह्यो है वाकी अवाज ही तो आ रही है न ! खुद तो आ नहीं रह्यो है. वाकी अवाज आ रही है तो अपन् वासु बात कर रहें के टेलीफोनसु बात कर रहें हैं ? वासु बात कर रहें है टेलीफोनके द्वारा. टेलीफोनसु बात नहीं कर रहें है वाके द्वारा. कोई ऐसे समझे के ये दिनभर टेलीफोनसु बतियावें. टेलीफोनसु बतियावेको क्या है ! टेलीफोनके अपने क्या नाता रिश्ता. ऐसे अपन् पथ्थरकु नहीं पूजे हैं, देवकु पूजें हैं पथ्थरके रूपमें. क्योंकि जा रूपसु जैसे बहारगामवालो व्यक्तिकी कान और वाणी अपनेकु टेलीफोनके रूपमें अवेलेबल् हो सके हैं. साक्षात् कान तो अपने पास आय नहीं सके. जैसे सौ मील दूर रहतो होयतो साक्षात् कान वाके कहांसु आवे ! यहांसु अपन् हेला पाड़े तो अवाज वहां तक जानी नहीं और वो अपनेकु जवाब दे तो वो यहां अपने कान तक आनी नहीं. तो न तो वाको कान, न तो वाकी वाणी अपनेकु अवेलेबल् हो सके पर टेलीफोनके माध्यमसु वाके कान और वाणी दोनों अपनेकु अवेलेबल् हो जाय हैं. करके अपन् वासु बात कर रहें हैं टेलीफोनके रूपमें. अपने सामने वो टेलीफोनके रूपमें हैं पर बात टेलीफोनसु नहीं कर रहें हैं वासु कर रहें हैं.

ऐसे देवकु अपन् पूजे हैं, पथ्थरकु नहीं पूजे हैं. पर वो देव जा रूपमें अपनेकु अवेलेबल् है वाही रूपमें ही तो अपन् वासु बात करेंगे न ! तो या रहस्यकु समझनो चाहिये. करके देव जो है वाको अपन् पूजन कर रहें हैं, पथ्थरकु अपन् देवके रूपमें नहीं पूज रहें हैं, देवकु अपन् पथ्थरके रूपमें पूज रहें हैं. देवमें ये सामर्थ्य है जैसे एक बात समझो के टेलीफोनमें कनेक्शन होवेके बाद ये सामर्थ्य है के बहारगाम रहे भये व्यक्तिसु भी अपनी बात करवा सके है. ऐसे अपन् यों माने हैं के प्राणप्रतिष्ठा और अपनी वामें श्रद्धा और शास्त्रके जो विधान हैं वामें ये सामर्थ्य है के देव जो अपनी सन्निधिमें नहीं हैं, अपने नेत्रके समक्ष नहीं हैं वाके लिये अपन् अपनो आदर, अपनी पूजा, अपनो पूजाको नैवेद्य, वा मूर्तिके माध्यमसु वहां तक पहुँचा सके हैं. बात समझमें आई न ? ये आखो अपनो प्राचीन सिद्धान्त हतो, और जैसे ये मूर्तिपूजाको एक प्रकार है ऐसेही कर्ममार्गीय यज्ञयागादि हैं वो भी देवपूजनको ही प्रकार है. देवपूजनके कई प्रकार है वामें मूर्तिके द्वारा देवपूजन, यज्ञयागादिके द्वारा देवपूजन, देवपूजनके जो शास्त्र है उनके स्वाध्यायके द्वारा देवपूजन, देवको जो मानसिक ध्यान धरके पूजन, (ऐसे) पूजनके कोई एक ही प्रकार नहीं है. अनेक प्रकार शास्त्रमें वर्णित हैं. क्रियामय पूजन, शब्दमयपूजन, मानसपूजन आदि अनेक प्रकार बतायें गये हैं. तो उन प्रकारनमेंसु कोई एक प्रकार क्रियामयपूजन भी हतो के अपन् यज्ञके कुंडमें आहुति दें और वा आहुतिमें अपन् वा देवताको ध्यान धरें और वा देवताको आह्वाहन करके वाको ध्यान धरें और ध्यान धरके वाकु आहुति दें. ये भी देवपूजनको एक प्रकार हतो. ख्यालमें आयो न ! वा देवपूजनमें कहांसु वाको आह्वाहन करना ? कैसे वाकी विद्यमानता कहांसु लानी ? तो वो यज्ञोपवीतमें देवकु धारण करते थे. जैसे अपनो चूल्हा सलगानो तो अपन् दीयासलाई पहले सलगावे. दीयासलाई सलगाके और फिर चूल्हा सलगावें. तो वो दीयासलाई कायके लिये होवे है ? चूल्हा सलगावेके लिये. दीयासलाईसु रसोई नहीं बनेगी और चूल्हा जो है वो दीयासलाईके बिना सलगोगो नहीं. ऐसे जहां देवप्रतिष्ठा आपने नहीं करी है वहां पूजन हो नहीं सकेगो और पूजन जो है वो जहां देवप्रतिष्ठा करी है वहां संभव है. याके लिये ये दो पद्धति, क्रियामयपूजनमें ये पद्धति, या तरहसु भेद करके करी गई के देवकी प्रतिष्ठा यहां करो और पूजन वाको यज्ञवेदिमें करो. मूर्तिमें वो दोनों एकत्रित कर दिये गये और वाके दोनों प्रकार रखें गये थे. एक प्रकार ऐसो हतो एक बखत आह्वाहन करके वाको नित्य स्थापन पूजन करो और दूसरो प्रकार ऐसो हतो नित्य आह्वाहन करो, नित्य विसर्जन करो, और नित्य पूजन करो. दोनों प्रकार वाके माने गये थे. प्रायः

प्राचीनकालमें व्यवस्था ऐसी रखते थे लोग के जहां मन्दिरमें प्रतिष्ठा करते देवमन्दिरमें देवकी

वाके नित्य आह्वाहन और नित्य विसर्जनकी प्रक्रिया नहीं होती. एक बखत आह्वाहन करके सदा सर्वदाके लिये वाको स्थापन करके और विसर्जन वाको करते नहीं, जब तक कोई विषम परिस्थिति न आ जाय. जैसे अपनेकु पता है के कोई तोड़वेही आवेवाले हैं, मन्दिरकु तो देवताकु विसर्जित भी कर देते. अब वो लोग समझते थे हमने इनको देवता तोड़ दियो. पर अपन्ने तो तूटवेके पहले देवताको विसर्जन ही कर दियो, सो पथ्थर ही तुमने तोड़े न ! बात समझमें आई ? जैसे बहोत सारे देवतानकी मूर्ति अभी भी कुवानमें मिल रही है, खेतमें गड़ी भई मिले. खेतमें गड़ी भई मीले तो देवताकु कैसे खेतमें डाल सको, गाड़ सको ? देवताकु कैसे फेंक सको ? न तो देवता कुवामें फेंके जाते थे न देवतानकु जमीनमें गाड़े जाते थे पर जा देवमूर्तिकी अपन्ने पूजा करी हैं वाकु अपनेकु जब भय लगतो थो के भई ! अब कोई तोड़वे आवेवाले हैं व्यर्थमें तोड़े नहीं अपनी देवमूर्तिकु, या लिये देवमूर्तिकु विसर्जित करके और देवमूर्तिकु कुवामें तलावमें या खेतके नीचे कही भी विसर्जित की जाती. वो देवमूर्तिकु विसर्जित की जाती थी देवकु नहीं. क्योंकि देवकी तो नित्यसन्निधि हैं. दो बात ध्यानसु समझो. करके अभी भी अपने कई ठिकाने नीचे जमीननमेंसु. पानीमेंसु देवमूर्तियें मिले हैं. तो थोड़ी कोई फेंकी थी जाके वहां ? फेंकी नहीं थी वहां. अपनेकु लग्यो के या बखत देवमूर्तिको सन्मान अपन् निभा नहीं सकेंगे तो चलो विसर्जित कर दो. तो ऐसे विसर्जित किये जाते थे प्राचीनकालमेंभी देव, पर सामान्यतया जो मन्दिर होते थे वहां नित्य आह्वाहन और नित्य विसर्जनकी प्रक्रिया नहीं होती पर ऐसो कोई विपत्तिकाल होय तो विसर्जनकी प्रक्रिया भी होती और जिनकु अपने देवकु अपने साथ रखनो हैं जाकु शास्त्रकी परिभाषामें स्वार्थ आराध्यदेव या पूजनीयदेव कह्यो जाय, तो स्वार्थ आराध्यदेव पूजनीयदेवकी शास्त्रने कितनी सुंदरे व्यवस्था सोची थी के पूजन करवेके पहले देवको आह्वाहन करो मूर्तिमें, पूजन हो जावेके बाद देवको विसर्जन कर दो और जैसे अपनी पाठकी पुस्तकें हैं या कोई भी या तरीकेकी चीज़ है वाकु सुरक्षित कोई ऐसी जगापे अपन् पधरा देते के अपन् कल पाछो पूजन करेंगे. ये एक प्रक्रिया होती नित्य आह्वाहन नित्य विसर्जनकी और जहां देवमन्दिर होय वहां नित्य आह्वाहन नित्य विसर्जन नहीं होतो, एक बार आह्वाहन कियो

जातो और प्रसंगोपात्त कभी विसर्जन करना होय तो विसर्जन भी कर सकते थे. आई न बात ख्यालमें ! ये आखी अपनी एक प्रक्रिया हती.

जहां क्रियात्मक पूजनको सवाल आतो थो वहां क्रियात्मक पूजनमें ये प्रक्रिया नहीं हती, क्रियात्मक पूजनकी प्रक्रिया हती के यज्ञोपवीतमें सकल देवतान्को आह्वाहन और प्रतिष्ठा करी जाय और यज्ञवेदिमें उनको पूजन कियो जाय. ख्यालमें आयो ! वो आखो यज्ञोपवीतको स्वरूप और माहात्म्य हतो. जाके कारण सब देवकी पूजा यज्ञमें कर सकते थे कोई मूर्तिकी जरूरत नहीं पड़ती थी; पर क्योंकि यज्ञोपवीत एकदम अपनी वा तरीकेकी हती जा तरीकेसु आज अपन् लाईट् या दीयासलाई वापरे न ! के चूल्हा जलावेके लिये अपन् लाईट् या दीयासलाई रखें हैं. रसोई बनावेके लिये नहीं, रसोई बनावेके लिये चूल्हा होवे. ऐसे देवपूजनके लिये यज्ञवेदि है और देवको आह्वाहन करवेके लिये यज्ञोपवीत हती. ये आखी सेन्टिटी(भावना) हती. अब देवको आह्वाहन करना नहीं, देवको कोई यज्ञात्मक पूजन करना नहीं है कोईकु. जैसे प्राचीनकालको नियम ये हतो के यदि तुमने यज्ञोपवीत धारण नहीं करी है तो तुम्हारो विवाह मंत्रके साथ नहीं करायो जा सके. क्यों ? क्योंकि तुमने देव धारण ही नहीं कियो तो बोले भये मंत्र खाली शब्द रहे जायेंगे.

प्रकरण १ : प्रमाणदृष्टिसू कृष्णकी चक्रवर्तिता

(उपक्रम)

मंत्रमें और शब्दमें क्या अन्तर ? या बातकु ध्यानसु समझो. जा शब्द और जा शब्दको अर्थ दोनों तुमने धारण किये तो वो मंत्र है और वो देव है. बेज़िकली मन्त्र जो है वो वाके अधिष्ठाता देवको भौतिकदेह है शब्दरूप. अब तुमने शब्द धारण कियो अर्थ धारण नहीं कियो, अर्थ धारण कियो और शब्द धारण नहीं कियो तो आधो अधूरो हो जाय. शब्द भी धारण करो वाको अर्थ भी धारण करो. तो जो शब्द है वा शब्दकु तुमने धारण कियो. वाको अर्थ जो है वो तुम यदि धारण कर लो तो वो शब्द, शब्द नहीं रहेके फिर मंत्र हो जाय और वो अर्थ भी अर्थ नहीं रहेके देव हो जाय. जैसे शादी करी हस्तमिलाप भयो तो स्त्री और पुरुष पति-पत्नी हो गये. हस्तमिलाप नहीं भयो, वरमाला एक दूसरेकु नहीं पेहराई तो वो पति-पत्नी नहीं हैं स्त्री और पुरुष हैं. हस्तमिलापकी क्रिया जो है उन स्त्री और पुरुष कु पति और पत्नी बनावे हैं. हस्तमिलापके बिना वो पति-पत्नी केवल स्त्री-पुरुष हैं. ऐसे शब्द और अर्थ दोनों जब आधिदैविक जा बखत होंय और वो दोनोंको अपनने धारण कियो तो वो मंत्र और देव हो जाय और जब अपनने शब्द धारण कियो और अर्थ धारण नहीं कियो अथवा अर्थ धारण कियो और शब्द नहीं धारण कियो तो वो आधिदैविकता उनकी खतम हो गई. तो वो अर्थ जो है वो देव और शब्द जो है वो मंत्र नहीं है. ये प्राचीन आखी अपनी पद्धति हती हिअराकीकी जो मैं आपकु समझा रह्यो हूं.

(शब्दकी मन्त्ररूपता अर्थसु)

ये जो “चक्रवर्ती राजा” जो महाप्रभुजी केह रहें हैं वाकी हिअराकी ध्यानसु समझो. तो यामें जैसे अपने यहां भी ब्रह्मसम्बन्ध जो है वो मंत्र है, अष्टाक्षर जो है वो मंत्र है वाको कॉरसपोन्डिंग् अर्थ है कुछ, वा अर्थको आप धारण कर रहे हो तो वो शब्द जो है वो मंत्र है. पर ब्रह्मसम्बन्ध तो ले लियो और अर्थधारण नहीं कियो अथवा अर्थधारण कर रहे हो और शब्द ही नहीं पता है. आजकल ऐसो भी होवे, कई लोग ब्रह्मसम्बन्ध ले लें पर ब्रह्मसम्बन्धमंत्र पूछो तो पता नहीं. कंठी पेहर ले पर अष्टाक्षरमंत्र उनकु आवे नहीं, कुछ और जप रहें होवें. कंठी तो अष्टाक्षरकी पेहरी मंत्र तो कुछ और जप रहे हैं. कई लोग जो है

वो अष्टाक्षर जप रहे हैं और कंठी पेहरे ही नहीं ! उनकु पूछो के भई ! क्यों ऐसो कर रहे हो ? तो वो कहे के “अरे ! कोई जरूरत है कंठी पेहरे तो ही भगवान् मिलेगो ?” तो भगवान् तो मंत्र जपोगे तो मिलेगो ऐसो भी थोड़ी जरूरी है ! भगवान् तो कंसकु मिले थे वो कहां कंठी पेहनतो थो और रावणकु मिले थे वो कहां कंठी पेहनतो थो ! वाकु साक्षात् दर्शन भये ऐसे साक्षात् दर्शन अपनेकु होयंगे ! और हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष कु भी भगवान् मिले थे वो कहां कंठी पेहनते थे ! उनकु तो साक्षात् दर्शन भये और हिरण्यकशिपुके तो भाग्य कितने नरसिंगजीने वाकु गोदमें सुवायो अपनेकु सुवावे भगवान् गोदमें ! पर वो एक अलग कथा हती, ये कथा अलग है. तो दो कथानकु व्यर्थमें मिक्सअप् कर दे लोग के “कंठी पेहरे तो ही भगवान् मिलेगो ?” भगवान् मिलवेको सवाल नहीं है भई ! तुम्हारो हस्तमिलाप भयो है के नहीं सवाल वाको है. जा शब्दकु तुम धारण कर रहे हो वा शब्दको वा अर्थके साथ हस्तमिलाप चाह रहे हो के नहीं चाह रहे हो के तलाक ही चाह रहे हो ? हम तो तलाकसुदा ही जीवन जीयेंगे ! वो भी एक कथा है, पर वामें न वो देव हैं न वो मंत्र है. अर्थ जो वाको है वो देव नहीं रेह गयो शब्द जो वाको है वो मंत्र नहीं रेह गयो. अष्टाक्षर और ब्रह्मसम्बन्ध के जो शब्द है उनमें मंत्ररूपता कब आवे ? के जब वाके अर्थ है उनकु तुम धारण करते होव तब तो ये शब्द जो है वो मंत्र हो जायेंगे और जब अर्थ नहीं धारण कियो तो ये शब्द जो है वो मंत्रपदसु सरकके शब्द रह जायगो. अर्थात् सब जगे अवेलेबल् है जैसे पुरुष सब जगे अवेलेबल् है पति सब नहीं हो सके न ! जो दुनियामें घूम रहे है सब पुरुष ही पुरुष तो घूम रहे हैं पति कब घूम रह्यो है साथमें ? जाके साथ अपनो हस्तमिलाप भयो होय. ऐसे अर्थ तो हर चीज़ है पर वो देव कब होयगो ? जब वाके कॉरसपोन्डिङ् कोई मंत्र होय तो. तो मंत्र और देव को वा तरीकेको सम्बन्ध है.

(वाणी और अर्थ को सम्बन्ध)

कालीदास बहोत सुंदर या बातकु वर्णन करे हैं “वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ” (कुमारसंभव.मंग.) वाणी और अर्थ जैसे एकदूसरेसु. तुलसीदासजीने भी कही है यही बात पर मूल बात कालीदासने कही थी. वाणी और अर्थ जैसे एक दूसरेसु जुड़े भये है “वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये” पार्वती और परमेश्वर कैसे हैं ?

पार्वती जो है वो वाणी जैसी है मंत्र जैसी है और परमेश्वर याने महादेव कैसे हैं ? देव जैसे हैं. तो देव और मंत्र जैसे एक दूसरेसु जुड़े भये रहें हैं छुट्टे होवेके बाद न वो देव रेह जाय है न ये मंत्र रेह जाय है. जैसे छुट्टे हो जावेके बाद पार्वती देवी नहीं रेह जायगी और महादेवजी देव नहीं रेह जायेंगे. या तरहसु जो भी शब्द है, जो भी अर्थ है उनको आपसमें जोड़, ‘जोड़’ मने नित्यसम्बन्ध अपेक्षित है. नित्यसम्बन्ध है तो देवरूपता और अर्थरूपता आयेगी. वामें अपन् यों कहें हैं के ब्रह्म जो है वो ब्रह्म एक शब्दरूप ब्रह्म जाकु अपन् वेदादिशास्त्र कहें हैं. एक अर्थरूप ब्रह्म है जो सारो ब्रह्मांड हैं. ये आखे जगत्कु अपन् ‘ब्रह्मांड’ क्यों कहें हैं ? ध्यानसु समझो. ‘ब्रह्मांड’ या लिये कहें हैं के आखो जगत् ब्रह्मको एक अंड है, ब्रह्मको एक घनीभूत भाव है. वेदशास्त्र जो है वो सारे शब्दको एक घनीभूत भाव है. मने यदि ब्रह्म = देव तो वा बाजु वेद = मंत्र. आयो न ख्यालमें !

याही लिये वेदके मंत्र कहे जाय. तो वैदिकमंत्रको जो अर्थ है वो वैदिक ब्रह्मरूपी अर्थ है. भगवान् याहीलिये गीतामें आज्ञा करें हैं “वेदैश्च सर्वैः अहमेव वेद्यो वेदांतकृत् वेदविदेव च अहम्” (भग.गीता.१५।१५) सारे वेदसु वेद्य अर्थ यदि कोई है तो भगवान् कहें हैं के “मैं हूं”. “सर्वैः अहमेव वेद्य”. ‘वेद्य’ कहो के ‘वेदको अर्थ’ कहो. ये वैद्यराजवालो वैद ये एक अलग हों ! वो ‘वैद्य’ और ये ‘वेद्य’. थोड़ा अंतर है वैद्य और वेद्य. ‘ए’ और ‘ऐ’ मात्राको अंतर है. वो ‘ऐ’वालो अर्थ नहीं ‘ए’ वालो वेद्य. “वेदैश्च सर्वैः अहमेव वेद्यः” ‘वेद्य’ मने जाकु वेदसु जान्यो जा सके वो वेद्य. तो भगवान् वहां ये केह रहें के सारे वेदके जो मंत्र हैं उन मंत्रन्को जो देव है वो मैं हूं. “वेदांतकृत् वेदविदेव च अहम्”, ऐसे ही वेदको फिर जो विस्तार भयो वो सूत्र-पुराणन्के रूपमें भयो. तो सूत्र-पुराणन्को वेद्य महाप्रभुजीके एंगल्सु यदि अपन् देखें तो महाप्रभुजी वाकु यों समझावे हैं “वेदांते च स्मृतौ ब्रह्मलिंगं भागवते तथा ‘ब्रह्मे’ति ‘परमात्मे’ति ‘भगवान्’ इति शब्दयते त्रितये त्रितयं वाच्यं क्रमेणैव मया अत्र हि”. (त.दी.नि.१।६). वेदमें वेदको जो वेद्य है वो ब्रह्म है. याहीलिये वेदकु भी ‘ब्रह्म’ कह्यो जाय और वेदके वेद्यकु भी ‘ब्रह्म’ कह्यो जाय.

गीता देखोगे तो पता चलेगो. “कर्म ब्रह्मोद्भवम् विद्धि” (भग.गीता.३।१५). वहां स्पष्ट गीतामें कहें हैं कर्मकु ब्रह्मोद्भव समझो. ‘ब्रह्म’ मने वेद, कर्मकु ब्रह्मोद्भव समझो मने वेदसु कर्म पैदा हो रह्यो है. क्योंकि “क्या

करनो ? क्या नहीं करनो ?” ये कर्म जो बतायो है वो वेदने बतायो है, करके वेदकु कर्मको उद्भवस्थान मान्यो गयो है. तो वहां ‘ब्रह्म’ शब्द वेदके अर्थमें है. ‘ब्रह्मचारी’ शब्द भी या अर्थमें ब्रह्मचारी हतो के ब्रह्मचर्य अवस्थामें वेद धारण कियो जातो. “गायत्री वेदमातरं” ऐसो केहते थे के गायत्री जो है वो वेदकी माता है. तो वेदकी माता है क्यों कही जाती ? क्योंकि जा बखत जनोई पेहनाते वा बखत वाकु गायत्री-उपदेश देते. गायत्री-उपदेश देवेके बाद वाकु वेद पढ़ायो जातो. वेद पढ़ावेके पेहले वाकु ये बात समझाई जाती. ये जो लोक हैं भू भूव स्व तीनों लोक इन तीनों लोकनकु जो प्रकट करवेवालो है वो प्रकट करवेवालो जो देव है वो हमारी बुद्धिकु अच्छी ऐसी प्रेरणा दे के हम वेदकु भली-भांती धारण कर पावें. या लिये गायत्रीमंत्र लियो जातो. हम वा वेदकु ब्रह्मकु सम्यक्तया धारण कर पावें. वेद पढ़नो है नहीं, वेद पढ़के वाको उपयोग करनो है नहीं और सब लोग कहे गायत्री जपो. कई लोगनसु हम पूछे गायत्री जपवेसु क्या होवे ? अब वो पाछे वोही बात करें के ऐसे नींद नहीं आती होय तो नींद आ जाय. अरे ! नींद नहीं आती होय तो एक सेडेटीव् ड्रग् ले लो ! माथेपे एक ठंडो पोता रख लो. कुछ एक एयरकन्डिशन बसा लो. शांति कर लो ! तो ऐसे नींद आ जायेगी. कोई अच्छो संगीत सुन लो तो नींद आ जायेगी. वामें गायत्री नींद आवेके लिये नहीं नींद उड़ावेके लिये है. आजकल वाकी सीडी और केसेट् भी या अर्थकी निकले के गायत्री सुनते रहो और वो गायत्रीयें गातें रहें वो ओं...करके वो.

गायत्री खाली मत गाओ कोकोकोला कोकोकोला गाओगे न तो भी नींद आ जायेगी. सीधीसी एक बात बताउं. कोई भी एक शब्दकु घड़ी घड़ी रिपीट् करते रहें न अपन् तो आदमी बोर् हो जाय, बोर् हो जाय तो नींद आ जाय. अपन् जगे क्यों हैं ? जगे यहीलिये है के नये नये शब्द आ रहें हैं. अभी समझो मैं ही यहां बैठके एकके एक शब्द घड़ी घड़ी बोलवे लग जाउं पंद्रह-बीस मिनट् बोलुं आपकु सबकु नींद आ जायेगी. क्यों ? बोर् हो जाओगे. एकको एक शब्द कितनी बार सुननो ! सब लोग जानते हौगे या हकीकतकु के माला फेरे तो नींद आवे. वाको कारण क्या ? क्योंकि एकको एक शब्द घड़ी घड़ी चले न ! घड़ी घड़ी चले तो बोरियत् हो जाय मनमें. रुचि तो होवे नहीं अपनेकु. वो बोर् होवे न ! तो जैसे ही बोर् होवे ऐसे ही अपनेकु नींद आनी शुरू होवे. तो कोई गायत्रीके कारण थोड़ी ही नींद आनी शुरू होवे, वो बोरियत्के कारण नींद आ रही है पर अपन् वाको

झांसा यों दे के गायत्रीके मंत्रके कारण हमकु नींद आ रही है. आजकल वो ॐ ॐ...की ऐसी केसेट् और सीडीयें निकली हैं के वो सुनते रहो नींद नहीं आती होय तो नींद आ जाय. अलग अलग रागमें. सुबहके शामके रातके तो ये सब क्या नाटक चेटक है. ये ॐ को जैसे वो दंडवत् करवेको विनियोग ठाकुरजीके प्रति दैन्य प्रकट करवेके बजाय तोंद घटावेके लिये. ऐसे ॐ को ऐसो विनियोग के सोवे के लिये ॐ !!

ये सब भलती चीजें भलते ठिकाने अपन् वापरें हैं. मने जूताकु अपन् टोपीकी तरह पेहर रहें हैं और पागकु अपन् पैरपे बांध रहें हैं जूताकी तरह. या तरीकेके ये सब दुरुपयोगकी आजकल एक संस्कृति पनप रही है. वो सबको वामें कोमर्शिअल् इन्ट्रेस्ट् है सबकु वामें पैसा मिले. सब अच्छो होवे पब्लिसिटी कर दो तो मिले कुछ भी.

(ब्रह्मसम्बन्धको अर्थ = घरको ठाकुर)

वो कथा अलग है पर ध्यानसु ये बात समझो के वेदको अर्थ ब्रह्म है. महाप्रभुजी आज्ञा करें हैं स्मृतिको अर्थ परमात्मा है, भागवतको अर्थ भगवान् है. और जो अपने मंत्र हैं उनके बाद आते भये अष्टाक्षर और पंचाक्षर, ध्यानसु समझियो या बातकु वाके बाद आ रहें हैं अपने मंत्र, वो भी मंत्र हैं. जैसे वेद एक मंत्र है, जैसे गीता एक मंत्र है, जैसे भागवत एक मंत्र है ऐसे अपने अष्टाक्षर और पंचाक्षर भी मंत्र हैं. वा मंत्रको भी अर्थ है, अष्टाक्षरको अर्थ है भगवान्को माहात्म्य और पंचाक्षरको अर्थ है भगवान्के प्रति समर्पणभाव. जो अपनो प्रिय भगवान् जाकी अपन् घरमें सेवा कर रहें हैं. तो जैसे घरमें सेवा कर रहे हो तो मंत्रको अर्थ तुम्हारे यहां मौजूद है तो तलाक नहीं भयो और यदि मंत्र है और अर्थ नहीं है मतलब ब्रह्मसम्बन्ध ले लियो और घरमें ठाकुर नहीं है; और घरमें ठाकुर है और ब्रह्मसम्बन्ध नहीं लियो है तो मतलब वो ही पाछो तलाक हो गयो, भगवान्के प्रति तुम्हारी अनन्यनिष्ठा नहीं है. अनन्याश्रय नहीं है और कंठी ले ली है अष्टाक्षरकी तो पाछी वोही की वोही बात हो गई, के अपनने मंत्र ले लियो हैं और अर्थ नदारद है देव नदारद है; और अपन् कृष्णकु ही जाके समझ लो के वंदन कर रहें हैं, या मान रहें हैं, भजन कर रहें हैं और वाको मंत्र अपने पास नहीं हैं अष्टाक्षर तो देव हैं पर मंत्र नहीं है. मने महादेव हैं पर पार्वती नदारद हो गई

वा तरीकेको चक्कर है. तो ये एक आखी हिअरार्की है अपने यहांकी जा हिअरार्कीमें आप यों केह सको ब्रह्म परमात्मा भगवान्. ब्रह्म या बाजु तो वा बाजु भी 'ब्रह्म' मने वेद, या बाजु परमात्मा तो वा बाजु गीतामंत्र, या बाजु भगवान् तो वा बाजु भागवतमंत्र. या बाजु अष्टाक्षर तो या बाजु भगवान्को माहात्म्य है वो देव है. या बाजु जो है वो ब्रह्मसम्बन्ध तो वा बाजु अपने घरको आराध्य जो ठाकुर है वो वाको अर्थ है. सब वाको अर्थ नहीं हो सके. वा ब्रह्मसम्बन्धको अर्थ सब ठाकुर नहीं हो सके जा बखत अपन् कृष्णकु कहें के "कृष्ण मैं तेरो हूं" वो सब कृष्णकु नहीं केह रहें हैं. या बातकु ध्यानसु समझियो. वो तो जाके आप चरणमें तुलसी समर्प रहे हो न ! जो आपके घरमें बिराज्यो भयो है वा कृष्णकु आप केह रहें हो के "कृष्ण मैं तेरो हूं" और वो कृष्ण तुम्हारो है, वा कृष्णके तुम हो. या तरहसु मंत्र और मंत्रके अर्थनकी आपसमें एक हिअरार्की हैं और वा हिअरार्कीमें कोई वैष्णव जो है वो नृसिंहकु माने है, कोई नारायणकु माने है, कोई रामकु माने है, कोई हयग्रीवकु माने है. अलग अलग वैष्णवसंप्रदायमें अलग अलग देवनकु वा तरहसु माने है वामें महाप्रभुजीने अपनेकु एक बात समझाई के अपन् जो हैं वो कृष्णकु चक्रवर्ती तरीके माने हैं ओर सब देवकु जो है वो मंडलके राजा और गाँवके राजा और ऐसे ऐसे माने हैं. याको और विस्तृत विवेचन कल अपन् करेंगे. आज यहां रखेंगे.

कड़ावाले गदाधरदासजीकी वार्तामेंसु महाप्रभुजीको वचनमृत जैसे "चक्रवर्ती राजाको राजतो सगरी पृथ्वी पर और राजा देस-देसके, गाँव-गाँवके सोऊ 'राजा' कहावे परंतु चक्रवर्तीके आज्ञाकारी तैसे ही पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सो सर्वोपरी और अंशावतार ओर अवतार अंश-कला करिके होई सब श्रीकृष्णके आज्ञाकारी ठाकुर सबकों कहिये."

(शब्दकु समझवेकी प्रक्रिया)

ये वचनमृतके तहत अपन् कल ये विचार रहे थे के शब्द अर्थ मंत्र और देव. पेहले शायद एक बखत मैंने समझायो थो या विषयकु पर फिरसु समझा दउं मैं. के जो अपन् 'शब्द' कहें हैं वो शब्द अपनेकु समझ कैसे आवे हैं ? वाकी एक प्रक्रिया है और वो प्रक्रिया ऐसी है के जब भी अपन् कोई चीज़कु देखें सुनें या छूवें तो देखी सुनी छूई चीज़को, स्वाद ली भई चीज़को, प्रत्यक्ष जा वस्तुको

भी अपन् कर रहें हैं वाको मनमें एक चित्रसो उभरे है. अब एक ध्यानसु समझो बात के हाथी कितनो बड़ो होवे, ये अपनो चोबुर्जाको पहाड़ कितनो बड़ो तो जब अपन् चोबुर्जाको या हाथीको फोटो पाड़ेंगे तो इतनो छोटो फोटो भी वाको आ सके. इतनो छोटो फोटो आ गयो वामें हाथीकी सारी विशेषतायें वा फोटोमें आ जाय. वो हाथीकी जो विशेषतायें आवें हैं वो कैसे ढंगसु आवे है ? अब अपन् फोटोको ही खाली (अलग-अलग) एंगलसु देखें तो जैसे फोटो ब्लेक् एन्ड व्हाइट भी होवे कलर् भी होवे, कलर्फोटो होवे तो वाके कलर्की भी विशेषतायें आ जाय. ब्लेक् एन्ड व्हाइट होवे तो वाको रूप आ जाय रंग नहीं आवे पर ब्लेक् एन्ड व्हाइटसु भी अपन् पेहचान सके हाथीकु. या चोबुर्जाके फोटोको देखके और वो कितनो बड़ो है और अपने फोटोमें वामें कितनो छोटो बनके वो बराबर आ जाय चित्र. ऐसे अपनी चेतनामें जो भी अपन् रूप देख रहें हैं. रूप रस गंध स्पर्श वगैरे, आकृति वगैरे जो भी देख रहें हैं वाको अपनी चेतनामें एक चित्र रेकोर्ड हो जाय जैसे बोली भई बात टेपमें रेकोर्ड हो जाय वा तरहसु. वो जो रेकोर्ड हो जाय है वो शब्दकी मूल अवस्था है. यदि वो रेकोर्ड नहीं होतो होय अपनी चेतनामें तो अपन् शब्दसु अर्थकु पेहचान नहीं सके. ये बात समझो और ये सहज संभव है के एक वस्तुको देखके दो जनेके मनमें या चेतनामें शब्दको अर्थ, मने जोभी कुछ देख्यो सुन्यो छूयो है वाको जो चित्र, उभरे है वो एकसरीखो नहीं उभरे. एकसरीखो नहीं उभरे क्योंके जो चित्र उभरे है अपने चेतनामें वामें बहोत सारी बातें काम करती होवें हैं जैसे चेतनाकु वामें रुचि आयी के नहीं आयी ? के अरुचि आयी ? मने राग भयो के द्वेष भयो ? पसंद आयो के सूग आयी देखके वस्तुकु ? भयजनक लगी के प्रीतिजनक लगी ? दुःखजनक लगी के सुखजनक लगी ? ये सब अपनी चेतनाकी अनुभव करवेकी विधि है, उन विधिन्के अनुसार कछु कछु चित्र अपने मनमें उभरते होवें हैं. तो वामें अपनी चेतनाको भी कुछ न कुछ रोल् तो होवे ही हैं. पर फिर भी एक बात निश्चित सच है के वो जो रोल् अपनी चेतनामें उभरे हैं वा रोल्के कारण कुछ रंग अपनी चेतना भी भरे है वामें पर वासु सारो चित्र मिथ्या है यों मानवेको कोई कारण नहीं.

जैसे मैं अपने अनुभवकी एक बात बताउ. बहोत बचपनमें शायद डेढ़-दो सालको मैं होऊंगो तब तातजीमहाराजकी ब्रजयात्रा उठी और वा यात्रामें मैं पेहलीबार गयो थो. मोकु और कुछ भी याद नहीं है पर एक चित्र अभी तक भी वाको बराबर यों कोंध्यों भयो है मनमें जैसे फोटोमें पड़ जाय, के महामुस्किलसु खड़े होके मैंने एक बारीमें हाथ डाल्यो और वो हाथ मेरो बंदरने पकड़ लियो और

बहुत डर लग्यो वा दिन मोकु. अब देखो एक बात बताऊ आपको के वो जो मेरे मनमें चित्र हतो वो मोकु हतो के बहुत ऊंची बारी हती और बहुत ऊंची बारीमेंसु महापुरुषार्थ करके मैंने हाथ डाल्यो पर मैं जब अठारह बरसको भयो तब मैं खास वो मकान देखवे गयो के जो चित्र मेरे मनमें है वो बराबर है के नही वा मकानको ? क्योंकि सामान्यतया चार-पांच बरसकी उमरकी बातें तो याद रहें पर डेढ़-दो बरसकी उमरकी बात बच्चानकु याद नहीं रहे, पर मेरे मनमें कैसे वो चित्र रह गयो कायम करके मोकु भी आश्चर्य होतो थो. मैं खास देखवे गयो खास वा मकानमें विश्रामघाटपे मथुरामें. जब मैंने देख्यो तो वो बारी बहुत नीची हती, इतनी नीची हती पर क्योंकि वा बखत मैं खड़ो भयो, खड़ो होके हाथ डाल्यो मैंने अपनी लंबाई पूरी वापरी वाके कारण मेरेकु ऐसे संस्कार हते के बहुत लंबी बारी है. एकच्युली लंबी नही हती बहुत नीची बारी हती. तो चित्रमें थोड़ी गड़बड़ हती. जो मेरे मनमें चित्र हतो वा बारीको जा बारीमेंसु मैंने हाथ डालें वामें थोड़ी इतनी गड़बड़ मोकु मिली के वो बारी लंबी है जैसे मेरे मनपे इम्प्रेषन् हती उतनी बारी नही थी बहुत नीची बारी हती. लगभग मेरे यहां आ रही थी. यासु ज्यादा ऊंची वो बारी नही हती. तो ऐसी थोड़ी गड़बड़ हो जाय चित्रन्में पर पूरी गड़बड़ नही होवे. बाकी वो बारीमें जैसे ढंगके वामें सलिया लगे भये थे, जैसे लकड़ाको दरवाजा हतो और वा रूमको जो मेरे मनमें चित्र हतो वो सब बराबर मेरेकु आजतक कायम है, कैसे बंदरने हाथ पकड़ लियो ! और त्राही-त्राही हो गई क्योंकि वो नखें चूभे बंदरके और सभी बात भई तो पर अपने मनमें या तरीकेके चित्र उभरें हैं, आप लोग भी अपने बचपनकी स्मृतिनकु टटोलोगे न ! कोई कोईके उमरमें फरक होवे, कोईकु तीन बरससु आवे, कोईकु चार बरससु आवे, कोईकु पांच बरससु आवे पर कोई कोई चित्र ऐसे संभले भये सेफ् डीपोज़िट् वोल्ट्में स्मृतिके अपने रहेवे हैं और वो एक ही चित्र रहेवे ऐसे नही जो भी कुछ अपन् अनुभव करें उनके चित्र अपने मनमें या तरहसु सेफ् डीपोज़िट्में जमा होते जाय. वो शब्दको पेहलो अर्थ है.

ये बात ध्यानसु समझो. दूसरो अर्थ शास्त्रकार ये कहें हैं के जब वा अपन्ने अनुभव कियो वा अनुभवकु जा बखत अपन् फिर स्मरण करके और पाछो दोहरानो चाहें हैं वो शब्दको दूसरो अर्थ हैं स्मरण करके पाछो दोहरानो चाहे वा अनुभवकु. तीसरो स्टेप् शास्त्रकार यों समझावे हैं के वो स्मरणकु जो दोहरा रहें है वो दोहराते बखत अपन् कोई ध्वनि निकालनो चाहे हैं. सामान्यतया मनुष्यके अलावा जानवरन्में ये एक पद्धति होवे के जा विषयकु अपन्ने देख्यो सुन्यो छूयो वा विषयमेंसु जैसी ध्वनि निकलती होय वैसी ध्वनि जानवर वाकी मां. अपन् भी

मूल वा तरहसु मानें है जैसे आपको एक सामान्य उदाहरण दूं. संस्कृत भाषामें एक शब्द है मेंढकके लिये 'दुर्दु'. 'दुर्दु' अब आज अपन्कु नाम लगे हैं पर 'दुर्दु' वस्तुतः नाम नही है, मेंढक जैसी ध्वनि करे है दर..दर..दर..दर...वाको नाम अपन्ने रख्यो हैं. जैसे कौआकु अपन् 'कौआ' कहें हैं तो वो 'कौआ' यहीलिये अपन् कहें हैं क्योंकि वो कांय कांय करे है. अंग्रेजीमें यहीलिये वाकु 'क्रो' कह्यो जाय. तो वो उनकु सुनाई ऐसे पड़े हैं के कौआ क्रो क्रो क्रो क्रो.. करे है तो वाको नाम 'क्रो' हो गयो. बहुत सारे शब्द या तरीकेके आवे के जो ध्वनि वहांसु पैदा हो रही होय वो अपन् वाको शब्द बना लें. बच्चानकु जैसे आपने सुन्यो होयगो मोटरकु 'पम् पम्' कहें, क्योंकि पम् पम्... आवाज़ आती होय तो वाकु 'पम् पम्' कहें. तो बहुत सारे शब्द ऐसे होवें, पर पीछे पीछे जाके अपन् दूसरे तरीकेके शब्द भी घड़े हैं के वामेंसु जो निकलते नही होय ऐसे भी शब्द. अपन् उन शब्दन्में वा यादकु दोहरानो चाहें तो उन शब्दन्में जब याद उन ध्वनिन्में अपन् वा वस्तुकी स्मृतिकु दोहरानो चाहें वो तीसरो शब्द है. शब्दकी तीसरी अवस्था है और जब अपन्ने वाकु मुंहसु बोल दियो तब वो शब्दकी चौथी वैखरी अवस्था मानी जाय. पांचमी अवस्था वाके बाद आवे है शब्दकी, वैखरीके बाद और वो अवस्था आवे वा शब्दकी ध्वनिकु जब अपन् लिख और दें अपनी अपनी लिपिमें तो वो जो है वो वा शब्दकी पांचमी अवस्था हो जाय और वो पांचमी अवस्थामें जाके शब्द पाछो अपनेकु वो चित्र अपने मनमें शब्द दोहरावे जो चित्र अपनेकु अनुभवमें आयो होय. या तरहसु शब्दको और अर्थको सम्बन्ध है.

(शब्द और अर्थको सम्बन्ध)

अपन् यों सुने तो बहुत अपनेकु आश्चर्य लगे के शब्द और अर्थको ऐसे सम्बन्ध कैसे हो सके ! जैसे पार्वती और महादेवको. "वागर्थाविव संपृक्तौ". मेरो खुदको बनायो भयो एक मंगलाचरण है श्रीमहाप्रभुजीके लिये कई ग्रंथन्में मैं लिखु हूं. "वागर्थाविव राजेते ग्रंथकृष्णौ हि यन्मुखे वक्तारं तं विभुं वन्दे तद्वागर्थोपलब्धये" ग्रंथ और श्रीकृष्ण श्रीमहाप्रभुजीके मुखारविंदमें या तरहसु एकदूसरेसु जुड़े भये हैं जैसे वाणी और अर्थ. मने महाप्रभुजीकी ग्रंथरूपी वाणीको अर्थ कृष्ण है और जो कृष्ण है वाकु केहवेवाले ही महाप्रभुजीके ग्रंथ हैं. "वागर्थाविव राजेते ग्रंथकृष्णौ हि यन्मुखे वक्तारं तं विभुं वन्दे" वा विभुकु मैं नमस्कार करूं हूं. "तद्वागर्थोपलब्धये" उनके वाणी और अर्थ मोकु मिले

या लिये. ऐसे मैं अपने कई ग्रंथनों में मंगलाचरण करूं. तो वाणी और अर्थ या तरहसु जुड़े भये होवें पर जा बखत अपन उनके छोरकु देखें हैं वा बखत वो वाणी और अर्थ को छोर, यों एकदम जुदो जुदो दीखे पर ये पूरी प्रक्रियासु जा बखत देखोगे जो मैंने पांच प्रक्रिया वाकी समझाई, तो वा प्रक्रियामें आपकु समझ पड़ेगो के वाणी और वाके अर्थ छोरपे जाके जुदे-जुदे हैं पर भीतरखानेसु एक ही वस्तु है जो या बाजु वाणी बन रही है वा बाजु रूप बन रह्यो है.

विषयकु देखें वो बात नहीं है जैसे बच्चा जन्मे और बच्चाकु कोई कोई नामसु बुलानो शुरू करें. बच्चा हरवक्त अपने संदर्भमें एक तरहकी नामकी ध्वनिकु निरंतर सुनते-सुनते जब भी वो ध्वनि प्रकट हो रही है वाको अर्थ मैं हूं. ऐसो समझे है. वो शुरूआतमें तो वो नहीं समझ पावे के या ध्वनिको अर्थ मैं हूं. जैसे अपन 'मुन्ना' कहें के 'चुन्नु' कहें के कुछ भी कहें तो वो 'मुन्ना' केह रहें हैं तो धीरे धीरे क्या होवे 'मुन्ना' 'मुन्ना' हरबखत सुनते सुनते बच्चाके मनमें एक संस्कार बने के जब भी मोकु देखे है तब 'मुन्ना' बोले है फिर धीरेसु मनमें अपने बारेमें 'मुन्ना' होवेको एक संस्कार पैदा होवे और वाके बाद 'मुन्ना' शब्द जा बखत बोल्यो जायेगो वा बखत वो अपने आपकु समझेंगो गामकु नहीं समझेंगो. क्योंकि वो मुन्नाको अर्थ = वाको चित्र, वाके मनमें खुदको चित्र आ जाय. जैसे काचमें खुदकु देखतो होय तो अपनकु कैसे खुदको चित्र दीखे है. ऐसे 'मुन्ना' जब बोलेंगो तो वाकु लगेंगो के खुद मेरो चित्र खुद मेरे सामने आ गयो तो वो जो चित्र सामने आ रह्यो है वो शब्दकी पेहली अवस्था है और खुद पेहलो वाको अर्थ है. अब यामें और वामें एकदम फोटोग्राफी जैसो ही साम्य है बिलकुल जैसो ये है ऐसो वो है, जैसो वो है ऐसो ये है. अन्तर कितनो है ? जैसे अपन अपने कॉलेजको या कोई आइडेन्टीटीकार्ड रखें और वामें अपनो एक फोटो चोंटा लें, तो वो अपनो फोटो देखके अपनी पेहचान दूसरो कर ले, ऐसे फिर शब्दसु अपनी पेहचान होवे लग जाय. अब वा शब्दकी ध्वनि है वामें अपनेकु यों नहीं पता चले जैसे मुन्नाको जो रूप रंग नक्सा है चेहराको और 'मुन्ना' = 'म् उ न् न् आ' ये जो ध्वनि है वामें कोई तारतम्य नहीं है, पर एक बात समझो के दो व्यक्ति बच्चाके नाम 'मुन्ना' होय तो दोनों बच्चाकु जा बखत अपन 'मुन्ना' केहते होयंगे तो दोनों बच्चायें 'मुन्ना'को अर्थ दूसरो मुन्ना नहीं समझेंगे खुदको अर्थ समझेंगे. क्योंकि वाके भीतर 'मुन्ना' शब्दको अर्थ वो खुद है ऐसे आयेगो.

जैसे एक सामान्य बात करूं के अभी हमारे गुसाईंनमें 'श्याममनोहर' नामके चार बालक हैं पर कोई भी 'श्याममनोहर' कहेगो तो सबसु पेहले मोकु मेरो चित्र उभरेगो फिर कोई विशेषण लगाके जोड़े के कासीवाले श्याममनोहरजी, पोरबंदरवाले श्याममनोहरजी तब जाके फिर मैं सोचके कहूंगे के दूसरे भी है मैं ही अकेलो नहीं हूं. बाकी वो विशेषण नहीं जोड़े और सीधो 'श्याममनोहर' बोले ये तकलीफ मेरे साथ ही है ऐसो नहीं पर मेरेसु जो जुड़े भये लोग हैं उनकु भी जैसे कोईने कही के "श्याममनोहरजी आये" तो सबसु पेहले मोसु जुड़े भये हैं वो क्या सोचेंगे ? मेरे बारमें सोचेंगे. बादमें कोई विशेषण जोड़्यो जाय के कासीवाले आये, पोरबंदरवाले आये, तब फिर सोचेंगे अच्छा अच्छा वो आये, ऐसे होवे. तो नाम और अर्थ कितने एक दूसरेसु जुड़े भये है ये अपन या अर्थमें देख सके.

(भागवतार्थ = श्रीनाथजी)

कल जैसे मैंने आपकु समझायो थो के 'ब्रह्म' मने या बाजु तत्त्व है, 'ब्रह्म' मने या बाजु वेद है और जो वेदसु जो वेद्य है वो ब्रह्म हैं और वा ब्रह्म तत्त्वकु जो जानवेको शब्द है वो वेद है, वो नाम और अर्थ की तरह जुड़े भये हैं. वाही तरहसु महाप्रभुजी कहें हैं के गीता और गीताको अर्थ जो परमात्मा है वो भी नाम-अर्थकी तरह जुड़े भये हैं और वाही तरहसु भागवत और भगवान् भी नाम-अर्थकी तरह जुड़े भये हैं. महाप्रभुजी जब भागवतके द्वादशस्कंध सोचें हैं तो महाप्रभुजीकु वामें श्रीनाथजीके, नटवरलालके स्वरूपके दर्शन होवें हैं और बाकायदा कौनसो स्कंध भागवतको ठाकुरजीके चरणके स्थानीय है, कौनसो स्कंध ठाकुरजीके जंघास्थानीय है, कौनसो स्कंध भागवतको ठाकुरजीके उदरस्थानीय है, कौनसो स्कंध भागवतको ठाकुरजीको हृदयस्थानीय है, कौनसो स्कंध मुखस्थानीय है, कौनसे स्कंध दोनों हस्तस्थानीय है, वो भी महाप्रभुजीको यों चित्र जैसो उभरे है के जब भागवत मने महाप्रभुजी नटवरलाल जैसो भी चित्र बतावें हैं और श्रीनाथजी जैसो भी चित्र बतावें हैं. वहां महाप्रभुजी आज्ञा करें हैं के "उत्क्षिप्तहस्तः पुरुषो भक्तम् आकारयति उत". ये भागवतको द्वादशस्कंध है वो ऐसो है श्रीनाथजीको श्रीहस्त यों बुलातो भयो महाप्रभुजीकु या तरहसु दर्शन होवे है के दशमस्कंध जो है वो श्रीनाथजीको हृदयस्थानीय है.

(मन्त्र और मन्त्रको अधिदेव)

नाम और अर्थ को जो सम्बन्ध है वो बिलकुल 'मुन्ना' और मुन्नाकु खुदको ध्वनिके अर्थके रूपमें बोध होवे वा तरहसु है. वहीके ही तहत मैंने कल आपकु ये बात भी समझाई के 'ब्रह्म' 'परमात्मा' और 'भगवान्' ये श्रुति स्मृति और भागवत इन् तीनोंको नाम और अर्थ के तरीके सम्बन्ध है ऐसी महाप्रभुजी मान रहें हैं. ऐसे ही अष्टाक्षर मंत्र और अपनो निवेदन सहित जो पंचाक्षर गद्यमंत्र हैं वाकु भी महाप्रभुजी नाम और अर्थ तरीके देखें हैं के ये नाम है ठाकुरजीको और वो स्वयं अर्थ हैं. याहीके लिये वार्तामें भी आप देखोगे तो कई ठिकाने ऐसी आवे है के जहां ठाकुरजी नहीं पधराये वहां महाप्रभुजीने ब्रह्मसम्बन्धमंत्र लिखके पधरा दियो. यहां किल्लामें भी ब्रह्मसम्बन्धमंत्र सेवामें बिराजे हैं ठाकुरजीके साथ, तो प्राचीन परंपरा हती के वो मंत्रकु अपन् देव तरीके लेते थे, देवकु अपन् मंत्रात्मक लेते थे.

इतनो ही केवल नहीं, पर जैसे मर्यादामार्ग होय चाहे पुष्टिमार्ग होय, जा देवकी प्राणप्रतिष्ठा करी जाय तो प्राणप्रतिष्ठामें क्या होवे ? अपने यहां प्राणप्रतिष्ठा नहीं है पर ठाकुरजीकु पुष्ट तो करें हैं. तो पुष्ट करो के प्राणप्रतिष्ठा करो दोनों ही परिस्थितिमें एक बात बिलकुल साफ है के वा मूर्तिके तत्तद् अंगकु तत्तद् मंत्र बोलके छूयो जाय और छूके और वा मंत्रको ये अंग अर्थ है ऐसे सोच्यो जाय. जैसे “अव्याद् अजो अंग्रिम् अणिमान् तव जानु अथ उरू यज्ञो अच्युतः कटितटं जठरं ह्यास्यः...” (भाग.पुरा.१०।५।२२). स्वरूप एक-एक अंगकु इन मंत्रकु बोल-बोलके छूयो जाय, तो श्रीगुसाँईजी आज्ञा करें हैं के पुष्ट हो गयो. तो मतलब क्या ? जो सेव्यस्वरूप है वामें मंत्रात्मकता है और जो मंत्र है वामें देवात्मकता है. दोनों एकदूसरेसु बिलकुल वाही तरहसु जुड़े भये हैं जा तरहसु वाणी और अर्थ जुड़े भये हैं. वो मैंने आपकु 'मुन्ना' नाम और मुन्ना बच्चा अर्थ के उदाहरण द्वारा आपकु समझायो. वामें श्रीमहाप्रभुजी अष्टाक्षरकु प्रभुके माहात्म्यसु जुड़्यो भयो माने हैं और जो ब्रह्मसम्बन्ध है वो प्रभुके प्रति जो अपनो स्नेह है वा स्नेहसु वाकु जुड़्यो भयो सम्बन्ध माने हैं. कुल मिलाके जा बखत अपन् अष्टाक्षर बोलें हैं वा बखत प्रभुको और अपनो जो नाम और सम्बन्ध है वो शरण और शरणागतको सम्बन्ध है और ब्रह्मसम्बन्ध जा बखत बोले हैं वा बखत प्रभुको और अपनो जो सम्बन्ध है वो स्वामी और सेवकको, दासको सम्बन्ध है

करके ब्रह्मसम्बन्धमें अपन् “दासो अहम्” कहें हैं. वहां अष्टाक्षरमें “शरणं मम” कहें हैं. वाको मूल कारण ये है के वा तरीकेको सम्बन्ध अपन् वहां वा अर्थके साथ स्थापित करें हैं. अपने ये दो सम्बन्ध व्यक्तिगत सम्बन्ध हैं, व्यक्तिगत सम्बन्ध मने अपने सम्बन्ध वो संदर्भ पैदा हो रह्यो है. अपन् नदारद तो सम्बन्ध नहीं (रहेगो) और वो नदारद तो भी सम्बन्ध नहीं.

जैसे काका-भतीजामेंसु काका नहीं तो भतीजा नहीं हो सकेगो, भतीजा नहीं है तो काका नहीं हो सकेगो. पति-पत्नीमें जैसे पति नहीं है तो स्त्री कोई 'पत्नी' नहीं केहलायेगी और पत्नी नहीं है तो कोई पुरुष 'पति' नहीं केहला सके है. वो आपसी सम्बन्धसु पैदा होतो भयो एक चित्र है. जैसे कोई स्त्रीके मनमें चित्र उभर्यो के ये मेरो पति है तो वो जो चित्र उभर रह्यो है वो चित्र एक पुरुष है वासु थोड़ो रूप-रंग वामें भर्यो गयो. कोई स्त्रीके बारेमें अपनेकु ऐसी भाव जग्यो के ये मेरी पत्नी है तो वो केवल स्त्री होवे जितनो रंग नहीं है वामें कुछ और एक रंग बढ़्यो है बढ़ोतरी भई है. वो वाके और अपने सम्बन्धके कारण बढ़ोतरी भई है. ऐसे अष्टाक्षर जा बखत अपन् बोल रहें हैं वा बखत कृष्णको और अपनो सम्बन्ध शरण और शरणागतको द्योतित हो रह्यो है. वो रूप अपनेकु ओर वामें दिखलाई दे रह्यो हैं के वो शरण है और अपन् वाके शरणागत. शरणको मतलब रक्षक. आजकल लोग शरणको मतलब समझें हैं शरण लेनो. वो शरणको संस्कृतको मतलब नहीं है. जा बखत अपन् यों कहें “श्रीकृष्णः शरणं मम” तो कई लोग मूर्खतावश ऐसी अर्थ करे के श्रीकृष्ण मेरी शरणमें है. अरे! श्रीकृष्ण मेरी शरणमें नहीं है. “श्रीकृष्णः शरणं मम”को मतलब है, श्रीकृष्ण मेरो रक्षक है. मैं श्रीकृष्णकी शरणमें हूं. संस्कृतमें “शरणं गृहरक्षित्रोः” शरणको मतलब एक होवे घर और दूसरो मतलब होवे रक्षक. तो “श्रीकृष्णः शरणं मम” जा बखत अपन् केह रहें हैं तब घरको तो अर्थ वहां आ नहीं सके पर रक्षकको अर्थ आवे के श्रीकृष्ण मेरो रक्षक है और जा बखत अपन् यों केह रहें हैं के “मैं दास हूं” वा बखत वाको अर्थ सामने ही ये निकल रह्यो के तू मेरो स्वामी है. तो वो चित्र और ज्यादा उभर रह्यो है पर उन दो चित्रनकु और वा चित्रके द्योतक जो मंत्र हैं और वा मंत्रके देव हैं उन देवकु अभी पर्सनल् व्यक्तिगत वामें रख दें. बाकीके जो तीन मंत्र और देव हैं जैसे वेद जो मंत्र है वाको देव ब्रह्म है, गीता यदि मंत्र है तो वाको देव परमात्मा है, भागवत यदि मंत्र है तो वाको देव भगवान् है, ये

जो बात श्रीमहाप्रभुजी समझा रहे हैं यामें सारो या वचनामृतको रहस्य भयो भयो है. क्यों ? या बातकु ध्यानसु समझो. क्योंकि मैंने जैसे आपकु कल समझायो ब्रह्म निरपेक्ष है, ब्रह्म कोई सम्बन्धसु सम्बन्ध नहीं रखे. क्यों सम्बन्ध नहीं रखे ? जैसे 'मनुष्य' अपनने कोईकु कह्यो तो अपनू कभी सवाल नहीं करें के 'मनुष्य' मने कौनको मनुष्य ? मनुष्य कोईको मनुष्य नहीं होवे, मनुष्य अपने आपमें मनुष्य होवे, पर 'काका' कहें के 'भतीजा' कहें के 'बेटा' कहें, 'बाप' कहें, 'पति' कहें या 'पत्नी' कहें या 'शिष्य' कहें या 'गुरु' कहें तो वामें हरबखत सवाल उठेगो कौनको ? तो वाके सम्बन्धमें वो चित्र आयेगो. 'मनुष्य' कह्यो तो वामें सवाल नहीं उठेके कौनको मनुष्य ! क्योंकि मनुष्य अपने आपमें मनुष्य होवे है और जो भी सम्बन्धवाचक नाम है वामें कौनको प्रश्न हरवक्त आयेगो. क्योंकि जाको अपनू नाम डालेंगे वाके सम्बन्धमें वो चित्र उभरेगो. दूसरेके सम्बन्धमें वो चित्र उभरेगो नहीं.

(वेदमें 'ब्रह्म')

तो ऐसे जा बखत वाकु 'ब्रह्म' कह्यो जाय है वा बखत कोईको सम्बन्ध नहीं कह्यो जा रह्यो है, ब्रह्म तो वो अपने आपमें है और या बातकु ध्यानसु समझो के जा बखत अपनू वाकु 'ब्रह्म' केह रहे हैं वा बखत तो वा नामके अर्थतया कोई चीज़ बाकी नहीं बची. मने घोड़ा गधा कुत्ता सुअर सबकु 'ब्रह्म' कह्यो तो वामें सब चीज़ आ गई. कुछ चीज़ छूटि नहीं, कुछ भी छूट्यो नहीं, 'ब्रह्म' केहते ही वो सब कुछ हैं. क्योंकि वो कोईके सम्बन्धसु तो है नहीं. सब कुछ है वो ब्रह्म हैं, जामें भी थोड़ी भी कुछ भी कमी आई तो वो ब्रह्म हो ही नहीं सके. जब अपनेकु ये भाव जग्यो के ये है और ये नहीं है मतलब के वो ब्रह्म नहीं हैं. एक जैसे के सामान्य बात समझो के ये पुस्तक है पर तकिया नहीं है मतलब याको पुस्तक और याको तकिया होनो आपसमें एकदूसरेकु काटवेवाली बात है. लिहाजा अपनू ये केह सकें के न ये ब्रह्म है न ये ब्रह्म है, क्यों ? क्योंकि ये तकिया हो नहीं सके, ये पुस्तक हो नहीं सके. ब्रह्म ऐसी कोई चीज़ है नहीं के जो कुछ हो नहीं सके क्योंकि ब्रह्म तो वो है जो सब कुछ है, जो सब कुछ है वहीकु ही 'ब्रह्म' कह्यो जाय. जैसे ध्यानसु समझो सोनाको अपनने एरिग बनायो, सोनाकी अपनने बींटी पायल चूड़ी कंदोरा बनाये. अब जो चूड़ी जो है वो बींटी नहीं हो सके, वो बींटी जो है वो कानकी बूटी नहीं हो सके, क्यों ?

क्योंके वो आपसमें एकदूसरेकु केंसल करवेवाली चीज़ें हैं पर सोना तो सब कुछ हो सके के नहीं हो सके ! सोना सब कुछ हो सके है करके अपनू वाकु केह रहे हैं के माला कायकी है ? बोले सोनाकी. बींटी कायकी है ? बोले सोनाकी. पायल कायकी है ? सोनाकी. ऐसे जो भी चीज़ दुनियांमें है वो कायकी है पूछोगे तो ब्रह्मकी है, ये आयेगो. ब्रह्म कौनको ? ये सवाल नहीं उठे क्यों ? क्योंकि ब्रह्म कौनको नहीं ? ये पूछवेकी बात हो सके पर ब्रह्म कौनको ? ये पूछवेकी बात नहीं हो सके.

(गीतामें 'परमात्मा')

पर वाके बाद है 'गीता'. गीता एक मंत्र है और गीता यदि मंत्र है तो वा मंत्रको देव परमात्मा है. परमात्माके लिये अपनू पूछ सके के 'परम-आत्मा' मने कई सारी आत्मायें हैं उन आत्मानमें कोई एक वस्तु परम-आत्मा है. अब यामें आत्मानके सम्बन्धमें वो परमात्मा हो सके हैं. ब्रह्मके लिये वो बात नहीं है तो एक बात समझो के 'परमात्मा' केहते ही अपनेकु आत्माको बोध तो होयगो होयगो होयगो. जैसे 'काका' केहते ही भतीजाको बोध होयगो होयगो होयगो. ऐसे ही 'परमात्मा' केहते ही आत्माको बोध होयगो. कुछ आत्मायें हैं, जिन् आत्मानको वो परम है और परम होवेके कारण वो परमात्मा है.

(भागवतमें 'भगवान्')

वाके बाद आ रही है भागवत, वाको देव भगवान् है. तो यामें तीन बातें आ गयी के भजन भक्त और भगवान्. यदि भजन है तो भजन करवेवालो भक्त है. जाकु भज रह्यो है वो भगवान् है, यदि बीचमें पुलकी तरह भजन नहीं है. जैसे एक नदीके दो पाट होंय उनमें पाटपे एक पुल अपनूने कयों तो वो जुड़के पाट एक हो जाय. ऐसे भक्त और भगवान्के बीचमें पुल क्या है ? भजन. वा भजनके कारण वो भगवान् भक्त तक पहुँच पावे है और वा भजनके कारण ये भक्त भगवान् तक पहुँच पावे. वो यदि पुल ढेह गयो या पुल टूट गयो तो न भगवान् भक्त तक पहुँच सके न भक्त भगवान् तक पहुँच सके. भक्त और भगवान्के बीचमें भजनको पुल होनो जरूरी है. तब वो एकदूसरेसु एकदूसरे मिल सके वर्ना तो दोनोंके बीचमें द्वैतकी एक नदी बेह रही है के जो दोनोंकु छूट्यो पाड़ रही है. तो ये 'भागवत' एक ऐसो नाम है के जाको देव भगवान् है. याहीलिये श्रीमहाप्रभुजी

आज्ञा करें हैं के “प्रेम्णो अन्यत् साधनं लोके नास्ति मुख्यं परं महत् श्रीभागवतमेव अत्र परं तस्य हि साधनम्” (त.दी.नि.२।३२६). श्रीभागवत जो है वो परम साधन है भगवान्‌कु भगवान्‌ बनावेको. परमात्मा तो है ही अपन्‌ वाको भजन करते होंय के नहीं करते होंय. अब शाप मानो के वरदान मानो परमात्मा तो है ही, वो भी शाप मानेके वरदान मानें अपन्‌ वाकी आत्मा तो हैं ही. अपन्‌ दुष्ट हैं तो शाप लगेगो के ऐसी ऐसी दुष्ट आत्मायें आ गई मेरे पास, अपन्‌ अच्छे हैं तो वो वरदान मानेगो के चलो अच्छी बात हो गई के ऐसी आत्मा मिली के जाके हम परमात्मा हैं. पर ये सारो शाप और वरदान को भी भेद ब्रह्ममें रहे नहीं जाय. दुष्टताको और सज्जनताको, पुन्य-पापको, कर्म-अकर्मको ये सारे भेद ब्रह्मके लेवलपे लुप्त हो जा रहें हैं. देव और राक्षस को भेद ब्रह्ममें नहीं है. क्यों ? ब्रह्म ही देव बन्यो हैं और ब्रह्म ही राक्षस बन्यो है. एक ही ब्रह्म रावण भी बने है और राम भी बने है. राम और रावण को भेद कहां है ? या बातकु समझो. ब्रह्मके लेवलपे नहीं है. पृथ्वीके लेवलपे पेड़ और कुल्हाड़ी के बीच भेद नहीं है. क्योंकि पेड़ कायसु बन्यो ? पृथ्वीसु. कुल्हाड़ी कायसु बनी ? वोही पृथ्वीसु. पेड़कु काटवेवाली कुल्हाड़ी भी पृथ्वीकी चीज़ है और कुल्हाड़ीसु कटवेवालो पेड़ भी पृथ्वीकी ही चीज़ है. दोनोंकु जमीनमें गाड़ दो तो दोनों ही मट्टी हो जायेंगे. पेड़ काटके जमीनमें गाड़ दो तो वो भी मट्टी हो जायेगो, कुल्हाड़ीकु वैसे जमीनमें गाड़ दो तो वो भी कुछ सालमें मट्टी हो जायेगी. क्योंकि दोनों मट्टीके धारण किये भये दो अलग अलग रूप है. ऐसे राम और रावण ब्रह्मके ही रूप हैं, वहां ब्रह्ममें राम - रावणको भेद नहीं है. पर परमात्माकु विचारें तो आत्मा और परमात्मा को भेद आवे और भागवतमें भगवान्‌ और भक्त को भेद आवे. तो राम विभीषणके भगवान्‌ तो हो सकें हैं पर रावणके नहीं हो सके. ये चक्कर है. राम जो हैं वो हनुमानके भगवान्‌ तो हो सकें हैं पर सुर्पणखाके तो नहीं हो सकें. राम जटायुके भगवान्‌ तो हो सकें हैं पर वा कौआके तो नहीं हो सकें. क्योंकि राम भगवान्‌ हो गये उनकु एक भक्त चाहिये है वो भक्त है तो वाकु रामको स्वरूप समझमें आयेगो, भक्त नहीं है तो रामको स्वरूप नहीं समझमें आयेगो. अब ब्रह्म ही हिरण्यकशिपु बन्यो है और ब्रह्म ही नृसिंह भी बन्यो है. तो ब्रह्मकी दृष्टिसु सोचो तो हिरण्यकशिपु और नृसिंहमें कोई भेद नहीं है. पर जैसे ही भगवान्‌की दृष्टिसु अपन्‌ने सोचनो शुरू कियो वा बखत ये बात बिलकुल साफ हो जायेगी के नृसिंह जो हैं वो भगवान्‌ तो प्रह्लादको है, पर हिरण्यकशिपुको भगवान्‌ नहीं है. मने हिरण्यकशिपुकी तो बात जाने दो भागवतमें यहां तक आवे

हैं के लक्ष्मीजी ऐसो थरथर कांपवे लग गई के ऐसो रूप तो मैंने कभी नहीं देख्यो. “यह व्रत माधो प्रथम लियो जो मेरे भक्तन्‌को दुःख दें ताको फाड़ो नखन हियो” लक्ष्मीजी पास जावेसु कतरा रही थी के अभी पास जावे लायक स्थिति नहीं है. नृसिंह रूप जो है वो लक्ष्मीके लिये तो नहीं है तो दूसरेकी तो बात कहांसु आई ! और वोही जब प्रह्लाद गयो नृसिंहजीके पास तो वाकु बैठायो गोदमें और शेर जैसे अपने बच्चाकु चाटे ऐसे नृसिंहजीने प्रह्लादकु चाट्यो तो वहां बात साफ हो गई के नृसिंहजी यदि भगवान्‌ हैं तो प्रह्लादके हैं, वो हिरण्यकशिपुके भगवान्‌ नहीं है. ब्रह्मकी दृष्टिसु सोचो तो वोही ब्रह्म हिरण्यकशिपु भी है वो ही ब्रह्म नृसिंह भी है. ब्रह्ममें ये कोई भेद नहीं है. या तरीकेसु तीन शास्त्रन्‌के तीन अर्थ हैं. वो प्रत्येक शास्त्र मंत्र कब बन जाय के जब वाको अर्थ वाके सामने आवे वा अर्थमें वा मंत्रकु लियो जाय तो तो वो मंत्र है.

(‘गायत्री’ मन्त्रको मन्त्रपनो कब ?)

जैसे मैं आपकु उदाहरण दऊं समझमें आ जायेगो. गायत्री एक मंत्र है अपन्‌ सब जाने हैं पर जयपुरकी राजमाता भी तो गायत्रीदेवी है. ‘गायत्रीको’ वो अर्थ यदि आपने लियो तो फिर ‘गायत्री’ नाम जो है वो मंत्र नहीं है वो तो एक नाम हो गयो जाको मतलब एक राजमाता है. तो गायत्रीको जो अर्थ है वो लो तो गायत्री मंत्र है वर्ना एक नाम है कोई एक राजमाताको नाम है, कोई एक स्त्रीको नाम है ‘गायत्री’. गुजरातीमें तो एक मजाकिया बात है. एक वैष्णव हतो वो तो यों केहतो थो “गाय तरी अने भेंस तरी बकरी नहीं तरी तो डूबी मरी” वो गायत्रीको ऐसो उलटो अर्थ करतो थो. “गाय तरी और भेंस तरी”. तो ये सब अर्थ हो सके न ! गायत्रीके सब अर्थ हो सके न ! ‘गायत्री’ या शब्द बोलवेसु आपके मनमें कौनसो चित्र उभर रह्यो है जो चित्र उभर रह्यो है वो वाको अर्थ है, और वा अर्थके साथ जोड़के वा शब्दकु देखोगे तो वो “**वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये**” हो जायेगो. ऐसे ही वा शास्त्रकु वा शास्त्रको जो प्रतिपाद्य जो विषय है वाके साथ जोड़के देखो तो वो मंत्र हो जायेगो और वो वाको देव हो जायेगो. यदि अलग-अलग करके देख्यो तो वो न देव रहे जायेगो न ये शब्द मंत्र रहे जायेंगे.

कलकत्ताके विलियम करके बहोत बड़े एक अंग्रेज जज़ हते जो संस्कृतके बहोत बड़े विद्वान हते, तो उनकु एक संस्कृत पंडितजी पढ़ावे जाते थे. उनने एक बखत कही के “तुम संस्कृत पढ़ा रहे हो तो मोकु गायत्री भी पढ़ा दो.” उनने कही “गायत्री हम अंग्रेजकु नहीं पढ़ा सके, ये तो हमारे यहां ऐसो नियम है के जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य जनोईकी दीक्षा ले उनकु ही गायत्री बताई जाय, सबकु हम नहीं बता सके. तो मैं नहीं बताऊंगो.” विलियमने कही “मैं तुमकु पगार दे रह्यो हूं!” “पगार दो के मत दो, गायत्री मैं तुमकु नहीं बता सकु. क्योंकि वो तो जनोईके बखत ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य कु ही बताई जाय.” फिर तो वो संस्कृतको बड़ो भारी पंडित हो गयो और वाने शास्त्रको इतनो अध्ययन कियो जाको कोई ठिकाना ही नहीं. वो अध्ययन करवेमें वाकु गायत्रीमंत्र क्या है वाकु पता चल गयो. एक दिन क्या भयो के कोर्टमें जज़ बन गयो वो कलकत्ता हाईकोर्टमें. वोही कोर्टमें पंडितजीको कोई केस् आयो तो वो पहचान गयो के ये वोही पंडितजी आये जो संस्कृत पढ़ाते थे. तो वाने चालू कोर्टके दरमियान पंडितजीकु कही के “क्यों तुमने मोकु गायत्री पढ़ाई नहीं! गायत्री तो यही है न!” तो पंडितजीने कही “कौनने कही ये गायत्री है?” उनने कही “बराबर यही शास्त्रमें लिख्यो है.” तब वा जज़कु कोर्टमें पंडितजीने साफ केह दी “तुम बोल रहे हो वो तो शब्द है पर ये गायत्री नहीं है. गायत्री तो तुम सामने नहीं होव और मैं नहाऊं और शुद्ध होके संध्या करवे बैठुं और जपतो होऊं तब गायत्री है. बाकी तो शब्द है ऐसे-वैसे.” या बातके रहस्यकु समझो हो! के कब वो शब्द मंत्र हो रह्यो है और कब वो अर्थ देव हो रह्यो है. और कब अर्थ वस्तु या व्यक्ति हो जाय है और कब मंत्र जो है केवल शब्द रेह जाय है वामेंसु मंत्रत्व गायब हो जाय है. शब्द है करके मंत्र होनो जरूरी नहीं है, अर्थ है करके देव होनो जरूरी नहीं है. उनमें कोई एक विधि है, जा विधिके कारण शब्द जो है वो अर्थ हो रह्यो है. जैसे बहोत सारे अपन जान रहें हैं के हिन्दुस्तानमें राजायें हते, अब वो राजान्को राज छीन गयो तो वो थोड़ी फिर राजा रेह गये! वो राजा नहीं रेह गये अब वो तो प्रजा हो गये. अब अपन उनकु पुरानी आदतके अनुसार भले राजा समझें हैं पर सचमुचमें अब वो राजा नहीं रेह गये, अब तो वो प्रजा हो गये क्योंकि राज्य तो छीन गयो वाके बाद राजा कहां है! अब तो प्रजा हो गये जैसे अपन प्रजा हैं. तो ऐसे ही वा मंत्रको जो विधान है वो विधान अपनने छीन लियो तो वो मंत्र, मंत्र नहीं रेहके खाली शब्द रेह गयो और वा विधानके अनुसार वो शब्द आयो तो वो शब्द नहीं रेहके मंत्र हो गयो. ऐसे ही वा विधानके अनुसार वो अर्थ है तो

वो मात्र अर्थ नहीं रेहके देव हो जाय है और जब वो विधानके बिना वो अपन वाकु देव तरीके मान रहें हैं तो वो देव देव नहीं होके केवल एक अर्थ हो जा रह्यो है जैसे राजमाता गायत्री. गायत्रीको एक अर्थ तो है के नहीं! पर वो गायत्रीकी देवी थोड़ी केहलायगी!

अब जैसे अपन कोईको नाम ‘कृष्ण’ रख दें तो ‘कृष्ण’ शब्दको वो अर्थ तो है पर वो कृष्णमंत्रको देव नहीं केहलायगी. दो बातकु छूट्टी-छूट्टी समझो. जैसे अपन “श्रीकृष्णः शरणं मम” ये मंत्रको जप कर रहें हैं और कोईको नाम ‘श्रीकृष्ण’ होय वो मूंछपे ताव दे के “देख लो मान लियो के नहीं मेरेकु रक्षक.” अरे! पर वो नाम तो शब्द है वो कोई मंत्र थोड़े ही है! तुम जो अपनो नाम ‘श्रीकृष्ण’ है करके कोई बिचारो जपतो होय के “श्रीकृष्णः शरणं मम” और तुम वाके माथेपे जाके आशीर्वाद दे दो के “चल! तु मेरे शरणागत भयो, मेरे तेरेकु आशीर्वाद!” तो वो आशीर्वाद देवेको मतलब क्या? वो तु ‘श्रीकृष्ण’ शब्दको अर्थरूप व्यक्ति है, पर तु ‘श्रीकृष्ण’ मन्त्रको देव नहीं है. तो मंत्रको देव होनो एक अलग रूतबा है और शब्दको अर्थ होनो एक अलग रूतबा है. ऐसे ध्वनि और वाको चित्र होनो वासु भी नीचे रह्यो भयो एक अलग रूतबा है क्योंकि वामें तो फिक्स कुछ भी नहीं है. ध्वनि और चित्र में आपकु वो प्रक्रिया समझा चुक्यो.

या अर्थमें श्रीमहाप्रभुजी अपनेकु समझावें हैं के सब देव, देव हैं. सब प्रभुके रूप जो है वो ठाकुरजी हैं पर कृष्ण अपनो चक्रवर्ती है, उन ठाकुरजीन्को. जैसे सब राजायें गाँवको राजा भी राजा हैं और बड़े देशको राजा भी राजा हैं और उन राजान्को राजा है वो ‘चक्रवर्ती राजा’ केहवावे. ऐसे सब ठाकुरके रूप हैं वो ठाकुर तो हैं ही, ठाकुर नहीं हैं ऐसी बात नहीं है पर कृष्ण अपनो सब देवन्में भी देवाधिदेव है.

(देवाधिदेव श्रीकृष्ण)

देवाधिदेव हैं या अर्थमें, वो देवन्के चक्रवर्ती देव हैं ये बात श्रीमहाप्रभुजीने समझायी और वाको तात्पर्य श्रीमहाप्रभुजी एक दृष्टिकोणसु नहीं लें हैं, या दृष्टिकोणसु लें हैं के जाकु वेदने ‘ब्रह्म’ कह्यो गीताने ‘परमात्मा’ कह्यो, जाकु भागवत ‘भगवान्’ केह रही है, वा भागवतको जो देव है भगवान् कृष्ण और जो

वेदको जो देव है ब्रह्म, वो श्रीकृष्ण है ये अपनेकु कैसे पता पड़े ? तो श्रीमहाप्रभुजीने निबंधमें या बातकी आज्ञा करी हैं के

“एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम् एको देवो देवकीपुत्रएव ।

मंत्रोऽपि एकः तस्य नामानि यानि कर्माणि एकं तस्य देवस्य सेवा ॥

इति आकलय्य सततं शास्त्रार्थः सर्वनिर्णयम् ।

श्रीभागवतरूपं च त्रयं वच्मि यथामति” ॥

(त.दी.नि.१।४-५).

तो “एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम्” . “शास्त्र एक है” मतलब दूसरे कोई शास्त्र हैं ही नहीं या अर्थमें नहीं पर ‘एक’को अर्थ मुख्य. मुख्य शास्त्र एक है. कौनसे अर्थमें मुख्य है ! अब अपन् तो केह रहें हैं भागवत अपनो मुख्य है, तो वो मुख्यता एक दूसरे ढंगकी मुख्यता है पर ये जो मुख्यता है “एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम्.” या अर्थमें के भागवतमें तो भगवान्‌के चौवीस अवतार वर्णित हैं और वेदमें यद्यपि अवतार वर्णित नहीं है पर वेदकु आप देखोगे तो वामें ऐसे मिलेगो “अजायमानो बहुधा विजायते तस्य धीराः परिजानन्ति योनिम् मरीचीनाम् पदम् इच्छन्ति वेधसः” (तैत्ति.आर.३।१३।२।२१) वो अजायमान है वो कभी पैदा नहीं होवे पर नहीं पैदा होते भये भी वो अनेकन् बार पैदा हो सके है, अनेक तरहसु पैदा हो सके है. अब ब्रह्मको ये एक वर्णन आयो है के वो अजायमान होते भये भी बहुधा विजायते = बहोत तरहसु पैदा होवे, पर वो बहोत तरहसु पैदा होवे वामें अवतारकी बात आ रही है के आपकी मेरी बात आ रही है, के घोड़ा-गधाकी बात आ रही है क्या पता चले ! “बहुधा विजायते”में तो सभी आ गये न ! अजायमान बहुधा विजायमान हो रह्यो हैं यामें केवल अवतारकी ही कथा है भगवान्‌की, ऐसे वाकु रोक्यो नहीं जा सके है. अपन् भी पैदा हो रहें हैं वो ब्रह्म ही तो पैदा हो रह्यो है और घोड़ा जो पैदा हो रह्यो है वो भी ब्रह्म ही पैदा हो रह्यो है और गधा पैदा हो रह्यो है वो भी ब्रह्म पैदा हो रह्यो है. तो “अजायमानो बहुधा विजायते”में तो बहुत जनन कह्यो है. विजननमें तो वाकी ब्रह्मरूपता प्रकट हो रही है, कृष्णरूपता प्रकट नहीं हो रही है और भागवत यदि अपन् कन्सल्ट् करेंगे तो चौवीस अवतार वर्णित हैं. अब ये

बात सच्ची है के कृष्णके लिये भागवतकारकु बड़ो आग्रह है पर ये स्पष्ट नहीं हो सके है के चौवीस अवतार जा कृष्णके प्रकट भये हैं वो कृष्ण खुद क्या हैं ! वो तो गीताकु अपन् देखें तब पता चले के

“यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर् भवति भारतः ।

अभ्युथानम् अधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम् ॥

परित्राणाय साधुनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मं संस्थापनार्थं सम्भवामि युगे युगे” ॥

(भग.गीता.४।७).

ये बात कृष्णने कही हैं के जितने अवतार हो रहें हैं वो सब मैं ले रह्यो हूं. “वैदेश्च सर्वैः अहमेव वेद्यः” (भग.गीता.१५।१५). सारे वेद मेरो प्रतिपादन कर रहें हैं. सारे देवतायें मेरे रूप हैं, मने विराटरूपमें प्रभुने वो अर्जुनकु दिखा दियो के तु देख ले के सारे देवतायें मेरे श्रीअंगमें हैं के नहीं !, सारी सृष्टि मेरेमें है के नहीं !, यहां जाके ये चोरी पकड़ाई के वो ब्रह्म श्रीकृष्ण है और वो ब्रह्म श्रीकृष्ण है. ये चोरी पकड़ाई करके श्रीमहाप्रभुजी केह रहें हैं “एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम् एको देवो देवकीपुत्रएव मंत्रोऽपि एकः तस्य नामानि यानि.” मंत्र एक ही है जो वाके जितने नाम हैं, वाके नाम कौनसे ? जो वेदमें कहे गये सारे नाम उन नामन्‌को देव वो है, गीतामें कहे गये सारे नाम उन नामन्‌को देव वो है और भागवतमें कहे गये सारे नाम उन नामन्‌को देव वो है, करके श्रीमहाप्रभुजीने पुरुषोत्तमसहस्रनाम लिख्यो वामें ‘शिव’ भी भगवान्‌के नामके अर्थमें वापर्यो है. पुरुषोत्तमसहस्रनाममें ‘शिव’ आवे है वहां ‘शिव’को अर्थ ये जो भगवान्‌को अवतार शिव है वो शिव नहीं होके ‘शिव’को अर्थ वहां कृष्ण लियो हैं श्रीमहाप्रभुजीने. तो या बातकु समझनी चाहिये. या अर्थमें श्रीमहाप्रभुजी अपनेकु वहां समझा रहें हैं के सारे ही रूप जो भगवान्‌के हैं वे ठाकुर हैं, पर श्रीकृष्ण जो हैं वो देवाधिदेव हैं. ये गीतासु अपन् देखें तो अपनेकु पता चले “मंत्रोपि एकः तस्य नामानि यानि” .

(कृष्णके साथ व्यक्तिगतसम्बन्ध)

या लिये श्रीमहाप्रभुजीने, दोनों ही (अष्टाक्षर और पंचाक्षर) मंत्रमें या बातकु ध्यानसु देखो, के कृष्णनाम बहोत आग्रहके साथ वापर्यो है. अष्टाक्षर होय के ब्रह्मसम्बन्ध होय अपन् कहें के “कृष्ण तेरो हूं” “कृष्ण मेरो रक्षक है” पर कृष्ण मेरो रक्षक है ये केहवेके बाद दूसरो वाको स्टेज आवे है, के “कृष्ण ! मैं तेरो हूं.” क्या अर्थ निकलेगो ? “कृष्ण मेरो है” तो वाको एक दूसरो अर्थ ये आयेगो के “मैं कृष्णको हूं, मैं तेरो हूं.” वा तरीकेकी जोड़ी है हों ! या एक मंत्रमें अपन् केह रहे हैं के “कृष्ण मेरो है”. दूसरे मंत्रमें अपन् केह रहे हैं के “कृष्ण मैं तेरो हूं”. तो सम्बन्धकी जो शुरुआत है वो या तरहसु होयगी के “कृष्ण मेरो है” और सम्बन्धको जो परिपाक है वो या तरहसु होनो चाहिये के “कृष्ण मैं तेरो हूं”. तो जब अपनो ये तेरो-मेरो कृष्णके साथ जुड़्यो तब वो पर्सनल् कृष्ण भयो. वो भागवतवालो देव अर्थ खाली नहीं है, वो जो गीतावालो देव खाली नहीं रेह गयो, वो वेदवालो देव नहीं रेह गयो, ये अष्टाक्षर और ब्रह्मसम्बन्ध में जो कृष्ण हैं वो तो मेरो है और मैं वाको हूं. वा तरीकेको व्यक्तिगत सम्बन्ध आ गयो. बिलकुल वही तरीकेको गाममें सेंकड़ो स्त्रियें घूम रही हैं और गाममें सेंकड़ो पुरुष घूम रहे हैं पर हस्तमिलाप भयो तब अपन् कहें के “ये तो मेरी पत्नी है” और “ये तो मेरो पति है”. तब वहां मेरी और मेरो ये सम्बन्ध जुड़े. ये अष्टाक्षर और ब्रह्मसम्बन्ध में या तरीकेको एक सम्बन्ध है. वो सर्वोपरिता अपनेकु नहीं समझायेगो यहांसु, क्योंकि यहांतो सर्वोपरिता नहीं समझमें आके तदीयता और मदीयता समझमें आयेगी के मैं कृष्णको हूं और कृष्ण मेरो है, पर ये तो उन मंत्र और मंत्रके अर्थनको परिपाक हैं पर सर्वोपरिता कृष्णकी समझमें आ रही है जाकु ‘चक्रवर्तिता’ श्रीमहाप्रभुजी केह रहे हैं, ‘देवाधिदेवता’ केह रहे हैं वो देवाधिदेवता गीतासु समझमें आ रही है, पर अपन्ने कोईकु देवाधिदेव मान लियो वो देवाधिदेव मानके भी अपन्ने वाकु अपनो नहीं मान्यो और अपन् वाके नहीं बने तो देवाधिदेव मानवेको भक्तिमार्गके लिये कोई मतलब नहीं रह्यो. जैसे एक सामान्य बात बताऊं आपकु के कौन नहीं जानेके ताजमहल बहोत सुंदर है. सभी जाने हैं. ताजमहल सुंदर है वासु मेरेकु क्या लेना देना ! न मेरे रेहवेमें काम आवे, न मेरे सोवेमें काम आवे, न खावेके काम आवे. सुंदर है तो अपने घरमें आग्रामें बैठो रेह ताजमहल ! या तरीकेको भाव जब ताजमहलमें जग्यो तो वाकी देवाधिदेवता सुंदरमें भी सुंदर होवेको अपनेकु तो कोई मतलब नहीं रह्यो न ! अपनो मतलब जोड़वेके लिये वा देवाधिदेवसु श्रीमहाप्रभुजीने अष्टाक्षर और पंचाक्षर को प्रवर्तन कियो हैं. तो अष्टाक्षर और पंचाक्षर में वाकी देवाधिदेवतासु ज्यादा महत्वपूर्ण

बात/पहलु वाको ये है के वो मेरो है और मैं वाको हूं. पर वाके पेहले गीतासु वाको स्वरूप अपनेकु श्रीमहाप्रभुजी देवाधिदेव तरीके समझानो चाह रहे हैं के वो चक्रवर्ती है. जाकु तुम ‘मेरो’ केह रहे हो वो चक्रवर्ती है ये मत भूलियो और जाके लिये तुम यों केह रहे हो के “मैं वाको हूं” ये बात मत भूलियो के वो चक्रवर्ती देव है, वो बात श्रीमहाप्रभुजीने गदाधरदासके काकाकु समझाई. याको एक पहलु ओर है वो अपन् कल करेंगे. आज यहां रखें.

श्रीआचार्यजीसों पूछ्यो महाराज ! ठाकुर तो एक है परंतु वैष्णव संप्रदायमें न्यारे न्यारे क्यो मानत हैं ? कोई कृष्णकों, कोई रामकों, कोई नृसिंह, कोई नारायण आदि, तामें निश्चय कौन ठाकुर हैं ? तब श्रीआचार्यजी कहें “जैसे चक्रवर्ती राजाको राज तो सगरी पृथ्वी पर और राजा देश-देश के और गाँव-गाँव के सोऊ राजा कहावें, परंतु चक्रवर्तीके आज्ञाकारी. तैसे ही पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, सो सर्वोपरि और अवतार अंसकला करिके होइ, सब श्रीकृष्णके आज्ञाकारी. ठाकुर सबकों कहिए.” तब गदाधरदासको काका चुप करि रह्यो.

या वचनामृतपे अपन् कल यहां तक पहोंचे थे के सर्वोपरिता ठाकुरजीकी अपने कृष्णकी वो जैसे अभी काकाजीने कही गीतासु. ‘गीता’ एक शास्त्र ऐसो है के जा शास्त्रके आधारपे कृष्णकी सर्वोपरिता मने देवाधिदेवता या जैसे आचार्यचरणने आज्ञा करीके चक्रवर्ती राजाके जैसे. तो वो जो स्वरूप है श्रीकृष्णको वो गीताके अनुसार प्रकट भयो है. जैसे मैंने आपकु कल बतायो के वेदमें अपन् देखवें जायेंगे तो या बातको स्पष्टीकरण नहीं मिलेगो और ब्रह्मसूत्रमें भी या बातको स्पष्टीकरण नहीं मिलेगो जो वेदांतके उपनिषदन्के वाक्यनको विचार करवेके लिये श्रीव्यासजीने लिखे.

(भागवत कृष्णप्रधान ऐसे अन्य पुराण अन्यदेवप्रधान)

यद्यपि भागवत कृष्णप्रधान महापुराण है और कल मैंने ये भी समझायो के श्रीमहाप्रभुजी कैसे बारह स्कंधकी प्रभुके बारह श्रीअंगके साथ तुलना करें हैं. बावजूद वाके भागवतमें एक कृष्ण अवतार ही वर्णित नहीं है, चौबीस अवतार वर्णित हैं और भागवतके तीन संस्करण हैं. पेहलो संस्करण, ये आजकलके

संस्करणकी बात नहीं कर रह्यो हूं. प्रथम उपदेश द्वितीय उपदेश और तृतीय उपदेश. तो वामें प्रथम उपदेश नारायणने ब्रह्माजीकु दियो, वो प्रथम उपदेश भागवतको. वो भागवत तो सीर्फ चार श्लोककी भागवत है. आपके यहां किल्लामें भी लिखि है शायद वो चतुश्लोकी भागवत. हां ! तो वो भागवत चार श्लोककी है और वा चार श्लोककी भागवतकु नारायणके मुखसु ब्रह्माजीने सुनके जा बखत नारदजीकु उपदेश दियो, तब काफी लम्बो चौड़ो उपदेश दियो और वा लम्बे चौड़े उपदेशमें लगभग एक अध्याय पूरा भागवतको वामें आ जाय है और वो चार श्लोकनुको इतनो विस्तार ब्रह्माजीने नारदजीके सामने समझायो और वा उपदेशकी मुख्यता ये हती के वामें चौबीस अवतार हैं. केवल कृष्णावतार नहीं है और वो नारदजीने यद्यपि उपदेशकी मुद्रासु नहीं पर आज्ञाकी मुद्रासु व्यासजीकु फिरसु समझायो. व्यासजीकु जब अपरितोष भयो के सारे शास्त्र मैंने प्रकट किये, ब्रह्मजिज्ञासा भी प्रकट करी पर कहीं कुछ बात अभी जो केहनी चहिती थी वो मैं केह नहीं पायो और वो केहवेके लिये क्या करनो ? या चिंतामें जब व्यासजी हते तब नारदजीने उनकु आके कही के आपतो भगवान्‌के ज्ञानके अवतार हो और ब्रह्माजीने चौबीस अवतारको जो उपदेश दियो वामें आपको भी नाम है, तो आपतो समाधि लगाके देख लो तो आपकु सारी बात स्पष्ट हो जायेगी चिंता क्यों करो ! और जब समाधि लगाके व्यासजीने देख्यो वा बखत जो भागवत दीखी वो आज 'अठारह हजार श्लोकवाली भागवत' अपन् कहे हैं वो भागवत है. तो वो एक अध्यायसु फिर इतनो बड़ो वाको विस्तार भयो. समाधिमें दर्शन मिल्यो, व्यासजीको मन या बातकी गवाही देवे है. वो जो मूल नारायणने चार श्लोक कहे वो सूत्र होंय तो वाकी वृत्ति ब्रह्माजीने करी. जैसे पाणिनिसूत्र - “इको यणचि” (पाणि.सू.६।१।७७) और वृत्ति: - “इकः स्थाने यण् स्याद् अचि संहितायां विषये” के तरह होवे. ब्रह्माजीने वो वृत्ति करी चौबीस अवतारसु और वा चौबीस अवतारको पाछो वर्णन विस्तारसु अठारह हजार श्लोकमें प्रत्येक लीलाको क्यों कैसे बढ़्यो, वा बातकु भी समझो के प्रत्येक अवतार तत्तु कालमें भयो हैं, कोई संदर्भमें भयो है तो वो सारे संदर्भनुकु भी पाछो व्यासजीने समाधिमें देख्यो के ये अवतार कौनसे संदर्भमें भयो, वा बखत ओर कौन कौन से ऋषि हते, कौन कौन से देवने क्या वरदान दियो, ये सारो वर्णन ब्रह्माजीने नारदजीकु नहीं बतायो थो पर जब चौबीस अवतारकी लिस्ट उनके पास आयी, कौनके पास ? व्यासजीके पास, नारदजीके द्वारा. तब उनने वाकी बीचकी जो खूटती कड़ियें समाधिमें देखी और वो सारी बीचकी खूटती कड़ी क्योंके एक अवतारसु दूसरे अवतारके बीचमें

बहोत सारे राजान्‌के वंश भये, बहोत सारे असुरें भये, बहोत सारें ऋषियें भये, बहोत सारी देवलीलायें भी प्रकट भयी, तो वो बीचकी सारी खूटती कड़ीनुकु जोड़के और फिर आगेके अवतारकी लीलाकु जो प्रकट करी वामें ये अठारह हजार श्लोकको विस्तार भयो. पर वहां भी फिर पाछी यही बात है के यद्यपि कृष्णलीलाकी बड़ी प्रधानता हैं पर फिर भी जैसे भागवतमें कृष्णकी प्रधानता है ऐसे शिवपुराणमें शिवकी प्रधानता हैं, स्कंदपुराणमें स्कंदकी प्रधानता है.

प्रत्येक पुराण अपने अपने देवकु प्रधानतया वर्णन करे है. तो जब अपन् यों सोचेंगे के अठारह पुराण हैं अठारह पुराणमें बहोत सारे पुराण कोई ओर देवकी प्रधानता वर्णन कर रहें हैं और भागवत जो है वो कृष्णकी प्रधानता वर्णन कर रह्यो है, तो फिर बात वहीं की वहीं आ जायेगी के हर पुराण जा देवको वर्णन कर रह्यो हैं वा देवकी प्रधानता बता रह्यो है. तो जैसे इतर देव प्रधान हैं ऐसे ही कृष्ण भी प्रधान हैं अब सब प्रधान कैसे हो सकें हैं ? तो वाको सीधोसो एक उपाय ये है के जितनो भी पुराणको उपदेश है वो मूलमें या बातकु समझावेके लिये है के जो देव आपकु इष्ट होय वा देवको आप अनन्याश्रय करो. तो जैसे शिवके भक्तकु शिवपुराण यों समझायेगो के शिवसु बड़ो कोई देव नहीं हैं वासु फायदा क्या होयगो ? के जो शिवको भक्त है वो शिवको अनन्याश्रय करेगो, शिवमें अनन्यासक्ति रखेगो. जो गणपतिजीके पुराण हैं, उनमें शिवजी जो उनके पिता है तो भी उनकु नीचे बता देंगे और कहेंगे गणपतिसु बड़ो कोई देव नहीं है. तो वाको कारण क्या ? शिवजीतो गणपतिजीके पिता है वो कैसे गणपतिजीसु बड़े नहीं ? गणपतिजीकी जो प्रधानता है वो यहीलिये आई के उनने शिवजीकी परिक्रमा करी, जगत्‌की परिक्रमा नहीं करी, कार्तिकेय जगत्‌की परिक्रमाके लिये निकले और गणपतिजीने कही के “आखी पृथ्वीकी परिक्रमा कौन करे ! मेरे तो माता-पिताकी परिक्रमा करी वामें सारो जगत् आ गयो”, वासु वो गणपति हो गये. ‘गणपति’ मने देवतान्‌के गणन्‌के पति. तो गणपतिकी प्रधानता आ गई. अब वा प्रधानतामें शिवजीकी महिमा पाछी घट गई. घट गई तो फिर वाको मतलब क्या समझनो ! क्या शिवजी छोटे और गणपति बड़े ! ऐसे नहीं. जो गणपतिको भक्त है वाकु गणपतिको अनन्याश्रय रखनो चाहिये, अनन्यासक्ति रखनी चाहिये.

देवीपुराण अपन् देखेंगे तो ये जितने देव हैं, सब देवीके भक्त है. हाथ जोड़ जोड़ के देवीकी स्तुति करें तो फिर क्या है वो देवीतो उनकी पत्नी है, अब कोई

माथेचढ़ी औरत होय और पति वाकी स्तुति करे वो कथा एक दूसरी है, पर ऐसी तो कोई देवी हो नहीं सके न ! के माथेचढ़ी पत्नी होय और सब पतियें बिचारे हाथ जोड़के स्तुति करें, ऐसे तो कोई ये देव हैं नहीं. तात्पर्य स्पष्ट क्या है ? वाको तात्पर्य भी स्पष्ट यही है के जो देवीको भक्त है वाकु देवीको अनन्याश्रय सिद्ध होवे. देवीकी भक्ति करते भये वाको मन कहीं विचलित न हो जाय वाके लिये वा देवकी महिमा बढ़ाई गई. भारतमें अब नयो दौर आ गयो अबकी कथा दूसरी है, पर पुरानी जो अपनी संस्कृति है वामें तो अपन जाने हैं के पत्नी हैं, आजकल तो बोले तब भी लोग बुरो मान जाय के पत्नियें पतिकु परमेश्वर जैसो मानती थी अब न तो दुष्ट पति ऐसे रहे परमेश्वर टाईपके, न पत्नियें अब वैसे रहे गई वो कथा एक दूसरी है, पर परमेश्वर मानती थी. अब पतिकु परमेश्वर माने तो ससुरकी क्या स्टैंडिंग ? परमेश्वरके आधीन के परमेश्वरको बाप ! वाकी स्टैंडिंग क्या ? ये तो प्रश्न उठेगो न ! पर हर पत्नीकु यही तो बात समझाई जाती के तेरे लिये तेरो पति कैसो आदरणीय है ! जैसे परमेश्वर आदरणीय है.

(अनन्याश्रय और अनन्यासक्ति)

जैसे हर शिष्यकु ये बात समझाई जाती थी के “आचार्यदेवो भव” क्यों ? तुम्हारो आचार्य तुम्हारेंकु देवतुल्य आदरणीय होनो चाहिये. “मातृदेवो भव, पितृदेवो भव”. अपन देखो ! आजकल सब ये वाक्य सब खूब छपे हैं और अपन गलतीसु इनकु ऐसे समझें हैं के “माता देव है”, “पिता देव है” और “आचार्य देव है”. या वाक्यको ये अर्थ नहीं है के माता देव है, पिता देव है क्योंकि माता तो कुछ भी हो सके. पिता जो है वो हिरण्यकशिपु भी हो सके, तो प्रहल्लादने तो हिरण्यकशिपुकी ही नहीं पूजा करी, नृसिंहजीकी पूजा करी और यदि ऐसोही “पितृदेवो भव” होय तो तो नृसिंहजीकु छोड़के हिरण्यकशिपुकी ही पूजा करनी चाहिती थी के नहीं ?, भक्ति करनी चाहिती थी प्रहल्लादने तो करी नहीं. वाको मतलब ये नहीं है के पिता देव है, “पितृदेवो भव” को मतलब होवे है के तुम कैसे हो के तुम्हारें लिये पिता देवके बराबर होनो चाहिये. पिता देव होयके असुर होय. बेटाके लिये संततिके लिये पिता देवके बराबर आदरणीय होनो चाहिये, शिष्यके लिये जो गुरु देव है, गुरु जो है वो गिलिन्डर भी हो सके कोई जरूरत नहीं के गुरु देव ही होंय, बड़े बड़े गिलिन्डरीके काम गुरुपनेमें ही लोग करें हैं, तो गुरु देव नहीं है पर शिष्यको आदरभाव गुरुके प्रति ऐसो होनो चाहिये जैसो

देवके प्रति आदरभाव होय. तो ऐसे प्रत्येक भक्तकु भी ये बात समझाई जाती थी के तुम अपने देवके अनन्यभक्त बनो, अनन्यासक्ति रखो. याके लिये महाप्रभुजी कहें हैं “तदाश्रय-तदीयत्वबुद्धयै किंचित् समाचरेत्, स्वधर्मम् अनुतिष्ठन् वै भारद्वाजगुण्यम् अन्यथा” (बालबोध.१९). महाप्रभुजी स्पष्ट आज्ञा करें हैं के तुम शिवके भक्त हो तो शिवको अनन्याश्रय करो, शिवकी अनन्यासक्ति करो और विष्णुके भक्त हो तो विष्णुको अनन्याश्रय करो, विष्णुमें अनन्यासक्ति रखो. तुम जाके भक्त हो वा देवके प्रति तुम्हारो अनन्याश्रय और अनन्यासक्ति होने चाहिये. तो फिर अपनेकु ये लागेगो के भागवत भी सिर्फ अपनेकु यही बात समझा रही थी, यदि तुम कृष्णके भक्त हो तो कृष्णमें तुम्हारे अनन्याश्रय और अनन्यासक्ति होने चाहिये. वो चक्रवर्तिता पुराणसु नहीं आयेगी. जो बात आचार्यचरण आज्ञा कर रहें हैं यहां, “कृष्ण जो है वो चक्रवर्ती है” वो भागवतसु नहीं आयेगी क्योंकि पुराण तो सब यही न्यायसु लिखे गये है और भागवत भी यही ढंगसु है. भागवतमें भी ऐसो वर्णन भी आवें है के ठाकुरजी शिवको पूजन करते थे. अब शिवको पूजन करते थे तो फिर अपनेकु लागेगो के ठाकुरजीके पूजनीय तो शिव हैं तो फिर अपने शिवकी पूजा क्यों नहीं करनी ! ये तो शिवपुराण ओर कोई पुराण देखोगे तो ऐसो भी वर्णन आ जायेगो के शिव कृष्णको पूजन करते थे. अब क्या करोगे ! देवके भक्तकु अपने देव कौनकु भज रह्यो है ! वो कौनकी पूजा कर रह्यो है ये हेडएक् होनो नहीं चाहिये. अपने हेडएक् ये होनो चाहिये के अपने जो इष्टदेव होय वा इष्टदेवमें अपनेकु अनन्याश्रय और अनन्यासक्ति रखने चाहिये. तो भागवतपुराण भी यही ढंगसु तो कहीं वर्णन नहीं कर रह्यो होय ऐसो अर्थ बिलकुल सरलतासु निकाल्यो जा सके.

महाप्रभुजीने याको कर्म ज्ञान भक्ति के संदर्भमें बहोत सुंदर खुलासा कियो है. महाप्रभुजी आज्ञा करें हैं के सर्व मार्ग जो हैं वो मुक्तिप्रदायक हैं और जा मार्गको ग्रंथ आप पढ़ोगे वा मार्गमें यों लिख्यो मिलेगो के यही मार्ग मुक्तिप्रदायक है दूसरो मार्ग मुक्तिप्रदायक नहीं है. करके भक्तिको ग्रंथ पढ़ोगे तो ये लागेगो के भक्तिसु ही मुक्ति होवे है ज्ञानसु नहीं.

यहां जो बात भक्तिसु मुक्ति मिलवेकी कही जा रही है वो तो कोई स्तुत्यर्थ नहीं करी जा रही है वो तो यथार्थ है, पर ज्ञानसु जो मुक्ति नहीं मिलेगी ये जो

भक्तिशास्त्रमें कह्यो जाय वो भक्तके लिये कही गई बात है, ज्ञानीके लिये कही गई बात नहीं है और ज्ञानमार्गमें जा बखत यों कह्यो जाय के ज्ञानसु ही मुक्ति मिलेगी वो तो सच्ची बात है पर वहां जहां ये कह्यो जाय के कर्म और भक्ति सुं मुक्ति नहीं मिलेगी वो भक्तके लिये कही गई बात नहीं है, ज्ञानीके लिये कही गई बात है ऐसे बतायो. वोही बात अपनेकु देवतान्पे भी लागु कर लेनी चाहिये. जहां जा देवताकी स्तुति करी है वो तो सच्ची है पर दूसरे देवताकी जहां निंदा करी है मतलब वाकु नीचो दिखायो है वो वाके भक्तनके लिये दिखायो है, सबके लिये नहीं है.

अब ये तो एक सामान्य बात कहूं जैसे अपन कोई ठाकुरजीकी सेवा कर रहें हैं तो अपने ठाकुरजीको जैसे गोकुलनाथजीके वचनमृतमें स्पष्ट याको उल्लेख आवे है. गोकुलनाथजीके शिष्य उनकु पूछते थे के गुसाँईजी और महाप्रभुजीके बखत जैसे सेवक होते थे ऐसे सेवक आजकल होवें के नहीं होवे ? तो गोकुलनाथजीने कही “क्यों नहीं होवे ! दिखायेंगे कभी.” फिर बात आई गई हो गई. एक दिन गोकुलनाथजीको जन्मदिन हतो वा बखत गोकुलनाथजीने सब गोकुलके लोगनकु अपने यहां प्रसाद लेवे बुलाये और वा बखत फिर वा सेवकने पूछी के “आपने आज्ञा करी थी के बतायेंगे तो कभी तो आप बताओ कब बताओगे ?” तो उनने कही “जाके देखो”. सब वैष्णवें प्रसाद ले रहें थे, तो उनने देख्यो के एक वैष्णव प्रसाद नहीं ले रह्यो थो रो रह्यो थो, रो रह्यो थो उनने कही “अरे ! गोकुलनाथजीके जनमदिनके दिन तुमकु प्रसाद लेवेके लिये बुलायो है और तुम रो रहे हो ! अपशकुन कर रहे हो !” सब वैष्णव वापे गुस्सा हो गये, प्रसाद भी नहीं ले रह्यो है बैठे बैठे रो रह्यो है, तो उनने गोकुलनाथजीकु जाके फरियाद करी के ये तो आपके जनमदिनके दिन प्रसाद नहीं ले रह्यो है रो रह्यो है. गोकुलनाथजी पधारे और उनको हाथ पकड़के खड़ो कियो और कह्यो “जा घर जा आनंदसु.” तो सब लोग निंदा करवे लग गये के देखो गोकुलनाथजीने वाकु उठा दियो ! अरे ! जनमदिनकु ऐसे बिगाड़ रह्यो थो. अंतमें वाने फिर पूछी “आप तो आज्ञा कर रहें थे महाप्रभुजी गुसाँईजीके बखत जैसे वैष्णव होते थे ऐसे वैष्णव अभी भी होवें अब या माजनाके वैष्णव हैं आजकल !” गोकुलनाथजीने कही ठहरो वा वैष्णवकु बुलाओ पाछो. जब वा वैष्णवकु बुलायो पाछो और वासु पूछी के “भई ! तु रो क्यों रह्यो थो ?” तो वाने कही “मेरो अपराध क्षमा करो.” उनने कही “अपराध तो क्षमा कर रख्यो है, पर रो क्यों रह्यो थो ये तो बता ?” उन वैष्णवने कही “जैसी सामग्री आपके यहां मिले हैं ऐसी सामग्री मैं अपने ठाकुरकु धर नहीं सकु

करके मोकु रोनी आ रह्यो थो.” अब देखो. एक बात ध्यानसु समझवेकी है के वाके मनमें सब ठाकुरजी एक है ऐसो भाव नहीं हतो क्योंकि गोकुलनाथजी भी कोई अनप्रसादी तो धर नहीं रहे थे. गोकुलनाथजी तो अपने ठाकुरजी (गोकुलनाथजीके ठाकुरजी भी गोकुलनाथजी हैं. सेव्य भी गोकुलनाथजी और सेवक भी गोकुलनाथजी.) गोकुलनाथजीको ही प्रसाद वाकु लिवा रहे थे, वो उनमें तो अरोग्यो ही है, उनमें अरोग्यो वासु क्या भयो ! मेरे माथे बिराजते ठाकुरकु मैं ये सब लड्डु पेड़ा मोहनथाल और बुंदी धर नहीं पायो और यहां मैं प्रसादके नामपे ये सब स्वाद ले लऊं तो मैंने मेरे ठाकुरजीको दगा दियो के नहीं दियो ! करके वाकु रोनी आयो. करके श्रीगोकुलनाथजीने ये आज्ञा करी के देखो ये महाप्रभुजी गुसाँईजी के जैसे वैष्णव होते थे वा कोटीको ये वैष्णव है. वो या लिये नहीं रो रह्यो थो के कोई गोकुलनाथजीको अनादर करना चाहतो थो या गोकुलनाथजीके जनमदिनकी उमंग वाके हृदयमें नहीं थी पर वाके मनमें या बातकी ग्लानि आयी के मेरे ठाकुरजी जो माथे बिराज रहें हैं, उनकु मैंने तो ऐसी सामग्रियें धरी नहीं हैं अब तो ये प्रसाद मैं लऊं कैसे ! अब देखो प्रसादको तो अनादर भयो न ! आजकल अपन पुष्टिमार्गी समझे के प्रसाद लेनी ही भगवान्को आदर है पर गोकुलनाथजीने वासु विपरीत कथा केह दी है के जाने प्रसाद नहीं लियो है वाकु उनने कही है के महाप्रभुजी गुसाँईजीके बखतके ढंगको वैष्णव है, क्योंकि प्रसादको अनादर नहीं हतो. पाछी बातकु ध्यानसु समझो वो प्रसादको अनादर नहीं कर रह्यो थो, वाके मनमें ये बात हती के मेरे ठाकुरजीकु ऐसी सामग्रीतो मैं धर नहीं पाऊं तो ये कैसे लऊं !

तो एक बात ध्यानसु समझो के अपने ठाकुरके प्रति इतनी आग्रह रखनी अन्य ठाकुरको अपमान नहीं है. न तो गोकुलनाथजीने अपने ठाकुरको अपमान मान्यो. पर इतनी कोई कम्पलसरी भी नहीं मान्यो है अपने यहां, क्योंकि और सबकु प्रसाद लेवे श्रीगोकुलनाथजीने ही बुलाये थे. तो कम्पलसरी भी नहीं है. पर अपने ठाकुरके प्रति इतने आग्रहके बजाय वाकु अपन ‘दुराग्रह’ भी केह दें, अपने ठाकुरको इतनी दुराग्रह रखनी भी भक्तिकी कोई एक उत्तम कक्षा ही है. ऐसे देवमें भी अपन अपने देवके प्रति आदर रख रहें हैं तो वो इतर देवको अनादर नहीं हैं. एक सीधीसी बात है कोई संतति अपने माता-पिताकु सर्वाधिक माने तो कोई दूसरेनके माता-पिताको अपमान थोड़े है ! कोई भी पत्नी अपने पतिकु सर्वाधिक

माने तो कोई दूसरे पतिको अनादर थोड़े है ! वामें कोई पति बुरो लगावे तो वाके मनमें कुछ दानत खराब है. वो पति तुमकु नहीं मान रही है वामें तेरेकु कायकु बुरो लग रह्यो है ! वो अपने पतिकु पति मान रही है वाकु सर्वोपरि मान रही है वामें तेरेकु बुरो क्यों लगनो चाहिये ! कोई देवतायें या बारेमें बुरो नहीं लगावें पर देवतान्के भक्त बुरो लगा लें के हमारे देवकु क्यों नहीं मान्यो ! अब कल तो कोई ऐसे पत्नी बुरो लगा ले के तुमने हमारे पतिकु पति क्यों नहीं मान्यो ! जानो कहां फिर ! या तरीकेको उपद्रव शुरू हो जाय तो ! तो ये है “नही निंदा निन्द्यं निन्दति किन्तु स्तुत्यं स्तौति”.

(गीता कृष्णकी चक्रवर्तितामें प्रमाण)

गीता एक अलग शास्त्र हैं, वो पुराण शास्त्र नहीं है, वो भगवान्ने कह्यो भयो शास्त्र है और जैसे के काकाजीने आज्ञा करी गीता प्रत्येक संप्रदायकु प्रमाणतया मान्य है. शांकरलोग याकु ‘प्रस्थान’ तरीके कहें हैं, अपन् यद्यपि प्रस्थान नहीं माने हैं पर प्रमाण तो अपन् भी मानें ही हैं न ! क्योंकि “श्रुत्यर्थो गीतानुसारी कर्तव्यः” ये तो महाप्रभुजी भी आज्ञा कर ही रहें हैं तो श्रुतिको अर्थ गीतानुसारी करना चाहिये और गीतानुसारी यदि अपन् श्रुत्यर्थ करेंगे तो ब्रह्मको अर्थ श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णके अलावा कोई नहीं रहे जाय और वहां ये बात नहीं लागू हो रही है, गीतामें केवल स्तुतिके लिये करी गई अथवा भक्तकु समझावेके लिये बात नहीं है. ये बाततो गीतामें तो बिलकुल साफ हो गई. तत्त्व क्या है ? वहां वा एंगल्सु कही गई बात है करके गीताको जो वर्णित कृष्ण है वो चक्रवर्ती कृष्ण है, भागवतको तो वैसे चक्रवर्ती हो सके पर वामें कुछ दूसरो अर्थ भी निकाल्यो जा सके सोच्यो जा सके पर गीतामें कोई स्कोप् नहीं है, कोई अवकाश नहीं है, या तो गीताकु अप्रमाण मानो. पर प्रमाण मानवेके बाद गीतामें कोई हिल नहीं सके बंध जायेगो आदमी कृष्णकी परतत्त्वतासु. मने महाप्रभुजी तो स्पष्ट यही आज्ञा करेंगे के श्रुतिको अर्थ गीताके अनुसार करो और गीताके अनुसार पुराणको अर्थ करो. तो महाप्रभुजीने भागवतकु क्यों प्रमाण मान्यो ? क्योंकि जो गीता केह रही है वाको विस्तार भागवतमें मिल रह्यो है, इतर पुराणन्में नहीं मिल रह्यो है करके महाप्रभुजीने भागवतकु प्रमाण मान्यो. इतर पुराणन्कु महाप्रभुजी अप्रमाण नहीं मान रहे हैं, प्रत्येक प्रमाणकु प्रमाण मान रहे हैं.

श्रीमहाप्रभुजी यहां तक आज्ञा कर रहें के जितने पौराणिक देव है उन पौराणिक देवन्कु उनके भक्त यदि ब्रह्मबुद्धिसु भजन करेंगे तो उनकी मुक्ति होगी होगी और होगी पर उन पौराणिक देवन्को ब्रह्मबुद्धिसु भजन करवेके बजाय वो पैसा देवेवाले देव हैं और ये विघ्न हरवेवाले देव हैं और ये अक्कल देवेवाले देव हैं और ये ग्रहकु खतम करवेवाले देव हैं. जैसे आजकल पुष्टिमार्गीय लोग करें हैं के सूर्य नड़ रह्यो है तो गिरधरजीको नाम भजो और चंद्र नड़ रह्यो है तो गोविंदरायजीको नाम भजो. शनी नड़े वाके लिये कौन जाने कौन आ रह्यो है पता नहीं ! बालकृष्णलालजी शनी नड़तेमें आवें ! अच्छा अच्छा !! ऐसे क्षुद्र हेतुसु जा बखत अपन् भज रहें हैं वा बखत वो अन्याश्रय है और वो मुक्तिसाधक नहीं है वो भक्तिसाधक भजन नहीं रहे गयो. महाप्रभुजी तो या बारेमें इतने साफ हैं के श्रीकृष्णको भी यदि अपन् सकाम भजन करें हैं तो कृष्ण परब्रह्म नहीं हैं विभूति है. यासु ज्यादा तो और महाप्रभुजी क्या स्पष्टता कर सके ! कृष्णको भी यदि सकाम भजन कर रहे हो तो कृष्ण फिर परब्रह्म नहीं हैं, वो ओर देवतान्की तरह कोई एक देवता हैं छोटी-मोटी. तैंतीस करोड़ देवतान्में कृष्ण भी एक देवता है. कृष्णको जा बखत अपन् निष्काम भजन कर रहें हैं वा बखत कृष्णकी ब्रह्मता प्रकट होवे है और कृष्णको जा बखत अपन् सकामभजन कर रहें हैं वा बखत कृष्ण परब्रह्मतया प्रकट होवेके बजाय एक साधारण कोटीको कोई एक देव बन जावे, जो जकम्यो हैं यादवन्के कुलमें वो वाको स्वरूप प्रकट होवे. अब महाप्रभुजीतो कृष्णपे भी वोही बात लागू कर रहें हैं. आज अपन् पुष्टिमार्गीयन्की अक्कल मारी गई हैं के अपन् नाथद्वाराकी मानता मानें हैं और वहां ऐसे मानता मानके और पूर करवेपे मनोरथें करावें हैं ! तो वो तो फिर अपने लिये श्रीनाथजी भी परब्रह्म नहीं रहे गये ! क्षुद्र कोटीके कोई देवता हो गये, अपन् खुद उनकु बना रहें हैं. अपन् आज कर रहें हैं कथा अपनी हैं महाप्रभुजीको सिद्धान्त ऐसो नहीं है. महाप्रभुजीको तो सिद्धान्त या बारेमें बिलकुल स्पष्ट हैं. तो ये गीता जो है ये कृष्णकु चक्रवर्ती बना रही है.

आज इननें पूछ्यो है, वो प्रश्न मैं ले लऊं.

(‘देवद्रव्य’को मतलब क्या ?)

प्रश्न : ‘देवद्रव्य’को मतलब क्या ?

उत्तर : देवद्रव्यको जो प्रश्न है वो आज जा तरीकेको अपनो व्यवहार है, वा तरीकेके व्यवहारमें तो देवद्रव्य क्या है केहनो बहोत मुश्किल है पर जा तरीकेको महाप्रभुजीको सिद्धान्त है वामें देवद्रव्य बिलकुल साफ-सुथरो समझमें आ सके. ऐसी बात है के आपके माथे बिराजते ठाकुरजीके नामपे खुदको ही द्रव्य ले रहे हो ? यदि दूसरेसु कोई द्रव्य ले रहे हो ठाकुरजीके नामपे, तो वो देवद्रव्य है. अपन् सेवामें जो वापर रहें हैं वो अपन् ठाकुरजीके नामपे नहीं वापरें हैं या बातकु ध्यानसु समझो अपन् अपने समर्पणके नामपे वापर रहें हैं के ये मेरो द्रव्य है, जो मेरो नहीं है वो समर्पित ही नहीं हो सके, तो वो जो मेरो है वो मैं समर्पण करूं. अब मोकु बैठे बैठे पसंद आ जाय के ताजमहल बहोत अच्छो है और ठाकुरजीकु लो ताजमहल समर्पु ! अरे ! ताजमहल तो एक कबर है और मेरी कबर है नहीं पाछी, मेरी कबर होय तो मैं समर्पण भी कर दऊं ! वो तो मुमताजमहलकी कबर है. तो जो चीज़ अच्छी लग गई वो ठाकुरजीकु समर्पण करनो ऐसो कोई अपनो सिद्धान्त है नहीं, अपनो सिद्धान्त ये है के जो तुम्हारो है वो तुम समर्पित कर सको जो तुम्हारो नहीं है वो तुम समर्पित ही नहीं कर सको. जब समर्पित ही नहीं कर सको, जब वो तुम ठाकुरजीके लिये काढ़ रहे हो वासु ठाकुरजीकी सेवा कर रहे हो तो वो सारो देवद्रव्य हैं, जो तुम्हारो नहीं है क्योंकि वो तुम देवार्थ ले रहे हो जब देवार्थ ले रहे हो तो वो देवद्रव्य है और जो अपन् सेवामें वापर रहें हैं वो ठाकुरजीको नाम लियो भयो नहीं अपने नामको जो द्रव्य है.

वार्ता पढ़ोगे तो याके बहोत खुलासा आवें हैं के पूरणमल क्षत्रियकु श्रीनाथजीके मन्दिर बनावेकी आज्ञा भई वहां या बातको बहोत खुलासा कह्यो है के पूरणमलको बापतो वैष्णव नहीं हतो तो वाको द्रव्य अंगीकार कैसे कियो ! वहां ये स्पष्ट खुलासा कियो है यद्यपि पूरणमलको बाप वैष्णव नहीं हतो पर पूरणमलके जावेके बाद पुत्रकी हैसियतमें पिताको द्रव्य वाकु उत्तराधिकारमें मिल्यो. पुत्रकी हैसियतमें पिताको द्रव्य उत्तराधिकारमें मिले ये स्वाभाविक कथा है और वो कमायो भयो भले पूरणमलको नहीं हतो, कमायो भयो द्रव्य बापको हतो, पर वाने भी तो कोई जरियेसु ही तो कमायो होयगो न ! मने कोई धंधा करके या कोई नौकरी करके या जा जरियासु कमायो होय, कोई जरियासु कमायो भयो द्रव्य हीतो वाको द्रव्य हतो. तो जैसे ये वित्तके आगम कहे जायें वित्त कैसे आयो तुम्हारे पास. वित्तको आगम कैसे भयो ? तो जैसे अपन्ने व्यापार कियो, अपन्की

जो वृत्ति हैं शास्त्रके द्वारा विहित वा वृत्तिसु अपन्ने कमायो तो वो वित्तको आगम श्रेष्ठ मान्यो जाय. उन वृत्तिनमें पिताको द्रव्य पुत्रकु मिले वो भी वित्तागमको विहित प्रकार है, विहित प्रकार होवेसु मने पूरणमलकु वो मिल्यो और पूरणमलको हतो, पूरणमल समर्पित हतो करके वो द्रव्यको 'समर्पण' केहवायो भेट नहीं केहवायी. इनकी वार्तामें भी स्पष्ट है वो जो किशोरीबाईकी वार्ता है जाने वैष्णवसु लेके भोग धर्यो और वा बखत ठाकुरजीने इन्कार कर दियो के "ये भोग मैं अरोगूंगो नहीं क्योंकि मैं तो तेरी सत्ताको अरोगूं मेरे नामसु मांग्यो भयो सामग्रीको मैं भोग अरोगूं नहीं." प्रभु अरोगे ही नहीं तो प्रसाद ही नहीं है, प्रसाद ही नहीं तो वो देवद्रव्य ही है शुद्ध. तो एक तो देवद्रव्य ऐसे बने.

सरल भाषामें यदि समझनो होय तो मैं आपकु यों भी समझा सकुं के अभी आप पियर जाओगी, पियर जाओगी तो आपकी माँके साड़ी गहना आप पेहन सको पेहनवेमें कोई तकलीफ नहीं है पर वो आपको द्रव्य नहीं है पर यदि आपकी माँने कन्यादानके बखत या कोई भी मुंह दिखाईके बखत या आवे जावेकी बिदाईके और आगमनके बखत कोई द्रव्य आपकु दियो वो कन्याद्रव्य हो गयो. वो आपकी माँ नहीं वापर सके. ऐसे अपन् ठाकुरजीकु भेटरूपसु धर रहें हैं वो सारो देवद्रव्य है, वो अपन् वापर नहीं सकें हैं जो महाप्रभुजी स्पष्ट कहें हैं "सोनाकी कटोरी हती सो देवद्रव्य हतो...जो मेरो व्हेके देवद्रव्य खायगो सो महापतित व्हे जायगो मेरो नाही कहावेगो. तातें वा प्रसादमेंते भोजन करिवेको अपनो अधिकार न हतो; सो गायन्कों खवायो अरु यमुनाजीमें पधरायो".

ये देवद्रव्य हैं, ये देवद्रव्यकी परिभाषा है और दूसरी परिभाषा एक ये है के जैसे सार्वजनिक मन्दिर है, सार्वजनिक मन्दिरमें मने देवद्रव्यकी परिभाषा नहीं है पर देवलककी परिभाषामें ये बात भी आवे है के देवलक कौन ! जो देवद्रव्य खावे वाकु भी 'देवलक' कह्यो जाय और एक जो खुदके माथे बिराजते ठाकुरजीकु कमाईको साधन बनावे वाकु भी 'देवलक' कह्यो जाय. बात ध्यानसु समझो. मन्दिरमें बिराजते भये ठाकुरको जो सार्वजनिक मन्दिर हैं वहां बिराजते ठाकुरको कोई पुजारी है अथवा अपने यहां वाकु 'मुखिया' कह्यो जाय या दक्षिणमें वाकु 'अर्चक' कह्यो जाय. वो देवमन्दिरमें बिराजते भये भगवान्की पूजा-अर्चना करवेवालो पुजारी या अर्चक यदि पूजा करवेकी दक्षिणा ले रह्यो है वो 'देवलक'

नही केहवावे क्योंकि वो ब्राह्मणवृत्ति है. वो लेवेसु देवलक नही हो जाय क्योंकि वो देव वाके माथे तो बिराज नही रह्यो है, वो तो अपनी नौकरी कर रह्यो है. कायकी नौकरी ! आपकु पूजा-अर्चना आवे नहीं हैं आपके तरफसु वो पूजा-अर्चना वो कर दे है. आप वाकु दक्षिणा दे रहे हो पूजा-अर्चना करवेकी. ठाकुर वाके माथे बिराज नही रह्यो है.

जैसे वकील, क्योंकि जजें जो होवें न ! वो जजन्में कानूनको पूरो सेन्स होवे पर कोमन्सेन्स होवे नही तो कोमन् आदमी बात करे वो जजकु समझ ही नही आवे. जजमें कोमन्सेन्स नही होवे लिगल्सेन्स ही होवे तो कोमन्सेन्सकी बात बिचारो कोमन् आदमी केह रह्यो वो जजकी खोपड़ीमें ही नही उतरे. जजकी खोपड़ीमें उतरे वैसी बात लिगल् वकील ही कर सके कालो कोट पेहरके, वो कालो कोट पेहरके वा ढंगसु बात करे वामें कोमन्सेन्स होवे भी नही, तो भी वो जजके समझमें आ जाये के हा अब बराबर सच है. वो “खग जाने खग ही की भाषा”. कौआकु कौआकी बोली समझ पड़े अपनकु समझ नहीं पड़े के गुस्सा हो रह्यो है, गाली दे रह्यो है के प्यार कर रह्यो है के क्या कर रह्यो है. ऐसे एक ठिकानें मैंने पढ़यो के एक आदमीको एक्सीडेन्ट हो गयो एक्सीडेन्ट हो गयो तो रस्तापेसु एक वकील जा रह्यो थो वाने कही के “ऐसो ये एक्सीडेन्ट करके भाग गयो यासु तुमकु हर्जाना लेनो चाहिये” तो वाने कही “मैं गरीब आदमी ! मैं कहां कोर्टमें जाऊं कहां हर्जाना मांगु. एक तो मेरे लग गई चोट तो हर्जाना मांगवेमें ओर खर्चा हो जायगो.” वाने कही “मैं वकील हूं मैं तेरेकु हर्जाना दिलाऊंगो” तो वाने कही “भले तो दिला दो आप” तो वाने कोर्टमें जा जाके ऐसी ऐसी आर्ग्युमेंट करी ये रोवे लग गयो. वाने कही “तु क्यों रोवे लग गयो ?” तो वो बोल्यो “इतनी तकलीफ भई वो तो मोकु भी नही ख्याल हतो ! ये तो आपने कही तब पता चल्यो.” वकीलने ऐसी-ऐसी तकलीफें बताई वाकु के “ये हो गयो है यों हो गयो है...” वाकु रोने आवे लग गयो के मोकु तो पता ही नहीं हतो के ऐसी तकलीफें मोकु भई. मैं तो खाली टकरायो और गिर गयो थोड़ी घुटनमें चोट आई, थोड़ी पैरमें. मुदई खुद रोवे लग गयो के इतनी तकलीफ हो गई मोकु, वाके आंखमें आंसु आ गये. तो वकीलनकु वो भाषा पता चलें, वो भाषासु जजकु समझा सके, अपन तो नहीं समझा सकें. तो जब वकील वकालत करे तो वाकु वकालतकी फीस देनी पड़े ऐसे अपनकु शास्त्रविधिसु अथवा जो भी

सेवा-पूजाकी विधि है उन पूजाविधिकी जो जटिलता है, वो सामान्य आदमी बिचारेकु कहांसु समझमें आ सके !

एक बड़ी मजेदार बात है. हमारे एक बहोत परिचित हते वो बता रहे थे के एक बखत नाथद्वारा गये. उनकी पत्नी कई बार जाती थी वहां, पर वो पेहली बार गये. नाथद्वारा जाके नहाके फूलघर-पानघरमें सेवा करे न वहां !. ये भी पत्नीके पीछे-पीछे सेवा करवे गये. वैसे तो पत्नी पतिकी अनुगामिनी होवे है पर ये पति बिचारे पत्नीके अनुगामी बनके वो जहां-जहां जाती जो-जो करती वो करते रहे. एक दिन उन्ने देख्यो सारो काम कैसे करनो, क्या करनो. दूसरे दिन उन्कु विश्वास आ गयो के यामें कोई कठिनता नहीं है. वाने कही, चलो पत्नी नहावे वाके पेहले अपन सेवा करें फूलघरमें पानघरमें. नहाके आये, करवासु हाथ धोयो, धोते ही फूलघरमें हल्ला मच गयो “छू गयो छू गयो !!” उन्ने पूछी “क्या छू गयो ?” बोले “करवा छू गयो !” वो बोले “हाथ धोके ही तो करनी चाहिये न सेवा !” बोले “पर करवाकु हाथ कैसे लगा दियो ?” क्योंकि करवाकु हाथ नहीं लगायो जाय, यों धोयो जाय न ! अब वा बिचारेकु पता नहीं करवासु हाथ ही तो धोने हैं. यों करके हाथ धो लियो तो वो करवा ही छू गयो जासु हाथ धोने है और हल्ला मच गयो. वो इतनो घबरा गयो वाने कही “हवे कोई दिवसे जवु ज नहीं अंदर आ आनुं ज काम छे मारुं नहीं !!” क्योंकि ये सब टेक्निकल् बातें हैं सबकु समझमें आवें नहीं पूजाविधिकी के कौनसे बखत क्या करनो. सामान्य आदमी तो बिचारो “**पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति**” कुछ भी चढ़ा दे, कहीं भी चढ़ा दे, कैसे भी चढ़ा दे उतनो जान सके, पर ये पूजा-विधि क्या क्या है, वा तरहसु चढ़ानो सबकु तो आवे नहीं, करके जो मंदिरमें पुजारी होवें, अर्चक होवें उन्कु कहें के जो विधि होय वा ढंगसु चढ़ाइयो. वा ढंगसु चढ़ावे तो देवता वा पूजाविधिकु स्वीकारे. अर्चक/पुजारी आपके बिहाफसु चढ़ा रह्यो है याके लिये वाकु दक्षिणा देवेमें देवलकता नहीं है, ऐसो शास्त्रको विधान है. पर वो ही पुजारी यदि वाके माथेपे बिराजती कोई देवमूर्तिकु अपनी कमाईको साधन बनावे के मेरे माथे ये देव बिराज रह्यो है और वा देवकु मोकु ये भोग धरनो है याके लिये तुम सामग्री लाओ, तो वो देवलक हो जाय. तो जो देवद्रव्य खाके निर्वाह करें वो भी देवलक होवे और अपने माथे बिराजते देवकु अपनी कमाईको साधन बनावे वो भी देवलक होवे. ये देवलकके दोनों अर्थ होवें हैं और जो देवोत्तरसम्पत्ति

है वो ही देवद्रव्य होवे है, मने आपने अथवा परायेने कोईने भी जो देवताके नामपे कुछ भी काढ्यो भयो द्रव्य है वो 'देवोत्तर' कह्यो जाय या 'देवद्रव्य' कह्यो जाय. या तरहसु देवद्रव्यको खुलासा है.

(समर्पित और देवद्रव्य के उपभोगमें अन्तर)

प्रश्न : अपनो तो सब कछु अपने देव या प्रभु श्रीकृष्णकु ही समर्पित है तो सभी कछु अपनो तो देवद्रव्य ही है न ?

उत्तर : देखो ध्यानसु समझो. दोनों ही बात संभव हैं, क्योंकि भागवतमें स्पष्ट कह्यो है “त्वयोपभुक्तसक्-गंध-वासोऽलंकारचर्चितः उच्छिष्टभोजिनो दासाः तव मायां जयेमहि” : तेरी सेवामें वापरे भये सक्, गंध, वास, अलंकार, अलंकारके साथ पात्र भी आ सके. जैसे आभूषण आ सके पात्र तो उतनो कीमती नहीं होवे जितनो अलंकार कीमती होवे; पर अलंकार भी अपन् ठाकुरजीकु धराके पेहनते थे ये अपने एक दासपनेकी महिमा और सौभाग्य हतो, के अपने लिये जो अपनने गेहना बनायो वो पेहले अपन् ठाकुरजीकु धरावें और फिर अपन् प्रसादीरूपसु पेहरें. ऐसे अपने जो पात्र हैं वो अपन् पेहले वामें नहीं खारें, पेहले ठाकुरजीकु भोग धरके लें. वो पात्र या गेहना जो है वो समर्पित भी हो सके है. हमारे गुसाईंयनके घरमें तो ऐसो पुरानो स्पष्ट नियम हतो के शीतकालमें ठाकुरजीके गद्दल सिवाते और प्रसादी गद्दल निकलते वो हमलोग पेहरते. ये इतनी-इतनी पिछवाइयें जो बनें हैं पुष्टिमार्गमें वाको मूल कारण यही हतो के थानके थान ले लेते. अब इतनो बड़ो थान ठाकुरजीकु कहां धरानो ! बड़ीसी पिछवाइ बना देते, फिर अपने घरमें शादी-ब्याह होते वा थानमेंसु सबके मापके कपड़ा कट जाते. पुराने बालकनके चित्र देखो सब यही तरहके टाट-बाटके कपड़ा हैं हमारे ठाकुरके पिछवाइके प्रसादी वस्त्र वे पेहर रहे हैं. वस्त्र भी ऐसे धारण करते जैसे ठाकुरजीकी पिछवाइ है. तो वो कोई देवद्रव्य नहीं है क्योंकि अपनेकु जो अपने लिये वापरनो है वो ठाकुरजीकु समर्पित कियो है. अब जहां समर्पित कियो जा सकेगो वहीं तो समर्पित कियो जा सकेगो न ! तो वा तरहसु वो समर्पित होतो थो.

अब यदि अपनने कछु दियो है ठाकुरजीकु भेटरूपसु, जैसे सोनाकी कटोरी महाप्रभुजीने ठाकुरजीकु दी थी तो वो देवद्रव्य हतो. वाको प्रसाद तो न महाप्रभुजीने लियो न बालकनकु लेवे दियो और न वैष्णवनकु प्रसाद लिवायो.

अपनेकु ही पता चल सके न ! दूसरेकु कैसे पता चल सके के अपने ठाकुरजीके यहां क्या देवद्रव्य है और क्या अपनने समर्पणके लिये कह्यो है. अब कोईने ठाकुरजीकी पिछवाइको वस्त्र पेहन लियो करके देवद्रव्य वापर्यो ऐसो नहीं है; कोईने ठाकुरजीके आभूषण अपने काममें ले लिये वासु देवद्रव्य वापर्यो ऐसो जरूरी नहीं है, क्योंकि वाने समर्पण भी कियो है वा आभरणकु ठाकुरजीकु धरावेके बाद हम पेहरेंगे; पर यदि वाने ठाकुरजीकु दियो है तो फिर नहीं लियो जा सके. लेगो तो “महापतित हवे जायेगो मेरो नहीं केहलायेगो” ये वाको नियम है.

(प्रमाण-प्रमेय-साधन-फलकी दृष्टिसू कृष्णकी चक्रवर्तिता)

थोड़ोसो याकु एक ये एंगलसु भी देखनो अपनेकु जरूरी है के कृष्णकी चक्रवर्तिता ये प्रमाणकी दृष्टिसु. ये जो अपनने देख्यो मने महाप्रभुजीको देखवेको एक नजरिया है, हर चीज़कु प्रमाण प्रमेय साधन और फल की दृष्टिसु देखनो. तो ये जो अपनने देख्यो कृष्णकी चक्रवर्तिता वो प्रमाणके एंगलसु वाकी चक्रवर्तिता देखी. ऐसे ही कृष्णकी चक्रवर्तिता अपनेकु प्रमेयके एंगलसु देखनी चईये ऐसे ही कृष्णकी चक्रवर्तिता अपनेकु साधनके एंगलसु देखनी चईये और ऐसे ही कृष्णकी चक्रवर्तिता अपनेकु फलके एंगलसु देखनी चईये. प्रमेय साधन और फल की दृष्टिसु कृष्ण कैसे चक्रवर्ती हैं वो भी अपन् देखेंगे जरूर.

(प्रमाणनकी एकवाक्यताको विचार)

गदाधरदासजीकी वार्तामें श्रीआचार्यजी कहें “जैसे चक्रवर्ती राजाको राज तो सगरी पृथ्वी पर. और राजा देश-देशके गांव-गांवके सोउ राजा कहावें परंतु चक्रवर्तिके आज्ञाकारी. तैसे ही पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सो सर्वोपरि और अवतार अंश-कला करिके होई सब श्रीकृष्णके आज्ञाकारी.” या वचनामृतके अंतर्गत कल अपनने गीताके आधारपे श्रीकृष्ण कैसे देवन्में देवाधिदेव हैं या बातके अंतर्गत देख्यो के वेद स्मृति सूत्र पुराण इन चारोंनकी एकवाक्यतासु श्रीकृष्णको अर्थत्व मने देवाधिदेवत्व निश्चित होवे है. प्रमाणन्में, फिर चाहे कोई भी प्रमाण होय, एकवाक्यता होनी वाकी निःसंदिग्धताके लिये बहोत ही आवश्यक मानी गयी है. जैसे बड़ो प्रसिद्ध उदाहरण है मृगतृष्णाको के मरुभूमिमें दूरसु मृगकु पानी चमकतो दीखे और वा पानीके लिये मृग दौड़े, पर जहां दीख रह्यो है वा स्थलपे दौड़के पहाँचे तब वहां पानी मिले नहीं. दूरसु जो पानी

दीखे वो बिलकुल सच्चे पानी जैसी ही दीखे. या रस्सीपे जो सांप है वो बिलकुल सच्चे सांप जैसी दीखे. तो एक आंखके प्रमाणसु अपनेकु रस्सी सांप जैसी दीखे और जब छूके देखें तो वो रस्सी जैसी दीखे. दोनों प्रमाणनमें एकवाक्यता नहीं रही. एकवाक्यता मने संवाद नहीं रह्यो, तो जब दो प्रमाणनमें संवाद नहीं रेह जाये तब सामान्यतया अपनेकु कोई एक प्रमाणको ज्यादा विश्वास होवे, दूसरे प्रमाणको विश्वास कम होवे. वाके आधारपे अपन् एक प्रमाणकु भ्रम मान लें और दूसरे प्रमाणकु सत्य मान लें.

जैसे गाँवके दो आदमी बात कर रहे हैं तो अपन् क्या करेंगे एकवाक्यता तो है नहीं, एक केह रह्यो है कि “चोर है” दूसरो केह रह्यो है कि “ये चोर नहीं है”, तो फिर अपन् क्या करें जा आदमीकी बातपे अपनेकु ज्यादा विश्वास होय वाके हिसाबसु अपन् व्यक्तिकु चोर या नहीं चोर मान लें. पर मान लो जो माननो होय सो, पर एक बाततो हकीकत है, कि जब कोई एक व्यक्तिके बारेमें दो बातें कही जा रही हैं और वो एक जैसी नहीं हैं तो मनमें संदेह तो ही जाये कि फिर यामें सच क्या ! ये सच के वो सच ! पर सब प्रमाणनकी एकवाक्यता हो जाय तो आदमीकु सच मानवेमें फिर संदेह नहीं होवे, निसंदेह वाकु वो सच मान लें. जैसे याकु छू रहे हैं तो भी तकिया लग रह्यो है, दिखाई भी तकिया जैसी दे रह्यो है तो दोनों प्रमाणनकी एकवाक्यता हो गई तो अपन् याकु तकिया ही मानेंगे. अब छूवेमें अपनेकु ये तकिया जैसी नहीं लगे कुछ और जैसी लगे, समझो खरगोश जैसी लगतो होय और देखवेमें तकिया लगतो होय, फिर अपने मनमें संदेह हो जाये कि क्या चक्कर है, ये खरगोश है कि तकिया है !

(प्रमाणनमें आपसी संवाद)

प्रमाणनमें हर बखत या तरीकेको होवे है, प्रमाणनमें आपसी संवाद जो है वो अपने मनके निश्चय या संदेहनिरासन में सबसु बड़ो उपकारक तत्त्व होवे है. प्रमाणनमें आपसमें विसंवाद संदेहको जनक हो जाय. वेद कोई एक तत्त्वकु ब्रह्म कहें हैं और जाकु वो ब्रह्म कहे है वाकु वेद यों कहे है के “**स ब्रह्मा स शिवः स इन्द्रोऽग्निः...**” जो ब्रह्म है, वो ही शिव है, वो ही इन्द्र है, वो ही अग्नि है, वो ही विष्णु है, जो कुछ है सो वो ही है. मतलब एक बात निश्चित है के कोई एक तत्त्व है, जाके अनेक नाम - रूप हैं. अब “एक ही ब्रह्म जो है वो इन्द्र भी

है, विष्णु भी है, शिव भी है, दुर्गा भी है, गणपति भी है, अग्नि भी है, वायु भी है, यम भी वो ही है.” ऐसे जा बखत वेद कहे तब अपनेकु इतनी बात तो समझमें आवे कि कोई एक तत्त्व है, जाके कई नाम - रूप हैं और जब कई नाम - रूप हैं तो कृष्ण भी एक नाम - रूप वा तत्त्वको हो सके है; पर संदेह स्फुट तो नहीं भयो कि वो तत्त्व क्या है ? ब्रह्मसूत्रमें भी खुलासा कोई खास रूपसु मिले नहीं पर येई रूपसु मिले के एक तत्त्व जो है वो अनेक नाम - रूप धारण करके प्रकट भयो है. तो वेदकी जो स्थिति है वोही स्थिति ब्रह्मसूत्रकी है; पर गीतामें भगवान्ने स्पष्ट या बातको खुलासा कर दियो “**अहम् आदिर्हि देवानां**” (भग.गीता.१०।२) “**सारे देवतान्को आदि मैं हूं.**” भगवान् ये भी खुलासा करें हैं कि “**येऽपि अन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्ति अविधिपूर्वकम्**” (भग.गीता.९।२३). “जो अन्यान्य देवतान्के भक्त हैं, वो भले जा देवको भजन करते होंय वो जा देवको भजन कर रहे हैं, वो एक देवको भजन दूसरे देव तक नहीं पहोंचे है; पर ऐसी कोई देवको भजन नहीं है जो अन्तमें मेरे तक नहीं पहोंचतो होय” ऐसे भगवान् कहें हैं. “कोई भी देवको भजन करो वो मेरे तकतो पहोंच ही रह्यो है.” तो जब ये बात भगवान् आज्ञा कर रहे हैं तब अपनेकु खुलासा होवें हैं के वेदमें जाकु ये कह्यो जाय कि सब देवतान्के नाम - रूप धारण करवेवालो एक ही तत्त्व है, वो एक तत्त्व कृष्ण है ये संवादकी विधिसु स्थापित होवे है. यामें विसंवाद नहीं है क्योंकि यहां भी भगवान् येही बात केह रहे हैं के जो “अन्यान्य देवतान्को जो भज रहे हैं वो अन्तमें तो मोकु ही भज रहे हैं” और “**अहम् आदिर्हि देवानाम्**” “मैं सब देवतान्को आदि हूं” तो इन बातनुसु अपनेकु स्पष्टतया संवाद स्थापित होवे है. संवाद स्थापित होनो प्रमाणके बारेमें ये कह्यो जाय के वो संदेहको निरासक होवे है. दो प्रमाणनमें संवाद स्थापित हो गयो, याने भी कही के ऐसी घटना घटी और वाने भी कही ऐसी घटना घटी, तीसरेने भी कही ऐसी घटना घटी, चौथेने भी कही ऐसी घटना घटी तो संवाद स्थापित हो गयो; पर एक केह रह्यो के “ऐसे नहीं भयो ऐसे भयो” और दूसरो केह रह्यो है, “ऐसी नहीं भयो” तीसरो केह रह्यो है “नहीं नहीं तीसरे ही ढंगसु भयो” तब विसंवाद होते ही अपनेकु निश्चय नहीं हो सके, निर्णय नहीं हो सके. फिर अपन् क्या करें कि जापे अपनेकु ज्यादा विश्वास होंय वाकी बात मानके चलें के सब जने अलग अलग बात कर रहे हैं पर अपन् या बातमें या व्यक्तिकु ज्यादा मान रहे हैं तो याकी बात मानके चलो. अब बात मानके चलवेकी एक अलग कथा है पर निश्चय होनो एक अलग कथा है. तो निश्चय

होवेमें संवादको बड़ो भारी महत्त्व है. जब वेद ब्रह्मसूत्र गीता और फिर भागवत भी वा आधारसु (या प्रकारसु) अपन् देखें तो वो संवाद स्थापित हो जाय है; क्योंकि भागवत कहे है “एते च अंशकला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्” (भाग.पुरा.१।३।१८). ये सारे जो हैं वो भगवान्के अन्तर्यामी नारायणके अवतार हैं और कृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं. ये जा बखत भागवत कहे है तो संवाद स्थापित हो जाय है. जा तत्त्वकु उपनिषद् ‘ब्रह्म’ केह रह्यो है, जा तत्त्वकु ब्रह्मसूत्र ‘ब्रह्म’ केह रह्यो है, वही तत्त्वकु गीता और भागवत ‘श्रीकृष्ण’ केह रहें हैं. सारे देव इनके धारण किये भये नाम और रूप के भेद हैं, या संवादके कारण श्रीकृष्णकी प्रमाणसिद्ध देवाधिदेवता एकदम साफ – साफ झलके है. इतर देवनकु अपन् ब्रह्म मानें तो इन चारों प्रमाणन्को संवाद स्थापित नहीं होयगो. कहीं न कहीं एक बात यहां केह रहें हैं, वहां अन्यत्र कुछ और बात लगेगी जैसे आचार्य अर्थ तो सब शास्त्रन्के करें ही हैं.

जैसे भगवान् रजनीशके बारेमें एक बड़ो प्रसिद्ध आख्यान है. रजनीश यों केहते थे कि “मैं भगवान् हूं” एक दिन एक श्रोताने उन्कु जाके पूछ ही लियो भरी सभामें कि “आप केह रहे हो कि आप भगवान् हो तो क्या सचमुचमें आपने जगत् बनायो?” रजनीशने कही कि “तुम मेरे पास आओ.” पास आयो तो वाके कानमें कही कि “हां! मैंने बनायो, पर दूसरेकु कहोगे तो मैं इन्कार कर दूंगो” तो ये संवाद नहीं भयो न! संवादको मतलब क्या कि जाओ सबकु केह दो और सबके सामने मैं कबूल कर लऊंगो. उन्ने संवाद नहीं कह्यो, उन्ने कही कि “तुमकु मैं ये बात बता दे रह्यो हूं पर दूसरेकु तुम कहोगे तो मैं ‘ना’ पाड़ दऊंगो कि मैंने ऐसे कही थी.” मतलब संवाद नहीं है वाणीमें, वाणीमें विसंवाद हो गयो. जब विसंवाद हो गयो तो आदमी संदेहमें पड़ जायेगो कि ये बात सच माननी कि वो सच माननी, संवाद होय तो अपनेकु प्रमाणता आ जाये और संदेह मिट जाये सारो. यासु कृष्णकी परतत्त्वतामें प्रमाणमें कोई तरहको विसंवाद नहीं है. विसंवाद न होवेके कारण कृष्णकी देवाधिदेवता चक्रवर्ती राजाके जैसी है, ये बात अपन् समझ सकें.

प्रकरण २ : प्रमेयदृष्टिसू कृष्णकी चक्रवर्तिता

(उपक्रम)

अब रही बात प्रमेयकी दृष्टिसु. कल अपन्ने ये बात सोची थी कि प्रमाण प्रमेय साधन और फल इन चारोंकी दृष्टिसु कृष्णकी देवाधिदेवता, चक्रवर्ती राजाके जैसी स्वरूप, अपनेकु कैसे समझमें आवे. तो यामें एक प्रमेयकी भी दृष्टि है. प्रमेयकी दृष्टिको मतलब क्या? तत्त्व कैसो है वाकु अपन् जानें. उपनिषद् जाकु ब्रह्म कहें हैं वा ब्रह्मकी परिभाषा उपनिषद् सबसु पेहले या ढंगसु करे है “यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयान्ति अभिसंविशन्ति तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म इति.” (तैत्ति.उप.३।१). “जासु जगत् पैदा हो रह्यो है जामें जगत् स्थित है और जामें जगत् लीन होयगो (प्रलयके रूपमें या मोक्षके रूपमें) वाकु तुम ब्रह्म जानो” ये ब्रह्मकी परिभाषा है. अब अपन् या परिभाषाके हिसाबसु सोचें तो एक बात ख्यालमें आवे के जो ब्रह्म है वाकु ब्रह्म रेहवेमें तो कोई तकलीफ है ही नहीं पर जब ब्रह्म जगद्रूप भयो है तो जगत् बनवेमें भी वाकु तकलीफ नहीं है.

(वो खुद आ नहीं सके क्या?)

रामपुरमें मुसलमानन्के अध्यापनको एक बड़ो क्षेत्र है. जैसे अपनो बनारसमें क्षेत्र है ऐसे इनको रामपुरमें एक बहुत बड़ो क्षेत्र है. तो उन्ने वहां कुरआनको हिन्दी अनुवाद छपवायो वा कुरआनकी हिन्दी भूमिकामें जिन्ने हिन्दी अनुवाद कियो थो उन् विद्वान्ने यों लिख्यो कि कुरआनके अनुसार अल्लाहने सतरह हजार पैगम्बर दुनियांमें उद्धारके लिये भेजे. अब इतने सारे पैगम्बर कहां कैसे कब भेजे वाको कोई इतिहास तो मिले नहीं है. जब इतिहास नहीं मिले तो उन् विद्वान्ने यों कही कि सहज सम्भव ये लगे है कि हिन्दुस्तानमें जिन् देवनकु और जिन् आचार्यनकु पृथ्वीपे धर्मसंप्रदाय भगवान् मान रहे हैं वो भी अल्लाहके भेजे भये पैगम्बर होंयगे क्योंकि सतरह हजार पैगम्बर हैं तो वो भी उन्मेंसु एक होंयगे, पर हिन्दून्ने अपनी गलत धारणाके कारण उन्कु भगवान् मान लियो. वो सब मूलमें पैगम्बर हते. वो किताब मैंने जब पढ़ी तो मैंने उन् विद्वान्कु पत्र लिख्यो : ये बात तो सच है उन्ने भी धर्मको उपदेश दियो ऐसो तुम भी मान रहे हो और हम भी मान रहे हैं कि उन्ने धर्मको उपदेश दियो उन्ने कोई कुफ्रको उपदेश तो दियो नहीं, क्योंकि

अल्लाहके भेजे भये पैगम्बर हैं. अल्लाहको भेज्यो भयो पैगम्बर कोई ऐसो पैगाम तो दे नहीं सके कि जामें आदमी काफिर बने, ऐसो पैगाम दे तो फिर तो वो शैतान हो गयो पैगम्बर ही नहीं रहेगो. पैगाम लेके जो आवे वाकु 'पैगम्बर' कह्यो जाय. अब विसंवाद कहां भयो हमारे तुम्हारेमें: तुम ये मान रहे हो कि अल्लाहके ये भेजे भये पैगम्बर हैं, हम यों मान रहें हैं कि ये अल्लाहके भेजे भये पैगम्बर नहीं हैं पर खुद अल्लाह इनके रूपमें आयो है कई बखत. तब उन्ने मोकु यों लिख्यो कि देखो पैगम्बर भेजवेसु काम चल जाये तो अल्लाहकु खुदकु अवतीर्ण होवेकी जरूरत क्या ? फिर मैंने दूसरो पत्र लिख्यो. मैंने लिख्यो : कोई ठिकाने फेक्टरीमें अपन् मेनेजर भेज दें. पर मेनेजमेन्ट हो जाये वाके लिये क्या मालिक खुद आ नहीं सके ? वापे कोई रिस्ट्रिक्शन है क्या ? यदि वापे रिस्ट्रिक्शन है कि वो आ नहीं सके तो वाको मतलब कि वो मालिक नहीं है. मालिक होय तो खुद भी आ सके. वो पैगम्बर भेज सके है ये सामर्थ्य तुम भी मान रहे हो और हम भी मान रहे हैं यामें अपन् दोनोंको संवाद है. अब तुम ये बताओ कि अल्लाह पैगम्बर भेज सके है वाके कारण वो खुद आ नहीं सके क्या ? शायद ऐसो होयगो कि तुमकु पैगम्बरसु संतोष होतो होयगो वाके लिये तुम्हारे यहां पैगम्बर भेज्यो होयगो, हमकुं पैगम्बरसु संतोष नहीं होतो होयगो करके वह खुद आयो होयगो. हमारे भी तो कोई ताल्लुक हो सके हैं कि नहीं भगवान्सु ? तो उन्ने जबाब ही नहीं दियो. बात समझवेकी है जो या तरीकेकी वामें परिछिन्नतायें होवें कि दुनियां बना दी पर दुनियांमें आ नहीं सके. मतलब वाकी सामर्थ्य सीमित हो गई, मतलब उपनिषद्के हिसाबसु वो ब्रह्म नहीं हो सके, क्यों जो जगत् बन सके है वो जगत्में आ भी सके है. आये बिना वो जगत् बनेगो कैसे ? (बात आई ना समझमें!) जो जगत् बन सके है वो जगत्में क्यों नहीं आ सके है ? या कसौटीपे आप देखोगे तो पता चलेगो. अब कई देवतायें हैं तैंतीस करोड देवतायें हैं सब देवतायें जगत्में आवें नहीं हैं ऊपरसु बैठके जगत्को नियमन करें हैं. कुछ विष्णुके अवतार ऐसे हैं जो जगत्में आये हैं, उन्मेंसु अपनो कृष्ण भी है. ब्रह्मको जो वर्णन है “अजायमानो बहुधा विजायते” वो अजायमान होवेपे भी बहुत तरहसु जन्म ले सके है. वो कृष्णने जन्म लियो है, ये या बातको प्रमाण है कि वो अजायमान भी है और विजायमान भी है.

जैसे अपन् अपनी सामर्थ्यकी बात देखें. उर्दुको एक बहुत प्रसिद्ध शेर है “लाई हयात आये कज़ा ले चली चले अपनी खुशी न आये न अपनी खुशी चले.” माता पिताने जन्म दे दियो तो आ गये जगत्में और जा दिन मौत ले

जायेगी वा दिन चले जायेंगे न ! तो अपन् न अपनी खुशीसु आ सके हैं और न अपन् अपनी खुशीसु जा सके हैं. “लाई हयात आये कज़ा ले चली चले अपनी खुशी न आये न अपनी खुशी चले.” या तरहसु जो जगत्में आवे वो ब्रह्म तो नहीं हो सके ना ! जैसे बैंकमें और सरकारी दफ्तरन्में ट्रांसफर् होवे है तो ट्रांसफर्की नोटिस आई तो आये, फिर ट्रांसफर्की नोटिस आई तो चले, अपनी खुशी न आये न अपनी खुशी चले. ऐसो बैंकको मालिक तो नहीं हो सके न जिनकु ट्रांसफर्की नोटिस आवेपे आनो – जानो पडे, यहां – वहां सब जगह ट्रांसफर् होतो रहे कई जगह जावें. जहां जहां जावें वो मालिकाना हकसु नहीं जावें हैं. ट्रांसफर्के कारण जातो भयो व्यक्ति नौकराना अदामें जावे है; पर जो अपनी खुशीसु कहीं जावे अपनी खुशीसु कहीं रहे रह्यो है और अपनी खुशीसु चले वो मालिकाना हक वाको प्रकट होवे. जीवके जन्ममें और भगवान्के जन्ममें मूलमें ये अन्तर है जन्म जीवको भी है जन्म भगवान्को भी है, जगत्में जकम्यो भयो जीव भी कभी जगत्कु छोड़के जावे है और भगवान् भी जगत्कु छोड़के पधारे हैं ऊपरके लोकन्में, पर मूल अन्तर जो है वो क्या अन्तर है “अपनी खुशी न आये न अपनी खुशी चले” वो बात भगवान्पे लागू नहीं होवे. भगवान् तो अपनी खुशीसु पधारे हैं, अपनी खुशीसु दर्शन देवें और अपनी खुशीसु यहां नहीं तो जहां भी बिराजें वहांसु दर्शन दें.

(जन्म कर्म च मे दिव्यम्)

ये बात अपन् प्रमेयके एंगल्सु देखें, भगवान् गीताके चतुर्थ अध्यायमें स्पष्ट कहें हैं ‘जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवं यो वेत्ति तत्त्वतः त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति माम् एति सोऽर्जुन’ (भग.गीता.४।९) मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं दिव्यको मतलब कर्मबन्धनसु मेरे जन्म नहीं है. जो जीव जन्में हैं भूतलपे वो कर्मबन्धनसु जन्में हैं करके अपनी खुशी न आये न अपनी खुशी चले होवे है, मैं कर्मबन्धनसु नहीं जन्मूं हूं मैं तो “यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर् भवति भारत ! अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदा आत्मानं सृजाम्यहम्. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवाभि युगे युगे.” (भग.गीता.४।७-८) युग युगमें मैं प्रकट होऊं हूं “जन्म कर्म च मे दिव्यम्” मेरो जन्म कर्म दिव्य है. “एवं यो वेत्ति तत्त्वतः” भगवान् यहां तक कहें हैं कि “या रहस्यकु तुम समझ जाओ कि न तो मैं कर्मबन्धनसु जन्मूं हूं न कर्मबन्धनसु

जगत्कु छोड़ूं हूं या रहस्यकु तुम समझोगे तो तुमकु ब्रह्मज्ञान हो गयो जब ब्रह्मज्ञान हो जायेगो तो तुम्हारे भी जन्म-कर्मके बन्धन निवृत्त हो सकें हैं.” आत्माको आत्माकी दृष्टिसु देखें तो जन्म भी नहीं है और मरण भी नहीं है आत्माको जन्म मरण भी देहकी दृष्टिसु ही होवे है देह जन्मे है और देह मरे है देहके साथ जन्मवेवालो आत्मा न तो जन्मे है और न देहके साथ मरेवालो आत्मा मरे है. क्यों ? क्योंकि अपन् सबको आत्मा तो अविनाशी है. अज अविनाशी आत्मा अपनो भी है अज अविनाशी आत्मा भगवान्को भी है फिर भी अपनो दिव्य नहीं है और उनको दिव्य है यामें अन्तर क्या ? अपन् अज अविनाशी आत्मा होते भये भी कर्मबन्धनके तहत जनम रहे हैं और कर्मबन्धनके तहत अपन् मर रहे हैं करके अपनो जन्म और यहां भूतलको त्याग दिव्य नहीं है भगवान्को जन्म और भूतलसु प्रयाण दोनों दिव्य हैं. ये दोनों अपन् कृष्णचरित्रमें देख सके हैं कि जा बखत जन्मे ठाकुरजी वा बखत भगवान्ने वसुदेव-देवकीकु कही कि तुमने वरदान मांग्यो थो तुमकु पुत्र नहीं होतो थो, तुमने पुत्रप्राप्तिके लिये तपस्या करी जब मैं तुम्हारे सामने प्रकट भयो तब तुम्हारो मन दोलायमान हो गयो कि पुत्र चईये कि भगवान् चईये वा दोलायमान चित्तमें तुमने मेरेसु ऐसो मांग्यो कि “तुम्हारो जैसो पुत्र चईये.” अब मेरे जैसो होय वो पुत्र नहीं हो सके और पुत्र जो होय वो मेरे जैसो नहीं हो सके करके मैं तुम्हारे यहां पुत्र बनके जकम्यो. तो भगवान् कर्मबन्धनसु नहीं जन्मे भगवान् उन्ने जो वर मांग्यो वा वर देवेके लिये भगवान् जन्मे हैं कर्मबन्धनके तहत नहीं जन्मे. बालीकु श्रीरामने छिपके मायों तो बालीने बड़ो पश्चाताप कियो “**मैं बैरी सुग्रीव पियारा कारण कवन नाथ मोहि मारा.**” भगवान्ने कही “काहेकु झगड़ा करे तू मार लीजो मेरेकु तीर, अब झगड़ा तो खत्म कर.” अब देखो अपन् तो सबकु मारें पर कोई अपनेकु मारे तो अपनकु पसन्द आ सके ? पसन्द नहीं आयेगो. जिन् हत्यारेनकु फांसी चढ़ाई जाये ना वो भी पाछे रोते होवें. भगवान्ने तो खुद चलाके कही कि “तेरेकु ऐसो लगतो होय कि मैंने अन्याय कियो तो चल तू भी ऐसो कर लीजो.” अब भगवान्ने जो अन्यायको फल भुगत्यो वो कर्मबन्धनके तहत नहीं भुगत्यो वो बालीकु आपने वरदान दियो के “चल तू मारियो” जब वाने व्याध बनके ठाकुरजीके चरणमें हिरन समझके तीर मायों. जैसे रामने बालीको शिकार कियो वैसे वा व्याधने ठाकुरजीके चरणकु हिरनको मुंह समझके तीर मायों. अब जब वो पास आयो तो वाकु लग्यो कि ये तो गड़बड़ हो गई तब माफी मांगवे लग्यो तो भगवान्ने वाकु कही कि “तू क्यों चिंता करे है, ये तो मैंने तोकु वरदान दियो थो वाके लिये तैंने तीर मायों.” अब

वो बात जो अपन् केह रहे हैं कि “**लाई हयात आई कज़ा ले चली चले अपनी खुशी न आये न अपनी खुशी चले**” वो बात भगवान्पे लागू नहीं होवे है. भगवान् पधारें हैं तो वो भी अपने वरदानकु सिद्ध करवेके लिये, देवेके लिये और भूतलकु त्याग करें हैं वामें भी आपने तो वरदानकु ही निमित्त बनायो है, कोई कर्मबन्धनकु निमित्त नहीं बनायो है. अब कोई सोचे कि बालीकु मारवेको पाप लग्यो वाके तहत भगवान्कु तीर खानो पड़्यो वो बात नहीं है. बालीकु आपने खुदने वरदान दियो है कि ले तू मारियो तीर.

(मोहबन्धन)

अब यामें एक और रहस्य समझो. “यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्ति अभिसंविशन्ति तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति.” (तैत्ति.उप.३।१) ये परिभाषा ब्रह्मकी जो वेदने करी तो जगत् जो पैदा हो रह्यो है वो ब्रह्म जगत्के रूपमें पैदा हो रह्यो है, जगत् जो स्थित है वो ब्रह्मको ही कोई रूप स्थित है, जगत् जो लीन हो रह्यो है वो भी ब्रह्म ही तो कोई रूपसु लीन हो रह्यो है. अब अपनकु लीन होवेमें डर लगे. क्यों डर लगे ? क्योंकि कर्मबन्धनके साथ अपनेकु मोहबन्धन और है. अपनेकु कर्मबन्धन भी है और अपनेकु मोहबन्धन भी है. अब ये मोहबन्धन क्यों है वाको कारण भी समझो मोहबन्धन या लिये है कि यहां अपन् जन्मे तो यहांको मोह हो जाये और फिर वो मोह छूटे नहीं. अपने बूढ़े लोगनकु सबकु ये बात याद होयगी पुराने जमानामें अपने गांवसु कोई दूसरे गांव जातो तो लोग रो-रोके बिदा करतें. क्यों रो-रोके बिदा करते ? कि पता नहीं चले, कि जायेगो तो जिन्दा रहेगो कि मरेगो, मरेगो तो भी पता नहीं चले. अब टेलीफोन् आ गये और सारे साधन आ गये मोबाईल् आ गये पल पलकी खबर अपनेकु जावेवालेकी भी मिले आवेवालेकी भी मिले, तो अपनेकु चिंता नहीं होवे. चिंता नहीं होवे तो रोने भी नहीं आवे. आज सब लोग हंसते भये बिदा करें स्टेशनपे. पुराने जमानामें जो स्टेशनपे जाते तो रोते भये ही बिदा करते. क्यों रोते भये बिदाई करते ? कारण कि उनकु मोह होतो थो कि अब जा रह्यो है तो यासु बात कैसे करेंगे ? जा रह्यो है तो याकी खुशखबरी कैसे जान पड़ेगी ? याके साथ क्या बीतेगी ? वाको अपनेकु ज्ञान होयगो कि नहीं होयगो ? इन् सब उद्वेगनके कारण लोग रोते थे. पुरानी अपनी कवितायें देखो तो वामें भी ऐसी-ऐसी बातें मिलेंगी “**जाओ कहूं तो प्रभुता जो कछु न कहों तो**

सनेह बिसारिये.” अब जा रह्यो है वाकु जाओ कहें तो स्नेह कम हो गयो कुछ नहीं बोलें जाओ कहें तो प्रभुता लगे “तासों प्रयाण समे तुमसों कहा कहिये ! तुमही समुझाइये.” तुम जा रहे हो तो तुमसु क्या कहें वो तुम ही बताओ. ये सारी समस्यायें वा बखत होती थी क्यों होती थी ? कि जो जा रह्यो है वाके प्रति अपना मोह इन् सब चक्करनमें डालतो थो. वामें जावेवालो भी रोतो थो ऐसे नहीं है कि भेजवेवालो भी रोतो थो. अभी भी लड़कियें जैसे पीयरसु ससुराल आवें तो रो-रोके आवें क्योंकि थोड़ो संदेह रेहवे कि न जाने ससुरालमें क्या हाल होंगो, पतिसु बनेगी कि नहीं बनेगी मारामारी होयगी सास बहू की, क्या होयगो ? वो सब झगड़ाके कारण मोह पैदा होवे और वाके लिये रोना आवे. अब ये मोह नहीं पैदा होतो होय तो आनन्दसु भग जाये. अब ये आवे-जावेमें जो कर्मबन्धन है वो बन्धन ही नहीं है मोहबन्धन भी अपनेकु होवे है वा मोहबन्धन होवेके कारण अपना आनो-जानो दिव्य नहीं रेह जाये है. कहीं न कहीं आवेमें हर्ष प्रकट होवे और जावेमें अपनेकु शोक प्रकट होवे है अक्सर.

(वैकुण्ठवासकी शोकसभा !)

मैं याही लिये मज़ाक उड़ाऊं के अपन् अखबारनमें छाप देवें कि हमारे पिताश्रीको कैलाशवास हो गयो, कोई कहे कि वैकुण्ठवास हो गयो, फिर वाकी शोक सभायें करें ! अरे भई ! जब कैलाशवास भयो, वैकुण्ठवास भयो तो वाकी शोकसभा होनी चईये कि हर्ष सभा होनी चईये ! अरे ! नरकवास भयो होय तो अपन् शोकसभा करें कि बड़े शोककी बात है कि हमारे पिताश्रीको नरकवास हो गयो. तब तो शोकसभा करो. छापानमें आवे कि हमारे पिताश्रीको कैलाशवास हो गयो वाकी शोकसभा ! कैलाशवास भयो तो वामें शोकसभा करवेकी क्या जरूरत है वो तो हर्षसभा होनी चईये. कैलाश कौनकु मिले है दुनियांमें ! पर अपना चक्कर ऐसो है कि कैलाश भी मिल जाये तो शोक हो जाये, वैकुण्ठवास हो जाये तो भी शोक हो जाये, क्योंकि मोहबन्धन है. अपनेकु कर्मबन्धन हैं इतना ही नहीं साथमें मोहबन्धन और है. एक तो भगवान् खुश होके वैकुण्ठको दान करें और पीछे पता पड़े कि यहां सब शोकसभा कर रहे हैं तो भगवान् भी परेशान कि देनो कि नहीं देनो वैकुण्ठवास कि नरकमें ही भिजवानो ! छापानमें अक्सर आप देखोगे कि फोटोके साथ छपे कि स्वर्गवास हो गयो कैलाशवास हो गयो वैकुण्ठवास हो

गयो वाकी शोकाञ्जली ! अब देखो ये मोहकी बात हो गई ना ! मोह अपनेकु स्वाभाविक है.

(प्रभुको मोहबन्धन नहीं है)

प्रभु मोहबन्धनके वश नहीं है, करके जा बखत व्याधने तीर मास्यो है वा बखत भी आप बड़ी प्रसन्न मुद्रामें वेणु बजा रहे हते. व्याधकु कही “तु डरे क्यों है ! ये तीर तैंने थोड़े ही मार्यो है ! ये तो मैंने तोकु वरदान दियो हतो. (रामावतारमें) तेरे दिलमें दुःख हो रह्यो हतो के मेरो शिकार करके मोकु क्यों मार दियो ? यदि आप युद्ध करना चाहते तो मैं आपसु युद्ध करतो. युद्ध करना नहीं चाहते हते तो मेरो अपराध क्या हतो ये बताओ !” रामके पास बालीकी युक्तिको जबाब नहीं है. यदि राम यों कहें के तुमने अपने छोटे भाईकी पत्नी चुरा ली तो बाली केह सके के वो तो आपके मनुष्यकुलमें पाप मान्यो जावे हमारे यहां तो पाप मान्यो ही नहीं जावे. जब पाप नहीं मान्यो जावे तो वो नियम हमपे कैसे लागु होयेगो ! बालीकी युक्तिको जबाब रामके पास नहीं हतो करके रामने वाकु कही के “एक काम कर तु मोकु तीर मार लीजियो. झगड़ा खत्म कर. यामें ऐसी कौनसी बड़ी बात है !” तो ये लीला प्रकट भयी है. प्रभुके जन्मकी जीवनकी भी एक लीला है. जगत्सु प्रयाण भी एक लीला है. वामें कोई शोक मोह को रूप नहीं है. यदि ब्रह्म सारे रूपसु जनम रह्यो है सारे जगत्के रूपमें जी रह्यो है सारे जगत्के रूपमें लीन हो रह्यो है तो जो ब्रह्मानुभूतिके साथ है वाको जन्म जीवन और जगत्सु प्रयाणमें शोक मोह को कोई बन्धन नहीं होना चाहिये. वो अपन् कृष्णलीलामें स्पष्ट देख सकें हैं. प्रमेयकी दृष्टिसु भी देखो तो कृष्णकी ब्रह्मात्मकता वामें स्फुट होवे है.

(‘मैं’के कारण अहंकारकु ठेस लगे)

दूसरी बात, सब कुछ ब्रह्म बन्यो है तो अपनेकु कोई चीज़ बनवेमें परहेज होवे है क्योंकि अपने भीतर एक वस्तुको दूसरी वस्तुसु भेद भयो भयो है. जैसे कलेक्टरकु अपन् केह के तु चपरासी बन जा, तो वो नहीं बन सकेगो. सामनेवालेकु चुभे या लिये अपन् गालियां दे हैं. सामनेवालेकु चुभे क्यों ? वो अपने आपकु गधा लोमड़ी चूहा नहीं सोचतो होवे. अब ‘गधा’ केहवेसु लम्बे कान हो जाते होंय चार टांग हो जाती होंय तो तो दुनियामें अराजकता फैल जायेगी ! गाली देवेसु न चार टांग बनेंगी न ‘बैल’ केहवेसु सींग उगेंगे फिर भी अपन् गाली-गलौच क्यों करें ?

कोई ऋषि मुनिन्के जैसो सामर्थ्य अपनेमें है के गाली दे दी तो गधा हो गयो ! अपन् भी जानें के वो सामर्थ्य अपनेमें नहीं है फिर भी अपन् गाली – गलौच करें. क्यों गाली – गलौच करें ? सिर्फ सामनेवाले आदमीकु दुःखी करवेके लिये. दुःख वाकु क्यों होवे है ? अपने मनमें मनुष्य होवेको अहंकार रखतो होवे और अपन् वाको कहे के ‘तु गधा है’ तो वाकु दुःख हो जावे के मैं मनुष्य हूं मोकु ‘गधा’ कैसे केह दियो ! यदि वो अहंकार नहीं होवे तो ‘गधा’ केहवेसु क्या फरक पड़े !

अपने अहंकारकु ठेस लगे. ये बात सोचो के अहंकारकु क्यों ठेस लगे ? या लिये ठेस लगे क्योंकि अपन्ने अहंमें बचपनसु अपनो एक रूप समझ्यो है के ‘मैं ये हूं’. सो जो मैं नहीं हूं वो रूप मोकु बतायो जा रह्यो है, वाके लिये अपने अहंकारकु ठेस लगे. नहीं तो ठेस लगवेकी बात क्या है ? समझो के आदमी भ्रमरकीटन्यायसु बचपनमें थोड़ो गधा रेहतो होतो फिर बादमें मनुष्य होतो, या तरहसु रूपान्तरण होतो और कोईकु ‘गधा’ केहते गुस्सा आतो के मोकु ‘गधा’ कैसे केह दियो हम तो गधा हैं नहीं ! अपनेकु गधा होवेमें परहेज है करके गुस्सा आवे है. गुस्सा आवे है करके अपने दिलकु ठेस लगे है ठेस लगे है करके गाली देवेवालो अपनेकु ठेस पहुंचावे है. यदि अपनेकु गुस्सा नहीं आतो होय अपने दिलकु ठेस नहीं लगती होय तो गाली देवेसु क्या फरक पड़े ?

हमकु बचपनसु आर्युमेन्ट करवेकी बहोत खराब आदत हती. सब बड़े लोग गुस्सा रेहते मोसु के बहोत आर्युमेन्ट करे. सब लोग मोकु ‘उल्लू’ केहते. मैं भीतपे जाके लिख आतो “मैं गधा हूं”. मोकु बड़ी श्रद्धा हती के कोई बांचेगो तो सही. अब कोई यों नहीं केह सकतो के हमकु गाली दी. मैंने कोईकु थोड़े ही गाली दी ! मैं भीतपे लिख देतो हतो के ‘मैं गधा हूं’ अब जो बांचेगो वामें अपनो क्या गयो ! जो मोकु उल्लू केहते हते वो भी बांचेगो तो सही के ‘मैं गधा हूं’. मैं कोईकु गाली तो नहीं देतो हतो. अब कोई पूछेगो तो मैं कहंगो के ‘मैं गधा हूं’ लिख्यो है ‘आप गधा हो’ ये थोड़े ही लिख्यो है ! आपकु ‘गधा’ कहूं तो गुस्साकी बात है. मैं तो भीतपे लिख देतो. अब जो बांचे वामें अपनो क्या गयो ? अपनो तो वामें तटस्थभाव रेहतो. मेरी एक श्रद्धा हती के लिख्यो है तो कोई न कोई तो बांचेगो. कोईकु गाली दें तो बुरी बात है. अपन् तो कोईकु गाली दे नहीं रहे है. ‘मैं’कु गाली दे रहे है. गधामें ‘मैं’ तो है ही. गधामें ‘मैं गधा’ नहीं होवे तो दुनियामें गधा हो कौन सके है ! सारो गधापन ‘मैं’में रह्यो भयो है. कौनसे ‘मैं’में ? अपन्ने अपने

‘मैं’कु जितनो बड़ो नहीं है उतनो बड़ो मान रख्यो है वोही गधापन है. हर आदमीको ‘मैं’ बड़ो छोटो होवे है. अब कोईकु परहेज होवे और कोईकु परहेज नहीं भी होवे. तो अपनेकु अपने ‘मैं’के कारण कोई चीज़ होवेमें परहेज होवे है. अब ‘मैं विद्वान हूं’ ऐसो अपनो ‘मैं’ लगे और कोई मोकु ‘मूर्ख’ केह तब ठेस लग जावेगी. मोकु ‘मूर्ख’ क्यो कह्यो ?

(भगवान्के ‘मैं’कु ठेस नहीं लगे)

भगवान्के ‘मैं’कु ऐसी ठेस नहीं लगे. कृष्णके चरित्रमें देखो तो पता चलेगो. वो जगत्पिता होते भये भी जगतमें बालक बनके जनम सके है. धर्मके उपदेशक होते भये चोरी भी कर सके है. महान राक्षसनुकु मारवेवाले होते भये भाग भी सके है. कालयवन आयो तो ठाकुरजी भाग गये. रणछोडरायकी जय हो गई. आज तक उनको नाम ही रणछोड है. ‘रणछोड’ मतलब रणकु छोड़के जो भाग जावे. भगवान्कु कोई बातकी शरम नहीं है. वो जगदुरु होते भये सांदिपनिके यहां शिष्य भी बन सके है. वो राजान्के राजा होते भये भी सुदामा जैसे रंकके पैर भी धो सके है. ये ब्रह्मके गुण हैं के वो सब कछु बन्यो है. वो भगवान्ने अपने जीवनमें प्रकट कियो है के मैं सब कछु बन्यो हूं “यद्यद्विद्या त उरुगाय विभायन्ति तत्तद्रूपः प्रणयसे सदनग्रहाय” (भाग.पुरा.३।९।११) तुम जा भावनासु सोचो वा भावनासु मैं तुम्हारे साथ बरत सकु हूं.

ब्रह्म होवेकी बात भूल जाओ ईश्वर होवेकी बात भूल जाओ पर ठाकुरजी यदुकुलके तो बहोत बड़े नायक हते. अब क्या वो अर्जुनके ड्राईवर् बनेंगे ? वामें समस्या ये हती के महाभारत लड़वेके पहले दुर्योधन और अर्जुन दोनों एक दिन द्वारिका पहुंच गये. दुर्योधन पहले पहुंच गयो. दुर्योधनको जो ‘मैं’ हतो वो बड़ो भारी हतो के ‘मैं कौरवन्को युवराज हूं’ वो जाते ही ठाकुरजीके मस्तकके तरफ बैठ गयो. अर्जुन आयो तो वो चरणकी तरफ बैठ गयो. जब ठाकुरजीकी आंख खुली तो सबसु पहले अर्जुन दीख्यो. अब सोये होंय तो जो सिरहाने बैठ्यो होय वो पहले थोड़े ही दीखे ! पहले तो पैरकी तरफ बैठ्यो भयो दीखे. जैसे ही अर्जुन दीख्यो तो ठाकुरजीने अर्जुनकी तरफ बात करनी शुरू करी. तो दुर्योधनने कही के “ये पीछेसु आयो मैं पहले आयो.” भगवान्ने कही “ओहो, तो तुम भी आये हो मोकु पता नहीं” भगवान्ने पहले अर्जुनसु बात करी तो दुर्योधनके अहंकु ठेस

लग गई के मैं पहले आयो और बात अर्जुनसु पहले क्यों कर रहे हो ! तो वाने 'मैं गधा हुं' पहले प्रकट कर दियो. अब दोनोंने एक ही प्रस्ताव रख्यो के हम लड़वे जा रहे हैं और हमकुं आपकी सहायता चाहिये. अब भगवान्की ब्रह्मता देखो कैसी है ! भगवान्ने कही के “अच्छा एक काम करो के मेरी पूरी सेना एक ले लो और एक मोकु ले ले”. अब दुर्योधनको ‘मैं’ तो बलवान हतो ही. वाने कही “बस बस आप यादवन्की सेना मिल गई. या यादवन्की सेनाने ही तो सब जगह मुश्किल कर रखी है. सेना मोकु मिल जावेगी तो कोई मुश्किल बात नहीं है” अर्जुनने कही के “चलो मेरे पल्ले तो आप ही आये, मोकु तो आप ही चाहिये हो” वाके बाद भी सारथी बननो स्वीकार्यो.

(कृष्णकी प्रमेयदृष्टिसु देवाधिदेवता और ब्रह्मरूपता)

ये उनके पदकी गरिमाके अनुरूप नहीं हतो पर भगवान्कु इन सब बातन्की परहेज नहीं है. सब कछु वो बने हैं तो कुछ भी बनवेमें उनकु परहेज नहीं है. उनकु शिष्य बनवेमें गुरु बनवेमें दोस्त बनवेमें दुश्मन बनवेमें धर्मात्मा बनवेमें भी परहेज नहीं है. कोई दो - चार अधर्मके काम भी करने होंय तो वामें भी भगवान्कु परहेज नहीं है क्योंकि सब कछु वो बने हैं. भागवतकार केह है के “गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक्.” (भाग.पुरा.१०।३३।३६) जो सबके हृदयमें बसके छिपके क्रीडा कर रह्यो है वो ही यहां अलग रूपसु प्रकट होके भी क्रीडा कर रह्यो है. कृष्णके स्वरूपमें प्रमेयकी दृष्टिसु देखोगे तो ये बात बिलकुल साफ साफ झलक रही है के वो सब कुछ बन सके है करके बहोत प्रसिद्ध श्लोकमें अपन् केह है “त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं ममदेव देवः” वो कृष्ण अपनो सब कुछ हो सके है. कृष्णकु कुछ भी होवेमें परहेज नहीं है ये कृष्णकी प्रमेयकी दृष्टिसु देवाधिदेवता और ब्रह्मरूपता है के नहीं या बातकु थोड़ीसी फील करोगे तो आपकु सरलतासु समझमें आयोगे. वो सब कछु बन सके पर देवन्कुं परहेज है के वो कुछ बन सकें और कुछ नहीं बन सकें. कोई देवकु यों कहो के यहां आके हमारी नौकरी करो तो वो नौकरी नहीं कर सके. भगवान्के मनमें कोई परहेज नहीं है, जैसे तु केह “यद् यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः” (भाग.पुरा.७।९।११) तुम भगवान्कु जो मान दे रहे हो वो भगवान्कु मान दे रहे हो के खुदकु मान दे

रहे हो ! वाको बहोत सुन्दर उदाहरण भागवतकार समझावें के “तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः” दर्पणमें रहे भये तुम्हारे प्रतिबिम्बकु जितनो तुम सिंगारनो चाहो वाके लिये तुमकु अपनो मुंह सिंगारनो पड़ेगो. तुम अपनो मुंह बिगाड़ो तो दर्पणमें मुंह अपने आप बिगड़ जावेगो. अपने चेहरापे कालिख पोत लो तो दर्पणके मुखपे कालिख पुत जावेगी. अपने चेहरापे पाउडर् लगा लो तो दर्पणके चेहरापे पाउडर् आ जावेगो. अपने चेहरापे तिलक लगा लो तो दर्पणके चेहरापे तिलक आ जावेगो. “यद् यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः” भगवान्को मान या सन्मान तुम अपनो ही मान - सन्मान कर रहे हो. भगवान् तुमसु अलग होय तो तुम भगवान्को मान - सन्मान कर सको. भगवान् तो या तरहसु घट - घटमें बिराजमान है ये बात कृष्णके प्रमेयकी दृष्टिसु ब्रह्मरूपता है के नहीं !

(प्रमाण - प्रमेयकी संवादिता)

प्रमाणन्को संवाद भयो के नहीं भयो ! यहां प्रमेयको संवाद भयो के नहीं के जो प्रमेय वेदमें बतायो है “सर्वं खलु इदं ब्रह्म” ये सब कछु ब्रह्म है तो जो प्रमेय सब कछु हो सकतो होय वो भी तो ब्रह्म हो सके है. जो बिदक जाये माने “उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः” (भाग.पुरा.१०।१८।२४) खेलते खेलते भगवान् हार गये और शर्त ये भयी हती के जो जीतेगो वो हारे भयेपे सवारी करेगो. श्रीदामा जीत गये भगवान् हार गये और श्रीदामाने भगवान्पे सवारी करी. अब दूसरे देवताकु कहो के तुम हारो और हमकु सवार होवे दो. मुश्किल हो जावेगी. भगवान्के साथ ये समस्या नहीं है क्योंकि “यद् यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः” न तो वाके लिये कोई मान है न तो वाके लिये कोई अपमान है. जो भी वाको मान है वो तुम्हारो मान है. तुम्हारो मान है वो वाको मान है. तुम्हारो अपमान है वो वाको अपमान है. भगवान्कु तुम अतिरिक्त नहीं मान सको हो, जैसे दर्पणके चेहराकु तुम अतिरिक्त कालिख नहीं पोत सको हो. तुम अपने चेहरापे कालिख पोतो तो दर्पणके चेहरापे कालिख अपने आप पुत गई. भगवान्को वा तरहको स्वरूप है “सर्वं खलु इदं ब्रह्म” प्रमेयकी दृष्टिसु भी भगवान् ब्रह्म है.

(प्रमेयकी दृष्टिसु कृष्णकी सर्वरूपता)

गीताके विभूतियोगकी दृष्टिसु भी अपन् देखें तो वहां स्पष्ट है “रुद्राणां शङ्करश्चास्मि” रुद्रन्में मैं शंकर हूं “ऐरावतं गजेन्द्राणां... वैनतेयश्च पक्षिणाम्” (भग.गीता १०।२३-३०) अब तुम कहोगे के ये क्या गड़बड़ है ! पक्षीन्में मैं गरुड हूं. अरे भाई, गरुडपे तो आप सवारी करवेवाले हो के खुद आप गरुड हो ! और भगवान् कहे के पक्षीन्में मैं गरुड हूं “ऐरावतं गजेन्द्राणाम्” अब वा दृष्टिसु सोचो तो कितनो लफड़ा हो गयो ! इन्द्र जा ऐरावतपे सवारी कर रह्यो है वो “ऐरावत मैं हूं” “सर्वं खलु इदं ब्रह्म”. ये प्रमेयकी दृष्टिसु कृष्णकी सर्वरूपता प्रभुने एक ढंगसु नहीं अनेकधा प्रकट करी है. अपनी पर्सनालिटीमें अपने चरित्रमें अपने व्यक्तित्वमें अपने कर्तृत्वमें प्रभुने या तरीकेकी सर्वरूपता प्रकट करी है. केवल रूपकी दृष्टिसु अपन् सोचें तो “मल्लानाम् अशनिः, नृणां नरवरः, स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्, गोपानां स्वजनो, असतां क्षितिभुजां शास्ता, स्वपित्रोः शिशुः, मृत्युः भोजपतेः, विराड् अविदुषां, तत्त्वं परं योगिनां, वृष्णिनां परदेवता इति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः” (भाग. पुरा.१०।४३।१७) कंसके दरबारमें जो मल्ल हते उनकु लग्यो के ये बिजली आ रही है. ‘नृणां नरवरः’ जो साधारण मनुष्य हते उनकु लग्यो के कोई नरवर आयो, पुरुषोत्तम आयो. ‘स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्’ स्त्रियनकुं लग्यो के ये तो साक्षात् कामदेव आयो. ‘गोपानां स्वजनः’ गोपलोगनकुं लग्यो के अपन् जैसो ही ग्वाल है, अहीर है. ‘असतां क्षितिभुजां’ जो दुष्ट राजा हते उनकु चक्रवर्ती लग्यो जो हमकुं दण्ड देवेके लिये आयो है. ‘स्वपित्रोः शिशुः’ वसुदेव-देवकीजीकु लग्यो के ये तो हमारो बेटा आयो. ‘मृत्युः भोजपतेः’ कंसकु लग्यो के ये तो साक्षात् मृत्यु आयी. अब देखो, इतनी विविधता एक रूपमें एक बखत एक व्यक्तिमें कैसे प्रकट हो सके यदि सर्वरूपता ‘सर्वं खलु इदं ब्रह्म’ नहीं होय तो !!! प्रमेयकी दृष्टिसु वो सब कुछ बन्यो है. वो सब कुछ बन सके है. वाकु कुछ भी बनवेमें तकलीफ नहीं है.

‘स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्’ ‘तत्त्वं परं योगिनां’ अब देखो ध्यानसू समझो के जो परम तत्त्व है वो कभी काम जगा नहीं सके है. काम जगावेवालो योगमें कभी साधक नहीं होवे बाधक ही होवे है. जितनी भी ऋषि-मुनिन्की तपस्यान्के कथानक पढ़ोगे तो वामें बाधक कामदेव हते. सब कथानकन्में आवे के कामदेवने बाण चलायो और उनकी तपस्या भंग हो गई. कामदेव योगमें बाधक होवे है साधक नहीं होवे. परम तत्त्व कभी काम जगावे नहीं है. कामको तो वो शामक

निवारक होवे है. भगवान् दोनों हैं क्योंकि “सर्वं खलु इदं ब्रह्म” वो सब कुछ बन्यो है वो सब कुछ बन सके है करके वाने सब कुछ बनके दीखायो है. जो भी वाके सामने आवे है वाकु रिस्पोन्स् दे सके है. कृष्ण एक ऐसो स्वरूप है जाकु अंग्रेजीमें ‘इर्रजिस्टिबल्’ (अप्रतिकार्य) कहें है, जाकु अपन् रजिस्ट्र (प्रतिकार) नहीं कर सकें. अपन् संयम नहीं रख सकें यदि कृष्ण सामने आ जावे तो ! और सबके सामने संयम रख्यो जा सके पर कृष्ण यदि अपने सामने आ गयो तो वाके व्यक्तित्वमें या तरीकेकी कोई चमत्कृति है के वाकु रजिस्ट्र नहीं कियो जा सके, जैसे बाढ़ आती होवे तो वामें बहे बिना छुटका ही नहीं है. बाढ़ इर्रजिस्टिबल् होवे है. बाढ़ आवे तो बहनो ही पड़े. ऐसे कृष्णके स्वरूप या चरित्र की जब बाढ़ आवे तो अपनेकु बहनो ही होवे जैसे रत्नाकर केह “न चली कुछ लालची लोचनकी हठ मोचनके चहनो ही पड़्यो रत्नाकर बंक विलोकनि बानि सहाय बिना सहनो ही पड़्यो. उतते वे गात छुवाय चले तब तो प्रणको दहनो ही पड़्यो. भरी आई कराह सुनो जु सुनो नन्दलालसु यों केहनो ही पड़्यो” तो कृष्ण या तरीकेको इर्रजिस्टिबल् क्यों है ? वो सबके भावनकुं सब तरहसु सामने आ सके है. ये कृष्णकी “सर्वं खलु इदं ब्रह्म”की ब्रह्मरूपता है. ये प्रमेयकी दृष्टिसु ब्रह्मरूपी प्रमेयको और कृष्णरूपी प्रमेयको संवाद है.

(‘भक्तियोगविधानार्थम्’ --म कृष्णकी प्रमेयरूपता)

ऐसो संवाद और कौनसे देवको है बताओ ! महाप्रभुजी केह रहे है सब देवन्में देवत्व हैं. कोई देव अदेव नहीं है पर कृष्णमें ब्रह्म होवेको जो संवाद दीख रह्यो है वो संवाद अन्यत्र मिलनो मुश्किल है. तुम्हारेमें हिम्मत होनी चाहिये. महाभारतके बाद कुन्तीजी बहोत अच्छी बात केह हैं के “मोकु सबसु बड़ो आश्चर्य होवे है. मैं वो दिन भूली नहीं हूं के जा बखत तुम माखन चोरते हते तुमकु डांट पड़ती हती तुम्हारी आंखन्में आंसु आते हते और तुम डरके रोते हते. तुम वोही कृष्ण हो ? यदि तुम वो कृष्ण हो तो तुम परमेश्वर कैसे हो सको ! यदि तुम परमेश्वर हो तो वो कृष्ण कैसे हो सको हो !” फिर कुन्तीजी अन्तमें केह है “नहीं नहीं ये सारी बातें कोई कीमत नहीं रखें हैं क्योंकि तुम प्रकटे हो केवल “भक्तियोगविधानार्थम्” (भाग.पुरा.१।८।२०) जाको जैसो भाव है वाके वैसे भावके अनुरूप रूप धारण करके वाके मनकु हरवेके लिये तुम प्रकटे हो.”

(कृष्णकी सर्वरूपता और देवाधिदेवता के कारण चक्रवर्तिता)

“सर्वं खलु इदं ब्रह्म” या तरीकेको कृष्ण एक प्रमेय है. वा प्रमेयसु संवाद है और वा संवादकु अपन् देखें तो महाप्रभुजीकी बात अपनेकुं समझमें आवे के सभी देव हैं. कोई भी देवके देवत्वमें कलु भी न्यूनता नहीं है और देव तरीके कृष्ण भी एक देव ही हैं. पर कृष्ण देव होवेके बाबजूद भी देवाधिदेव हैं क्योंकि ब्रह्म जो सर्वरूप बन्यो है वो कृष्णके चरित्रमें व्यक्तित्वमें जन्ममें जीवनमें और जगत्सु प्रयाणमें सबमें “सर्वं खलु इदं ब्रह्म”की सर्वरूपता प्रकट हो रही है चक्रवर्तिता प्रकट हो रही है. या अर्थमें अपनो कृष्ण चक्रवर्ती है ये बात महाप्रभुजीने समझाई है. ये बात अपन्ने प्रमाणकी और प्रमेयकी दृष्टिसु देखी. अपन् साधन और फल की दृष्टिसु भी देखेंगे.

प्रकरण ३ : साधनदृष्टिसू कृष्णकी चक्रवर्तिता

(उपक्रम)

अपन्ने प्रमाण और प्रमेय की दृष्टिसु कृष्णकी परब्रह्मरूपता सर्वोपरिता देवाधिदेवता इन सब बातन्को अवगाहन कियो. आज साधन और फल की दृष्टिसु भी कैसे परब्रह्मरूपता परमात्मरूपता पुरुषोत्तमरूपता भगवद्रूपता देवाधिदेवता कैसे है वा बातको अवगाहन करनो है.

एक पुष्पदन्ताचार्य भये है, जिनने ‘शिवमहिम्नस्तोत्र’ बहोत ही सुन्दर लिख्यो है. वैसे महाप्रभुजीकी तरह वो शुद्धाद्वैती हते पर शैव हते. उनकी शिवकी स्तुतिमें भी बहोत सारे भाव शुद्धाद्वैतके दर्शनानुसारी हैं. वामें एक जगह वो कहें के “रुचिनां वैचित्र्यात् ऋजुकुटिल नानापथजुषां नृणाम् एको गम्यः त्वमसि पयसाम् अर्णव इव” ‘रुचिनां वैचित्र्यात्’ जीवकी रुचि अलग अलग ढंगकी होवे है. कोईकु सीधे मार्गसु चलनो अच्छो लगे है कोईकु टेढ़े मार्गसु चलनो अच्छो लगे है. पर सारे मार्ग अन्तमें तेरे तक ही पहुंचें हैं. उदाहरण बड़ो सुन्दर देवे है ‘त्वमसि पयसाम् अर्णव इव’ जैसे नदी कोई भी दिशामें बेहके अन्तमें समुद्रमें मिले है. कोई नदी सीधी समुद्रमें नहीं मिलें हैं. वो समुद्रमें मिलवेवाली नदीमें मिलके समुद्रमें मिलें हैं. ये एक साधनके बारेमें ‘ब्राह्मिकी दृष्टि’ है. पुष्पदन्ताचार्य शुद्धाद्वैतवादी है करके अपने आराध्य शिवकु ब्रह्मतया देखे है.

(महाप्रभुजीकी साधनके प्रति ब्राह्मिकी दृष्टि)

महाप्रभुजी भी या बातकी आज्ञा करे है के जो भी देवके उपासक अपने देवकी ब्रह्मतया आराधना करें हैं तो उनकी मुक्ति निश्चित है. जो क्षुद्र फल देवेवाले देवकी आराधना कर रहे है तो वो साधन मुक्तिसाधक नहीं होके वो कोई क्षुद्र फलदायक देव हो जावे है. पर कोई भी देवोपासक यदि अपने इष्टदेवकी परब्रह्मतया उपासना करे है तो मुक्ति मिले है. क्योंकि ब्रह्मत्व एक मुक्तिप्रापक धर्म है. महाप्रभुजीको जो सिद्धान्त है वाके अनुसार पुष्पदन्ताचार्यकु अपन् देखें तो वे शिवकु स्पष्टतया कोई क्षुद्र फल देवेवाले देवकी तरह नहीं भजे है पर ब्रह्मकी तरह ही भज रहे है. जाके कारण शिवकी इतनी सुन्दर स्तुति है.

अब यामें अपने सम्प्रदायकी दृष्टि सु देखवे और समझवे वाली बात ये है के शुद्धाद्वैतवादके दृष्टिकोण सु आखो स्तोत्र उनने प्रकट कियो है. जगह – जगह शुद्धाद्वैतवादी उद्गार वामें छलकते भये दीखें हैं. तो साधनको जो ब्राह्मिक स्वरूप है वामें सबसु महत्वपूर्ण एक बात समझनी चाहिये के कोई भी देव यदि एक निश्चित साधन सु और निश्चित प्रकारकी साधना सु प्राप्त हो सकते होवे तो देव परब्रह्म नहीं हो सके. वाको कारण अपनू दो दिनमें विस्तार सु देख गये है के ‘ब्रह्म’को मतलब जो सब कुछ है सो सब जगह है. वो सब जगह होवेके कारण जो भी साधन सु वो जाकु मिल रह्यो है वाकु ‘ब्रह्म’ होनो तो कम्पलसरी है. ब्रह्मके अलावा वाको जो रूप होय सो होय पर ब्रह्म होनो कम्पलसरी है. या लिये ब्रह्मके लिये ऐसी मर्यादा निर्धारित नहीं कर सके के ब्रह्म एक ही साधन सु मिलेगो. ब्रह्म सर्वसाधन सु लभ्य है और तद्तद् देव हैं वो तद्तद् साधन/साधनानु लभ्य हैं. कोई एक निश्चित प्रकारकी साधनायें हैं उन सु लभ्य हैं.

(कृष्ण सर्वसाधन सु लभ्य)

कृष्णमें कृष्णकी लभ्यताको अपनू जा बखत विचार करवे बैठें वा बखत या कसौटीकु भी देखनी पड़ेगी के कृष्ण सर्व साधन सु लभ्य है के नहीं ?

वेदको सिद्धान्त है “**नायम् आत्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन, यमेव एष वृणुते तेन लभ्यः, तस्य एष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्**” (मुण्ड.उप. ३।२।३) ब्रह्मको वर्णन करते भये उपनिषद् यों कहे है के ये परमात्मा कोई प्रवचन सु मेधा सु बहोत श्रवण सु नहीं मिले है पर परमात्मा जाको वरण करे है वाकु ये मिले है. जाको ये वरण करे है वाके सामने अपने आपके स्वरूपको विवरण करे है. अपने स्वरूपको अनावृत्त करे है. बाकी सबके सामने याको स्वरूप खुल नहीं पावे है. खुल नहीं पावे है तो छुपे कायमें है ?

ये बात ध्यान सु समझो. ब्रह्म कु छुपवेके लिये कोई परदाकी जरूरत नहीं होवे है. अपनू रासपंचाध्यायीमें देखें हैं के गोपिकानुं जा बखत गर्व भयो के कृष्ण सबनुं छोड़के हमारो अनुसरण कर रह्यो हैं तो ठाकुरजी छुप गये है. कहां छुपे ? उनके हृदयमें. उन कु छुपवेके लिये कोई दूसरी जगह नहीं है. खोजवेवालेके हृदयमें छुपे भये कु खोजवेवालो कैसे खोज सके ? गोपिकानुंके हृदयमें छिप गये.

रासपंचाध्यायीमें बड़ो सुन्दर वर्णन आवे है. गोपिकानुं जा जाके प्रत्येक वृक्ष सु लतानुं पूछयो के कृष्ण कहां छिप गये ! पर प्रभु पूछवेवालेके भीतर छिपे भये हते. वहां पूछे नहीं तो कैसे पता चले ? दिलके भीतर अपनू पूछे तो पता चले के कृष्ण कहां छिप्यो भयो है ! दिल सु पूछे पर दिलमें नहीं पूछे तो कैसे पता चल सके के कृष्ण कहां छिप्यो है ? हृदय प्रभुके छिपवेकी जगह है करके देखो अपनू रोज मंगलाचरण करें हैं “**नमामि हृदये शेषे लीला – क्षीराब्धि – शायिनम् ।**” अपने दिलमें छिप्यो भयो है. प्रत्येक प्राणीके हृदयमें छिप्यो भयो है वहां अपनू नहीं खोजें और जगह जगह खोजें तो वो मिले नहीं.

(प्रकट ब्रह्मके अप्रकट होवेके दो स्थान – १. नाम – रूप २. भक्तको हृदय)

वाके छिपवेकी एक ओर जगह है. वो जगह शास्त्र बतावे है. ये जितने भी नाम रूप हैं वो वाने धारण किये हैं. वा अपरिच्छिन्न (अपरिसीमितने परिमित) परिच्छिन्न रूप धारण कर लियो वाके कारण वाकी अपरिच्छिन्नता अपनेकुं गृहीत नहीं होवें. जो नामरूपनुं वाने धारण कियो है उन नामरूपनुं ही वो छिप गयो है. जैसे अभिनयकर्ता जा पात्रको अभिनय करे वा पात्रमें छिप जावे. वो छिप जावे तो अभिनय अच्छो केहवावे छिप नहीं पावे तो वो अभिनय अच्छो नहीं केहवावे. पात्रको अभिनय ऐसो होनो चाहिये के देखवेवालेकु लगे नहीं के ये अभिनयकर्ता है. जाको अभिनय कर रह्यो है वैसो ही अनुभव होवे. जैसे कोई राम बन गयो. अब राम जैसो लगे तो अभिनय अच्छो केहवावे. तो ब्रह्म कु छिपवेके लिये ओर कोई आवश्यकता नहीं है. नामरूप सु तो अपनू वा वस्तु कु पहचान सके है पर हर नामरूपमें ब्रह्म कु पहचान पानो बहुत मुश्किल है, नहीं पहचान पावें. अपनेकुं बल्ब दीखे है पंखा दीखे है रेडियो दीखे है रेडियो सुनाई दे है टी.वी भी दिखाई दे है सुनाई दे है पर बिजली कहां छिपे ? इनही नामरूपनुं, जो इनमें दिखलाई नहीं दे है. जो अपनेकुं छू नहीं सके है जाकु अपनू देख नहीं सक रहे हैं वो बिजली है. अपनू कुं बल्ब दिखलाई दे रह्यो है रेडियो सुनाई दे रह्यो है माइकमें बोल रह्यो हुं वो सुनाई दे रह्यो है पर बिजली सुनाई नहीं दे रही है. बिजली इनहीमें छिप गई ! अब पता कैसे चले के बिजली छिप गई ? जब बिजली जावे तो सुनाई देगो, बल्ब दिखाई देगो, गीज़रमें सु गरम पानी निकलेगो ? बिजली कु छिपवेके लिये कोई दूसरी जगहकी जरूरत नहीं है. जो नामरूप बिजली धारण करे है वहीं बिजली छिप जावे है.

ऐसे जो नामरूप ब्रह्म धारण करे है वाहीमें ब्रह्म छिप्यो भयो है. तो ब्रह्मके छिपवेकी एक जगह नामरूप है और दूसरी जगह खोजवेवालेको हृदय है. ऐसे दो जगह ब्रह्मके छिपवेकी हैं. और तो कहीं छिप ही नहीं सके ब्रह्म क्योंकि जो सर्वत्र है व्याप्त है वो छिप कैसे सके ! छिपे कौन ? जैसे अपन् आंख मिचौनी खेलें तो जाने आंख मीची है वो जहां खड़े है वाके अलावा कोई दूसरे कोनामें अपन् जाके छिप जावें तो छिप गये केहवावे पर समझो के जाने आंख मीची है और अपन् भी वहीं खड़े रहें तो अपन् छिपे भये थोड़े ही केहवायेंगे ! आंख खोलते ही पकड़े जायेंगे. छिप वो ही सके है के जो आंख मिचौनी खेल रह्यो है. वामें आंख मीचवेवालेकी जगहसु कोई दूसरी जगह जा सकतो होय तो छिप्यो केहवावे

ब्रह्मके लिये ये सम्भव नहीं है के वो कहीं न होय. वाकी छिपवेकी जगहें बड़ी विलक्षण हैं. जाने भी खोजवेके लिये आंख मीची तो प्रभु वाके भीतर छिप गयो है, नामरूपके भीतर छिप गयो है.

(साधनाको सच्चो स्वरूप = प्रभुकी खोज)

तो या तरहसु सारी साधनायें छिपे भयेकु खोजवेकी ही हैं. सारी साधनायें चाहे कर्ममार्गकी ज्ञानमार्गकी भक्तिमार्गकी योगमार्ग वैराग्यमार्गकी पूजामार्गकी होय वो छिप गयो है और अपन् वाकु खोज रहें हैं. 'साधना'को कुल मतलब इतनो ही है जो खोजनो नहीं चाह रह्यो है वाकी साधनामें सच्चाई नहीं है.

(खोज रहित साधना कर्मकाण्ड ही होयेगो)

जगत्में कुछ और कारण होयेंगे. कुछ पूजवेको कारण होयगो कुछ रोजीरोटीको कारण होयगो कुछ पाखण्डको कारण होयगो कुछ आदत पड़ जावे तो भी आदमी साधना करे. पर जाकी साधनामें सच्चाई है वामें तो खोजके बिना साधनामें सच्चाई हो नहीं सके है. जामें खोज नहीं है वाकी साधनामें सच्चाई नहीं है. जामें खोज है वाकी साधना सच्ची होये बिना रह नहीं सके क्योंकि खोज ही तो है. जब खोज रहे है तो साधनामें सच्चाई अपने आप प्रकट हो जावेगी. यदि खोज नहीं रहे हैं तो कुछ भी करो, चाहे कर्म ज्ञान भक्ति सेवा पूजा यात्रा करो चाहे

माला जपो, जाकु खोजवेके लिये अपन् कर रहे हैं वाकी मनमें खोज नहीं है फिर तो साधना साधना नहीं रहेके कर्मकाण्ड हो गयो.

हमारे एक अधिकारीजी हते. वो अधिकमासमें नियम लेते हते के इतनी माला फेरे बिना भोजन नहीं करेंगे. अब अधिकारी होवेके कारण उनकु वैष्णवन्को समाधान भी करनो पड़तो हतो बातचीत भी करनी पड़ती हती. अधिकमासमें दर्शन करवे वैष्णवन्की खूब भीड़ आवे. वो राजभोग तक तो कोई तरहसु चला लेते के वैष्णव जावें तो माला फेरे. वाके बाद फिर वैष्णव आ जावें तो फिर बातचीत करनी पड़े. अन्तमें जब राजभोग सर जाते और प्रसादकी पातल लगती तो उनकु उद्वेग हो जातो के माला तो पूरी भयी नहीं. या चक्करमें तो मणिका एक-एक फेरवेके बजाय मुट्ठी भरके मालायें फेरते हते क्योंकि प्रसादको टाईम् हो गयो. कितनी देर प्रसादकु परिश्रम देनो ! अब या तरहसु अपन् माला फेरें वामें अपन् प्रसाद खोज रहे है प्रभुको तो नहीं खोज रहे हैं.

ये एक रहस्य है के नियम तो अपनने बहुत सारे लिये होवें. ये उनहीकी बात नहीं है अपन् सबकी ये ही कथा है. या रहस्यकु समझो के साधनाके दो पहलू हैं. एक पहलू जाकी खोज है वाको अन्तर्गर्भित पहलू है. दूसरो, खोज रहित कर्मकाण्डको पहलू है. कुछ अपन् कर्म कर रहे है जासु अपने मनमें भी संतोष आ जावे के चलो कुछ कर रहें हैं. नहीं करवेके बजाय कुछ करनो अच्छो पर मनमें खोज नहीं है.

(साधनामें शॉर्टकटके कारण होतो महाभारत)

भीमकी कथामें ऐसो आवे है के कौरव पाण्डवन्के मूल झगड़ा या लिये हो गये हते के भीम मोटापाके कारण कहीं बीच छिप नहीं सकतो हतो. जो लोग छिपते वो बगीचान्में उद्यानन्में उपवनन्में खेलते और वो पेड़न्पे चढ़के छिप जाते. वहां भीम चढ़ भी नहीं पातो हतो. तो वो क्या करतो के आखे पेड़कु जोर जोरसु हिलातो तो झाड़पे छिपे भये सब टपाटप गिरते. भीमको कौरवन्के साथ मूल द्वेषको कारण ये हतो. वा बखतसु आपसमें द्वेष हो गये. आंखमिचौनीके खेलमें कई तरहके ऊधम भी तो हो सकें हैं. भीमको ये ऊधम हतो. वैसे खेल आंखमिचौनीको हतो पर वामें कोई सस्तो उपाय खोज निकाले तो वामेंसु

महाभारत पैदा हो जावे. मूल महाभारत इन कारणनसु भयी. खोजवेके जो सच्चे उपाय हते उन उपायनकुं अपनावे नहीं और आदमी शॉर्टकट अपनावे फिर तो महाभारत होवे होवे और होवे ही. अपन सब कौरवनकुं गाली दे है के कौरव अधर्मवाले हते पर मूलमें झगड़ा आंखमिचौनीके खेलमें ये शॉर्टकट हतो. वाके लिये सब कौरव बेचारे जलते क्योंकि उनके पास ऐसी युक्ति नहीं हती करके द्वेष करते और वहांसु ये महाभारतको झगड़ा शुरू भयो.

अक्सर अपने प्रत्येक धर्मसम्प्रदायकी साधनानुमें महाभारत शॉर्टकटकी वृत्तिके कारण है. धर्मसम्प्रदायनकी एक बड़ी मजेदार घटना है. एक संन्यासी मठके स्वामीजी हते. वैसे तो संन्यासको मतलब पुत्रैषणा वित्तैषणा और लोकैषणा तीनोंकुं छोड़के संन्यासी हो जावे पर मठ बांधके जैसे ही रेहवें तो वामें तीनों आ जावें क्योंकि मठ चलावेके लिये पैसा तो चाहिये ही. तो वित्तैषणा भी आ जावे. पैसा शिष्य दे तो शिष्यैषणामें लोकैषणा भी आ जावे. जितनी भीड़ इकट्ठी होयगी उतनी भेंट ज्यादा आयेंगी. जितनी भेंट ज्यादा आयेंगी उतनी ही मठ अच्छो चलेगो. तो कई एषणायें वामें इकट्ठी हो जावें. संन्यासी, जो रमता जोगी होवे वो तो कुछ इकट्ठो नहीं कर सके पर जो मठ बांधके बैठे वाकु तो इकट्ठे किये बिना कोई चारा ही नहीं है. तो स्वामीजीने मठ बांध्यो और कामकाज शुरू भयो. जब मठ बांध्यो तो कोई ने वामें खेत भी भेंट कर दिये. जैसे अपन ब्रह्मसंबंध लें तो तुलसीदल हाथमें लेके सौगंध खावें के हम सेवा करेंगे. पर शॉर्टकट अपनने भी खोज लियो के अपन सेवा ही नहीं करेंगे खाली ब्रह्मसंबंध दे दो. ऐसे स्वामीजीने भी शॉर्टकट खोज लियो के संन्यास लेंगे और घरमें नहीं रहेंगे पर मठमें रहेंगे. अब घरमें जब अपन रहें तो वाके लिये तो कई झगड़ा फसाद करने ही पड़ें. वो ही झगड़ा फसाद मठमें रहवेपे भी करनो पड़े. मठके कारण कोई न कोई राग द्वेष कोईके साथ हो ही जावें.

शुरूआतके फेज़में क्या भयो के स्वामीजी संन्यासके अनुरूप किसाननकुं दण्ड नहीं दे सकते हते. जैसे खेतनके मालिक किसाननकुं दण्ड देते हते यदि फसल या हासिल नहीं दे तो. अब ये बात किसाननकुं मालूम पड़ गई के संन्यासी दण्ड दे नहीं सके. तो उन्होंने कही के हासिल खा जाओ, कायेको स्वामीजीको देनो ? अब मठमें नुकसान होवे लग गयो. स्वामीजीने कही के ये तो बड़ी मुश्किल

हो गई एक तो खेत भेंट आये और मठकु नुकसान ओर हो गयो अब वाकु कैसे सुधारनो ? तो उनके एक शिष्य, जो एडवाईज़र हते, उनने कही “स्वामीजी, आप कोईकु दण्ड नहीं दे सको पर आपको काम तो ब्रह्मज्ञान देनो है और ब्रह्मज्ञान मिले गुरुपादुकासु.” लकड़ाकी ऐसी ऐसी बड़ी पादुका सिद्ध करवाई. उनने कही जो हासिल नहीं दे तो दो वाकु पचास ब्रह्मज्ञान गुरुपादुकासु. हासिल नहीं दे तो ब्रह्मज्ञान देंगे. स्वामीजीको ब्रह्मज्ञान भारी पड़ जावे. ये सब शॉर्टकटकी महाभारत है.

जब भी अपन कुछ शॉर्टकट करें तो या तरीकेकी महाभारत प्रत्येक साधनापद्धतिमें खड़ी हो जावे है. जैसे संन्यासीकु खोजनो है तो ‘सोऽहम्’ माने ‘वो मैं हूं’ ये ज्ञानकी प्रणालीसु खोजे है. संन्यासीकु ‘वो मैं हूं’ वाकु ज्ञानकी प्रणालीसु खोजवेके लिये न तो मठकी जरूरत है न चेलानकी जरूरत है और न ये सारे झंझटनकी जरूरत है. निरन्तर वो भावनाकी जरूरत है के ‘सोऽहम्’ ‘वो मैं हूं’ पर वो साधना तो बड़ी लम्बी है. वा खोजमें तो आदमीकु बड़ी तकलीफ होवे है करके फिर ऐसे ऐसे शॉर्टकट कर ले. मठनकी दीवारनपे सोऽहम् लिख दे, सोऽहम् जप ले और ब्रह्मज्ञान भी दे. ब्रह्मज्ञान दे के तुम भी गुरुपादुकासु ब्रह्मज्ञान ले लो. फिरतो महाभारत हो ही जावे. तो ऐसे प्रत्येक साधनाप्रणालीमें ऐसो भयो है.

(कृष्णार्थ सेवा और सेवामें कृष्णकी खोज)

अपने यहां भी सेवाप्रणालीमें ये ही भयो है. सेवा अपन कर रहें हैं ठाकुरजीकी पर ठाकुरजीके लिये खोज नहीं है. मनमें ठाकुरजीकु खोज पावेकी रुचि नहीं है. अब सेवाप्रणाली चल रही है माने आदत पड़ी भयी है.

बम्बईमें हमारे पड़ौसमें एक रहते हते. वो अक्सर केहते हते के “जयश्रीकृष्ण बोल और थैलीका मुंह खोल” जब कोई समाधानी आवे और ‘जयश्रीकृष्ण’ बोले मतलब कुछ न कुछ रुपैया वसूल किये बिना जावेगो नहीं. वाने मोकु ये ब्रह्मज्ञान दियो. वाकु मैंने अपने गीतमें भी लिख दियो “समाधानी म्हारे घेर आवी आवीने ‘जयश्रीकृष्ण’ कही मांगे मनोरथो ‘जयश्रीकृष्ण’ कही मांगे म्हारा घरना ठाकुर क्यां जाये थया छे घणा देवलकजी” मैंने वासु कही के “तुम दो क्यों हो ?” वो

बोल्यो “शुं करूं महाराज, न आपु तो मारी बायडी नाराज थई जाय. मारी पत्नी गुस्से थाय ऐ तो मने न गमे केमके खवडारनारी अे छे. अेटले मने आपवु ज पड़े. ‘जयश्रीकृष्ण’ बोले तो पाकिट खोलीने रुपिया आपवाना.”

ये सब क्या है ? खोज नहीं है अपन् साधना कर रहे हैं, सब रूप रंग वो ही है पर खोज वाकी नहीं है खोज ओर कोई चीज़नकी है. खोज कृष्णकी नहीं है खोज पैसाकी है. साधनाको बाह्य आडम्बर सब चले पर अन्दरकी खोज खत्म हो गई है. जाकु अन्दरकी खोज है वाकु इन नाटकनकी बहुत जरूरत नहीं पड़े. अपने यहां ही नहीं सब जगह यही रहस्य है.

(साधनाप्रणाली – खोजको सम्बन्ध शरीर – आत्मा जैसो होनो चाहिये)

साधनाके दो पहलू हैं एक वाको शरीर जो कर्म ज्ञान भक्ति वैराग्य तीर्थ यात्रा जप तप व्रत संयम योग वगैरह. इन साधनाकी आत्मा है छिपे भयेकी खोज. तो शरीर बिना जैसे आत्मा भूत प्रेत समझी जावे, आत्माके बिना जैसे शरीर शव समझ्यो जावे, ऐसे खोजको और साधनाप्रणालीको एक दूसरेके साथ एकदम घनिष्ठ संबंध है. प्रत्येक साधनाप्रणालीको खोजके साथ आत्मा और शरीर के जैसो घनिष्ठ संबंध है. साधनाप्रणाली नहीं है तो खाली खोज भूत प्रेत पिशाच जैसी है. जैसे अपने मातापिता पति-पत्नी बच्चा अपनेकुं बहुत प्रिय है पर शरीरके साथ आवें तो तो अपनेकुं प्यार आवे. शरीरके बिना रातकु दीखें या ऊपरसु टपकें या कोनामेंसु बोलें तो आदमीकी हड्डीयें कांपवे लग जावेंगी. अब वो कितनो भी समझावे के मैं तुम्हारो बेटा हुं मैं तेरी मां हुं. मां है पर शरीरके साथ दीखे तो तो अच्छी लगे पर या तरहसु बिना शरीरके बन्ध दरवाजामेंसु घुसती दीखे तो फिर माँपे प्यार आनो मुश्किल है. अब जा पतिदेवके लिये अपन् इतने रो रहे है चूड़ी तोड़ दो टीकी पोंछ दो और वो ही पतिदेव बन्द दरवाजामेंसु घुसके आ गयो तो तो वाके आवेको रोना शुरू हो जावे. पेहले जावेको रोना होवे के गये क्यों ? पर बिना शरीरके पतिदेव वा तरहसु आयो तो ओर रोना शुरू हो गयो के आ गये बचाओ बचाओ. तो ये शरीरको और आत्माको दोनोंको एकसाथ होनो बहुत जरूरी चीज़ है. खोज और साधनाप्रणाली को भी बिल्कुल वाही तरीकेको संबंध है. उतनी घनिष्ठता होय तो वाको अपन् सच्चो स्वरूप समझ सकें वरना सच्चो

स्वरूप समझमें नहीं आयगो. खोज रहित साधनाप्रणाली और साधनाप्रणाली रहित खोज ये दोनोंमें कुछ गड़बड़ है.

अब समझो के वा परब्रह्मकी खोज कोई भी साधनाप्रणालीसु हो सके है. ये बात महाप्रभुजी अपनेकुं बालबोधमें समझावें हैं. सांख्यसु योगसु शिवभक्तिसु विष्णुभक्तिसु सबसु वाही ब्रह्मको खोज्यो जा सके है. ये ब्रह्मके वर्णनमें उपनिषद्नमें मिलें ही हैं. पुष्पदन्ताचार्यजी शिवके बारेमें केह हैं वो वर्णन वस्तुतः उपनिषद्को वर्णन है. सब साधनाप्रणालीनसु एक तत्त्वकु ही खोज्यो जा रह्यो है. वाके नाम रूप अलग अलग हो सकें. या तरीकेको स्वरूप कृष्णके स्वरूपचरित्रमें कैसे प्रकट भयो ये अपन् देखें तो वाकी परब्रह्मता अपनी साधनाप्रणालीसु समझमें आवे. परब्रह्मता समझमें आवे तो वाकी चक्रवर्तिता समझमें आवे.

(सुसाधन असाधन दुष्टसाधन सु ‘कृष्ण’ लभ्य हो सके)

कृष्णके व्यक्तित्वकी और चरित्रकी ये खासियत है के “गोप्यः कामाद्, भयात् कंसो, द्वेषात् चैद्यादयो नृपाः. सम्बन्धाद् वृष्णयः, स्नेहाद् यूयं, भक्त्या वयं विभोः” (भाग.पुरा.७।१।३०) साधनाप्रणालीकी भी सीमायें तोड़के श्रीकृष्ण मिल सके है. महाप्रभुजी एक बात बहुत सुन्दर केह हैं “असाधनं साधनं करोति” तो जो देव साधनकी मर्यादा मानके मिले है वो देव तो है ही. महाप्रभुजी ये ही बात केह रहे हैं के सब देव देव ही हैं और सब राजायें राजा ही है. गांवको राजा भी राजा है देसको राजा भी राजा है पर चक्रवर्ती राजाको राज्य सर्वत्र होवे है. या तरहसु कृष्णकी प्राप्यतामें साधनाप्रणालीकी मर्यादा नहीं है. कामसु क्रोधसु मोहसु लोभसु मदसु मात्सर्यसु जा गुणसु तुम कृष्णकी तरफ अभिमुख होओ कृष्णमें वा गुणसु मिलवेकी सामर्थ्य भागवतकार बता रहे हैं. वाके एक एक उदाहरण भागवतकारने दिये हैं. कोईकु भयसु कोईकु कामसु कोईकु द्वेषसु कृष्ण मिले.

महाभारतमें वर्णन आवे है के जो भगवान्के सामने लड़ रहे हते, जो भगवान्की तरफ तीर तलवार गदा को प्रहार कर रहे हते पर मरते बखत उनकी दृष्टि भगवान्पे पड़ी तो “यमिह निरीक्ष्य हता गताः स्वरूपम्” (भाग.पुरा.१।१९।३९)उनकु कोई भजवेको भाव नहीं हतो. उनकु तो ये भाव हतो के हमकु कृष्णकु मारनो

है. पर कृष्णकु मारवेके बजाय खुद मर रहे हते. मरते बखत भी यदि उनकी दृष्टि भगवान्‌पे गई तो उनकु मुक्तिकी प्राप्ति भयी है. याही लिये भागवतकार कहें हैं के “अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम” (भाग.पुरा.३।२।२३) पूतना जो खास मारवेके लिये गई हती वाकु भी प्रभुने मुक्ति दी. अब साधनान्सु लभ्यता तो एक कथा भयी जैसे पुष्पदन्ताचार्य केह रहे है “रुचिनां वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनानापथजुषां नृणाम् एको गम्य त्वमसि पयसाम् अर्णव इव.” सारी साधनान्सु तु लभ्य है.

पर महाप्रभुजी कृष्णकी लभ्यतामें एक बात ओर अधिक बतावें हैं के असाधन सुसाधन दुष्टसाधन सु भी कृष्ण लभ्य हो सके है या अर्थमें कृष्णकी साधनाकी दृष्टिसु सर्वोपरिता प्रकट भयी है चक्रवर्तिता प्रकट भयी है. कोई रस्ता ऐसो नहीं है जा रस्तापे चलके आप कृष्णकु पा नहीं सकते हो.

(मठडीकी खोजसु कृष्ण नहीं मिले)

पर सच्चाई वामें याकी है के खोज कृष्णकी होनी चाहिये. द्वेषमें भी कृष्णकी खोज है तो कृष्ण मिल जावेगो, काममें भी कृष्णकी खोज है तो कृष्ण मिल जावेगो, ज्ञानमें भी कृष्णकी खोज है तो कृष्ण मिल जावेगो और भक्तिमें भी यदि कृष्णकी खोज नहीं है तो कृष्ण मिलनो बहोत मुश्किल हैं. बरसनसु अपन् पुष्टिमार्गीय कृष्णकी भक्ति कर रहे है, पर जो नहीं मिल्यो है वो तो कृष्ण ही नहीं मिल्यो है बाकी तो बहोत सारी चीज़ मिली जैसे लड्डू मिल्यो मोहनथाल मिल्यो पूरी मिली पेड़ा मिल्यो बूंदी मिली. नाथद्वाराके घनश्याम कविको बहोत सुन्दर पद है ‘बूंदीके सेवके मनोहरके मगदहूके मोहनथाल केसरी धरी हैं सेव लायके घनश्याम प्यारे पेड़ा बरफी बादामपाक पेठापाक मावादार गूजा दे खायके.’ कृष्णके अलावा ये सब मिल रह्यो हैं, पर जो नहीं मिल्यो वो कृष्ण नहीं मिल्यो.

बम्बईमें मोसुं चार पांच साल पहले एक व्यक्ति आके मिल्यो और मोसुं केहवे लग्यो के महाराज किशनगढ़में पहले पुष्टिमार्गकी बड़ी महिमा हती. अब पुष्टिमार्ग क्षीण होतो जा रह्यो है. मैंने पूछी के “क्यों क्षीण होतो जा रह्यो है? ये केवल पुष्टिमार्गकी ही बात नहीं है दुनियामें सारे धर्म धीरे धीरे क्षीण हो रहे

हैं.” वो बोल्यो “नहीं नहीं, हमने तो पुराने किशनगढ़को सब देख्यो हैं, बहोत क्षीण हो गयो पुष्टिमार्ग” मैंने पूछी के आपको क्या कारण लगे क्षीण होनेमें?” वाने कही के “दर्शन बन्द हो गये” मैंने कही के “खोटी बात, दर्शन कहा बन्द हो गये मदनमोहनजीके दर्शन तो खुले ही रहे है और कांचरियाके महन्तके यहां भी दर्शन खुले है.” तो बोले के “श्रीनाथजीमें जैसे मठडी पेड़ा मिलें हैं वैसे नहीं मिले है.” मैंने कही अच्छा अच्छा ये बात है अब मैं समझ गयो के पुष्टिमार्ग क्षीण होवेको मतलब क्या है फिर मोकुं ये और कही के थोड़ो थोड़ो पुष्टिमार्ग नाथद्वारामें झलक रह्यो है. वहां जो चाहिये वो खरीदके तो मिले ही है. अक्सर ऐसो होवे है. अपन् कृष्णको नहीं खोज रहे हैं. कुछ और ही चीज़ कृष्णके नामपे खोज रहे है. अपन् मठडी खोज रहे है और खोज पूरी नहीं हो रही है तब अपनकुं लगे के यहां पुष्टिमार्ग क्षीण हो गयो है. सच्ची बात है, भगवान्‌ करे ओर क्षीण हो जावे ऐसो पुष्टिमार्ग चले वाके बजाय न चले तो बेहतर है. वामें महाप्रभुजीकी भी प्रसन्नता होयगी और ठाकुरजीकी भी प्रसन्नता होयगी. अपने भीतर जो छिप गयो है, वाकुं भी प्रसन्नता होयगी के ये सब नहीं मिल्यो तो शायद मोकुं खोजेंगे. ये मिलतो रह्यो तो मोकुं नहीं खोजेंगे. घनश्यामकी सौ बरस पुरानी कविता बता रह्यो हुं. घनश्याम नाथद्वाराके कवि हते. वामें आवे के “तू कहा जाने तेरी दादी यहां आयी हती. ये ही महाप्रभुजीकी गादी पुरानी है और ले बरफी” बरफी लेवेके लिये गादी चलती होवे तो मिठाईकी गादी और महाप्रभुजीकी गादीमें फरक का रह्यो? वे गादीयां तो चल ही रही हैं. जितने भी मिठाईवाले हैं उनकी गादी अच्छी चल रही है. कभी खोजमें गड़बड़ हो जावे. अपन् खोजवे चलें कोईकु और अपन् खोजते रह जावें कोई ओर चीज़कु. ऐसो लफड़ा हर धर्ममें या सम्प्रदायमें भयो है. अपने ही सम्प्रदायमें भयो ऐसे ही नहीं, हर सम्प्रदायमें या ही तरहकी महाभारतें चल रही हैं.

(कृष्णकी सर्वसाधनलभ्यता)

पर कृष्णकी सर्वसाधनलभ्यताको महाप्रभुजी एक स्पष्ट उदाहरण दे है के “असाधनं साधनं करोति” कृष्ण जाकु मिलनो चाहे है वाके लिये साधनाप्रणालीकी मर्यादाकी कृष्ण परवाह नहीं करे है क्योंकि ‘असाधनं साधनं करोति’. अपनी वार्तामें कितनो अच्छो आवे है वो मानसी सेवा करते हते और मानसी सेवा करते बखत मानसीमें शक्कर ज्यादा पड़ गई जब मानसीमें ही शक्कर

पाछी उठानी चाही तो ठाकुरजीने हाथ पकड़यो के यामें तेरे बापको कहा जावे सच्ची शक्कर पड़ जावे और तु उठाले तो तेरी बात मानु पर मानसीमें शक्कर ज्यादा पड़ी और वो भी तोसु सहन नहीं हो रह्यो है ठाकुरजी प्रसन्न हो गये के सच्ची मानसी तो करी. कमसु कम खोज तो सच्ची है. व्यक्तिके लोभकी आदत मानसीमें प्रकट हो गई, करके ठाकुरजीने हाथ पकड़ लियो के यामें तेरे गांठको कहा जा रह्यो है ठाकुरजी वाकु मिल गये. तो जहां सच्चाई है वहां तो प्रभु मिल ही जावे है.

जहां सच्चाई रहित साधनाप्रणालीकी खोज है वहां प्रभु मिलवेकी अपन गैरपटी नहीं दे सकें क्योंकि वो तो रीतिकी लिखी भयी पुस्तक है, वाकु अपन पढ़ रहे हैं और पढ़के अपन साधना कर रहे हैं. वामें खोज तो है ही नहीं तो मिलेगो क्यों? जब अपन खोज ही नहीं रहे हैं और रीतिकु ही निभा रहे है तो प्रभु मिलेगो नहीं.

रीति निभानो एक अलग प्रकार है खोजनो एक अलग प्रकार है. हर खोजकु कोई न कोई रीतिसु ही खोज्यो जावे. खोजकी भी एक प्रणाली होवे है. खोजकी प्रणाली है वो साधनाप्रणाली है. कई साधनाप्रणाली हैं, पर कृष्णकी लभ्यता साधनाप्रणालीसु भी आगे बढ़ी भयी है “**गोप्यः कामाद्, भयात् कंसो, द्वेषात् चैद्यादयो नृपाः, सम्बन्धाद् वृष्णयः, स्नेहाद् यूयं, भक्त्या वयं विभोः**” (भाग.पुरा.७।१।३०) काम क्रोध लोभ मोह सब मनोभावन्सु यदि कृष्णकु सच्चाईसु खोज्यो जावे तो कृष्ण अपनेकुं मिल सके है. भक्ति यदि सच्चाईसु निभे तो कृष्ण क्यों नहीं मिल सके? ज्ञान यदि अपनेसु सच्चाईसु निभतो होवे तो ज्ञानसु कृष्ण क्यों नहीं मिल सके है व्रत यदि सच्चाईसु निभतो होवे तो कृष्ण क्यों नहीं मिल सके जब द्वेषसु मिल सके है, सो गाली देवेसु मिल सके है, स्तुति करवेवालेकु मिल सके है, मारवेवालेकु मिल सके है मरवेवालेकु मिल सके है-कृष्ण जाकु चाहे वाकु मिल सके है. वाने साधनाप्रणालीको बन्धन स्वीकार्यो नहीं है. ये कृष्णकी साधनाकी दृष्टिसु ये ‘चक्रवर्तिता’ है.

कृष्ण साधनाप्रणालीन्सु तो मिल ही सकें हैं पर महाप्रभुजी जो आज्ञा कर रहे है के “और देवहु देव, पर चक्रवर्तिता कृष्णकी” वो या अर्थमें हैं के पुष्टिजीव

निःसाधन है. “**निःसाधनफलात्मायं प्रादुर्भूतोस्ति गोकुले**” “**अहन्यापृतं निशि शयानमतिश्रमेण लोके विकुण्ठम् उपनेष्यति गोकुलं स्वम्**” (भाग.पुरा.२।७।३१) दिनमें काम करते रातमें थकके सोवेवाले भक्तनकु कृष्ण मिल गयो उन साधना क्या करी हती? कुछ नहीं. भागवत केह है “**ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासीत महत्तमाः अव्रतातप्ततपसः सत्संगान्मामुपागताः केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो खगा मृगाः येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा.**” (भाग.पुरा.११।१२।७-८) उने कोई शास्त्र नहीं पढ़्यो, कोई व्रत तप नहीं कियो, केवल कृष्ण पसन्द आ गयो हतो और कृष्ण उनकुं मिल गयो हतो. कृष्णकी या तरहकी साधनादृष्टिसु सुलभता है. असाधनसु दुष्टसाधनसु जो सुलभ हैं वो सुसाधनसु सुलभ क्यों नहीं हो सके? कृष्णको सर्वसौलभ्य साधनकी दृष्टिसु कृष्णकी चक्रवर्तिता है. ये बात महाप्रभुजी अपनेकुं साधनकी दृष्टिसु समझा रहे है. आजको प्रकरण अपन यहां रखेंगे फलको प्रकरण अपन कल करेंगे.

प्रकरण ४: फलदृष्टिसू कृष्णकी चक्रवर्तिता

(उपक्रम)

अब गदाधरदासके काकाने श्रीआचार्यजीसु पूछ्यो “जो महाराज ठाकुरजी तो एक है परन्तु वैष्णव सम्प्रदायमें न्यारे-न्यारे क्यों मानत है कोई कृष्णकु कोई रामकु कोई नृसिंहकु मानत है तामें निश्चय कौन ठाकुर है?” तब आचार्यजी केह के ‘जैसे चक्रवर्ती राजाको राज्य तो सगरी पृथ्वीपर और राजा तो देस-देसके गांव-गांवके, सोउ ‘राजा’ कहावें परन्तु चक्रवर्तीके आज्ञाकारी. तैसे ही पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण तो सर्वोपरि ओर अवतार अंसकला करिके होई, वे सब श्रीकृष्णके आज्ञाकारी. ठाकुर तो सबकों कहिये.”

या वचनामृतमें अपन् प्रमाण प्रमेय साधन और फल चारों दृष्टिनुसु चक्रवर्तिता कैसी है वो देख रहे हते. क्रमोपात्त अब अपन् फलकी दृष्टिनुसु विचार करेंगे. प्रायः फलके बारेमें लोगनूके मनमें बहोत भ्रान्ति सताती होवे है. शास्त्रमें फलको निरूपण जा तरहसु है वाके पहले अपनेकु फलको अर्थ समझनो चहिये.

(कर्मफलको सामान्य अर्थ प्रकार और वाकी जटिलता)

सबसु पहले फलको एक अर्थ होवे है: अपन्ने कोई काम कियो तो वाकी एक नियति होवे के ये काम कियो तो ये होयगो ही, वाकु ‘फल’ कह्यो जावे. जैसे मर्डर कियो तो पुलिस पकड़ेगी ये वाको ‘फल’ है. या कर्मको जो कर्ता है वाकु ये कर्मफल आकांक्षित नहीं है. अक्सर ऐसो होवे है के कर्म अपनेकुं आकांक्षित होवे पर वाके फलकी आकांक्षा अपनेकु नहीं होवे. वासु अपन् बचनो चाहे, वाकी जिम्मेवारीसु छटकनो चाहे, वाकु दूसरेपे डालनो चाहें, कुछ और और कारण बतावें, कई बखत अपनी लाचारी बतावे, वो फल अपन् स्वीकारवे तैयार नहीं होवें. तो ध्यानसू देखो फल हर बखत अपनेकु स्वीकार्य होवे ही ऐसो नहीं है. फल कभी अस्वीकार्य भी हो सके है, और जो अस्वीकार्य है वो भी फल हो सके है. ये बात अपनेकु समझनी चहिये. कोई चीज अपनेकुं स्वीकार्य है वाकु जैसे अपन् ‘फल’ केह ऐसे जो अपनेकु अस्वीकार्य है वाकु भी अपन् ‘फल’ केह.

कुछ फल ऐसे होवें जो स्वीकार्य है पर खुदकु वाकी अभिलाषा नहीं होवे. जैसे अपने शरीरकी अवस्थायें हैं-निद्रा और जागरण. अपन् अच्छी नींद लेवे तो जागनो एक फल है. खूब देर तक जगे तो सो जानो या परिश्रम कियो तो विश्राम करनो भी एक फल है. रातकु अपन् देरसु सोये होय और अपन् अलार्म रखके कोईकु केह के जगा दीजियो. वो अपनेकु जगातो होवे पर जागवेकी अभिलाषा नहीं होवे. जागनो अपनेकुं स्वीकार्य है पर वा बखत जागनो स्वीकार्य नहीं होवे. याकु भी अपन् ‘फल’ तो केह.

कुछ फल ऐसो है के जो अपनेकुं हृदयसु अभिलषित होवें. वाकु भी अपन् ‘फल’ केह. या तरहसु फलके कई स्वरूप हैं. अपने भीतर कार्य करवेकी क्षमता, कार्य करवेकी अपनी रुझान, कार्य जो कियो है वाको उत्तरदायित्व, इन सबके गुणाकार ऐसे ढंगसु हो जावे के फिर अपनेकुं समझ नहीं पड़े के कौनसे कामको क्या फल? वो फल अपनेकु अभिलषित है अथवा स्वीकार्य है अथवा नियति है. फल तीन तरहके होवें (१)नियति फल (२)स्वीकार्य फल (३)अभिलषित फल.

कोईने अपने पड़ौसीके वहां ‘सेवा और ब्रजलीला’की केसेट् बज रही हती, वो वाने सुनी. वाने वा व्यक्तिसु केसेट् मांगी के मोकु भी सुननी है. वा वैष्णवने वाकु केसेट् दी. केसेट् सुनवेके बाद पड़ौसीने कही के ‘याको सुनवेमें मजा आवे है, मीठी बातें हैं पर कड़बी बहोत हैं.’ जब मैंने ये बात सुनी, तो केहवायो के ‘मेहरबानी करके केसेट् सुननो बन्द करो नहीं तो धोबीको कुत्ता न घरको न घाटको ऐसी स्थिति होयेगी. अभी जा भ्रममें तुम जी रहे हो कमसु कम वा भ्रममें तो तुम आनन्दसु जी सकोगे. केसेट् सुनोगे तो वा भ्रमसु भी जाओगे’

फलकी अवस्था इतनी जटिल है के अपनेकुं सुनवेमें मजा भी आ रही है बात कड़बी भी लग रही है, पाछे वो सुननी भी है. आदमीकु पता नहीं चले. दरअसल जा बखत अपन् केह के हमकु फलकी अभिलाषा है पर कौनसे फलकी अभिलाषा है? सचमुचमें वो अभिलाषाको स्वरूप क्या है? अभी बालक पधारे हते वो भी मोकु ये केह रहे हते के आपकी केसेट् हम सुने है, बहोत जानकारी मिले है. मैं भी मनमें फूल गयो के चलो बालककु पसन्द आयी मेरी कैसेट् मैंने कही के आपकु पसन्द आयी तो मोकु भी बहोत खुशी भयी. वो बोले “वो सब बात ठीक

है पर आपकी बात प्रॅक्टिकल् नहीं है.” मैंने कही “मेरी कौनसी बात आपको इम्प्रॅक्टिकल् लगी वो बताओ तो बैठके खुलासा करे, विचार करे.” वो बोले “आप केह रहे हो वो सब ठीक लग रह्यो है पर जो इतने सालनसु चलयो आ रह्यो है वाकु बन्द कैसे करें?” मैंने कही के “एक बात बताऊं आपको, आप बन्द करवेकी चिन्ता ही मत करो, आप जो काम कर रहे हो वो काम चालू रखो. सरकार एक दिन आपको बन्द करवाके निकाल देगी और कहेगी के निकलो यहांसु आपकी जरूरत नहीं है. उनकु दूसरे मिल जावेंगे”. वो बोले “ये खतरा तो है” मैंने कह्यो के “आपकु ये खतरा लग रह्यो है तो प्रॅक्टिकल् क्यों नहीं सोच रहे हो” तो बोले “क्या करें सब वैष्णवन्कु पसन्द ये ही है.”

समझमें नहीं आवे के जीवनमें ‘फल’ क्या चीज़ है वैष्णवकु पसन्द आ रह्यो है वो अपनेकु फल लगे के महाप्रभुजीकु पसन्द आवे वो अपनेकु फल लगे या अपन् जा ठाकुरकी सेवा कर रहे है वा ठाकुरकु जो पसन्द आ रह्यो है वो फल लगे? फल क्या है वो अपनेकु निर्णय होनो बहोत मुश्किल हैं. चालू खातामें अपन् सब चीज़नकु ‘फल’ केह दें. आमकु भी फल केह केलाकु भी फल केह ककड़ीकु भी फल केह सको. अब कड़वी होय तो भी फल है अच्छी होय तो भी फल है. बहोत सारे फल हैं. फलनके स्वाद भी अलग अलग हैं. सब स्वाद सब आदमीनकु पसन्द आवे नहीं पर फल तो है. अपन् ये तो नहीं केह सकें के ये फल नहीं है. कई बखत ऐसो भी होवे के वो ही फल जा बखत कच्चो होवे तो बहोत तूरो तूरो लगे, वो ही फल जब पक जावे तो बहोत मीठो भी लगे, पर तूरो है तो वो फल नहीं है यों तो अपन् नहीं केह सके. कई साधनायें भी जीवनमें ऐसी होवें.

जैसे अपन् एक सामान्य उदाहरणसु समझ सके के अपन् पढ़ रहे है वामें अपनकु ज्ञानको फल तो हो ही रह्यो है. जितनो पढ़ोगे उतनो ज्ञान तो होवेगो पर पढ़ाईकी महेनत बहोत तूरी लगे. परीक्षामें पास हो जावें तो बहोत मीठो लगे, पर वाको परिश्रम बहोत तूरो लगे वामें मजा नहीं आवे. विद्यार्थीको फल क्या है? जब तक आदमी अन्तर्मुख होके स्वस्थतासु सोच नहीं सके के मेरी अभिलाषायें क्या हैं, मोकु क्या स्वीकार्य है या जो मैंने काम किये है उनको उत्तरदायित्व लेके क्या वाकी नियति स्वीकार्य है?. जैसे अपन् बेफाम गाड़ी दौड़ावे तो वो कहीं न कहीं टकरायेगी, या तो तुम मरोगे या तुम दूसरेकु मारोगे. ये ‘नियति’ है. ये नियति

बेफाम गाड़ी दौड़ावेवालेकु स्वीकार्य है के नहीं है वामें फिर पाछो प्रश्न आ जावे. कईनकु बेफाम गाड़ी दौड़ानो पसन्द आवे. अब चाहे वो पॅट्रोलकी गाड़ी होवे चाहे बोलवेकी गाड़ी होवे चाहे धन्धाकी गाड़ी होवे चाहे सेवाकी गाड़ी होवे चाहे साधनाकी गाड़ी होवे. ये गाड़ी अपनके हाथमें आ जावे तो बेफाम दौड़ावेकी इच्छा हो ही जावे. पुष्टिमार्गकी दृष्टिसु सोचो तो मनोरथनकी गाड़ी बेफाम दौड़े. दौड़नो बहोत सरल है पर दौड़ावेके बाद जो एक्सिडेंट हो रहे है वामें या तो अपन् मरेंगे या तो दूसरेकु मरेंगे. वाको फल अपनेकु नियति तरीके स्वीकार्य है के नहीं? अपन् सोच नहीं पावें पर वाकी कुछ न कुछ नियति निश्चित है ही.

अभी एक भाई आये. वो धनकी आलोचना कर रहे हते. वो केह रहे हते के “सट्टाको और धर्मगुरुनको एक जैसो स्वरूप है.” मैंने पूछी “सट्टा और धर्मगुरुन को स्वरूप एक जैसो कैसे?” तो कही के “जितने सटोरिये होवें हैं वो जब पहली बार सट्टा लगावें तो जीते. जब वो जीत जावे तो उनको उत्साह बढ़ जावे और फिरसु सट्टा लगावे, फिर वो जीते फिर लगावे. जब अच्छो खासो सब कुछ लगावें तब वो निश्चित हारे, फिर जीते नहीं और दुःखी होते रहे. तो धर्ममें भी ऐसे ही है जब धर्ममें अपन् पहली बार एन्टर् होवें तो अपन् जीत जावें. फिर जब सब तरहसु अपन् वामें टोटली इनवोल्व हो जावें तो अपनेकु लॉस् जावे. अपनेकु पता चलें के गड़बड़ हो गई.” मैंने कही के “बात तो तुम्हारी कुछ पतेकी है पर यामें मूल बात ये है के अपनकु खुदकु खबर है के अपन् चाह क्या रहे है, और कर क्या रहे है वाको अपन् तालमेल बैठा सकें तो ये लफड़ा नहीं होवें.” जब तालमेल नहीं बैठा पावे तो ये लफड़ा होनो स्वाभाविक है. आदमी चाहे कुछ और करे कुछ, जो चाहे वाके हिसाबसु काम नहीं करे और जो काम कर रह्यो है वाको वाकी चाहना नहीं है याके कारण फलनमें बहोत भेद आवें हैं.

(साधनात्मक कर्मको फल)

ये तो मैंने आपको अपने कर्मकी एक सामान्य बात बताई. कर्मके फलकी दृष्टिसु यामें समझवेकी बात ये है के वो ही कर्म जा बखत कोई साधनाके रूपमें करे-चाहे वो ज्ञानमार्गीय साधना होय चाहे वो कर्ममार्गीय साधना होय चाहे भक्तिमार्गीय साधना होय चाहे त्यागमार्गीय वैराग्यमार्गीय साधनाके रूपमें अपन् कुछ कर रहे हैं-वा साधनाके साथ भी या तरीकेकी कई विकल्पकी संभावनायें

बनी भयी हैं। साधनाकी कुछ नियति है, वा नियति अपनेकु स्वीकार्य है के नहीं है ये एक बात पहले आवे है। वा साधनाके अनुसार अपन् जो कर्म कर रहे है, वाको जो फल मिलेगो वो फल अपनेकु स्वीकार्य है या अस्वीकार्य है? वो फल अपनेकु अभिलषित है के अभिलषित नहीं है? ये सारी बातें अपने मनमें स्पष्ट होवे फिर कोई गड़बड़ नहीं होवे। स्पष्ट नहीं होवे तो फिर अपन् क्या करें के एक ही 'फल' शब्दकु निन्दाके अर्थमें भी वापरे और प्रशंसाके अर्थमें भी वापरे। तुम्हारे कियेको फल तुम्हें मिल रह्यो है। ये निन्दाके अर्थमें है। और हमकु तो हमारे जीवनको फल मिल गयो, यों केह तो प्रशंसाके अर्थमें हो गई बात। अब देखो, वो ही 'फल' शब्द प्रशंसामें भी वापर्यो जा रह्यो है और वो ही 'फल' शब्द निन्दामें वापर्यो जा रह्यो है। अब फल निन्दनीय है के प्रशंसनीय है ऐसे जब कोई पूछे तो अपनेकु कन्फ्युज़न् हो जावे। क्योंकि अपने मनमें जो साधना है वाके प्रति स्पष्टता नहीं है।

(देवताके अनुरूप साधनासु ही देवता फल देवे)

सब देवतान्की साधनाको जो स्वरूप है वामें ये ही बात मुख्य है के हर देवता कुछ कुछ साधनान्कु रिस्पोन्ड करें हैं। प्रभुके जो विभिन्न रूप है, जैसे महाप्रभुजी बता रहे है के सभी ठाकुर हैं मतलब सभी देव हैं मतलब सभी समर्थ हैं पर समर्थ होते भये भी सब तरहकी साधनान्कु रिस्पोन्स् नहीं दे हैं। कुछ कुछ साधनान्कु रिस्पोन्स् दे हैं कुछ कुछ साधनान्कु रिस्पोन्स् नहीं दे हैं।

एक सामान्य बात बताऊं तो आपको बराबर समझमें आयेगी। अपने यहां ठाकुरजीके होलीके पद है। वो होलीके पद अपन् गावे तो कृष्णको जो स्वरूप है वामें फिट् होवे। अपनेकु देखके कई भक्त रामचन्द्रजीके होलीके पद गावे, पर रामचन्द्रजीको जो स्वरूप है वामें या तरहसु ठाकुरजी सबसु होली खेले है ये सोचवेमें अपनेकु थोड़ो यों सिरमें खुजली आवे के क्या ऐसो भी हो सके है? रामचन्द्रजीको स्वरूप वैसो है नहीं, पर अपन् जैसे कृष्णके पद गा रहे है वैसे रामचन्द्रजीके पद गावें है। आजकल ये लफड़ा बहोत चले है। मुसलमान लोग अपने पीरकी कव्वाली बनावे तो वा तर्जमें अपन् अपने रामकृष्णके पद बना ले। जब अपन् वो भजन सुनें तब वो पीरके दरगाहकी कव्वाली याद आवे। अपन् कोई भजन बनावे वाकी वो कोई कव्वाली बना दे। अभी आप लोगन्ने सुनी होगी

'म्हारा घटमां बिराजता श्रीनाथजी श्रीयमुनाजी श्रीमहाप्रभुजी' उनने कव्वाली बनाई तो अपनेकु भी जोश आ गयो तो कव्वाली बना दी। मैं वाकी निन्दा नहीं कर रह्यो हूं, पर जो बात बतानो चाह रह्यो हूं वो एक द्यून्की बात है। पर लोग अक्सर क्या करें के कुछ या तरहको विवेककु वापरे बिना, कोई भी देवताके साथ कोई भी लीलाको, कोई भी तरहको वर्णन जोड़ दें। जब जोड़ दें तो फिर बड़ी मुश्किल हो जावे क्योंकि वा देवताको स्वरूप वा लीलाकु वा तरीकेसु रिस्पोन्स् नहीं दे रह्यो है।

जैसे आप शंकरजीकु पलना झुलाओ-भभूत लगी भयी है सांप लहरा रहे हैं व्याघ्रचर्मपे बिराजे भये हैं भूत प्रेत पिशाच सब बैठे भये हैं, फिर उनकु अपन् पलना झुलावे। तो झुलाओ पलना। झुलेंगे बिचारे शंकरजी पलना जब ऐसे भक्तन्में फंस जावें पलना झुलवेकी जो लीला है वाकु शंकरजीको स्वरूप रिस्पोन्स् नहीं दे सके है।

जैसे नृसिंहजीको स्वरूप उग्र स्वरूप है वात्सल्यको स्वरूप नहीं है। अब उनको जो स्वरूप है उनकी जो लीला है, वा तरहकी उनकी स्तुति वा तरहकी उनकी सेवा करो तो नृसिंहजी अपने हृदयकु गदगद कर सकें। पर अपन् वा तरहकी लीला वा तरहकी सेवा वा तरहकी भावना नहीं करके जबरदस्ती कृष्णकी सेवाकी तरह उनकी सेवा शुरू करें तो नृसिंहजीको स्वरूप ऐसो नहीं है के बालभावसु सेवा कर सके। मेरी बात समझमें आयी? नृसिंहजीको स्वरूप वा तरीकेको रिस्पोन्स् नहीं देवे है। समर्थ नहीं है ये बात नहीं है ठाकुर तो है। महाप्रभुजीने या बातकु बहोत अच्छी तरहसु समझायो है के ठाकुर है मतलब उनकी फल देवेमें ठकुराई है पर जाने जा तरीकेको स्वरूप धारण कियो होय वा स्वरूपके अनुरूप उनकी सेवा पूजा ध्यान कीर्तन करें तो वो स्वरूप रिस्पोन्स् दे सके है। वाके विपरीत सेवा ध्यान मनोरथ करें, जैसे आजकल सबके अन्नकूट होवे लग गये। अब अन्नकूट नहीं करो ये बात नहीं है। अन्नकूटकी लीला क्या है, वाको स्वरूप क्या है, वो कौनसे स्वरूपके साथ अनुरूप है, कौनसे स्वरूपके साथ अनुरूप नहीं हो रही है ये सब सोचे बिना अपन् एक तरहकी धांधल शुरू करे तो वाको फल और साधना में तालमेल बैठे नहीं हैं।

एक सामान्य बात बताऊं जैसे भैरवजीकु दारू भोग धर्यो जावे, कई ठिकाने दारू धरी जावे कई ठिकाने नहीं भी धरी जावे. मैं दिसम्बरमें दिल्ली गयो तो वहां रातके समय दो दो मीलकी क्यु लगी मैंने कही के रातको यहां इतनी बड़ी क्यु कायकी है? तो पता लगी के ये सब प्रसाद लेवेवाले है. पुराने किलाके पीछे भैरवजीको मन्दिर है वहां दारूको भोग आवे और वाको प्रसाद बटे. भैरवजीको वैसो स्वरूप है, पर ये ही बात अपने कृष्णके साथ या रामके साथ करेंगे तो रिस्पोन्स नहीं मिलेगो.

जैसे उज्जैनके कालभैरव है उनके लिये तो यहां तक कह्यो जावे के दारू उनके मुखारविन्दमें डाले, फिर कहां जावे वो पता ही नहीं चले. सब अन्दर जावे ऐसो कुछ कह्यो जावे है. उनकी शुद्धिको स्नान कैसे होवे? शायद आपकु पता होवे के नहीं पर स्मशानसु रोज मुर्दाकी राख आवे वा मुर्दाकी राखसु उनकु पूरो लपेटके अभ्यंग करायो जावे. वो अभ्यंग हो जावे तब भैरवजी शुद्ध होवें. देखो, भैरवजीके साथ वो फिट बैठेवाली बात है क्योंकि भैरवको मतलब जो संहार करे है. तो जो संहारको फल है उनकु भैरवजी भी शृंगार तरीके धारण करे है. भैरवजीमें वो सामर्थ्य है. वो संहारकदेव हैं तो संहारको फल है भस्म, वाकु वो श्रीअंगपे शृंगारकी तरह धारण करें हैं. ठाकुरजी चन्दन धारण करे हैं. क्यों? लालन पालनके देव है तो भस्म धारण नहीं करके चन्दन धारण करे है. अलग-अलग देवन्के/स्वरूपके अलग-अलग स्वीकार और अस्वीकार को एक रूप है वामें फलरूपता प्रकट होवे है. जैसे, पूजाके लिये सामग्रीके रूपमें आपकु भस्म धारण करवानी है तो आपकु स्पष्ट चयन करनो आनो चाहिये. फिर आप भैरवजीको स्वरूप चयन करो तो आपके पास भस्मके रूपमें पूजाकी सामग्री है वो भैरवजी धारण करके बराबर शृंगारित हो जावेंगे. अब, क्योंकि, भैरवजी धारण कर रहे हैं तो कृष्ण क्यों धारण नहीं करे करके कृष्णकु भस्म चुपड़ो. न आपकु मज़ा आयेगी और न वा कृष्णके स्वरूपको आनन्द आपकु मिलेगो.

(‘फल’को विवेक)

ये सारी बातें हैं जो खास फलके विवेकमें मुख्यतया समझवेकी है. ‘फल’ नियतिके रूपमें क्या है, अपनेकु स्वीकारवेको क्या है, अपनी अभिलाषाके रूपमें क्या है-इन तीनोंको तालमेल सोचके अपन जब साधना करेंगे तब तो वो फल

एक ही अर्थमें प्रकट होयगो के हां ये ‘फल’ है. जैसे सूरदासजीने यमुनाजीके चालीस पदन्में कही है तो वो फल फलित होयगो, पर जब अपने मनमें संशय विकल्प है, साधना अपन एक कर रहे है, देव कोई दूसरो चुन रहे है, कोई एक देवकी साधना दूसरे देवपे एप्लाय कर रहे है वामें सब गड़बड़ी होनी होनी और होनी ही है. ये फलके बारेमें मुख्य समझवेकी सबसु पहली बात है. यामें महाप्रभुजी जो समझा रहे है के और देव सब तत् तत् फलके दाता है और कृष्ण चक्रवर्ती है.

फलके रूपमें प्रभु चक्रवर्ती कैसे है ये अब देखवेको है.

(प्रभु कर्मनियतिसु बन्धे नहीं)

एक प्रश्न बाकी रह गयो हतो वो देखनो है. नियतिके रूपमें जाकु अपन ‘कर्मनियति’ कह रहे हैं अथवा जो अपनेकु स्वीकार्य है ऐसो जो फल है उन फलन्को सन्दर्भ थोड़ा यहां कम है. क्यों कम है? महाप्रभुजीकी दृष्टिसु वे फल विभूतिके द्वारा नियत है. जैसे ये काम कियो तो ये तो होयगो ही. जो नियतफल है वो विभूति और विभूतिके साधक या उपासक है उनकी आपसकी व्यवहारकी बात है. कृष्णके साथकी बात जो महाप्रभुजी केह हैं के सबसु पहले अपनकु ये बात पकड़नी चाहिये के नियति जैसो कृष्णके साथ कुछ भी नहीं है. क्यों कृष्णके साथ नियति जैसो कुछ भी नहीं है? तो महाप्रभुजी ये समझावे है के कृष्ण कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तुम् समर्थ है. तो जो सर्व समर्थ है माने कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तुम् है वहां नियतिको प्रश्न कहां रेह गयो? नियतिको मतलब क्या के तुमने ये कियो है तो तुमकु ये फल होयगो ही. अब तुमकु स्वीकार्य होवे या अस्वीकार्य, अभिलषित होवे या अनभिलषित पर यदि ये काम कियो है तो ये फल तो होयगो ही. अब तो कम हो गयो पर पुराने जमानाके लोगन्सु सुनें तो अपनेकु बहोत सुनाई पड़े के उनने अमुक डाकनकु साधी, भूतकु साध्यो और फिर भूत सिद्ध भयो. भूत सिद्ध होवेके बाद वा भूतने उनके काममें कुछ खराबी कर दी तो कोईकी आंख फूट गई. तो ऐसी सब मलिन साधनायें करते वामें कुछ ऐसे ऊधम हो जाते हते. कोई प्रेतकी साधना करते और फिर प्रेतसु पिण्ड छुड़ानो मुश्किल हो जातो.

(विवेकहीन साधनाको अभिलषित फल नहीं होवे)

ये सब चक्कर क्या है के अपन् साधना कर रहे है और वाको फल नियत है. अब जब फल नियत है तो वो तो अपनेकु भुगतनो ही पड़ेगो. वामें अपन् छटक तो नहीं सकें. जैसे मैंने बालककु कही के यदि आपकु ऐसो लग रह्यो है के हम कैसे बदले तो बदलवेकी आपकु जरूरत नहीं है. कुछ दिन बाद आपकु बदल दियो जायेगो. अभी महाराष्ट्र सरकार कायदा ला रही है के जितने भी हिन्दून्के ट्रस्ट है उन हिन्दून्के ट्रस्टन्पें एक सरकारी अफसर बैठेगो, जैसे नाथद्वारामें एक्ज़िक्यूटिव् ऑफिसर् है. वा सरकारी अफसरको खर्चा ट्रस्टकु उठानो पड़ेगो. ट्रस्टको एक तो खुदको काम करना वा सरकारी अफसरकु पालनो और फिर वो सरकारी अफसरको हिन्दू होनो भी जरूरी नहीं होयगो क्योंकि वो तो सरकारी अफसर है वाको तो आस्तिक होनो भी जरूरी नहीं होयगो नास्तिक भी हो सके है. क्योंकि तीन लाख ट्रस्ट हिन्दून्के महाराष्ट्रमें हैं. वो तीन लाख ट्रस्टन्पे तीन लाख एक्ज़िक्यूटिव् ऑफिसर बैठेंगे क्योंकि उन सबन्कु नौकरी देनी है. अब कहां नौकरी देनी? विभाग कोई खाली नहीं है तो उनने एक विभाग खड़ो कर दियो हिन्दून्के ट्रस्टन्पे. यामें पगार भी सरकारपे नहीं आयेगो और सब आनन्द करो मोज मारते हो जायेंगे. पर अन्तमें ये हिन्दूधर्मके जितने भी ट्रस्ट हैं उन सबन्कु पचावेकी एक सरकारी चाल है के ये सब सरकारके हो जावेंगे. धर्म धर्मके आधीन नहीं रहके सरकारीधर्म हो जावेगो. अभी महाराष्ट्रमें आयेगो फिर राजस्थानमें आयेगो गुजरातमें आयेगो फिर पूरे हिन्दुस्तानमें आ जावेगो. अब ट्रस्ट क्यों बनावें हैं? क्योंकि ट्रस्ट बनावेंगे तो भेंटपे टैक्स नहीं लगेगो. अब फायदा कितनो हो रह्यो है के भेंटपे टैक्स नहीं लगेगो और जायेगो क्या? अन्तमें सारो जायगो, या बातको विवेक अपन् करें नहीं हैं. साधनामें भी नहीं करें व्यवहारमें भी नहीं करे.

बहोत सारी साधनायें अपन् ऐसी करवें लग जावें क्योंकि गाम कर रह्यो है. अपनेकु भी बहती गंगामें हाथ धोवेकी इच्छा हो जावे, पर जब बहती गंगामें अपन् हाथ धोवें तो वाकी नियति स्वीकारवेकी अपनी सामर्थ्य होनी चाहिये.

गांधीजीके लिये कह्यो जावे के गांधीजीकु चम्पारण्य जावेके लिये ब्रिटिश सरकारने ना पाड़ दी. गांधीजीने कही के जायेंगे और गये तो अंग्रेज सरकारने पकड़ लियो और कोर्टमें हाजिर किये तब जजने उनकु पूछी के “तुम तो खुद वकील हो. तुमकु कानून पता नहीं हतो के यहां प्रवेश करना निषिद्ध है!” गांधीजीने कही

के “पता हतो.” तो जजने कही के “जब पता हतो फिर भी तुमने प्रवेश क्यों कियो?” तो उनने कही के “जैसे तुम्हारे कानूनसु मेरो प्रवेश निषिद्ध है वैसे तुम्हारे कानूनसु भी ऊपर कानून है और वा कानूनके तहत मोकु लग्यो के मोकु यहां प्रवेश करना चाहिये. अब तुम्हारे कानूनके हिसाबसु जो दण्ड होवे सो दण्ड तुम दो और मैं जा कानूनके तहत प्रविष्ट भयो हूं वा कानूनमें मैं अपने आपको गुनहगार नहीं मान रह्यो हूं. तुम मोकु दण्ड नहीं दोगे तो तुम गुनहगार हो मैं गुनहगार नहीं हूं” ये ओर कही गांधीजीने.

अपनेमें इतनी हिम्मत होवे के जब अपन् कोई नियमकु तोड़ रहे है तो वो तोड़वेमें जो नियत परिणाम आवेगो वाकु भुगतवेकी अपनी तैयारी होनी चाहिये. जब वो तैयारी नहीं है तो वो काम करना ही नहीं चाहिये जासु अपनेकु निन्दात्मक फल मिले.

(सभी देवता नियत फलदाता है)

तो महाप्रभुजी अपनेकु ये समझानो चाह रहे है के जो नियतफलके दाता है वो भगवान्के विभूतिरूप है. क्यों विभूतिरूप है? क्योंकि हर कर्मकी कुछ नियति है के ये कर्म करोगे तो ये फल तो मिलेगो ही मिलेगो. तुमकु अभिलषित होयगो तो मिलेगो और अभिलषित नहीं होयगो तो भी मिलेगो. तो जैसे कर्म करवेके बाद नियतफलकु भोगनो अपनी नियति है ऐसे देवतान्की भी नियति है के वो देवता अमुक कर्मको अमुक फल ही देंगे, दूसरो फल नहीं दे सके. जब जो देवता जा कर्मको जो फल है वो ही फल दे रह्यो है तो वो देवता भी कर्मनियत है.

जैसे यहांके जो तहसीलदार कलेक्टर या जज है, उनके पास कुछ पावर्स हैं. कोई डिसिज़न् दे सके है. कलेक्टर तुमकु कोई तरहको आदेश दे सके है और कोई तरहको आदेश नहीं दे सके क्योंकि वाको आदेश देवेको अधिकार नियत है. वाकी रेन्जमें वो आदेश दे सके है वाके बाद आदेश यदि आपकु चईतो होवे तो वाके ऊपरकी ऑथोरिटीकु रिफर् करनी पड़े. हर जगह जहां कमिश्नर कलेक्टर उपायुक्त या सचिव होय तो सब ठाकुर तो हैं ही पर उन सबके अधिकार तो नियत ही है. अपन् ये समझ सकें के भारतमें आजकी व्यवस्थामें जैसे पार्लामेन्टको अनियत अधिकार है. कैसे अनियत अधिकार है के जब सुप्रीमकोर्ट भी कोई डिसिज़न् दियो तब पार्लामेन्ट अपनी मेजोरिटीसु डिसिज़न्कु बदल सके है. वाको

अनियत अधिकार है। आज, जैसे भारतके सन्दर्भमें, अपन् समझ सकें के कलेक्टर और कमिश्नर के अधिकार नियत है। वा अधिकारके आधीन अपन् उनसु जा चीज़ मांगे वा चीज़ वो दे सके है, अनियत नहीं दे सके है। कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तु सर्वसमर्थ नहीं है। आजके भारतमें कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तु समर्थ कौन है ? पार्लामेन्ट्.

या तरहसु जो देवताके जा फल नियत हैं वा फल देवेमें वा देवता समर्थ है। जैसे विघ्न हरवेमें गणपतिजी समर्थ हैं। विघ्न हरवेके लिये गणपतिजीकी पूजा करोगे तो विघ्न हरेंगे। अब अपन् गणपतिजीकु दूसरे कामसु भजे तो वा कामके लिये उनकी नियति नहीं है। जहां नियतकर्मके नियतफल देवेकी बात है वहां कर्ता भी नियत है और देवता भी नियत है और जहां अनियत है वहां कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तु सामर्थ्य मानी जावे है। वहां नियत कुछ भी नहीं है सब कुछ मिल सके है। करवेको भी सामर्थ्य है, नहीं करवेको भी सामर्थ्य है और अन्यथा करवेको भी सामर्थ्य है। वो सामर्थ्य परब्रह्म परमात्मा भगवान्में ही होवे है। सब देवन्में वो नियत हैं ये महाप्रभुजी अपनेकुं समझा रहें हैं।

कृष्णको जा बखत तुम परब्रह्म परमात्मा भगवान्के रूपमें भजन कर रहे हो वा बखत कृष्णमें कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तु सर्वसामर्थ्य है।

(कृष्णकी भी सकाम भक्ति अपने यहां अन्याश्रय)

यदि तुम कृष्णकु कोई नियतफलके दान देवेके रूपमें भजन कर रहे हो तो कृष्ण परब्रह्म परमात्मा भगवान् नहीं रहेके कोई एक नियतदेवता हो गयो के या कर्मको फल देवेवालो देवता है। मतलब वो पार्लामेन्ट् नहीं होके कोई कलेक्टर हो गयो या लिये गुसाईंजी आज़ा करे है के कृष्णकी भी सकाम भक्ति करनो अपने पुष्टिमार्गमें अन्याश्रय है। दूसरे देवन्के जो भक्त है वो यदि अपने देवकी भक्ति निष्काम ब्रह्मबुद्धिसु करे तो उनकु ब्रह्मभजनको ही फल मिलेगो, देवभजनको फल नहीं मिलेगो।

मतलब जब अपन् कामनासु कर्म या साधना करें तब नियतफल पानो चाह रहें हैं। देव भी अपनी कामनासु नियत हो रह्यो है। आपके कामके अधीन हो गयो।

जब कामनासु आप भजन नहीं कर रहे हो और निष्काम भजन कर रहे हो तो वा भजनकी कामनामें कामकी नियति नहीं है, तब कोई ये नहीं कह सकेगो के या कामको फल या कामनाके अनुसार मिलेगो। जब कामना ही नहीं है तो कामनाको फल कहांसु मिलेगो ! जब कामनाके अनुसार भजनको फल नहीं है तो फिर भजनको फल क्या होवेगो ? अनियत। कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तु सर्वसमर्थ है वा बखत आपके भजनको भजनीय देव परब्रह्म परमात्मा भगवान् हो जावे है। जब कामनासु भज रहे हो तो वो देव कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तु सर्वसमर्थ नहीं रहेगो क्योंकि वो आपकी कामनाकु पूर्ण कर रह्यो है। यदि आपकी कामनाकु पूर्ण नहीं करे तो आप वाको भजनो ही छोड़ दोगे !!!

एक वैष्णवकी लड़की जयपुरके एक परिवारमें ब्याही। वे लोग कोई दूसरे धर्ममें मानें हैं। वो लड़की मोकु केह रही हती के “मेरे संस्कार तो वैष्णवके है और कृष्ण मोकु बहोत पसन्द है। कृष्णके बिना मेरो मन नहीं लगे। ससुरालमें तो हमारे यहां सब देवीकी उपासना करे है मांसाहारी है और शराब भी लेवें हैं। अब मैं ससुरालमें आ गई हूं तो मोकु भी ससुराल जैसो ही करनो पड़ेगो ?” मैंने वासु कही के “पीहरमें आपकी सरनेम् क्या हती ? और वो सरनेम् ससुरालमें है ?” तो वाने कही के “वो सरनेम् तो ससुरालमें नहीं है।” तो मैंने कही के “जब आपने पीहरकी सरनेम्(अटक) छोड़ दी तो आप वहां अटके रहो ? नहीं। आप दो दो बातें करोगे तो कहींके नहीं रह जाओगे।” वाने कही के “जब यहां सब ऐसे कर रहे हैं तो सेवा कैसे करे !” मैंने कही के “आपकु एक बात बताऊं। आपके ससुरालवालें देवीके भक्त है तो आनन्दसु देवीके भक्त रहे। यदि आप ये मान रही हो के हमारे पीहरके श्रीकृष्णकी भक्तिके संस्कार इतने प्रबल है के हम कृष्णकु छोड़ नहीं सके और या परिवारमें हम सेवा नहीं कर सके। तो क्या जरूरत है सेवा करवेकी ? ठाकुरजीको स्मरण करो।” वाकु मैंने पूछी “क्या घरवालें ना पाड़ें हैं ?” तो बोली के “ना तो नहीं पाड़ते पर बिना सेवा वैष्णवधर्मकी सार्थकता क्या ?” तो मैंने कही “आप उल्टी जिद्द पकड़ रही हो। यासु तो कुत्ता न घरको न घाटको रह जावेगो। यदि तुम पीहरके धर्मकु पकड़ रही है तो मैं तुमकु सारी गाइड लाइन् दे सकु जासु तुम पीहरधर्मकु ससुरालमें भी निभा सको हो !” अब सच बात है के सेवासु धर्म नहीं निभा सको पर स्मरणसु तो निभा ही सको। ससुरालवालें थोड़े ही पूछे हैं के तुम कौनको स्मरण कर रही हो ? स्मरण अपन्

कौनको कर रहे है ये बतावेकी कोईकु जरूरत ही नहीं है, जासु ससुरालवाले ना पाड़ेंगे. जब अपन् यों कह रहे हैं के “पीहरका छूटता नहीं है और ससुराल निभता नहीं है, भाता नहीं है.” फिर तो सब दुःखी होवेके रस्ता हैं. आखिर कहीं एको तो होनो पड़ेगो. या तो पीहरके संस्कार लेके चलो या ससुरालके. व्यर्थमें ऐसी जिद्द मत करो के जासु ससुरालमें तुम्हारो दाम्पत्य कलहग्रस्त हो जावे. या तरहसु निभाओ तो ससुरालवालेकु भी आपत्ति नहीं होयगी. ऐसे भी तो निभायो जा सके है वामें कोई तकलीफ नहीं है. “अब वे मांस खा रहे हैं, वे शराब पी रहे हैं तो पीवे दो. तुम मत खाओ तुम मत पीओ.” तो बोली “कभी कभी खा लेते है.” तो कभी कभीको मतलब क्या ? रोज ही क्यों नहीं खा लो ? तो बोली “नहीं नहीं वो पीहरके संस्कार हैं. मोकु अच्छो नहीं लगे.” अब या झगड़ाको अन्त कैसे आ सके ? कभी कभी खा लेवे है कभी कभी पी लेवे है !!

(सकाम भजन प्रभुको विभूति बनावे)

आदमी कम्प्यूज हो जावे के क्या करनो और क्या नहीं करनो. यामें आवश्यकता या बातकी है के जो अपन् कर रहे हैं वामें यदि अपनो माइन्ड - सेट निश्चित है के ये मोकु करनो है तो कोई तकलीफ नहीं है. जब अपन्के मनमें संशय - विकल्प है फिर तो तकलीफ होवेगी. तो आदमी या तरहकी दुबिधामें फलको और साधनाको निर्णय नहीं कर पावे. मानवजीवनकी सबसु बड़ी तकलीफ है. वा जीवनकी तकलीफमें कामनियति और कर्मनियति दो तरहकी नियति हैं. एक ‘कामनियति’ मतलब तुमने जैसी कामना करी तो वा तरीकेको तुमकु फल मिलेगो. तुमने जैसे कर्म किये वैसो तुमकु फल मिलेगो. जहां नियत है वहां महाप्रभुजीको ये सिद्धान्त है के जो भजनीय या उपास्य तुम्हारो देव है वो परब्रह्म परमात्मा भगवान् नहीं होके परब्रह्म परमात्मा भगवान् की कोई विभूति है. विभूति माने वो राष्ट्रपति या प्राइममिनिस्टर नहीं होके कोई कलेक्टर है या कमिश्नर है. जैसे भारतमें राष्ट्रपति या प्राइममिनिस्टर कर्तुम् अकर्तुम् अन्यथाकर्तुं समर्थ है. पर उनने यहां कोई विभूति रखी हैं के ये विभूति ये काम करेंगी. वस्त्रविभागको कमिश्नर वस्त्र सम्भालेगो, रेवेन्युको जो मिनिस्टर होवेगो वो रेवेन्यु सम्भालेगो, कृषिको मिनिस्टर कृषि सम्भालेगो, देवस्थानको मिनिस्टर देवस्थान सम्भालेगो. तो वाकी सर्वसमर्थता इन लोगन्में बंटके नियतसामर्थ्य हो जावे के या सामर्थ्यसु ये काम करेंगे. ये सारे रूप प्रभुके धारण किये भये है. जो काम करवेके लिये जो

रूप धारण कियो है वा रूपको वा तरहसु अपन् भजन/आराधन करे तो सफल होवे और आराधक वा विभूतिको वा तरहसु आराधन या भजन नहीं करके भलतो भलतो भजन करे तो फल नहीं मिलेगो.

एक साधारण उदाहरण बताऊं. ज्ञान पावेके लिये आप लक्ष्मीको भजन करो धन पावेके लिये सरस्वतीको भजन करो तो बिचारी सरस्वती और लक्ष्मी कु कितनी तकलीफ ! तो अपन् केह के वे समर्थ हैं के नहीं ? समर्थ हैं के समर्थ नहीं हैं ये प्रश्न नहीं है. जो स्वरूप, देवने जा हेतुसु धारण कियो है वा हेतुको आप समझ रहे हो के नहीं ये तो बताओ. यदि ज्ञान पानो है तो सरस्वतीकी स्तुति करो धन पानो है तो लक्ष्मीकी स्तुति करो. अब आप जाके लक्ष्मीकु कहो के हे माता, हमकु ज्ञान दे. तो लक्ष्मी कौनसो ज्ञान देगी ? बिजनेस्को ज्ञान देगी. दूसरो ज्ञान थोड़ी देगी ? सरस्वतीकु जाके कहो के धन दो तो वो केहगी के विद्यारत्न ही सबसु बड़ो धन है. विद्या दे सकु. फिर दुःखी होवेके रस्ता.

(देवतान्को भी रूप ब्रह्मने धारण कियो है)

जा देवने जा कामके लिये जा नियतिके लिये रूप धारण कियो है, वा देवको वा कर्म वा कामके अनुसार जो नियतरूप है वो विभूतिरूप है. वो रूप कर्तुसमर्थ है. मूलमें वो ब्रह्मको लियो रूप है. या लिये अकर्तुसमर्थ और अन्यथाकर्तुसमर्थ है पर वा रूपमें नहीं, ब्रह्मके रूपमें वो समर्थ है और ब्रह्म स्वयं तीनो सामर्थ्ययुक्त है.

आप लोगन्ने यदि सिविकस् पढ़ी होय तो ख्याल होयगो के सरकारकी तीन तरहकी सामर्थ्य होवे हैं, जुडिशियल् एक्सिक्यूटिव् और लेजिस्लेटिव्. जुडिशियल् पावर् जामें है वामें लेजिस्लेटिव् पावर् नहीं होवे. जामें लेजिस्लेटिव् पावर् होवे माने कानूनके अनुसार निर्णय देवेकी सामर्थ्य नहीं है, देशकु चलावेके लिये कानून बनानो दूसरी सामर्थ्य है. देशकु चलावेके लिये कानूनकु पलवानो तीसरी सामर्थ्य है. ऐसो मान्यो जावे के सरकारमें कोई भी व्यक्तिके पास ये तीनों सामर्थ्य नहीं रहनी चाहियें क्योंकि तीनो सामर्थ्य जाके पास आवें वो वाको दुरुपयोग करे. तो कायदा ऐसे बना दिये गये के एक व्यक्तिके पास तीनों सामर्थ्य मत दो. तीनों सामर्थ्यकुं छुट्टे छुट्टे बांटके दे दो. एक व्यक्ति कानून बनावे वो कानूनको निर्णय

नहीं दे सके. जो कानूनको निर्णय दे वो कानून बना नहीं सके. जो कानून पलवा रह्यो है वो बना या निर्णन नहीं ले सके. लेजिस्लेटिव् एक्सिक्यूटिव् जुडिशियल् पावर्को बटवारा करके शासन करना ये एक प्रणाली है.

(कर्तृम् अकर्तृम् अन्यथाकर्तृ सामर्थ्य होवेके कारण कृष्ण फलमें चक्रवर्ती)

याही तरहसु प्रभुने भी कर्म और काम की नियतिके बंटवारासु शासन करवेके लिये देवन्के रूप और साधनान्के रूप धारण किये है जासु वो कर्म वा कामके लिये होवे है. वा देवकी साधना करके ये फल मिलेगो वा अर्थमें वो डिस्ट्रिब्यूटेड् सामर्थ्य है. जामें अन्डिस्ट्रिब्यूटेड् है वो कर्तृम् अकर्तृम् अन्यथाकर्तृ सामर्थ्य है. वामें सर्वफलको सामर्थ्य हैं.

सर्वफलकी सामर्थ्यके लिये एक स्पष्ट उदाहरण बताऊं. जैसे आपकु एक ऑफिसमें घुसना है और चौकीदार आपकु रोक रह्यो है तो आप चौकीदारकु सलाम करके कहो के “बॉस् जावे दो न अन्दर!” तो वो खुश होके केह के “जाओ अन्दर.” चौकीदारकु बॉस् कहवेमें नुकसान नहीं है पर अन्तमें आप कहो के चौकीदारसु चौकीदारी बॉस् ही तो करवा रह्यो है तो बॉस्कु भी ‘चौकीदार’ कहो! हाय चौकीदार साहब, तो वो केहगो के चल निकल यहांसु. क्या समझ रख्यो है! बॉस्कु ‘प्युन्’ कहवेसु बॉस् खुश नहीं होवेगो. पर प्युन्कु ‘बॉस्’ कहवेसु वो खुश हो जावेगो. प्युन्कु काम बॉस् ही तो करवा रह्यो है पर वाने वो काम बांट दियो है. जब बांट दियो है तो वो काम वोही करेगो. वाके द्वारा जो इन सबकुं काम करवा रह्यो है वो बॉस् है.

या अर्थमें कर्तृम् अकर्तृम् अन्यथाकर्तृ सामर्थ्य होवेके कारण पुरुषोत्तम फलमें चक्रवर्ती है. अन्य सारे देवतायें भी प्रभुके ही लिये भये रूप है पर वाके उपरान्त भी वो तत्तद् फलके नियामक देव है वो तत्तद् फल अपनी कामना और कर्म सु नियत है वाके लिये वो विभूतिरूप है. वो ठाकुर हैं यामें कोई संदेह नहीं है. वो देव हैं आराध्य हैं पूज्य हैं वंदनीय हैं इनमें कोई सन्देह नहीं, पर फल वहां नियतफल है और कृष्णमें सर्वफलन्को समाहार हैं. अपनेकुं वहां तत्तद् फलकी कामना नहीं करके सर्वफलन्को समाहार करके फलकु जा बखत अपन् देखेंगे तो अपन् कृष्णकुं समझ सके.

(प्रभुमें सर्वफल दातृत्वरूप सामर्थ्य)

श्रीआचार्यजी कहें हैं के “जैसे चक्रवर्ती राजाको राज्य सगरी पृथ्वी पर और राजा देश – देशके गाँव – गाँवके सोऊ राजा कहावे परन्तु चक्रवर्तीके आज्ञाकारी तैसे ही पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण. सो सर्वोपरि और अवतार अंसकला करिके होई पर सब श्रीकृष्णके आज्ञाकारी. ठाकुर सबकुं कहिये” या वचनामृतमें श्रीकृष्णकी फलरूपसु जो चक्रवर्तिता है वाको अपन् देख रहे हते. वामें कल मैंने आपकु बात समझाई के पुराने राजान्के पास तीनों तरहके पावर् – -मकानून बनावेको, कानून पलवावेको, कानूनकी व्याख्याको निर्णय करवेको भी अधिकार – -महते. अब वो तीनों या तरहसु डिवाइड् हो गये. ऐसे प्रभुमें सर्वफलदातृत्वरूप सामर्थ्य है. ब्रह्मसूत्रमें ऐसे केह है “फलम् अतः उपपत्तेः”(ब्र.सू.३।२।३१) जो भी कुछ फल मिले है वो तो परब्रह्म परमात्मा भगवान् सु ही मिले है. अन्तर कितना है के कुछ फल प्रभु साक्षात् दे है कुछ फल प्रभु साक्षात् नहीं देके अपने विभूतिरूपके द्वारा दे है. तो विभूतिरूपके द्वारा दियो गयो जो फल है अन्तमें वाके तरफसु ही मिल रह्यो है. विभूतिको भजन भी वाहीको भजन है, पर नियति कैसे ढंगसु भयी है? जैसी अपनी कामना होवे वैसी अपन् साधना करे. वा कामनाके नियामक जो देव है वो फल देवे है.

मैंने कल आपकुं उदाहरण देके समझायो हतो के जैसे सरस्वती अपने यहां ज्ञानकी देवी मानी जावे. लक्ष्मी वैभवकी देवी मानी जावे. तो वैभव चाहितो होवे तो लक्ष्मीकी आराधना करे. ज्ञान चाहितो होवे तो सरस्वतीकी आराधना करे. शुभारम्भमें विघ्न हरवेकी प्रार्थना करे वो गणपतिजीसु करे. जैसे ब्रह्माजीकु सृष्टिके नियामक मान्यो है विष्णुकु पालनकर्ता मान्यो है रुद्रकु जगतके संहारक मान्यो है. ये सृष्टिके सारे कार्यकलाप हैं, उन कार्यकलापन्में तत्तद् फल उनके नियत कर रखे है. जो नियत कर रखे है तदनुसार अपन् कामना करे तो कामनाके अनुरूप अपनेकुं फल मिले है. यासु चक्रवर्तिता परमात्माकी सिद्ध हावे है. वाके लिये मैंने आपकुं लेजिस्लेटिव् जुडिशियल् एक्सिक्यूटिव् को उदाहरण दियो हतो की पावर् डिस्ट्रिब्यूट् हो जावेके बाद अपन् लेजिस्लेटिव्सु जुडिशियल्की अपेक्षा नहीं रखे है. जैसे पावर् डिस्ट्रिब्यूट् होवे है वैसे परमात्माको पावर् सब देवतान्में डिस्ट्रिब्यूट् होवे है. परमात्माकी आराधना अनेक साधनान्में डिस्ट्रिब्यूट् भयी हैं.

(कृतिको निर्धारण अपनी कामनासु)

अपन् या बातकु अपने शुद्धाद्वैतके एन्लसु समझें तो अच्छी तरहसु समझ सकें के परमात्माको सच्चिदानन्द ही अनेक नामरूपनमें डिस्ट्रिब्यूट भयो हैं. ये आखो अपनो सेट्-अप् है. या सेट्-अप्में जो बात कल मैंने आपकु समझाई हती के कर्म और कर्मकी नियतिमें सबसु बड़ो रोल कामको है. अपन् कैसे काम कर रहे है वापे निर्भर है.

जैसे कानूनमें भी अपन् देखें हैं के अपन् मारनो नहीं चाहें पर कोई कारके नीचे आके मर जावे वाकी सजा दूसरे ढंगकी है और अपन् मारनो चाहें ये अगर सिद्ध हो जावे तो वाकी सजा दूसरे ढंगकी है. क्यों बदल्यो ? वामें मारवेवालो एक ही व्यक्ति है, मारवेवालो एक ही व्यक्ति है, पर सजा क्यों बदली ? क्योंकि काम मारवेको हतो के नहीं हतो या प्रश्नपे आखी कृतिको मूल्यांकन होवे. यदि मारवेको काम है और मार्यो है तो दूसरे तरहको डिसिज़न् आयेगो और मारवेको काम नहीं है पर कोई मर गयो तो वामें गफलतीसु बिना सावधानीके गाडी चलायवेको आरोप लगाये जावे, पर मारवेको आरोप नहीं लगायो जावे. जैसे डॉक्टर भी अपने पेटकु चीरे है और कोई हत्या करवेवालो भी अपने पेटकु चीरे है. दोनों ही चीरे हैं. तो दोनोंकुं फांसीकी सजा होनी चाहिये. वो तो नहीं होवे क्योंकि वाको काम कुछ और है याको काम कुछ और है. डॉक्टर अपनो पेट चीरे है वो बचावेके लिये चीरे है हत्यारो पेट चीरे है वो मारवेके लिये चीरे है. चीरेकी प्रक्रिया तो एक जैसी है पर कामनाकी जो प्रक्रिया है वासु सारो निर्णय बदले है. ऐसो नहीं है के हत्यारेसु आदमी मर ही जातो होय ! कई बखत अखबारनमें ऐसो आवे के पेटमें छुरो मार्यो पर आदमी बच गयो. ऐसो नहीं है के डॉक्टर पेट काटे तो आदमी हर बखत बच ही जावे है. वामें भी कई बखत मर जावे पर सबकी सजा कोमन् क्यों नहीं है ? क्योंकि दोनोन्की कामना अलग अलग हैं.

कृतिको निर्धारण कामनासु होवे है ये मूल बात अपनेकु पहले समझनी चाहिये. वा कामनाको फल वा कामनाके देवसु होवे है. जैसे अपनेकु कोई जुडिशियल फेवर् चाहितो होवे तो जुडिशियरीसु मिलेगो. लेजिस्लेटिव फेवर् चाहिये तो लेजिस्लेचर्सु मिलेगो. एक्सिक्यूटिव फेवर् चाहितो होवे तो वो एक्सिक्यूटिव

पावरसु मिलेगो. वो जैसे डिस्ट्रिब्यूटेड है वैसे तत्तद् कामनाके फल तत्तद् देवतान्के पास हैं. तत्तद् अवतारन्के भी कार्य देखे तो जैसे, भागवतमें चौबीस अवतार वर्णित भये हैं. भगवान्के उन सब अवतारन्के कार्य देखे तो स्पष्ट समझमें आवे के ये अवतार या प्रयोजनसु भयो. जा प्रयोजनसु जो अवतार भयो वा अवतारसु वा प्रयोजनके अनुरूप अपन् साधना करे तो वो अवतार और आपकी साधनाको तालमेल बैठेगो. यदि वा अवतारकी साधना अपन् वा प्रयोजनसु नहीं करे, जा प्रयोजनसु वो अवतार भयो है और कोई भलते प्रयोजनसु करे तो फिर कुछ न कुछ अपनी आराधनामें और देवतामें मेल नहीं बैठे. जैसे गावेवालो कुछ गा रह्यो है बजावेवालो कुछ दूसरो बजा रह्यो है तबलावाले कुछ और ही ठेका दे रहे हैं. अब कुछ न कुछ आवाज़ तो पैदा हो जावेगी पर संगीतके बजाय दुर्गीत हो जावेगो. ये मुख्य वाको सिद्धान्त है. तालमेल बैठे तब संगीत होवे है. यामें थोड़ो आज या पहलूपे देखनो चाहिये के ये 'काम' क्या है ? अपन् इतनो तो समझे या विवरणसु के फलमें कामको बड़ो मेजर् रोल है, पर वो मेजर् रोल कैसे है वो थोड़ो मैं आपकु समझानो चाहूंगो.

(कामनाको स्वरूप)

मूलमें श्रुतिमें ऐसे आवे है के सागरको जैसे अन्त नहीं है वैसे ही प्राणीकी कामनान्को भी कोई अन्त नहीं है. कई लोगनकुं या वचनके कारण ऐसी भ्रान्ति होवे के कामना भी अपार है अथाह है. दरअसल ये बात नहीं है. श्रुति जा बखत यों केह है के जैसे सागरको अन्त नहीं है वैसे कामनाको अन्त नहीं है, तो वाको एक स्वरूप अपनेकु स्पष्टतया समझनो पड़ेगो. पुराने लोगनकी जो सागरकी कल्पना हती वो दूसरे ढंगकी हती. जब कोलम्बस् जहाज लेके हिन्दुस्तान खोजनो चाहतो हतो वा बखत क्या हतो के पुर्तगाल और स्पेन् आपसमें दोनों बहोत स्पर्धा करतें हतें. ये दोनों पोपके आधीन राज्य हते. दोनों आपसमें लड़ते हते. तो पोपने मध्यस्थी करके विश्वको जो नकशा हतो वापे एक रेखा खेंच दी. एककु कही के तुम याके पूरबमें जाओ और पूरबके देश जीत लो. दूसरेकु कही के तुम या रेखाके पश्चिममें जाओ और पश्चिमके देश जीत लो. आपसमें झगड़ो मत. अब ये पोपकी आज्ञा हो गई. कोलम्बसकु ये पता चल गयो के ये पोपकी आज्ञा पोली है, दमवाली आज्ञा नहीं है. क्योंकि जो रेखा खींची है वाके या तरफ जाओ तो या तरफ भी जायो जा सके है. पृथ्वी तो गोल है. कोलम्बस् समझदार हतो. वो

समझ गयो के रेखा खिचके आज्ञा तो पोपने दे दी, पर मैं ऐसे नाव चलाऊं के जहां पुर्तगाल जा रह्यो है. वो जगह अपन ओर पचा सके. वाकु जब ये रहस्य पता चल गयो के वहां तो घूमके पहुंच्यो जा सकेगो, क्योंकि पृथ्वी तो गोल है. सपाट होती तो नहीं पहुंच्यो जा सकतो. अब गोल होवेके कारण जहां पुर्तगाल पहुंच्यो वहां ये भी पहुंच सके और कह सके के हम तो अपने रस्तापे चल रहे हते. अब यहां पहुंच गये तो क्या करें ! ये कोलम्बस्के मनमें खुराफात हती और वाने स्पेन्की रानीकु खुश कियो के तुम मोकु सारी सहायता दो तो ये पोपने जो रेखा खिंची है वाके पूरबके देश भी मैं तुमकु जीतके बता सकु. पोपकी आज्ञाको अपन उल्लंघन नहीं करे क्योंकि पोपकी आज्ञा तो सर्वोपरि है. तो रानीने कही के तुम करो. रानीने सारे जहाज खलासी और जो पैसा खर्च होवे वो सब धन जुटा दियो. पर जो खलासी हते वो तो बिचारे पढ़े लिखे नहीं हते. उनकुं डर लग रह्यो हतो के समुद्र तो अपार है और या तरफ बढ़ेंगे तो पता नहीं कहां जावेंगे ! उन्होंने पहलेसु ही कोलम्बस्के साथ झगड़ा कियो. ये सब मरवेके रास्ता हैं. सागर तो अपार है अथाह है वाको मतलब ये नहीं है के अपन यहां आ नहीं सके है. पश्चिममें बढ़के हिन्दुस्तान आ नहीं सकें एसो अथाह नहीं है. सागर इतनो अपार नहीं है. अब ये बात तो तथ्य है के जो भी चीज़ गोल है वामें कोई मुकाम नहीं है. सीधो होवे तो कहीं एक मुकाम हो सके के यहांसु यहां तक अपन चले और अपन वहां पहुंच गये तो मुकाम आ गयो. अब आगे नहीं बढ़्यो जा सकेगो. जो चीज़ गोल है वामें तो घूमते ही रहो, वा अर्थमें अथाह हो सके है.

याही तरहसु श्रुतिने जा बखत कही के जैसे सागरको अन्त नहीं है ऐसे ही कामको भी अन्त नहीं है वो या अर्थमें नहीं के काम अपार है पर या अर्थमें के काममें भी कुछ गोलाईको चक्कर है के जहांसु अपन कामकी बात शुरु करें, बात पाछी वहांकी वहां ही आके टिक जावे. अपनेकु आश्चर्य होवेगो के ऐसे कैसे ? यामें अपनेकु नित्यको अनुभव है. अपन अच्छी तरहसु जाने है के सुबह जब अपनेकु खावेकी इच्छा होवे तब खूब पेट भरके खालो. रातकु फिर इच्छा हो जावे. रातकु खालें तो पाछे सुबह खावेकी इच्छा हो जावे. वो इच्छा कभी पूरी होवे ही नहीं. वो चाहे खावेकी इच्छा होवे या कमावेकी इच्छा होवे चाहे जुटावेकी इच्छा होवे जो भी इच्छा होवे, कोई चीज़ अपनने हासिल करी तो हासिल करवेके बाद संतोष नामको तथ्य कामके साथ नहीं है.

एक चीज़को काम पूरो भयो नहीं के दूसरो काम पाछो शुरु हो जावे या अर्थमें अपार है या अर्थमें अथाह है. माने वाके वॉल्यूममें या क्वॉन्टिटीमें अथाह नहीं है पर वाको जो सर्कल है वो अन्तहीन सर्कल है. जैसे सागरके चक्कर काटते रहो तो वो अन्तहीन है. ऐसे कामको भी अन्तहीन चक्कर है. ये बातकु समझावेके लिये श्रुति केह है “नान्तो हि सागरस्य न च कामानाम् अन्तोस्ति” न तो सागरको कभी अन्त है और न तो कोई कामनान्को अन्त हैं या बातकु समझनो चाहिये. पहले सागरके बारेमें अपनी कल्पनायें खलासीनूके जैसी हती तो अपन भी ऐसे समझते हते के कामनायें भी अपार हैं. कभी जीवकी सामर्थ्य ऐसी नहीं है के वो अपार हो सकें. जीवकी कामना हर बखत क्षुद्र है. यदि कामना क्षुद्र नहीं होती तो एक ही कामना चलती रहती. नई नई कामना क्यों होनी चाहिये ? चक्कर कहां है के एक कामना पूरी करो तो दूसरी कामना पैदा हो जावे, चक्कर या बातको है. यदि कामना अपार होती तो वो ही कामना चलती रहती पर वो कामना चले नहीं है. हर कामना गन्नाके टुकड़ाकु चूसवे जैसी कामना है. दांत लगायो तो बड़ी मीठी लगे. थोड़ी देर चाबवेके बाद वाकु थू थू करवेकी इच्छा हो जावे. छूछ ही रह जावे वामें कछु रह ही नहीं जावे.

(कामनाकी क्षुद्रता और वाको अन्तहीन चक्र)

हर कामनाको स्वरूप गन्नाके टुकड़ाके जैसो है. जब चबावे वा बखत तो खूब रस निकले. पर सतत चबावेके बाद तो वाकु थूकवेकी इच्छा हो जावे. अक्सर जो लोग लव्मैरैज् करे वामें लव् पहले हो जावे मैरैज् बादमें होवे. जब मैरैज् होवे वा बखत तक तो लव् रह ही नहीं जावे क्योंकि लव् पहले हो गयो मैरैज् बादमें भयो. कामनाको चक्कर या तरीकेको है. एक पूरी होवे और दूसरी पैदा हो जावे या अर्थमें कामना अन्तहीन है. या अर्थमें नहीं के कामना अपार है क्योंकि मनुष्यके दिलमें आंखमें नाकमें हाथमें इतनी सामर्थ्य नहीं है के वो अपार कामना कर सकें.

कामनायें बहोत क्षुद्र हैं. अपन अत्तर लगावे सॅन्ट लगावे फूलको सुगंध ले तो तीन मिनट तक सुगन्ध आयेगी वाके बाद सुगन्ध आनी बन्द हो जावे, दूसरेनुकुं भले आवे. अपनी कामना इतनी क्षुद्र है !

जैसे मार्केटमें फिल्मी गीत आवे और दिन-रात बजवे लग जावे तो दो-तीन महीनामें गन्नाकी तरह वाको छूँछ निकल जावे. फिर नयो गीत लाओ. फिर वो गीत सुनवेमें मजा आनी बन्द हो जावे. तो कामनाको चक्कर या ढंगको है. एक ही गीत अपनेकु मजा नहीं दे सके. पसन्द आतो होय वो भी पसन्द आनो बन्द हो जावे. अपनी कामना कितनी क्षुद्र है ! अपन् सचमुचमें कोई चीज़कु चाह रहे है तो वाकु कितनो क्षुद्र चाह रहे है वो या बातको प्रमाण है. अपने चाहवेकी सामर्थ्य बड़ी क्षुद्र है. ये फिल्मी गीत तो मैं उदाहरणके तौर पर केह रह्यो हुं, पर हर चाहनाको प्रैक्टिकली ये ही स्वरूप है. अपन् कई चीज़ें चाहते रहें पर चाहें बहोत क्षुद्रताके साथ. ज्यादा दिन उन चाहनाकुं अपन् निभा नहीं सकें. कई औरतें जिनकुं बच्चा पैदा नहीं होवे वे पागल हो जावें. पर जब बच्चा पैदा हो जावे तो वाके बाद वाकी चाहना खतम हो जावे. अपनी चाहना ऐसी क्षुद्र है. अपनी साधनापे असर क्यों पड़े है वाको मूल कारण ये है के अपनी चाहना मूलमें बहोत क्षुद्र हैं. चक्र अन्तहीन है पर कामना अन्तहीन नहीं है.

भगवान् रजनीशने याको एक फनी उदाहरण दियो हतो. एक आदमीने उनकु आके कही के “भगवान् सिगरेट नहीं छूटे है क्या करूं ?” उनने कही के “तुम तीन दिन मेरे पास रहो तो मैं तुम्हारी सिगरेट छुड़ा दूंगो, पर मैं कहूं वैसो करना पड़ेगो.” वाने कही “जरूर करूंगो.” वाने जब रहनो शुरू कियो तब रजनीशने खूब सारी सिगरेट मंगा ली. जब एक सिगरेट पीले तो फिर दूसरी मुंहमें लगा दे. जब पूरी हो जावे तो फिर एक और लगा दे. थोड़ी देरमें वो तौबा कर गयो के अब सिगरेट कभी नहीं पीउंगो. जब अपन् पी लें तो फेड़-अप हो जावें. सिगरेट छूट गई. नहीं तो एक सिगरेट पीवेके दो-चार घण्टा बाद फिर सिगरेटकी याद आ जावे. निरन्तर सिगरेट पिओ तो सिगरेटकी कामना खतम हो जावे. ये एक चक्र है.

अपन् याकु मज़ाकमें समझ रहे है पर ध्यानसू देखोगे तो पता चलेगो. गरमी लग रही है तो बरसातकी कामना हो जावे. दस दिन बरसात पड़े तो बरसातके बन्द होवेकी कामना हो जावे. वाके बाद ठण्डीकी कामना हो जावे. दस दिन ठण्डी पड़े तो वाके जावेकी कामना हो जावे. अपनी कामनायें कितनी क्षुद्र हैं ! हर बातमें चाहे तो वो सम्बन्धमें ज्ञानमें धनमें व्यापारमें प्रेममें दुश्मनीमें सबमें

कामनानुको स्वरूप या तरीकेको है. तो ये अन्तहीन चक्रमें अपनी ये क्षुद्र कामनायें निरन्तर पैदा होती रहें हैं.

(संगसु काम प्रकट होवेकी प्रक्रिया)

याको मूलस्वरूप भगवान् गीतामें यों समझावें हैं “संगात् संजायते कामः” कोई भी काम अपनेकु क्यों पैदा होवे है ? जा चीज़को अपन् संग करें जा चीज़के साथ अपन् निरन्तर रहें वा चीज़सु थोड़ा भी अपन् छुट्टो पड़ें तो वाकी अपनेकु कामना होवे. क्यों कामना होवे ? वाको कारण ध्यानसू समझो. अपनी चेतनाको स्वरूप ऐसो है के जा चीज़को अपन् संग करें वा चीज़को फोटो अपनी चेतनामें आवे. ये फोटोकी प्रक्रिया बहोत व्यापक प्रक्रिया है.

जैसे अपन् जंगलमें या मरूभूमिमें जावें तो आदमीके पैरकी फोटो जमीनपे आवे. पानीमें भी थोड़ी बहोत ये फोटोकी प्रक्रिया है. पानीके सामने अपन् खड़े होवें तो अपनी फोटो पानीमें आवे. ऐसे किनारेपे जो पेड़ होवें उनकी फोटो भी पानीमें आवे. हवामें भी फोटो आवे. आपकु आश्चर्य होयगो के हवामें भी फोटो आवे ! हवामें फोटो नहीं आवे ऐसी बात नहीं है. पुराने जमानामें ऐसे कहते के जो मरूभूमिमें जाते उनकु दिनके उजालामें दूरको गाम आसमानमें दीखवे लग जातो, जाकु ‘गन्धर्वनगर’ केहते. कई बखत अपनी छाया हवामें दीखवे लगती हती जाकु ‘जिन’ केहते क्योंकि अपनो खुदको ही प्रतिबिम्ब हवामें इतनो लम्बो पड़तो के लोग समझते डेज़र्टमें जिन आ गयो. अरब लोगन्की कथानुमें बहोत जिनकी कथायें हैं. कथा कैसी ? जैसे ताड़सु भी ऊंचो जिन हतो और फिर सबन्के प्राण सूखे, ऐसो सब वर्णन आवे. वो जिन कौन हतो ? अपनो ही प्रतिबिम्ब हवामें आ जातो हतो. ऐसे हवामें भी प्रतिबिम्ब आवे, प्रकाशमें भी प्रतिबिम्ब आवे क्योंकि कोई भी चीज़पे प्रकाश पड़ रह्यो है वो वाको प्रतिबिम्ब लेके अपनी आंखमें आ रह्यो है. चीज़ थोड़े ही आंखमें आवे ! आंखमें कोई भी चीज़ दिखलाई क्यों दे है वाको कारण ये है के जा चीज़पे प्रकाश पड़े वो प्रकाश वाको प्रतिबिम्ब लेके अपनी आंखमें आवे. वो जब अपनी आंखकु छुवे तो वो चीज़ अपनेकु दिखलाई देवे. तो प्रकाश भी प्रतिबिम्ब लेवे है. माने पृथ्वी तेज जल वायु ये चारों प्रतिबिम्ब लेवें. प्रतिबिम्ब कौन नहीं लेवे ? आकाश. आकाश कोईको प्रतिबिम्ब नहीं ले. आकाश निर्लिप्त है याके लिये आकाशकु ‘निर्लिप्त’ कह्यो जावे.

अपनी चेतनामें या तरीकेकी निर्लिप्तता मुक्तिमें तो सम्भव है पर जब तक अपनी चेतना मुक्त नहीं होवे तब तक या तरीकेकी निर्लिप्तता चेतनामें सम्भव नहीं है. अपनी चेतनामें ये पृथ्वी जल तेज वायु के जैसे प्रतिबिम्बकु ग्रहण करवेकी क्षमता है. अपन् जा चीज़के सम्पर्कमें आवें वा चीज़को प्रतिबिम्ब अपनी चेतनामें पड़े और वो चेतनामें जब तक पड़े है तब तक वाकी इच्छा नहीं होवे पर जब वो थोड़ा दूर होवे या प्रतिबिम्ब नहीं पड़े तो अपन्कुं वाकी कामना होवे है. वा बातकु भगवान् गीतामें समझावें हैं - “संगात् संजायते कामः” पृथ्वी जल तेज वायु में क्यों कामना नहीं होवे है ? प्रतिबिम्ब तो चारोंन्में भी पड़े है पर वामें कामना या लिये नहीं होवे क्योंकि उनमें चेतना नहीं है. अपनेमें प्रतिबिम्ब पड़े है पर वो प्रतिबिम्ब पड़वेके कारण जो बाहरको विषय है वो अपनी चेतनामें प्रतिबिम्बित होवेके कारण अपनेकुं अपनी चेतनाको स्वरूप लगे है. जब वो अपनेकु चेतनाको स्वरूप लगे और मिले नहीं तब वाकी कामना पैदा हो जावे. ‘संगात् संजायते कामः’.

बच्चाकु मीठो क्यों भावे है ? वैज्ञानिक लोग वाको कारण बतावे के बच्चाकु वाके डेवलपमेन्टके लिये शुगरकी जरूरत है या लिये बच्चाकु मीठो भावे. फिर मीठो खावेकी आदत पड़ जावे वो बुढ़ापा तक भावे. जरूरत नहीं होवे तब भी भावे. अपने शरीरमें जब पानीकी कमी होवे वा बखत अपनेकु प्यास लगे. वा बखत पानी पीनो अच्छो लगे क्योंकि अपने शरीरकु पानीकी जरूरत है. अपन् अच्छी तरहसु जाने हैं बहोतसे जानवर ऐसे हैं जो अपनी तरह पानी पीये है और बहोतसे जानवर ऐसे भी हैं के जो पानी नहीं पीयें. वो थोड़े ही मर जावे ? वो कहीं कहींसु पानी ले ले है. पीके पानी नहीं ले है. उनको पानीको इन्टेक् अपने जितनो जरूरी नहीं होवे. जैसे मरूभूमिके वृक्ष पानी पीके बड़े नहीं होवे. वो हवामेंसु ही पानी सोख ले. कुछ वृक्ष हवामेंसु सोखके पानी नहीं ले सके. उनकु अलगसु पानी पीवाओ तब वो बड़े हो सके है. तो ऐसे अपने शरीरकु आवश्यकतायें क्यों हैं क्योंकि अपनेमें उन वस्तुनको प्रतिबिम्ब पड़्यो है. प्रतिबिम्ब जा बखत पड़्यो वा बखत अपनेकु अपनो पार्ट लगे है. जो भी चीज़ मेरेमें प्रतिबिम्बित होवे वो मेरो पार्ट है, मेरे अस्तित्वको घड़वेवालो रूप है ऐसे लगे है. वासु जब अपन् वंचित होवें तब तुरत वाकी कामना अपनेकु पैदा हो जावे. ये कामनाको चक्र है.

अब अपन् कई चीज़नके सम्पर्कमें आवें हैं. एकके बाद दूसरी चीज़को सम्पर्क इतनो जल्दी होवे क्योंकि जगत्में विषयनको कोई अन्त नहीं है. अनेक विषय हैं. रूप रस गन्ध शब्द स्पर्श के पांच विभाग करो तो उनमें भी पांचके कितने विभाग हैं ? अनन्त विषय है और अनन्त विषयनके सम्पर्कमें आ आके अपनेकुं कामनान्के अन्तहीन दुश्चक्र पैदा हो जावें.

(कर्मको साधनात्मक पहेलु धर्मरूप हो जावे)

उन दुश्चक्रनके कारण अपने कर्म अपनी कामनासु कन्ट्रोल होते होवें हैं. जब कामनासु अपने कर्म कन्ट्रोल होवें हैं तब उन कर्मन्में वा तरीकेको नेचर् आवे है के अब ये कर्म ये ही फल देगो और ये फल नहीं देगो, जो कर्मकी नियति है. जैसे तुलसीदासजी केह है ‘कर्मप्रधान विश्व करि राखा जो जस करहि सो तस फल चाखा.’ तो ये ‘फल चाखा’ देखो यहां फल निन्दाके अर्थमें आयो है. कामनाकी पूर्तिमें नहीं पर अपन्ने अपनी कामनाके कारण जो कर्म कियो वा कर्मकी कोई न कोई नियति है और वा नियतिके अनुसार आपकु फल मिलेगो. कई बखत वो अपनेकु स्वीकार्य होयगो कई बखत अपनेकु स्वीकार्य नहीं होयगो. ऐसे ही कोई कामनाको फल ऐसो होयगो के अपन् वाकी अभिलाषा करते होय, कोई कामनाको फल ऐसो होयगो जाकी अभिलाषा करवेके बजाय अपन् वासु द्वेष करते होय, ऐसो भी फल हो सके है. या तरहसु अपनी कामनाको जो स्वरूप है वो अपने कर्मकु पकड़े है और वो कर्म जब अपन् साधना या आराधना के रूपमें कर रहे है तो वो एक धर्मको रूप ले ले है. कोई भी धर्मको मूलरूप तो कर्म है और वाको एक विभाग धर्म है. कर्मरहित धर्म तो हो ही नहीं सके.

(प्रभु सर्वफलदाता है)

कर्म हिन्दुस्तानके जैसो है और धर्म एक एक राज्यके जैसो है. कर्मके कई विभाग हैं. जैसे हिन्दुस्तानके कई विभाग हैं ऐसे अपने कर्मके कई विभाग हो सकें हैं. कुछ कर्म लौकिक है कुछ कर्म अलौकिक है. कुछ कर्म संसारमें फंसावेवाले है. कुछ कर्म संसारसु छुटकारा दिलावेवाले है. कुछ कर्म देवकी आराधनारूप है. कुछ कर्म देवकी आराधनारूप नहीं है पर धर्मरूप है. या तरहसु जो भी धर्म साधना आराधना है वो कोई न कोई कर्मकी एक वंरायटी है. ये बात अपनेकुं समझ लेनी

चहिये. सारो कर्म अपनी कामनाकी वॅरायटीसु पैदा हो रह्यो है. सो कामनाकी वॅरायटीसु कर्मकी वॅरायटी, कर्मकी वॅरायटीसु फलकी वॅरायटी, उन फलकी वॅरायटीसु गवर्न करवेवाले प्रभुके अनेक रूप हैं. उन अनेक रूपनसु प्रभु ही अपनेकुं फल दे है. या अर्थमें प्रभु सर्वफलदाता हैं. या अर्थमें नहीं के क्षुद्र कामनाके फलकु देवेवाले प्रभु हैं.

(सर्वफलदातासु क्षुद्रफलकामना करनी मूर्खता)

याके लिये महाप्रभुजी अपनेकुं ये समझानो चाह रहे हैं के प्रभु ही सर्वफल दे रहे हैं तब वा प्रभुसु एक फलसु चाहनो वो प्रभुके प्रति अपनो एक टुच्चो रिस्पोन्स है. जाकु मैंने चपरासी और बॉस् को उदाहरण देके समझायो हतो. अपन परब्रह्म परमात्मा भगवानसु जा बखत कोई क्षुद्र कामना कर रहे है और वाके कारण आराधना करें तो वो बॉस्कु 'चपरासी' केहवे जैसी बात भयी. चपरासीकु 'बॉस्' कहोगे तो काम बन जावेगो पर बॉस्कु 'चपरासी' कह्यो तो बनतो काम बिगड़ जावेगो. ये मूल रहस्य महाप्रभुजी अपनेकुं समझानो चाह रहे हैं. बॉस्के सामने जाओ तो इन क्षुद्र कामनानुं लेके मत जाओ. दे तो वोही रह्यो है वामें कोई संदेहकी बात नहीं है. अपनी शक्तिनको विभाजन कियो है वासु ही मिल रह्यो है पर वा क्षुद्रताकु डायरेक्ट एड्रेस् मत करो. चपरासी भी बॉस्को एक फन्क्शन ही तो है. ऑफिसकी सुरक्षा चाह रह्यो है याही लिये तो चपरासी रख रह्यो है. अन्तमें चपरासीकी जो सामर्थ्य है वो बॉस्की सामर्थ्य है. बॉस्की शेहपे चपरासी चपरासी है और बॉस्की शेहपे चपरासी अपनेकुं रोक सके है.

अपने किशनगढ़को केस चलतो हतो तो चॅरिटी कमिशनरने आपत्ति खड़ी कर दी के प्रभावती बहुजीकु किशनगढ़ दरबारने मन्दिर भेंट कियो वो डॉक्युमेन्ट तो दियो पर प्रभावती बहुजीने तुम्हारे पिताजीकु एडोप्ट किये याको डॉक्युमेन्ट कहां है ? ठीक बात है अपनूने वो डॉक्युमेन्ट तो दियो नहीं. फिर मोकु पता चली के वो डॉक्युमेन्ट तो देवस्थान विभागमें ही है. कोईने कही देवस्थान किशनगढ़के सारे कागज़ात बीकानेर चले गये हैं. आप मानोंगे नहीं वा डॉक्युमेन्टकु खोजवेके लिये मैं बीकानेर गयो. वहां खोज्यो तो वहां नहीं मिल्यो. फिर कोईने कही के कुछ कागज़ात जयपुरमें भी हैं. आखिरमें मोकु पता चली के ये कागज़ात जयपुरके देवस्थानके आयुक्तके वहां है. मैंने प्लेन्में जयपुरके आठ - दस चक्कर

काटे. आवे - जावेमें मेरो दस - बीस हजार खर्च भयो. पर वे लोग नहीं दे सो नहीं दे.

हमारे बड़े मन्दिरके शास्त्रीजी हते. उनको पौत्र जयपुरमें चॅरिटी कमिशनर भयो. कोईने मोकु खबर दी के अब तो उनके पौत्र जयपुरके चॅरिटी कमिशनर हो गये हैं तो आपको काम बन जावेगो. तो मैं पाछो दौड़के जयपुर गयो और उनसु मिल्यो. तो उनने कही के दिला दऊंगो पर वामें तकलीफकी बात है. उनने मोकु भी बुलायो और इन्स्पेक्टरकु भी बुलायो. वा इन्स्पेक्टरने हमारे सामने उनके माजना इतने साफ कर दिये के "जब हम किशनगढ़ जाते हैं तो कोई दाद देते नहीं हैं कुछ देते नहीं हैं हमसे केस लड़ते है तो हम इनको क्यों डॉक्युमेन्ट दे ?" मैंने कही के कमिशनरकु इन्स्पेक्टर लड़ रह्यो है तो ये चक्कर क्या है ? उनकु भी अपनी आबरू बचानी हती. सो मोंसु कही के "शान्तिसु पीछे करूंगो. अभी चुप रहो." नहीं हो सक्यो. फिर मैंने इन्स्पेक्टरकु पकड़यो. मोकु लग्यो के यामें कमिशनर मुख्य नहीं है इन्स्पेक्टर मुख्य है. मैंने इन्स्पेक्टरकु कही के "कागज़ात क्यों नहीं दे रहे हो !" तो बोल्यो "हमसे केस लड़ते हो और हमसे ही डॉक्युमेन्ट मांगते हो !" मैंने कही के "तुमसे केस कहां लड़ रहे हैं ? हमतो देवस्थान विभागसे केस लड़ रहे हैं. तुम तो वहां इन्स्पेक्टर हो." वो बहोत गुस्सा हो गयो. मैं भी गुस्सा हो गयो के "तुम नहीं दोगे तो मैं कोर्टमें फरियाद करूंगो." इन्स्पेक्टरने मोकु एक इतनी बड़ी बात कही के "कोर्ट क्या डॉक्युमेन्ट लेवे आयेगी ? वो फिर हमकु कहेगी. हम डॉक्युमेन्ट जला देंगे पर नहीं देंगे." मैंने कही के "बहोत भयंकर दादागिरी है." मैं भी तैशमें आके बाहर निकल्यो तो चपरासीने कही "क्या महाराज, इतने चक्कर क्यों काटते हो ! मैंने कही "क्या फंसा रखा है तुमने ! डॉक्युमेन्ट तुम्हारे यहां है और तुम मांग रहे हो" तो वाने कही के "आप इन्स्पेक्टरसे मिलते क्यों हो ?" मैंने कही के "फिर किससे मिलें ?" तो वाने कही के "मुझसे मिलो. डॉक्युमेन्ट तो सब मेरे कब्जेमें है." मैंने कही "अच्छा ऐसी बात है !" तो वो बोल्यो के "आप उतरे कहां हो ?" मैंने कही के "पीतल्योंके चौकमें वैष्णवोंकी मंडलीमें उतरे हैं." वो बोल्यो "शामको आ रहा हूं." गठरी भरके सारे डॉक्युमेन्ट दे गयो. मैं घबरा गयो के दस - बीस हजार तो मैंने खर्च कर दिये अब ये न जाने कितनो लेगो ! मैंने पूछी के "भाई, कितने पैसे लोगे ?" तो वो बोल्यो "पचास दे दो, सौ दे दो." मैंने डेढ़सौ दे दिये. मैंने सोची के इतने पैसा खोटे खर्च किये. काम क्षुद्र हतो. क्षुद्र कामके लिये बड़ेको एप्रोच क्यों तो

नहीं भयो और चपरासी घर बैठे डेढ़सौमें दे गयो, जाके लिये पंद्रह - बीस हजार रुपया खर्च कर दिये !

एक बखत ध्यानसू या बातकु समझो के जो क्षुद्र काम है वो क्षुद्र व्यक्तिसु ही हो सके बड़े व्यक्तिसु नहीं हो सके. अपनकु अपनो काम क्षुद्र नहीं लगे. हमारो काम सबसु बड़ो और सब काम छोटे वाके कारण अपन बड़ेसु बड़ेको एप्रोच करवे जावे तो वामें सब काम बिगड़ जावे. ये बात महाप्रभुजी समझानो चाह रहे है के सारे देवतायें हैं वो सब आपकी कामनान्के पूरक हैं. आपकी आराधना सफल करवेवाले हैं, पर चक्रवर्ती फलदाता है. वहां क्षुद्र काम मत मांगो. ठाकुरजीके पास जाओ तो निष्काम होके जाओ. तब उनको सच्चो आनन्द आपकु मिल सकेगो. ये बात महाप्रभुजी समझानो चाह रहे है. या विषयकु देखोगे तब पता चलैगो के क्यों महाप्रभुजी ठाकुरजीकु चक्रवर्ती कहनो चाह रहे है ! क्योंकि वो सर्वफलदाता है.

हमारे साथ एक बखत घटना भयी. प्राईममिनिस्टर् नरसिंहराव हमारी जातिको हतो. जैसे हम लोग वेल्लनाडू हैं वैसे वो भी वेल्लनाडू हतो. हमारी दादीजीके गामको हतो और उनको पड़ोसी भी हतो. जब ये प्राईममिनिस्टर् भयो तो हमारी दादीजीके भाईने मोकु फोन कियो के श्यामबाबा आपकु पता है के भारतको प्राईममिनिस्टर् आपकी दादीजीके गांवका पड़ोसीका बच्चा है ! मैंने कही के पता नहीं है. फिर उनने मोसु कही के कोई भी काम होवे तो नरसिंहरावको एप्रोच करो. मैंने कही के दादीजीको पड़ोसी नरसिंहराव कहां अपनेकु जानेगो ! मामा अपनेकु ऐसे ही पतंगकी ढीलमें चका रहे है. मैंने सोच्यो फिर कही के मेरे यहां म्युनिसिपालिटीवालें गटर् साफ नहीं करते हैं, करूं नरसिंहरावकु फोन ? वो बोले यू आर् रास्कल् बाय्. समझो के नरसिंहरावकु मैं फोन करूं तो वाकी क्या हालत होवे ? दादीजीको पड़ोसी होवेको वाको ऐसो दण्ड के वाकु गटर साफ करवावेकी एप्लीकेशन् मैं दऊं ! आदमीकी मनोवृत्ति ऐसी होवे है.

(कृष्णकी चक्रवर्तिता सर्वफलदातृताके कारण)

परब्रह्म परमात्मा भगवान्सु अपनी क्षुद्रकामनान्की मांग करे तो वामें न तो अपनो मांजना रह जावे, न साधनाको मांजना रह जावे, न भगवान्की गरिमा निभे. हास्यास्पद घटना हो जावे. इन विवेकनकु अपन समझेंगे तो अपनकु महाप्रभुजीकी

ये बात समझमें आयेगी के प्रभु परब्रह्म परमात्मा भगवान् प्रमाणकी दृष्टिसु भी चक्रवर्ती हैं प्रमेय दृष्टिसु भी चक्रवर्ती हैं साधन और फल की दृष्टिसु भी चक्रवर्ती हैं. फलप्रदानकी दृष्टिसु सब देव फलप्रदाता हैं. उन सबमें एक एक सामर्थ्य प्रभुकी स्थापित है पर प्रभु उन सब फलप्रदातान्के चक्रवर्ती फलप्रदाता है ये महाप्रभुजीको दृष्टिकोण है. वो अपनेकु समझनो चाहिये.

(स्वभावसु काम, कामसु कर्म, कर्मसु फल नियन्त्रित होवे)

या वचनामृतके अन्तर्गत फलकी दृष्टिसु चक्रवर्तिता अपन देख रहे हते. दो दिनमें जो जो इन्ट्रोडक्टरी आस्पेक्ट्स हते वो मैंने आपकु बताये. चक्रवर्तिताके कोन्टेक्स्टमें सॅन्ट्रल् आईडिया खास ध्यान रखनो चाहिये. जो भी फल है जामें अपनी फलानुभूति है वा फलानुभूतिके पीछे जैसे के मैंने आपकु बताया के अपनी कृतिको सम्बन्ध ही आवे और वो कृति कामसु गवर्न (नियन्त्रित) होवे है. कामके अलावा स्वभावको फॅक्टर भी वामें है क्योंकि जीवनमें कामको निर्णायक तत्त्व स्वभाव है. बोलचालकी भाषामें स्वभावकु अपन बहोत हल्को फुल्को लेवे है. इनको गरम स्वभाव है इनको ठण्डो स्वभाव है इनको मिलनसार स्वभाव है इनको कटखनो स्वभाव है वगैरह वगैरह. 'स्वभाव' अपने आपमें बड़े परिप्रेक्ष्यमें वपरातो शब्द है. जब अपन 'स्वभाव' केहें हैं वामें 'स्वभाव'को मतलब अपनो कॉन्स्टीट्यूशन्, पर्सनालिटी. वा स्वभावके कारण काम भी नियन्त्रित होवे है.

हमारे एक परिचित अहमदाबादके सायन्सके प्रोफेसर् हैं. वो पुष्टिमार्गीय भी है, गांधीवादी विचारधाराके भी है. वो एक दिन हमकु बता रहे हते. कोई गांधीवादी विचारधाराके शिविरमें वो गये हते. वहां उनके साथ दूसरे हरिजन कार्यकर्ता भी हते. ये व्यक्ति ब्राह्मण और इनके बापदादा मन्दिरमें मुखिया और शास्त्री भी हते. जहां गये हते वहां क्या भयो के पानीकी शोर्टेज हो गई. गरमीके दिन हते सो इन लोगनकु तकलीफ हो रही होती. इनके साथ जो हरिजन कार्यकर्ता हते उनने अचानक टॉयलेटमें देख्यो के वहां पानी आ रह्यो है. वाने कही के "पानी टॉयलेटमें आ रह्यो है तो यहांसु ले लो." प्रोफेसर्ने कही के "भाई, ये पानी मोसु पियो नहीं जावेगो." हरिजन कार्यकर्ताने कही "टॉयलेट तो वहां है और पानी यहां दूर है सेफ है." प्रोफेसर्ने कही के "भले सेफ है पर ये पानी मोसु नहीं पियो जावेगो."

अब देखो ! ये उनको स्वभाव प्रकट हो गयो. प्यास उनकु नहीं लगी हती ऐसी बात नहीं है, प्यास उनकु भी लगी हती, पानीकी शोर्टेज है वो भी समझ रहे हते, खुदकी गांधीवादी विचारधारा भी हती के छुआछूत नहीं माननी चाहिये पुष्टिमार्गीय होवेके बाबजूद, पर ऐन मौकापे आके स्वभाव दगा दे गयो. जो हरिजन कार्यकर्ता हते उनने कही के “कायकु व्यर्थमें तकलीफ पावें ? या टॉयलेटमें पानी तो आ ही रह्यो है वामेंसु पानी ले लो.” पर इनको स्वभाव गांधीवादी विचारधाराकु दगा दे गयो. तो स्वभाव कामकु भी नियन्त्रण करे है. उनकु पानी पीवेकी कामना हती प्यास हती तकलीफ हती के पानी नहीं मिल रह्यो है, पर एक बखत स्वभाव पड़ गयो वापे काबू पानो बहोत मुश्किल है.

कोई बिरले व्यक्ति ही अपने स्वभावपे काबू पा सके है. अपने यहां याही लिये महाप्रभुजी आज्ञा करे है “स्वभावविजयो भवेद् वदति वल्लभः श्रीहरेः” स्वभाव बहोत बड़ो मेजर रोल अदा करे है क्योंकि वो कामकु गवर्न करे, काम कर्मकु गवर्न करे, कर्म अपने फलकु गवर्न करे. श्रृंखला या तरीकेकी है.

(सम्प्रदायकी हानिको कारण – स्वभावपरिक्षण रहित अनुयायी बनानो)

या स्वभावके तहत कुछ साधनायें कोईसु हो पावें कुछ साधनायें कोईसु नहीं हो पावें. ये जितने भी सम्प्रदाय है वामें जो गड़बड़ी चल रही है वाको मूल कारण व्यक्तिके स्वभावके पहचानके बिना हर व्यक्ति हर सम्प्रदायकु ट्रायल् एण्ड एर्रकी मॅथड्सु साधना करनो चाहे है. आजमाके तो देख लो क्या नुकसान है ! तो आजमाके तो बहोत सारी चीजें देख लो. जहर भी आजमाके देख लो. आजमाके देखवेमें बहोत सारे नुकसान हो जावे जब अपनेकु पता नहीं होय के ये अपने स्वभावसु मेल खाती है के नहीं.

मैं समझूँ के पुष्टिमार्गकी सर्वाधिक हानि यदि कोई बातसु भयी है वो या स्वभावकु ध्यान रखे बिना आमतौरपे हर व्यक्तिकु पुष्टिमार्गमें जो दीक्षित कियो गयो वासु पुष्टिमार्गकी सर्वाधिक हानि भयी है. महाप्रभुजी स्पष्ट आज्ञा करे है “तोसों भगवत्सेवा नाहिं निभेगी यासों तोको ब्रह्मसम्बन्ध नाहिं देत हों”

महाप्रभुजीकी दिव्य दृष्टि हती के वो जीवको बीजभाव भी देख पाते. अपन बीजभाव न देख पावे पर स्वभाव देखवेकी जिम्मेदारी अपनी है है और है, पुष्टिमार्गमें दीक्षित होवेके पहले और पुष्टिमार्गमें दीक्षित करवेके पहले. पर ‘टके सेर भाजी टके सेर खाजा’ वालो दौर चल रह्यो है के जो आवे वाकु कंठी दो. वामें स्वभाव परखवेकी प्रक्रिया अपने पकड़सु छूट गई. केवल अपने शिष्य बढ़ाओ, अपने अनुयायीकी संख्या बढ़ाओ, ये सदुद्देश्य है के दुरुद्देश्य है ये तो भगवान् जाने !

पर याके तहत हर सम्प्रदाय हर तरहकी प्रतिस्पर्धामें उलझ गयो. हर सम्प्रदाय एक दूसरेसु स्पर्धा कर रह्यो है. मेरे चेला बढ़ने चाहिये, मेरे चेलान्की कमी नहीं हो जानी चाहिये. पर क्या होवे है के जा बखत या तरीकेके स्वभावके निरीक्षणके बिना अपन चेला बढ़ावें हैं वा बखत चेलान्कु सम्प्रदायको लाभ नहीं मिले है. पर चेलान्के विपरीत स्वभावन्के कारण सम्प्रदायकु भयंकर हानि हो जावे है.

भगवान् रजनीशके सम्प्रदायकी एक बहोत प्रसिद्ध बात है. सबकु ख्यालमें होयगी के शुरुआतके तबक्कामें भगवान्ने या बातपे बहोत भार दियो हतो के सम्भोगसु समाधि तक. लोग समझ नहीं पाये. लोगनने कही यासु अच्छो सम्प्रदाय कौनसो हो सके है के सम्भोगसु समाधि लगाओ. सब लोग समाधि लगावेके लिये पहुंचे. वाके कारण बहोत सारे अनुयायिन्कु ऐड्स हो गयो. अब वो अपने आश्रममें ऐड्सकी चॅकींग् बाहरी डॉक्टरके सर्टीफिकेटसु नहीं आश्रमको डॉक्टर सर्टीफिकेट दे के तुमकु ऐड्स नहीं है तो घुसवे दे, नहीं तो घुसवे ही नहीं दे. समाधिके लिये सरल बात है सम्भोगसु समाधि लगानो पर फिर वो ऐड्सकी भी तो समाधि लगेगी. ये तो लोगनने सोच्यो नहीं के सम्भोगसु समाधि लगावेमें हमारो स्वभाव समाधिको है के सम्भोगको है वो निश्चय हो नहीं पायो और वो सम्भोगके शौखिन् सब वहां समाधि लगावे चले गये. उनकी समाधि तो लगी नहीं और ऐड्स और हो गयो. अब उनने बहोत स्ट्रिक्ट ऑर्डर् बनायो है के कोई आश्रममें ऐन्टर ही नहीं हो सके. जब भी विज्ञापन आवे वामें लिखे के आश्रममें आवेकी पहली योग्यता क्या ? आपकु ऐड्स नहीं है वाको सर्टीफिकेट हमारे आश्रमके डॉक्टरसु लेनो पड़ेगो.

देखो ! ये लफड़ा क्यों भये ! क्योंकि स्वभावको अपनने ध्यान नहीं रख्यो. साधनोपदेशमें साधनको ध्यानमें रखे बिना चले बना लो तो ऐसे लफड़ा होंगें होंगें और होंगें ! हम स्वभाव समझे बिना या तरीकेकी साधनान्को उपदेश दे तो हर कोईको हर साधना

माफिक नहीं आवे. प्राचीनकालमें वामाचारकी साधनामें ये प्रकार हतो. पर प्राचीनकालमें और अर्वाचीनकालमें सबसु बड़ो अन्तर ये हो गयो के वा समय स्वभावकु परखके शिष्य बनाये जाते हते. आजकल अनुयायिन्की संख्या बढ़ावेके लिये शिष्य बनावे है. वामें स्वभावपरीक्षणको मुख्य मुद्दा गौण बना दियो गयो है. जब अपन् गौण बनावे है तो जो अनुगामी बने है वाकु लाभ नहीं होवे है. ये मॅथेमेटिकली इक्वेशन् समझके रखो के अनुगामीकु लाभ नहीं होवे है पर जा सम्प्रदायमें वो अनुगामी बने वा सम्प्रदायकु निश्चित रूपसु हानी हो जावे.

(स्वभावकी महत्ता/रहस्य)

ज्ञानमार्गीयकु जा बखत अपन् भक्तिमार्गीय दीक्षा देंगे तो कुछ न कुछ भक्तिमार्गमें ज्ञानमार्गके तूफान करेगो. ज्ञानमार्गमें जा बखत अपन् भक्तिमार्गीय दीक्षा देंगे तो ज्ञान करवेके बजाय हरeram हरकृष्ण गावे लग जावेगो क्योंकि बेसिकली वाको भक्तिमार्गीय स्वभाव है. वो ज्ञानमार्गकु भ्रष्ट कर देगो. ये एक सामान्य हकीकत है जाकु आजकी तारीखमें लोग ध्यान नहीं दे रहे है.

जैसे बोर करके जमीनमेंसु कोईने पानी निकाल्यो. अब वो बात, कुआके बजाय, सबकु बहोत अच्छी लगी. कुआमेंसु बैल खींचे और पानी पिवावे वाके बजाय बोर लगाओ पानी काढो खेतकु पियाओ. दो - चार सालमें खेत हरे भरे हो गये. सब लोगनने कही के ये तो बड़ो अच्छो कीमिया हाथमें आ गयो. सबने बोर लगाये. एकने अस्सी फुटपे लगायो तो दूसरेने डेढ़सौ फुटपे लगायो तीसरेने दोसौ फुटपे लगाये. लिहाजा आज सब कुआयें सूख गयें. जमीनको स्वभाव अपनने परख्यो नहीं. जब जमीनसु अपनने पानीकु खींचनो चाह्यो तो ये दुर्घटनायें तो होनी हैं. अब लगाओ बोर और निकालो पानी, कहांसु लाओगे ! सब रो रहे

हैं. सोचे समझे बिना या तरीकेके ऊधम करवेसु हानि ज्यादा होवे है लाभ कम होवे है. दो - तीन साल अच्छो लाभ हो गयो. जब तुम लगा रहे हो तो दूसरो क्यों छोड़ेगो वो लाभ ! वो भी लेनो चाहेगो. याके लिये बड़ी हानि हो गई. तो या तरीकेकी छीना झपटी धार्मिक सम्प्रदायनमें भी हो गई. या बातको अपनने ध्यान नहीं रख्यो.

मैं ये सारी बातें क्यों बता रह्यो हूं, क्योंकि महाप्रभुजीने श्रीकृष्णके व्यक्तित्वके कई पहलू बताये हैं. उन पहलून्के तहत महाप्रभुजी ये बात स्वीकारे हैं और प्रतिपादित करें हैं के कृष्णको एक पहलू ऐसो है के वो आपके घरको ठाकुर है. कृष्णको एक पहलू ऐसो है के वाने द्वारिका मथुरा ब्रज में कुछ लीलायें करीं. कृष्णको एक पहलू ये है के इन लीलानसु भी ऊपर वाको भगवान् होवेको भी पहलू है. वो भगवान् है, ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान और वैराग्य वाली शक्ति भी है. कृष्णको वासु भी ऊपर एक पहलू है के वो परमात्मा है. माने वो प्रत्येक प्राणीके भीतर आत्माके रूपमें बिराज्यो भयो है. वासु भी ऊपर कृष्णको एक पहलू है के वो ब्रह्म है. माने वो कण कणमें हैं.

अब इन विभिन्न पहलून्मेंसु कौनसे पहलूको अपन् ऐप्रोच् करें तो अपनेकु क्या फल मिले ! कौनसे पहलूपे भार देके कौनसी साधना करे तो अपनेकु क्या फल मिले, याकी विवेचना करते बखत महाप्रभुजी स्पष्ट केह है जैसे चौबुर्जाकी तराईमें जब आप जा रहे हो तो वा तराईपे पहुंचके आपकु पूरो चौबुर्जा दिखलाई नहीं देगो क्योंकि आप नीचे हो. जब आप चौबुर्जाको पहाड थोड़ो ऊपर चढोगे तो जितना हिस्सा तराईसु दिखलाई दे रह्यो हतो वासु कुछ ज्यादा हिस्सा दिखलाई देवे लगे. वाकी छतपे जब आप चढ़के देखोगे तो चौबुर्जा दिखलाई देगो पर जयपुरकी बाउन्डीको भी माने दस बारह माईल तकके रेडियस्में आतो सारो सीन दिखलाई दे सके है.

कोई भी स्वरूपकी या तरीकेकी कोई ग्राउन्ड वॅल्यु है कोई मिडल वॅल्यु है कोई टॉप वॅल्यु है. जा स्वरूपकी आप साधना/आराधना कर रहे हो वाकी सारी या तरीकेकी डिफरेंट वॅल्युस् हैं. तो अपन् अपने स्वभावके अनुसार वाको ऐप्रोच् कर सके है. या बातकु भूलके अपन् करें तो बिलकुल हास्यास्पद बात हो जावे. अपनो स्वभाव और जा स्वरूपकी साधना/आराधना कर रहे है वाके साथ

तालमेल बैठानो अपन भूल गये. अपने स्वभावके अनुरूप अपनेकु वाकी आराधना करनी चइये क्योंकि स्वभावके अनुरूप वाके वा पक्षकी आराधना करेंगे तो वा स्वभावसु अपनो काम भी अन्तमें गवर्न होवेवालो है. काम गवर्न होयेगो तो कृति भी गवर्न होयगी कृति गवर्न होयगी तो फल भी गवर्न हो जावेगो. तो कामसु भी कोई एक भीतरी रहस्य अपने यहां स्वभावको है.

अभी मैंने एक डॉल्फिन्के स्वभावपे एक साइन्टिफिक् स्टडीकी रिसर्चकी फिल्म देखी. वामें वो सायन्टिस्ट समुद्रके नीचे जावें. डॉल्फिन् एक ऐसी मछली है जामें मनुष्यसु ज्यादा तगड़ो ब्रेइन् है. वाके अंग ऐसे नहीं है के वो ब्रेइन्को पूरो फायदा उठा सके करके वो बिचारी मछलीकी तरह समुद्रमें जिये पर मनुष्यसु भी ज्यादा वाको ब्रेइन् पॉवरफुल् है. वाकी स्टडी जब समुद्रमें नीचे जाके करी तो वामें वो रोजाना दो चार घण्टा नीचे समुद्रमें जाके कोलोनीमें रहे है. एक डॉल्फिन्सु वाने दोस्ती करी और रिसर्च करी के वाको स्वभाव क्या है, कैसे वो शादी करे है, कैसे माइग्रेट करे है, कैसे बच्चाकु पाले, एक दूसरेके साथ कॉम्युनिकेट कैसे करे ऐसी बहोत सारी रिसर्च वाने करी. वाके बाद पाछो वो अमरीका गयो. चार छ महीनाके बाद पाछो वो तलाश करवेके लिये वाही स्पोर्ट्पे आयो और जब वो वाके अन्दर गयो तो वाके मनमें एक शंका भयी के जा डॉल्फिन्सु मैंने दोस्ती करी वो डॉल्फिन् अब मोकु पहचान पावेगी के नहीं ? वाने कुछ बांध दियो हतो वाके कारण वो डॉल्फिन्कु पहचान गयो पर वो डॉल्फिन् वाकु नहीं पहचान पा रही हती. देखो, मनुष्यसु ज्यादा बुद्धि होवेके बाबजूद भी डॉल्फिन् वाकु पहचान नहीं पायी. अन्तमें वाने स्टडी करी. वामें वाने ये देख्यो के डॉल्फिन्के पहचानवेके कुछ और तरीका है. जब डॉल्फिन्कु कोई समुद्रमें पहचानको मिले तो वाके सामने वो नाचे. अपन् वैसे ढंगसु नाचे तो वो अपन्कु पहचान जावे. सचमुचमें वो दृश्य अपन् देखें तो अपनेकु रोमांच हो जावे. डॉल्फिन् जैसे नाच रही हती वैसी अदामें जब ये नाच रह्यो हतो तब डॉल्फिन् पहचान गई.

अब देखो ये शुद्ध स्वभावकी बात है. जहां पहचानवेकी बात है वहां मनुष्यके पास अपने पहचानवेके टेगिंग है. अपन् समझें के अपन् बड़े बुद्धिमान हैं के अपन्ने टेग लगा दियो, जैसे एअरपोर्टपे सामानपे टेग लगा दे, ट्रांस्पोर्टपे सामानपे टेग लगा दे. यहांसु सामान चढ़ा दो और वहां टैगके हिसाबसु सामान

उतार ले. अपन् अपने आपकु बुद्धिमान समझे है. अब डॉल्फिन् नहीं पहचान सके तो अपन्कु लगे के मनुष्य जितनी बुद्धि वामें है ऐसे कह रहे है पर बात सच्ची नहीं है. दरअसल बात ऐसी नहीं है. हरेककी अपने अपने स्वभावके अनुरूप टेगिंग करवेकी एक पद्धति है. डॉल्फिन्को नचकनो स्वभाव तो वो अपने दोस्तकु नाचके ही पहचान सके है, आर्टिफिशियल् टेगसु नहीं पहचान सके है. वो जैसे नाचे वैसे नाचके बता दो तो बस फिर पहचान जावेगी. नहीं नाचे तो तुम दोस्त भी हो तो नहीं पहचान पावेगी. जैसे कुत्ता सूंघके पहचाने, देखके नहीं पहचाने. कुत्ताकु देखके समझ नहीं पड़े के ये वो ही आदमी है के दूसरो आदमी है. पांच साल पहले भी यदि कुत्ताने आपको सूंघ लियो हुवे तो कभीभी आपको सूंघके पहचान सके.

(स्वभाव कृति और फल को सम्बन्ध)

सबके अपने अपने स्वभावके अनुरूप कुछ पहचानवेके तरीका हैं. तो स्वभाव अपने काममें कितनो बड़ो रोल अदा करे है ! वो स्वभाव अपनी साधनाकु भी प्रभावित करे है. महाप्रभुजी एक बात केह है “ और देवतान्के साधनान्के साथ नियत सम्बन्ध है.” मतलब यहां तो पता नहीं मोकु के ऐसे देवता है के नहीं पर दक्षिणमें ऐसी देवीयां हैं के उन देवीन्की पूजा, उनकु गालियां देके ही होवे है, उनकी स्तुति करके नहीं होवे. जा दिन उनकी पूजाको उत्सव आवे वा दिन सब भक्त इकट्ठे होवें और ऐसी ऐसी गन्दी गालियां देवें के अपने कानके कचरा साफ हो जावे. वो देवी गाली खाके प्रसन्न हो जावे. अपने अपने स्वभावकी बात है. ऐसी गाली दूसरे देवकु दोगे तो वो देव नाराज हो जावेगो. वाको स्वभाव नहीं है गाली खावेको. अपनेकु ये बात विचित्र लगेगी के गालीसु कैसे प्रसन्न हो जावे ?

पर मैंने अनुभव कियो है. जब मैं बनारस गयो हतो तब अक्सर देखतो हतो के एक आदमी वहांसु आ रह्यो है एक आदमी यहांसु आ रह्यो है. ये यहांसु बुरी बुरी गाली दे रह्यो है वो वहांसु बुरी बुरी गाली दे रह्यो है ये सुनके अपन्कु लगे के अब चक्कु छुरा चलेंगे, पर जब एकच्युअली पास आवे तो गले लग जावे. वहांकी दोस्तीको इजहार ही गाली देनो है. वहांकी तहजीब ही ऐसी है.

एक फनी बात बताऊं. आपने भी शायद पढ़्यो होयगो. एक मनहर करके हास्य कवि हतो, जो बम्बईमें ही रहतो हतो. अक्सर वाकी कवितायें बहोत छपती हतीं. हमारी और वाकी अच्छी जान-पहचान हती. अब क्या होवे के वो कहीं भी रास्तामें मिल जावे तो जोरसु हसके बोलते “अरेSSSSSSअरे श्याम बाबा हाSSहाSSहा” मैं भाग जातो वहांसु के कहां फंस गये! लोग अपनेकुं देखें के चक्कर क्या हो गयो! अपन् कोई इतने हास्यास्पद है के कोई अपनेपे रास्तामें इतने जोरसु हसे! मेरे घरपे आतो तो मैं मिलतो वासु, पर रास्तापे मैं फुटपाथ बदल लेतो. मनहरके सामने जानो श्याममनोहरकी शक्ति नहीं है. समझमें आई ना बात! वाको ये स्वभाव है और वो स्वभाव मोकु रास नहीं आतो हतो. ऐसी बात है के अपनेकु हसनो भी बुरो लगे जब स्वभावके अनुरूप नहीं होवे और गाली भी कोई बखत दोस्तीको इजहार लगे.

मूलमें ये कामनाको खेल नहीं है व्यक्तिके अपने स्वभावको खेल है. व्यक्तिको स्वभाव वा तरीकेकी कामना प्रकट करे, कामनाके कारण फिर वा तरीकेकी कृति होवे, कृतिके कारण अपनकु वा तरीकेको फल मिले है.

(कृष्णकी चर्कवर्तिता जीवके स्वभावानुसार प्रकट होनो)

महाप्रभुजी अपनेकुं एक बात समझावें हैं के और देवन्में तुम्हारे हर स्वभावको कोप्अप् करवेकी शक्ति होवे के नहीं होवे पर कृष्ण ब्रह्म भी है परमात्मा भी है भगवान् भी है लीलावतारी है और तुम्हारे घरमें बिराजतो तुम्हारे घरको ठाकुर भी है. इतने मल्टी डायमेशनल् होवेके कारण तुम कैसे भी स्वभावको लेके जाओ, ज्ञानके स्वभावकु लेके जाओ कामके स्वभावकु लेके जाओ क्रोधके स्वभावकु लेके जाओ “गोप्यः कामाद्, भयात् कंसो, द्वेषात् चैद्यादयो नृपाः, सम्बन्धाद् वृष्णयः, स्नेहाद् यूयं, भक्त्या वयं विभोः” (भाग.पुरा.७।१।३०) भगवान् हर तरीकेके स्वभावकु रिस्पोन्स् दे सके है.

फलदातान्में भगवान् चक्रवर्ती भगवान् है याको गलत अर्थमें मत लीजियो. अवतार लीलाके जो अलग अलग रंग हैं उनकु तुलनात्मक दृष्टिसु समझावेके लिये कह रह्यो हूं. शूर्पणखाकी दृष्टि रामपे बिगड़ी. रामने शूर्पणखासु शादी नहीं करी पर वा बिचारीकी नाक ओर कटवा दी. अब कुब्जाकी दृष्टि बिगड़ी तो

ठाकुरजीने कुब्जाकु भी स्नेह कर लियो, नहीं तो कुब्जाकु कौन देखे? कुब्जा=कुबड़ी. कुब्जाकी दृष्टि ठाकुरजीपे बिगड़ी तो आपने कही के यदि ऐसो स्नेह है तो मैं स्नेह करवे तैयार हूं. तो या तरीकेकी ओपनूनेस् है. हर स्वभावके प्रति वा तरहसु खुल पावेकी कृष्णमें सामर्थ्य है. “मल्लानाम् अशनिः, नृणां नरवरः, स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्, गोपानां स्वजनो, असतां क्षितिभुजां शास्ता, स्वपित्रोः शिशुः, मृत्युः भोजपतेः, विराड् अविदुषां, तत्त्वं परं योगिनां, वृष्णीनां परदेवता इति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः” (भाग.पुरा.१०।४३।१७) ‘मल्लानां अशनिः’=जो पहलवान हते उनकु लग्यो के कोई बिजली जैसी फुर्तीवालो पहलवान आयो. ‘नृणां नरवरः’=जो मनुष्य वहां खड़े हते उनकु लग्यो के बहोत ही सज्जन पुरुष आयो है. ‘स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्’=स्त्रिअनकु ठाकुरजी साक्षात् कामदेव लगे. ‘गोपानां स्वजनः’=गोपनकु ऐसे लगे ही नहीं के कोई एक्स्ट्राओर्डिनरी व्यक्ति है, ये तो हमारे जैसो ग्वाला है. असतां क्षितिभुजां शास्ता’=जो दुष्ट असत् राजा हते उनकु लग्यो के हमकु दण्ड देवेवालो हमसु भी खूंखार राजा आ गयो. ‘स्वपित्रोः शिशुः’=देवकी वसुदेवकु लग्यो के ये तो हमारो बच्चा आयो है. ‘मृत्युः भोजपतेः’=कंसकु लग्यो के सामने साक्षात् मृत्यु चली आ रही है. ‘विराड् अविदुषाम्’=जो अविद्वान लोग हते उनकु भगवान् खूनसु सजे वस्त्र धारण किये भये अच्छे नहीं लगे. ‘तत्त्वं परं योगिनाम्’=और योगीनकुं लग्यो के ये तो साक्षात् परम तत्त्व आ गयो. कितने सारे रूपमें, कितने सारे स्वभावके अनुरूप, प्रभु उनके सामने प्रकट हो सकें हैं. या अर्थमें महाप्रभुजी कृष्णको फलदातृत्वको चक्रवर्तित्व मानें हैं. अन्य देवतान्को फलदातृत्व नियत है. कृष्णने जा देवताकु जा फलदानके लिये नियत कर दियो है वा तरीकेको फलदातृत्व वाको है.

(साक्षिभावकी महत्ता ज्ञानमार्गमें हो सके)

आजकल बहोत सारे ज्ञानमार्गीय लोग साक्षिभावकु बहोत प्रधानता देवे है. साक्षिभावको मतलब सरलतासु समझो. कोई दृश्य अपने सामने है. दृश्यकु नहीं देखनो ये एक प्रकार है. दृश्यकु देखवेमें उलझ जानो ये दूसरो प्रकार है. ‘साक्षिभाव’को मतलब है के दृश्यमें उलझे बिना दृश्यकु देखनो. अक्सर अपन् देखें के अपनो कोई सगो-सम्बन्धी बीमार पड़ गयो और अपन् वाकु हॉस्पिटलमें ले जावे. अपनो सगो-सम्बन्धी बीमार पड़ गयो है वाके दृश्यमें अपन् उलझे भये हैं.

अब डॉक्टर, जो दिन – रात ओपरेशन करे है, वो वामें उलझयो भयो नहीं रहे. अपन् टैन्स् हो जावे पर डॉक्टर टैन्स् नहीं होवे. अपन् टैन्स् होके घड़ी – घड़ी वाकु पूछे. कई बखत वो डिस्टर्ब्ड हो जावे के घड़ी – घड़ी क्यों माथा चाट रहे हो ! ठीक हो जावेगो. अब बीमार व्यक्ति डॉक्टरको सगो नहीं है अपनो सगो है. अपने सगो होवेसु वाकी बीमारीमें अपनी मानसिकता उलझी रहे, डॉक्टरकी मानसिकता उलझी भयी नहीं रहे. यदि डॉक्टरको कोई सगो बीमार पड़े तो डॉक्टरकी भी वोही स्थिति होवेगी, जो अपनी स्थिति है. तो जहां अपन् अपनो सगोपन नहीं मान रहे है वहां तो हर व्यक्तिकु धीरज होवे है.

एक सामान्य बात बताऊं. यदि बिल्ली चूहाकु खाती होवे तब अपनो साक्षिभाव रहे. बिल्लीको काम खानो है चूहाको काम खवा जानो है. अब शेर अपने कोई परिवारके सदस्यकु खातो होवे तो क्या अपन् वो साक्षिभाव निभा सकेंगे ! नहीं निभा सकेंगे. अपनो साक्षिभाव निभे नहीं वाको मूल कारण है के जो दृश्य है वा दृश्यमें अपनी ममता नहीं है. समझो के अपनने कोई पोपट पाल्यो होय और वाकु बिल्ली खाती होवे तो अपन् उलझ जावें क्योंकि अपनने पाल्यो है करके वामें अपनी ममता हो जावे.

एक व्यक्ति चले गये हते वा बखत दशाके घाटमें उनके बेटायें रो रहें हतें और जमाईकु साक्षिभाव आ गयो. जमाईने अपने सालानकु कही के क्यों रो रहे हो ? तुम्हारे पिता चले गये और अब तुम्हारी बारी आ रही है या लिये रो रहे हो ? मैंने कही के ये जमाई है. वैसे संस्कृतमें और हिन्दीमें भी जमाई शब्द जीमवेसु बन्यो है. जीमे सो 'जमाई', जमति इति 'जामाता'. तो मोकु भी बड़ी चिन्ता भयी के ससुरके मरवेपे इनको बड़ो साक्षिभाव है पर एक रहस्य आपको बताऊं. वो जमाई चले गये और सालायें सब जिन्दा हैं. अक्सर आदमी दूसरेके दुःखमें परायो माने है तो साक्षिभाव तुरत पैदा कर ले. जब खुद दुःखी होवे तो साक्षिभाव नहीं आवे. अब इतनो साक्षिभाव तो हर व्यक्ति, संसारी अथवा बड़ेसु बड़े क्रूर या बड़ेसु बड़े संत, इन सबनमें बाय् डिफोल्ड रहे है.

जो साधनाके तहत साक्षिभाव है वो यासु थोड़ो आगे बढ़के है. वो साक्षिभाव ऐसो है के जहां आपकी अहंता और ममता कु उलझावेवालो दृश्य है

वहां भी यदि आप साक्षिभाव डॅवलप् कर सको तो वो ज्ञानमार्गकी और वैराग्यमार्गकी एक उच्चतम अवस्था मानी जावे. क्योंकि अपनी चेतना, रूप रस गन्ध स्पर्श सु या क्रियान्सु डायरेक्ट सम्पर्कमें आवे नहीं.

(सुख – दुःखानुभूतिकी प्रक्रिया)

अपनी चेतना, इन सबनसु सम्पर्कमें आवे है अपनी ज्ञानेन्द्रियनके द्वारा या कर्मेन्द्रियनके द्वारा. जो भी क्रियायें हैं उनके साथ अपनी चेतना कर्मेन्द्रियके द्वारसु सम्पर्कमें आवे है. जैसे एक बांध होवे है. बांधमेंसु एक नहर होवे है. नहर खेतसु जुड़ी होवे है. वो बांधको पानी नहरमें आवे, नहरमेंसु निकलके खेतमें जावें, ऐसे अपनी चेतनापे जो बांध है वाको पानी अपनी इन इन इन्द्रियनके नहरमेंसु निकलके विषयनके खेतमें जावे है. विषयनके खेतनमें जा रह्यो है और वहां कुछ अच्छी या बुरी फसल पक रही है. सुख या दुःख को अनुभव करके अपनेकु सुख या दुःख होवे. जैसे खड़ी फसल जल जावे तो किसान दुःखी हो जावे. अच्छी फसल आ जावे तो किसान सुखी हो जावे, ऐसे ही जा बखत अपनी चेतना रूप रस गन्ध स्पर्श के खेतमें इन्द्रियनकी प्रणालीसु गई वा खेतमें यदि अच्छी फसल हो गई तो अपन् सुखी हो जावे. अपनकु रूप देखनो है और रूप अच्छो दीख गयो, गन्ध अच्छी चाहिये और गन्ध अच्छी मिल गई तो सुख हो जावे. कष्ट देवेवाले रूप है कष्ट देवेवाली जो ध्वनि है कष्ट देवेवाले जो स्पर्श है उनसु अपनी चेतना क्लेश अनुभव करे.

अपन् यों समझें के अपनी नहररूपी इन्द्रियनकी प्रणालीसु चेतनाको प्रवाह विषयके खेत तक बह्यो है और फसल खराब हो गई तो दुःख होवे और अच्छी भयी तो सुख होवे. सुख – दुःखको द्वन्द्व निरन्तर अपनेकु अनुभव होतो रहे. अब यामें जा बखत अपन् पार्टी होवें तो अपन् साक्षिभाव नहीं रख सकें. वा जमाईने अपने सालानके प्रति साक्षिभाव रख लियो. देखो बात तो जमाईने खोटी नहीं कही हती, शत प्रतिशत सच्ची कही हती के बाप गये तो अब बेटाकी बारी आयेगी. बात खोटी नहीं कही हती पर कही गई हती साक्षिभावसु.

(साक्षिभावके दो कारण १.निर्ममता २.चेतनाको विषयनसु उर्ध्वगमन)

जावेवालेके लिये कष्ट अनुभव नहीं होनो वामें दो कारण हो सकें हैं. एक तो आपकी निर्ममता और दूसरी आपकी साक्षिता. जब आप निर्मम हो वासु भी आप कष्ट अनुभव नहीं कर सको और दूसरो आपने सचमुचमें अपनी चेतनाको विकास कियो है के इन्द्रियन्की प्रणालीसु आपकी चेतना विषयन्की खेतीमें जा रही है वा बखत आप यों समझो के मैं यामें नहीं जा रह्यो हुं. जैसे अपनने बट्टी जोड़ी वाके कारण प्रकाश तो यहां पैदा भयो पर पहुंच्यो वहां तक. या प्रकाशके पहुंचवेमें क्या प्रकाश यहां खतम हो रह्यो है ! खतम तो नहीं हो रह्यो है. जो पैदा हो रह्यो है वो ही वहां तक पहुंच रह्यो है. तो जो पैदा हो रह्यो है वो वहां तक पहुंच रह्यो है वाके कारण यदि अपन् ऐसे समझ लें के मेरी चेतना वहां तक कोई प्रणालीके कारण जा रही है पर मेरी चेतनाकु वासु कुछ लेनो देनो नहीं है.

पर दृश्य दीख रह्यो है ये कब संभव हो सके जब अपन् अपनी चेतनाकु इन्द्रियन्सु अलग करके देखवेकी सिफत लावें. अपनी चेतना अपनी आंखके द्वारा विषय तक गई तो वो रूपग्राही हो जावेगी. कानके द्वारा विषय तक गई तो वो शब्दग्राही हो जावेगी. नाकके द्वारा अपनी चेतना विषय तक गई तो गन्धग्राही हो जावेगी. जीभके द्वारा गई तो वो रसग्राही हो जावेगी. चमड़ीके द्वारा गई तो स्पर्शग्राही हो जावेगी. यामें सुख दुःख चेतनाकु हो रह्यो है.

(चेतनाके स्वभावके दो पहेलू १.सहज २.औपाधिक)

जैसे या बल्बपे ब्लू कागज लगा दो. वाके लगावेके बाद ब्लू लाईट पड़ेगी. वो रंग प्रकाशको नहीं है. प्रकाशको स्वभाव नहीं है. पर प्रकाश जिन द्वारसु निकल्यो है उन द्वारमेंसु निकलवेके कारण वो वाको एक्वायर्ड (औपाधिक) स्वभाव है वाको खुदको स्वभाव नहीं है. बहोत सारे अपने एक्वायर्ड स्वभाव होवें. बहोत सारे अपने सहज स्वभाव होवें. जैसे चेतनाको बाहर जानो एक स्वभाव है पर जिन द्वारन्सु जा रह्यो है उन द्वारन्को रंग अपना लेनो वो वाको खुदको स्वभाव नहीं है. वो द्वार और चेतना आपसमें मिलवेके कारण बनतो स्वभाव है. या लिये मैंने आपकुं कही के शुद्ध सोनाको घाट अपन् घड़ नही सके पर वामें कुछ मिला दें तो वामें घाट घड़्यो जा सके. तो ऐसे शुद्ध चेतना, विषय तक जा नहीं पावे. चेतनाकु कुछ एप्रेटस् चाहिये.

(चेतना और इन्द्रियन्के मेलजोलसु विषयन्में व्यापृतता)

जैसे मैं या माइक्के आगे बोल रह्यो हुं. साउन्डकु कँच् करनो माइक्को स्वभाव है या इलेक्ट्रिसिटीको स्वभाव है ? यदि माइक्को स्वभाव है तो स्वीच् ऑफ कर दो, तब भी होनो चाहिये. यदि इलेक्ट्रिसिटीको स्वभाव है तो माइक्कु तोड़ दो. तब भी इलेक्ट्रिसिटी साउन्डकु कँच् करनी चाहिये. तब ये अपनेकुं समझमें आ जावे के न तो ये माइक्को स्वभाव है न ये इलेक्ट्रिसिटीको स्वभाव है. इलेक्ट्रिसिटी जा बखत माइक्में आ रही है वा बखत माइक् + इलेक्ट्रिसिटीके एल्योको (मिश्रणको) ये स्वभाव है. न ये इलेक्ट्रिसिटीको स्वभाव है और न ये माइक्को स्वभाव है. ये दोनोंके मेलजोलसु पैदा होतो स्वभाव है.

ऐसे अपनी चेतनाको स्वभाव नहीं है के अपन् विषयन्में व्यापृत होवें. अपनी इन्द्रियन्को भी स्वभाव नहीं है. न ये आंखको स्वभाव है क्योंकि ये आंख तो बच जावे पर आदमी मर जावे तो भी वाकु दीखे ! कान तो बच जावे पर मर जावे तो सुनाई दे सके. क्षणको फेर होवे के आदमी जिन्दो है और वाके मुंहमें गंगाजल डालो तो पेटमें जायगो और एक मिनटको फेर पड़ गयो प्राण निकल गये और गंगाजल डालो तो पेटमें जायगो ही नहीं, पाछो बाहर निकलके आयेगो. एक मिनटमें इतनो फेर पड़ जावे क्योंकि ये स्वभाव न तो चेतनाको है न इन्द्रियन्को है. पर इन्द्रिय और चेतना को जो एल्यो बने है वाको स्वभाव है.

(सुख - दुःखकु सहन करवेसु साक्षिभाव होवे)

यामें साक्षिभाव इन्द्रियमें लानो के चेतनामें लानो ! भगवान्ने एक बात गीतामें कही के “इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ब्रह्मणि आधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः. लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिव अम्भसा (भग.गीता ५।१९-१०) रूपकु देखनो चेतनाको स्वभाव नहीं है आंखको स्वभाव है. ध्वनिकु सुननो कानको स्वभाव है चेतनाको स्वभाव नहीं है, पर कान तब तक नहीं सुन सकेगो जब तक कानमें चेतनाको प्रवेश नहीं होवे. चेतनाको वहांसु प्रवेश होवे तब कान सुन सके. चेतनाको सम्पर्क आंखसु होवे तो आंख देख सके.

यदि आदमी यामें निरन्तर ऐसी साधना करे के जो मोकु आंखसु दीख रह्यो है वो मोकु नहीं दीखके सिर्फ आंखकु दीख रह्यो है. ठण्ड लग रही है वो मोकु ठण्ड नहीं लगके चमड़ीकु ठण्ड लग रही है ऐसे निरन्तर अपनू या तरीकेको एक डिटेचमेन्ट डेवलप करे, जैसे जमाईने सालान्के साथ अपने आपकु अलग महसूस कियो ऐसे अपनू इन्द्रियसु अलग महसूस करे के ये सालायें हैं इनके साथ चेतना अपनी जमाईकी तरह बर्ताव करे तो साक्षिभाव पैदा हो जावे. तब ये बात सम्भव हो सके वरना तो ये बात सम्भव हो नहीं सके क्योंकि जब अपनू इनकु अपनो मानें जैसे मेरी आंखकु मैं मेरी मानु, मेरे कानकु मैं मेरो मानु मेरी नाककु मैं मेरी मानु तो जो कुछ आंख कान नाक त्वचा सु गृहीत हो रह्यो है वो मोकु गृहीत हो रह्यो है. वाके द्वारा होते दुःख-सुख अनुभव मैं कर रह्यो हूं तो ये भाव भी पैदा होवेगो, पर साक्षिभाव पैदा नहीं होवेगो.

एक बात ध्यानसू समझो. बच्चाकु अपनू जैसे ही डॉक्टरके पास ले जावे और वो इन्जेक्शन लगावेके लिये सुई निकाले तो बच्चा कोहराम मचा दे. तो बच्चाकु क्या सुई ज्यादा चुभे और अपनेकु कम चुभे ? ऐसो तो नहीं है. जितनी सुई अपनेकु चुभे है उतनी ही बच्चाकु चुभे है. अपनू ऐसो कोहराम क्यों नहीं मचावें ! क्योंकि अपनूने एक समझ डेवलप करी है के या इन्जेक्शन लेवेसु मोकु जो रोग है वा रोगपे काबू आयेगो और मैं स्वस्थ हो जाऊंगो. सुईकी चुभन सहन कर लेनी है बस इतनी समझ डेवलप होवेके कारण अपनू डॉक्टरके आगे हाथ कर दें के लगा दे इन्जेक्शन. ये समझ बच्चाकु नहीं होवे है करके बच्चा सुईकी चुभनकु ज्यादा माने और वो ज्यादा कोहराम मचावे. जब बच्चाकु यह समझ आवे लग जावे के स्वस्थ होनो है तो ये जरूरी है और इतनी चुभन तो सहन करनी पड़ेगी. जैसे ही अपनूने सहन करवेकी सिफत हासिल की तो थोड़ो थोड़ो साक्षिभाव आनो शुरू हो जावेगो.

मेरे साथ एक चैतन्य सम्प्रदायको गौडिया साधु पढ़तो हतो. वो साधु भी नहीं हतो. ऐसे ही घर छोड़के निकल्यो भयो वैरागी हतो. हम लोग एक दिन नाशिकमें तपोवनमें घूम रहे हते. वाकु सांपने काट खायो तो वाने वा हिस्साकु ही काट दियो. मैं बोल्यो के “भाई क्या करे है ?” तो बोल्यो के “मोकु मरनो थोड़े ही है ?” ये जहर फैले वाके पहले वाने उतनो हिस्सा ही काट दियो. अब देखो काटवेमें दर्द नहीं भयो होयगो ? दर्द तो नेचरली भयो होयगो, पर एक बखत

अपनूने निर्णय कियो के ये कटवेको दर्द और प्राण जावेके दर्दमें यदि प्राण जावेमें अपनोभाव ज्यादा है तो साक्षिभाव तुरत आ जावे.

किशनगढ़के महाराज मदनसिंहजीके बारेमें ऐसे कही जावे के वो इंग्लैण्डमें पोलो खेलवे गये. पोलो खेलते खेलते घोड़ेपेसु गिरके उनकी हड्डी टूट गई. वा जमानामें क्लोरोफोर्म देके बेहोश करते हते. डॉक्टरने कही के क्लोरोफोर्म देके बेहोश करके हड्डी ठीक करेगे. उनने कही के ‘मैं काई बानियां छां ? क्षत्रिय राठौड़ हां !काटो.’ क्लोरोफोर्म नहीं लियो तो क्या दूख्यो नहीं होयगो ? दुख्यो तो जरूर होयगो. उनकु कम दर्द होवे और अपनेकु ज्यादा होवे है ऐसो नहीं है, पर एक बखत अपनूने अपनो अहंकार ऐसो विकसित कियो के हम क्षत्रिय हैं अंग कटनो-कटानो हमारे अंगको धर्म है. तो फिर ठीक है ऑपरेशन करो कोई चिंताकी बात नहीं है. अब अपनू मान लें के कटनो तो कछु चहिये ही नहीं, तो फिर साक्षिभाव खो जावेके कारण दर्द ज्यादा होवे.

महर्षि दयानन्दके जीवन चरित्रमें आवे है के वो ऋषिकेशमें उघाड़े बदनसु बैठे भये हते. एक अंग्रेजने जाके उनसु पूछी “क्या आपकु ठण्ड नहीं लग रही है !” दिसम्बर जनवरीको महीना हतो. दयानन्दने कही के “तुमकु ठण्ड नहीं लग रही है ?” वाने कही के “लग रही है.” तो दयानन्दने कही के “तुम्हारे मुंह क्यों खुलो है ?” अंग्रेजने कही के “मेरे मुंहकु ठण्ड सहवेकी आदत है.” तो दयानन्दने कही के “ठण्ड सहवेकी आदत तुम्हारे मुंहकु है पर मेरे सारे शरीरकु आदत है.” चमड़ीकु ठण्ड तो बराबर ही लगे है. मुंह अपनू खुलो रखे करके मुंहकु आदत होवे. बदनकु ढकके रखे तो बदनकु आदत नहीं होवे और भयंकर त्रास हो जावे. मुंहकु क्यों नहीं त्रास होवे ? याको कारण अपनूने वाकु खुलो रखके ठण्ड सहवेको अभ्यास डाल लियो है. कष्ट सहन करवेको अभ्यास जा बखत व्यक्ति डाले वा बखत वामें साक्षिभाव होवे मूल मुद्दाकी बात ये है.

यदि अपनू कष्ट सहनको अभ्यास नहीं डालें, जैसे छोटे बच्चाकु मिर्ची खवाके देखो तुरत रोयगो. धीरे धीरे मिर्ची खवाते-खवाते एक तबक्का ऐसो आ जावे के मिर्ची नहीं डाली होये तो रसोई बेस्वाद लगे. मिर्चीकी तीखासके प्रति अभ्यासके कारण साक्षिभाव आ जावे. एक ठिकाने हम अपने भीतरियाजीकु लेके गये हते. उनकु कुछ तकलीफ हती. यात्रामें हम कोई पचास-साठ लोग हते. तो

घड़ी - घड़ी कोई दाल शाक मांगे नहीं वाके लिये वो क्या करते लाल हरी काली तीनों मिर्च दालमें मिला देते. वो दाल खाते ही हिचकी आवे. मैंने भीतरियाजीसु कही के “यामें कोई चौथी मिर्च भी मिला देते !” तो वाने कही “कृपानाथ ! चौथी मिर्च होती तो मिला नहीं देतो !” या दालकु खायगो कौन ? उनसु ज्यादा दाल मांगे करके वो तीनों मिर्च मिला देते जासु कोई खावे ही नहीं. पर हमारी यात्रामें दो - चार ऐसे शोखिन् भी हते जो केहते के भीतरियाजी मस्त दाल बनावे. यदि अपनेकुं तीनों तरहकी मिर्ची खावेकी आदत है तो अपनेकुं लगे के दाल मस्त बनी है. मोकु तो हिचकियें आती हती. समझमें नहीं आतो के क्यों ऐसी दाल बन रही है ?

आदमी जा बखत सहन करवेकी सिफत हासिल करे वा बखत साक्षिभाव आवे. सहन करवेकी सिफत हासिल नहीं करे तो साक्षिभाव आनो मुश्किल है. अपनी चेतना विषयमेंसु पैदा होते सुख - दुःखनकुं सहन करवे लग जावें. याही लिये भगवान् गीतामें आज्ञा करें हैं “**दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः वीतराग - भय - क्रोधः स्थितधीर्मुनिः उच्यते**” (भग.गीता. २।५६) सुखकु भी सहन करनो आनो चाहिये. दुःखमें अपन् भाग - भाग करें. सुखमें लोहचुम्बककी तरह जा विषयसु सुख मिल रह्यो है वासु अपन् जबरदस्ती चिपको रेहनो चाहें. अन्तमें ये दोनों ही बातें अपनी चेतनाके मूल स्वभावसु कुछ विपरीत है. क्योंकि चेतनाकु विषयसु कुछ लेनो - देनो नहीं है जैसे इलेक्ट्रिसिटीकु साउन्डसु कुछ लेनो - देनो नहीं है. इलेक्ट्रिसिटीकु माईक्सु लेनो देनो है. माईक्सु साउन्डसु लेनो - देनो है. यदि इलेक्ट्रिसिटी माईक्सु छुट्टी पड़ गई तो साउन्डकु कॅप्चर नहीं करेगी. इलेक्ट्रिसिटी पंखासु छुट्टी पड़ गई तो इलेक्ट्रिसिटीमें मूवमेंट नहीं है. पंखामें आ गई तो पंखाको मॅकेनिज़म् ऐसो है के वो मूव (गति) करे है. वामें मोटर मूव करे है या लिये इलेक्ट्रिसिटी भी मूव करे है

(चेतना और इन्द्रियन् के संयोगसु सुख - दुःख होवे)

ऐसे चेतनाको स्वभाव नहीं है के वो घूमे. चेतना तो एक निरन्तर प्रवाह है. यदि सक्थुलर् मूवमेंटमें कोई मॅकेनिज़म् है तो चेतना भी सक्थुलर् मूवमेंट करवे लगेगी. यदि प्रकाशमें आ गई तो प्रकाश पैदा करेगी. माईकमें आ गई तो साउन्ड पैदा करेगी. टी.वी में आ गई तो सीन् पैदा करेगी. टी.वी अपने आपमें सीन् पैदा

नहीं करे. न इलेक्ट्रिसिटी अपने आपमें कोई सीन् पैदा करे. पर इलेक्ट्रिसिटी जा बखत टी.वीके रिलेमें जावे तो वहां सीन् पैदा होवे.

जितने भी सुख - दुःख है वो न तो शुद्ध चेतनाको स्वभाव है और न शुद्ध इन्द्रियको स्वभाव है, एलोयको स्वभाव है. पर अपन् साक्षिभाव करें के मेरो यामें कुछ लेनो देनो नहीं है, जमाई और साला जैसो, तो तुरत अपनेकुं साक्षिभाव आ जावे.

(साक्षिभावके लिये साधनाकी आवश्यकता)

या साक्षिभावके कारण ज्ञानमार्गमें एक बात बतायी है के जो ज्ञानी है वो स्थितधी हो जावे. मतलब वाकी बुद्धि स्थिर हो जावे. सुख - दुःखमें वो चलायमान नहीं होवे. अपन् सुख - दुःखमें चलित हो जावें. ज्ञानी माने पुस्तकी ज्ञानी नहीं, पर जाने ज्ञानकी साधना करी है के जो इन्द्रियसु दीख रह्यो है वो मोकु नहीं दीख रह्यो है. जो आंखसु या कानसु दीख रह्यो है या सुनाई दे रह्यो है वो मोकु न दीखे है न सुनाई दे है. वो आंख कान कु सुनाई दे रह्यो है. जैसे डॉक्टर इन्जेक्शन लगा रह्यो है वो मोकु नहीं लगा रह्यो है पर हाथकु लगा रह्यो है. ज्ञानीने ऐसी साधना करी होवे करके साक्षिभाव डेवलप् हो जावे. यामें कोई ज्ञानीकु सुर्खाबको पंख है ऐसो मत सोचियो. अपन्ने वो साधना नहीं करी है करके अपन्कु असंभव बात लगे है. थोड़ी बहोत साधना तो अपन् सब करें ही हैं जैसे इन्जेक्शनमें. कई बातन्में वा तरीकेकी साधना करें ही हैं. वो साधना करें तो अपन्कु साक्षिभाव आवे, नहीं तो नहीं आवे. प्रॅक्टिकली जैसे मैंने दयानन्दकी कथासु बताई. छोटे बच्चान्की ये पगतलीकी चमड़ी देखो. कितनी कोमल नरम और गुलाबी होवे है ! वाकु थोड़ो भी पैरमें चुभे तो गुदगुदी ज्यादा आवे. अपनेकुं क्यों ज्यादा नहीं आवे ? निरन्तर चल चलके चमड़ीमें अपन्ने साक्षिभाव पैदा कर लियो. लोग यों समझें के ये चमड़ी मर जावे है. मर जाती तो कटवेके बाद दुबारा नहीं उगती. चीरा पड़े तो पाछी रुझ भी जावे. मरी नहीं, जिन्दा है. पर चलवेके कारण या चमड़ीमें साक्षिभाव पैदा हो गयो है. थोड़ोसो धूलको कण भी आंखमें पड़्यो तो आंखकु असह्य हो जावे. पैरमें मोटे मोटे नुकीले पत्थर भी चुभ जावें तो भी अपनेकुं पैरमें कुछ नहीं होवे है. क्योंकि यामें साक्षिभाव है. और आंखमें

साक्षिभाव नहीं है. साक्षिभाव नहीं होवेके कारण आंख झटसु चीख - पुकार करवे लग जावे यदि वामें कुछ भी धूलकण गई तो.

अक्सर आपने देख्यो होयेगो के घरमें रसोई बनावेवाली औरतें आगके खीराकु उठाके फैंक दे. अपनेकुं डर लगे के आगके खीराकु उठाके फैंक कैसे दियो ? हथेलीमें साक्षिभाव पैदा हो गयो. सर्कस्में आपने देख्यो होयेगो के जलती रिंगमेंसु शेर कूद जावे. अपनू क्यों नहीं कूद सके ? क्योंकि वा तकलीफकु सहन करवेको साक्षिभाव अपनेमें पैदा नहीं भयो है. साक्षिभाव पैदा हो जावे तो सरलतासु हो सके.

(साधनासु इन्द्रियन्में साक्षिभाव होवे)

छोटे - मोटे स्केल्पे हर व्यक्तिकु कई तरहके साक्षिभाव हैं नहीं हैं ऐसी बात नहीं है. पर इन्द्रियन्के साक्षिभाव हैं वो आदमीकी कमजोरी है के वो एक इन्द्रियमें साक्षिभाव पैदा करे पर दूसरी इन्द्रियको गुलाम बनके रहेवे. सभी इन्द्रियन्में साक्षिभाव होनो अच्छी साधनाकी अपेक्षा रखे है. वैसी साधना करे तो सभी इन्द्रियन्में साक्षिभाव होवें. पर इन्द्रियन्में साक्षिभाव होवेके बाद पाछो बुद्धिमें मनमें अहंकारमें साक्षिभाव होनो बहोत कठिन है. इन्द्रियन्में साक्षिभाव तो थोड़ा बहोत अपनू विकसित कर सके है.

(बुद्धि अहंकार चित्त को साक्षिभाव)

पर मन बुद्धि अहंकारमें साक्षिभाव आनो ओर थोड़ी टेढ़ी खीर है. एकदम स्थूल उदाहरण पकड़ो. ये माईक् है ये बात आप जान रहे हो. अब मैं याकु माईक् नहीं केहके स्पीकर कहूं तो आपकी बुद्धि तुरत रिवोल्ट करेगी के झूठ बोले, माईक्कु स्पीक् केह दियो. बुद्धिमें साक्षिभाव नहीं आ सके. बुद्धिमें साक्षिभाव आनो टेढ़ी बात है. अपनी बुद्धिको स्वरूप ही ऐसो है जैसे आंखको स्वरूप रूप ग्राही है वैसे ही बुद्धिको स्वरूप सत्यासत्यकी मीमांसा करतो ही रहे और जरा भी अपनेकुं झूठ लगी और वो सुमरनी शुरू हो जावे के झूठ बोले झूठ बोले. यदि झूठ बोले के सच बोले जो हो रह्यो है वाकी मजा ले रहे है तो साक्षिभाव आ गयो.

अहंकारको साक्षिभाव कैसो ? बनारसमें केदारनाथ मिश्रके यहां कोई प्रोफेसर् हते. प्रोफेसरन्में आपसमें रसाकसी चलती रहे. ये याकी टांग खींचे वो वाकी टांग खींचे. वा दिन मैं भी वहीं बैठ्यो हतो. एक प्रोफेसर् आये. वाकी उन्नति कोई दूसरे प्रोफेसरने रोकी होयेगी. अब जिन प्रोफेसरने उनकी उन्नति रोकी हती वो शायद कायस्थ हते. आते ही वाने कायस्थनकु गाली देनी शुरू करी के कायस्थ बड़े बदमाश होवें हैं. वहां बाजूमें एक और कायस्थ प्रोफेसर् बैठे हते. मिश्राजी बिचारे घबरा गये. उनने कही के “दुबेजी ऐसी बात नहीं है सब कायस्थ ऐसे नहीं होते”. दुबेजी बोले “ठीक है सब कायस्थ ऐसे नहीं होते पर श्रीवास्तव तो ऐसे ही होते हैं.” अब जो बाजूमें बैठ्यो हतो वो श्रीवास्तव ही हतो. तब श्रीवास्तव प्रोफेसरने मिश्राजीकु कही के “मिश्राजी अब आप बोलो मत, नहीं तो ये तो मेरेपे ही आ जावेगी के श्रीवास्तव तो अच्छे होते हैं पर मैं ही खराब हूं.” देखो! अहंकारको साक्षिभाव रखनो कितनी कठिन बात है! कायस्थकु गाली दे रह्यो है तो वामें मोकु क्या ? ऐसे साक्षिभाव नहीं रख सके. हिन्दुस्तानकु गाली पड़ते ही अपनू अपनेकुं गाली पड़ी ऐसे मानवे लग जावें ? अब जैसे जैसे दायरा संकीर्ण होतो जावे अपनेकुं घबराहट बढ़ती जाय. कोईने कही है “गमे आशिकीसे कह दो राहे आम तक न पहुंचे मुझे डर है के ये तौहमत मेरे बाम तक न पहुंचे”. रस्तापे जब कोई घटना हो रही होय और वा रस्तापे अपनो घर होवे तो अपनेकुं डर लगनो शुरू होवे के अभी तो रस्ता पे हो रही है, पर मेरे छतपे भी हो सके है क्योंकि अहंको वामें साक्षिभाव लानो बड़ो मुश्किल हो जावे.

ऐसे ही चित्तको साक्षिभाव लानो ओर ज्यादा कठिन हो जावे पर जिनमें साक्षिभाव आवे है उनमें दुःख - सुख सहन करवेकी क्षमता विकसित हो जावे. याकु वाईसे वरसा (उलटाके) अपनू ऐसे केह सकें के जिनमें सुख - दुःखकु सहन करवेकी क्षमता विकसित नहीं होवे उनमें साक्षिभाव आनो कठिन है.

बड़ा प्रसिद्ध उदाहरण है. कोई गुरुजी राजाके वहां गये. राजाने उनकी बड़ी खातिरदारी करी. राजमहलमें रखे. अब सब राजसी वैभव भोगते भोगते गुरुजीकी जीवनप्रणाली भी राजाशाही हो गई. दो - तीन महीना राजाशाहीमें जीवेके बाद गुरुजीने भी आदेश देवे शुरू करे जैसे राजा आदेश करतो हतो. ये चीज़ लाओ वो चीज़ लाओ. राजाकु लग्यो के इनको त्याग - ब्याग सब गयो. ये तो अपने

ही तरह राजसी जीवन जीवे लग गये. तब राजाने एक दिन बढ़के पूछ ही लियो के “महाराज, अब आपमें और मेरेमें क्या अन्तर है बताओ?” उनने कही के “देखनो है?” वाने कही के “हां देखनो है” बोले “अभी निकल जाऊं” और निकल गये. अब राजमहलसु तु निकलके बता. मिल रह्यो है तो सब भोग रहे है जब नहीं मिलेगो तो निकल जावेंगे. ये ‘साक्षिभाव’ है. ये आनो बहोत मुश्किल है. जैसे जनक राजाने यों कही हती के ‘मिथिलायां प्रदग्धायां’ मिथिला जलती होवे तो जले, वामें मेरो क्या जा रह्यो है! आखो राज्य जल रह्यो हतो तो वामें राजाको यों लग्यो के मेरो कुछ भी नहीं जल रह्यो है ये ‘साक्षिभाव’ की कथा है.

साक्षिभाव मुख्यतया सुखदुःखकु सहन करवेके कारण पनपे है. यदि सुखदुःख अपन सहन नहीं करें तो साक्षिभाव पनपे नहीं है. ज्ञानमार्गमें साक्षिभावको बड़ो महत्त्व है. कई ज्ञानमार्गीय उपदेशक निरन्तर साक्षिभावकु विकसित करवेके लिये साधना समझाते रहे हैं.

(चेतनाको साक्षिभाव और वाकी दुर्लभता)

अपन यों माने हैं के या साक्षिभावसु भी आगेकी एक अवस्था है. साक्षिभावकी अवस्था शुद्ध चेतनाकी अवस्था है. कैसी अवस्था? जैसे, तारमें बहती बिजलीमें न तो साउन्ड है न तो लाईट है न हीट है न सीन् है. कुछ भी नहीं है शुद्ध इलेक्ट्रिसिटी है. ये इलेक्ट्रिसिटी टी.वी.में गई तो सीन् हो जावेगी. रेडियोमें गई तो साउन्ड हो जावेगी. हीटमें गई तो हीट हो जावेगी. फ्रीजमें गई तो ठण्डी हो जावेगी. ये इलेक्ट्रिसिटी कई रूप धारण करे है. जहां जैसे उपकरणन्में जावें हैं वैसो रूप धारण करे है. ऐसे अपनी चेतना जिन जिन इन्द्रियन्में जावे उन उन रूपन्कुं धारण करें हैं. इलेक्ट्रिसिटीके लिये तो बहोत सरल है के उपकरणकु तोड़ दो तो इलेक्ट्रिसिटी अपने शुद्ध रूपमें आ जावे.

अपने साथ ये चक्कर सरल नहीं है. ये बात ध्यानसू समझो. जैसे अपनकु आंख परेशान कर रही है और अपनने आंख फोड़ ली कान परेशान कर रह्यो है और कान फोड़ लिये. आंख कान फोड़वेसु काम नहीं चलेगो. क्योंकि आंख नहीं है फिर भी सपना तो आयेंगे. मैंने शास्त्रीजीसु पूछी के “आपकु कौनसे सपना आते है? क्योंकि आपकी आंख नहीं है और आपने कुछ देख्यो भी नहीं. हमकु तो देखवेके सपना आवें पर आपकु कौनसे सपना आवे?” उनने कही “मोकु

लड्डू बाटी खावेके सपना आवें” जाकु आंखके सपना नहीं आते होंयेंगे वाकु खावेके सपना आते होंयेंगे. जाकु खावेके सपना नहीं आते होंयेंगे वाकु सुनवेके सपना आते होंयेंगे. जाकु सुनवेके सपना नहीं आते होंयेंगे वाकु स्पर्शके सपना आते होंयेंगे. मनोवैज्ञानिक यहां तक केह के छोटे बच्चानकुं निरन्तर गिरवेके सपना आवे क्योंकि वो मां के गर्भमें तो चारों ओरसु घिरे भये होवें. उनकु सेफ्टि लगती होवे और जब बाहर आ जावे तो यों लगे के मैं कहीं गिर गयो. मेरे चारों ओर सहारा नहीं है. बच्चाकु लपेट दो तो बच्चा कम रोवे. खुलो रखो तो निरन्तर वाकु डर लगे के कहीं मैं गिर रह्यो हूं. ऐसे बच्चाकु भी सपना आवे.

अपने साथ सोल्युशन् नहीं है क्योंकि अपनी सिर्फ दश इन्द्रिय ही नहीं है. पाछे मन बुद्धि चित्त और अहंकार को अन्तःकरण भी है. वे भी कुछ सुखदुःखके हेतु बने है और उन सबमें साक्षिभाव आनो सचमुचमें बहोत टेढ़ी खीर है पर असंभव नहीं है.

यहां महाप्रभुजी अपनेकुं एक बात समझानो चाहे है. ये शुद्ध चेतनाकी अवस्था है. शुद्ध चेतनाकी अवस्थामें अपन गये तो महाप्रभुजी वाकी कीमत ऐसी करे है कि चेतनाकु सुख-दुःख नहीं हो रह्यो है. याको मतलब अब वाकु संसारको अभाव हो गयो. पर फल वाकु मिल्यो ऐसे नहीं माननो. ये बात अपने यहां तो नहीं कही गयी है पर या तरहकी मुक्तिकी साधनानुको जिन लोगनने उपदेश दियो है उनमें सबसु प्रथम बुद्ध महावीर कणाद गौतम ऋषिन्ने साक्षिभावसु चेतनाकु प्राप्त करवेको उपदेश दियो.

(नंगेटिव् साक्षिभाव और पॉज़िटिव् साक्षिभाव)

वाके लिये प्राचीन विद्वानने कही “वरं वृन्दावनेऽरण्ये शृगालत्वं भजाम्यहं न तु वैशेषिकीं मुक्तिं प्रार्थयामि कदाचन्” पता नहीं कौनने कही है पर संस्कृतमें ये एक कहावत है के वृन्दावनमें मोकु सियालिया बना दीजियो पर या तरीकेकी मुक्ति मत दीजियो. जा साक्षिभावके इतने गुण गाये जा रहे हैं वाके प्रति ऐसो भाव क्यों पैदा भयो! एक स्टेज आगे बढ़के है. साक्षिभावमें पाछे एक साक्षिभाव ये साक्षिभाव भी हमकु नहीं चाहिये ऐसो एक साक्षिभाव. ये जो साक्षिभाव है कुछ लोग यों समझें हैं के ये नंगेटिव् साक्षिभाव है एक पॉज़िटिव्

साक्षिभाव भी तो हो सके है. आंखसु जो दीख रह्यो है वो मोकु नहीं दीख रह्यो है कानसु सुनाई दे रह्यो है वो मोकु सुनाई नहीं दे रह्यो है मेरो अहंकार जिन बातनमें है वो मेरो नहीं है वो कोई दूसरो रूप है. देखो, अपनेकुं अहंकारको पता नहीं चले

एक साधारण उदाहरण दऊंगो तो आपकु समझमें आवेगो. रामलीलामें एक व्यक्ति राम बन्यो है एक व्यक्ति रावण बन गयो एक सीता बन गई. वा रामलीलामें जो रावण बन्यो है वाकु रावणको अहंकार होवेगो. जो सीता बनी है वाकु सीता होवेको अहंकार होवेगो. जो राम बन्यो है वाकु राम होवेको अहंकार हो जावेगो. पर वो अहंकार टिकाऊ अहंकार नहीं है. जितनी देर रामलीला चल रही है उतनी देर टिकवेवालो अहंकार है.

अपनो अहंकार अपनी देहकी हर लीलाके साथ जुड़्यो भयो है. अब मोकु ये अहंकार है के मैं श्याम गोस्वामी हूं पर आवते जन्ममें ये अहंकार थोड़े ही रह जावेगो! याकी लीला पूरी भयी तो कोई दूसरो अहंकार पैदा हो जावेगो. ये टिकाऊ अहंकार नहीं है. लीलाकी तरह चेंप्टर् क्लोस् होवेवालो अहंकार है.

हरियाणामें रामलीलाकी कथा बतावे है. सच्ची-झूठी तो भगवान् जाने. वामें हनुमानजी लंका गये. उनने रावणकु कही “क्यों बे रावणे सीता देणी के नहीं देणी?” रामलीलामें रावण हतो वाने कही के “नहीं देणी” हनुमानने कही “अबे कैसे नहीं देणी?” रावणने कही “अबे बन्दर, केह दिया ना के नहीं देणी.” तो हनुमानने कही के “देणी पड़ेगी” रावणने कही के “लगाओ बन्दरकी पूछमें आग” तब हनुमानने कही के “जा तू ही ले जा सीता नहीं लेणी हमकु.” “पूछमें आग लगाओ” कह दी तो उनकु हनुमान होवेको अहंकार खतम हो गयो.

अपनो अहंकार कितनी क्षुद्रता ओढ़्यो भयो अहंकार है. या तरीकेके अहंकारके खटराग है. अहंकारमें साक्षिभाव होनो थोड़ी मुश्किल बात है. जो अहंकार अपनने जा बखत हासिल कर लियो वा बखत वा अहंकारके विपरीत कोई बात हो जावे वाकु सहन करनो थोड़ो कठिन काम है. अपन् हर हिन्दुस्तानीको

ये प्रत्यक्ष अनुभव है के जितने मिनिस्टर होवें वो चुनावके पहले कैसे अपनी जीभ लपलपाते अपनी गलीनमें घूमते होवें! मिनिस्टर होवेके बाद ‘रिश्ते नाते प्यार वफा सब झूठे हैं वादोंको क्या’ पिक्चरके गाना जैसो उनको अहंकार होवे. या तरीकेको अहंकार प्ले करतो होवे वामें साक्षिभाव लानो बड़ो मुश्किल काम है. लायो जा सके है, नहीं लायो जा सके ऐसी बात भी नहीं है पर ये सारे नोंगेटिव् साक्षिभाव हैं.

यामें एक पॉज़िटिव् साक्षिभाव अपन् और सोच सके है. जैसे अपन् कोई नाटक या सिनेमा देख रहे होंय. कोई उपन्यास या कविता पढ़ रहे होंय. वा कवितामें अपनो इन्वॉल्वमेन्ट भी है और साक्षिभाव भी होवे है. वामें अपन् डिस्इन्वॉल्व नहीं होवें हैं. जब अपन् अच्छो नाटक अच्छो सिनेमा अच्छो उपन्यास अच्छी कविता की मजा भी ले रहे हैं और साक्षिभाव भी हैं. एक पॉज़िटिव् साक्षिभाव है के अपन् मजा भी ले रहे हैं और सचमुचमें अपन् जान रहे हैं के जो कुछ भी घटना घट रही है वो काव्यात्मक घटना है. जो भी घटना घट रही है वो एक मूवीकी घटना है. वामें देखो, रोनो भी आवे हंसनो भी आवे दुःख भी होवे सुख भी होवे रोमाञ्च भी होवे दिलकी धड़कन भी बढ़ घट जावे. सारे भाव अपने भीतर पैदा होवें और उनकु अपनेसु कुछ लेना देना नहीं है.

(पॉज़िटिव् साक्षिभावको औपनिषदिक् सन्दर्भ)

ये सब भावन्कुं अपने यहां ‘नवरस’ कह्यो जाय. शृंगार वीर्य हास्य रौद्र बीभत्सादि जो नवरस हैं वो नवरसनके भाव अपने भीतर पैदा होवें और साक्षिभाव भी बन्यो रहे या तरीकेको साक्षिभाव ‘पॉज़िटिव् साक्षिभाव’ है. शास्त्र यों केह है “आनन्दाद्भ्येव खलु इमानि भूतानि जायन्ते. आनन्देन जातानि जीवन्ति. आनन्दं प्रयन्ति अभिसंविशन्ति इति तद् विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म” (तैत्ति.उप.३।६) तुम सच्चिदानन्दात्मक ब्रह्मके साथ अपनो तादात्म्य अनुभव करोगे तो तुम्हारो आनन्द कायम रहेगो और तुम्हारेमें साक्षिभाव आयेगो. माने इन्वॉल्वमेन्टके साथ साक्षिभाव अनुभव कर सकोगे. या आनन्दको फलदान कृष्ण करे है क्योंकि ‘कृष्’ = सत्ताको वाचक है और ‘ण’ = आनन्दको वाचक है. कई चीजें ऐसी हैं जहां सत्ता नहीं है और अपनेकुं आनन्द हो रह्यो है. जैसे अपन् नाटक या सिनेमा देख रहे है वहां अपनेकुं निश्चित आनन्द आवे है पर जाको आनन्द

आ रह्यो है वाकी सत्ता नहीं है. जहां सत्ता है वहां अपनी कमजोरीनुके कारण अपनेकुं आनन्द नहीं आ पावे. जैसे सच्चे शेरकी सत्ता है सच्चे युद्धकी सत्ता है सच्चे प्यारकी सत्ता है. जहां सत्ता नहीं है वहां अपन साक्षिभावकु आनन्दके साथ ले सके है. जहां सत्ता है वहां साक्षिभाव अपन रखें तो आनन्द छूट जावे और आनन्द लेवे जावें तो साक्षिभाव छूट जावें. ब्रह्म एक ऐसी इकाई है के जामें साक्षिभाव + आनन्द दोनों अपन एट्र ए टाईम् अनुभव कर सकें हैं.

(महाप्रभुजीकी औपनिषदिक दृष्टि : पॉज़िटिव् साक्षिभाव = लीलानुभूति)

याके लिये महाप्रभुजी ऐसी आज्ञा करे है के कृष्णमें 'कृष्'को अर्थ सत्ता है और 'ण'को अर्थ आनन्द है. वा कृष्णको अनुभव कियो तो तुमकु सारे जगत्में इन्वॉल्वमेन्टके साथ साक्षिभाव आयेगो. विधाउट इन्वॉल्वमेन्ट साक्षिभाव नहीं. ज्ञानीनुके जेसो नेंगेटिव् साक्षिभाव नहीं पर पॉज़िटिव् साक्षिभाव आयेगो. जाकु अपने यहां शास्त्रनुने 'लीलानुभूति' कही है.

अपनेकुं ये सारो जगत ब्रह्मकी एक लीलाके रूपमें अनुभव होवे लगेगो. यदि अपन कृष्णकु अनुभव कर सकें या अर्थमें **कृष्ण सब फलदातानुमें चक्रवर्ती फलदाता** है. ये बात महाप्रभुजीकी दृष्टिसु अपन समझ सकें हैं.

(विभन्न शंकायें और समाधान)

(जीवाः स्वभावतो दुष्टाः)

अपने यहां बड़े अच्छे शब्द है, आरोग्य और स्वास्थ्य. आरोग्य और स्वास्थ्य में अन्तर है. 'स्वस्थ'को मतलब जामें आपको स्व होवे. सबके 'स्व' अलग - अलग होवे. स्वस्थ होनो 'स्वास्थ्य' केहवावे. ऐसे अरोग होवो 'आरोग्य' केहवावे. आरोग्य दवाईसु ठीक होवे है. कोई भी दवाई अपनेकुं आरोग्यकारी हो सके. कोई स्वास्थ्यकी दवाई नहीं दे सके. दवाई लिये बिना शरीरको जो भी कोन्स्टीट्यूशन है वो स्वास्थ्य है. अक्सर लोग केहवे हैं के स्वास्थ्य और आरोग्य एक ही शब्द है. 'आरोग्य' शब्दको मतलब रोग नहीं होनो. आदमीकु रोग नहीं है तो याको मतलब ये नहीं है के वो स्वस्थ है क्योंकि वाकी बाँडीको कोन्स्टीट्यूशन है वामें स्थित है तो स्वस्थ है. स्वस्थ होनो माने 'स्वास्थ्य' है. रोग

नहीं होनो 'आरोग्य' है. अस्वस्थ या अस्वास्थ्य एक अलग चीज़ है और रोग एक अलग चीज़ है. जिसे कोई भी रोग नहीं है पर शरीरमें फुर्ती नहीं आ रही है, शरीरमें चेतना फील् नहीं हो रही है तो अपन स्वस्थ तो नहीं हैं. बहोत लोग डॉक्टरसु सब जांच करावें पर कोई रोग नहीं होवे. व्यक्ति यों अनुभव करे के मैं स्वस्थ नहीं हूं. कुछ तो गड़बड़ है. अस्वास्थ्य भी एक दोष है. स्वस्थ नहीं होनो एक दोष है और रोग भी एक दोष है. दो दोषनुमें अन्तर है. दोष तो दोनों ही हैं.

या बातकु ध्यानसू समझो के जब **“जीवाः स्वभावतो दुष्टाः”** कह्यो जा रह्यो है वो रोगवाले अर्थमें नहीं कह्यो जा रह्यो है. रोग कुछ नहीं है पर जीवको कोन्स्टीट्यूशन ही ऐसो है के वामें चेतना स्वस्थ नहीं होवे है अस्वस्थ रहे है. वो क्यों अस्वस्थ है और क्यों स्वस्थ नहीं है वो कल मैंने आपकु याही सन्दर्भमें बताई हती के चेतना यदि आंखमें जा रही है तो वो आत्मचेतना होवेके बजाय रूपचेतना हो जावेगी. चेतना यदि कानमें कॉन्सनट्रेट कर रही है तो आत्मचेतना होवेके बजाय ध्वनिचेतना हो जावेगी. चेतना यदि गन्धमें जा रही है तो आत्मचेतना होवेके बजाय गन्धचेतना हो जावेगी. स्वादमें जा रही है तो स्वादचेतना हो जावेगी. स्पर्शमें जा रही है तो स्पर्शचेतना हो जावेगी. चेतना रूप रस गन्ध स्पर्श की इन्द्रियनुके द्वारा स्थित होवेके कारण अस्वस्थ है. इनमें स्थित नहीं होके कहीं और स्थित हो रही है या अर्थमें जीवको स्वभावतः दुष्ट कह्यो है. वो स्वतःमें स्थित नहीं है कोई और चीज़में स्थित है. जब अपन अपने स्वमें स्थित नहीं होके कहीं और स्थित हैं तो अपन 'अस्वस्थ' हैं. या अर्थमें जीवकु स्वभावतः दुष्ट कह्यो है. जीवको स्वभाव ही ऐसो है क्योंकि जीवके साथ दस इन्द्रिय और ग्यारहवों अन्तःकरण (मन बुद्धि चित्त और अहंकार) ये सारे जुड़े भये हैं. ये जुड़ेवेके कारण जीव इनमें स्थित है आत्मचेतनामें स्थित नहीं है. अपने जीवनमें बहोत कम ऐसे मौका होवे हैं जामें जीव अपनी आत्मचेतनामें स्थित होवे. जैसे आप रातमें अच्छी नींदमें सो लिये और नींद पूरी हो गई मतलब ठण्ड भी नहीं लग रही है गरमी भी नहीं लग रही है मच्छर भी नहीं काट रह्यो है. जितनी अपनेकुं नींदकी जरूरत है उतनी नींद अपनने ले ली और नींद पूरी होवेके बाद जागरण भयो तो वो स्वस्थ जागरण है.

कोई तूफान करतो होय वाके कारण जगनो पड़े, ठण्ड लगती होय वाके कारण जगनो पड़े, गरमी पड़े वाके कारण जगनो पड़े ये सब अस्वस्थ जागरण हैं. क्योंकि अपनू जगनो नहीं चाह रहे हैं. घड़ियालमें अलार्म बजे तब भी जागनो पड़े है पर ये स्वस्थ जागरण नहीं है. पर कोई बखत ऐसो आवे के नींद पूरी होवेके कारण अपनू जगें वा बखत अपनेकुं आत्मचेतना ही स्फुरित होवे और कुछ नहीं होवे. कभी जगते बखत या बातकु फील करोगे तो ख्याल आयेगो. ऐसे बहोत कम अवसर आते होंगो क्योंकि अपनेकुं अस्वस्थ जागरणके अवसर ही ज्यादा आवें हैं, स्वस्थ जागरणके अवसर बहोत कम आवे है. वा बखत अपनेकुं अपनी आत्मचेतनाके अलावा कोई और चीज़को ख्याल नहीं होवे. जब पूरी नींद भरके सो लिये और स्वस्थ जागरण होवे है वो शुद्ध चेतनाके कारण होवे है. बाकी अस्वस्थ जागरण तो रोज ही होवे है या अर्थमें जीवकु ‘स्वभावतः दुष्ट’ कह्यो गयो है.

इन स्वभावन्के कारण भागवतकार बहोत सुन्दर समझावे है “जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा शिशनोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्क्य इव गेहपतिं लुनन्ति” (भाग.पुरा.११।१९।२७) माने एक पत्नी होय या एक पति होय वाकु सम्भालनो भारी पड़तो होय तो ये आत्मा जो चेतना है वाकी तो उन्नीस पत्नियां है. (पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय और चार अन्तःकरण की वृत्ति ऐसे चौदह और पांच प्राणकी वृत्ति = १९) इतनी सारी सौत आपसमें झगड़ती होंय तो एक बिचारो क्या करे ? अटल बिहारी वाजपेयीवाली स्थिति हो जावे ! या बाजू मायावती खींचे वा बाजू ममता बैनर्जी खींचे या बाजू जयललिता खींचे वा बाजू सोनिया खींचे. अब अटल बिहारी वाजपेयी करे तो क्या करे ! चेतनाकी स्थिति अतिशय दयनीय है क्योंकि एक इन्द्रिय अपने विषयकी ओर चेतनाकु खिंचनो चाहे, दूसरी इन्द्रिय अपने विषयकी ओर चेतनाकु खींचनो चाहे. कोई कर्म अपनी तरफ चेतनाकु खिंचनो चाहे. “बह्व्य सपत्क्य इव गेहपतिं लुनन्ति” जब सौतें मिलके घरमें झगड़ा शुरू करें तो पतिके क्या हाल होवें ! वो स्वस्थ नहीं रहे पावेगो. वा तरीकेके हाल अपनी चेतनाके हो रहे है. या अर्थमें स्वभावतः कुछ दोष है. संस्कृतमें एक बड़ी मजेदार कहावत है “अनायकाः यथा नष्टा विनष्टा बहुनायकाः” जाको कोई नायक नहीं है वो जैसे खतम हो जावे ऐसे ही जाके

बहोत सारे नायक हैं वो भी खतम हो जावे. द्रौपदीवाली गति हो जावे. पांच पाण्डव हते पर चीरहरणके समय कोईकी हिम्मत नहीं पड़ी के जाके वाकु बचावे. कोई एक होतो तो दौड़के जातो. पांच पाण्डवन्में जैसे द्रौपदीको चीरहरण होवे ऑलमोस्ट वा तरीकेकी स्थिति अपनी चेतनाकी है. वा चेतनाको जब चीरहरण होवे है वा बखत कोई बचावे नहीं आवे. या अर्थमें स्वभावतः दुष्ट है. वा अर्थमें स्वभावतः दुष्ट नहीं है जाकु अपनू मॉरल् दोष केह रहे है. ये कॉन्स्टीट्यूशनल् दोष है जाकु कल मैंने एलोयू केहके समझानो चाह्यो हतो. ये शुद्धधातु नहीं है कुछ मिश्रधातु है.

जीवको घाट शुद्धचेतनासु घड़्यो ही नहीं जा सके. शुद्धचेतना यदि होय तो वो कुछ कामकी नहीं है. समझो के इलेक्ट्रिसिटी तारमें बह रही है करन्ट चालू है पर आपके पास जोड़वेके लिये बल्ब नहीं है चलायवेको पंखा नहीं है सुनवेको रेडियो नहीं है देखवेको टी.वी नहीं है. अब वो इलेक्ट्रिसिटी क्या कामकी ? चल रही है तो चलती रहे, “जैसे साजन घर भले तैसे भले विदेश”. वो इलेक्ट्रिसिटी कब काम आवे ? जब आपके पास इलेक्ट्रॉनिक् उपकरण होवे तो वो कामकी, अन्यथा तो बह रही है तो बह रही है वामें अपनेकुं क्या फरक पड़्यो ! या अर्थमें “जीवा स्वभावतो दुष्टाः” कह्यो है.

(स्वभावविजयो भवेत्)

अब “स्वभावविजयोः भवेत्” ये जो स्वभाव है के बहोत सारी सौतें मिलके एक पतिको कबाड़ा कर सकें वा तरहसु अपनी चेतनाको जो कबाड़ा होवे जा रह्यो है वा कबाड़ाकु यदि कोई रोक सके है तो कौनसी चीज़ रोक सके है ? जामें इन सब रूपनकुं धारण करवेको सामर्थ्य है. अपनू या बातकु अच्छी तरहसु जाने है के रूप रस नहीं है, रस गन्ध नहीं है, गन्ध स्पर्श नहीं है, स्पर्श शब्द नहीं है सब अलग अलग हैं. करके अपनूकी चेतना बिखर जावे है. चेतना जब अपनी बिखर जाये है तो वही “बह्व्य सपत्क्य इव गेहपतिं लुनन्ति” वालो सिद्धान्त है. एक शेर है “खुदको बांट न डालूं मैं कहीं दामन दामन कर दिया तूने कभी मेरे हवाले मुझको.” यदि अपनू अपने हवाले गये तो दामन दामनमें बंट जावेगो तो “बह्व्य सपत्क्य इव गेहपतिं लुनन्ति” जैसी स्थिति होयेगी, पर एक पाछी संभावना ये भी तो है के जितने रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द हैं इनके कॉरस्पोन्डिंग्

अपनी इन्द्रियनके व्यापार हैं उन सबके लिये यदि कोई एक मल्टी फॅसेटवालो फिनोमिना अवेलेबल होय तो फिर कहीं भी जाओ अपन वाही तरफ जा रहे है. याही लिये वेदमें बहोत सुन्दर बतायो है के जितने रूप शब्द स्वाद रस स्पर्श हैं वो सब पहले अपनी अपनी इन्द्रियनमें एकायतन हो जावें. जैसे रूप आंखमें एकायतन हो जावे. यदि कोई रूप आंखसु नहीं दीख रह्यो है तो वो रूप नहीं है. यदि कोई ध्वनि है तो कानसु सुनाई देगी. यदि कोई गन्ध है और वो नाकसु सूंघवेमें नहीं आ रही है तो वो गन्ध नहीं है. गन्धको और क्या प्रमाण है ? जो नाकसु सूंघवेमें आ सके. स्पर्श अपनी चमड़ीपे अनुभूत नहीं हो रह्यो है तो वो स्पर्श नहीं है. उपनिषद् याकु समझावे है के सारे रूप रस गन्ध स्पर्श ध्वनि अपनी इन्द्रियनमें एकायतन होवें हैं. वो एकायतनता उन इन्द्रियनकी अपने अंतःकरणमें होवे है. फिर अन्तःकरण अपनी चेतनामें एकायतन होवे है. और अपनी चेतना = आत्मा, परमात्मा में एकायतन होवे है. **“सर्वे होतारो यत्र एकनीडं भवन्ति स मानसीन आत्मा जनानाम्”** जैसे सांझके समय दूर दूर तक दाना चुगवे गये सारे पक्षी अपने वृक्षपे लौट आके एकनीड हो जावे, ऐसे परमात्मा में सब कुछ एकनीड हो रह्यो है. पर अपनेकुं रूप रस गन्ध स्पर्श ध्वनि में रही भयी अनेकता में परमात्माकी एकता अनुभूत नहीं होवे. जब अनुभूत नहीं होवे तो अपनकुं ऐसो लगे के कभी यहां खिंच रहे हैं कभी वहां खिंच रहे हैं. यदि पारमात्मिक एकता अपनेकुं अनुभूत होवे तो कोई भी दिशामें खिंच रहे है तो भी कोई न कोई परमात्माके स्वरूपमें ही तो खिंच रहे है. वो अनुभूति कब होयगी ?

भागवत याकु बहोत अच्छे ढंगसु समझावे है **“कथम् अयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम्”** (भाग.पुरा.१०।८७।१५) पूरब उत्तर दक्षिण पश्चिम कोई भी दिशामें पैर उछालो तो उछल्यो भयो पैर जमीनपे टिकेगो. पैर उछालवेकी स्वतन्त्रता है पर याकी स्वतन्त्रता नहीं है के पैर टिके और जमीन नहीं होय. जहां भी पैर टिकेगो भूमि ही होयगी. **“कथम् अयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम्”**

संस्कृतमें भूमि शब्द भी बड़ो मजेदार है ‘भूमि’ माने जो चारों ओर फैली भयी है. सबकु अपनेमें समावे वाको नाम ‘भूमि’. जैसे पृथ्वीकु ‘भूमि’ केह वैसे ब्रह्मकु ‘भूमा’ केह है. भूमिको कॉरस्पॉन्डिङ्ग पुल्लिंगवाचक शब्द ‘भूमा’ है.

भूमाको कॉरस्पॉन्डिङ्ग स्त्रीलिंगवाचक शब्द ‘भूमि’ है. ‘भूमि’को मतलब ये के जो सर्वत्र है, जासु छटकके अपन कहीं बाहर नहीं जा सकें. कोई भी दिशामें आप जाओ पर अन्तमें आप भूमिपे हो ये अनुभूति होनी थोड़ी मुश्किल है.

मैंने अपने पुरुषोत्तमयोगमें याको विस्तारसु वर्णन कियो है. जिनने पढ़्यो होयगो उनकु ख्याल आयेगो. वामें मैंने जूनागढ़के मन्दिर और गिरनारके पहाड़को उदाहरण देके बतायो है. जैसे अपन यहां बैठे भये हैं तो बाहरको सारो नज़ारा गायब है. सिर्फ ये ही हॉल् दीख रह्यो है. यदि चौबुर्जापे चले जायेंगे तो सारो गाम दीखेगो. अभी चौबुर्जा गायब है तो किशनगढ़में चौबुर्जा है के नहीं ? दीख नहीं रह्यो है या लिये अपन सोचें के नहीं है. अक्कल चलावें तो अपन समझ सकें के दीख नहीं रह्यो है क्योंकि भीतनके व्यवधानके कारण नहीं दीख रह्यो है. जब चौबुर्जाके ऊपर चले जायेंगे तब सारो किशनगढ़ अपनेकुं नीचे दीखेगो. सारो किशनगढ़ दीखवेके बाबजूद घरके भीतरकी भीतनकी व्यवस्था नहीं दीखेगी. सब ठोस डब्बा है. कुछ भीतर नहीं है ऐसे नहीं, भीतर भी है. पर बटवारासु अपन सोचें के भीतर नहीं दीख रह्यो है तो भीतर गायब हो गयो बाहर नहीं दीख रह्यो है तो बाहर गायब हो गयो. या तरीकेके शतुरमुर्गी विचार अपनेकुं सोचवेमें बाधक होवे है.

जैसे रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द हैं इनको कोई भीतरी अस्तित्व भी है इनको कोई बाहरी अस्तित्व भी है. जब अपन इनको बाहरी अस्तित्व देख रहे है तब भीतरी अस्तित्व नहीं दिखाई दे. हर रूपमें रसमें गन्धमें स्पर्शमें कोई एक सत्ता छिपी भयी है. वो सत्ता वाको भीतरी पहलू है. सत्ताके रूप रस गन्ध स्पर्श की एक भीत है, वो रूप अपनेकुं दीख रह्यो है पर सत्ता सबमें कॉमन् है. वो अपनेकुं दीख नहीं रही है. जैसे अभी अपनेकुं ये हॉल् दीख रह्यो है पर किशनगढ़ नहीं दीख रह्यो है. अब किशनगढ़ नहीं दीख रह्यो है करके किशनगढ़ है के नहीं है ? कॉमन् सेन्स वापरो के जब मकान किशनगढ़में है और ये हॉल् मकानमें है तो ये हॉल् भी किशनगढ़में है के नहीं है ! नहीं दीखतो होय तो भी है और दीखतो होय तो भी है. पर यहां बैठे बैठे किशनगढ़ देखनो है तो आंख काम नहीं आयेगी अक्कल काम आयेगी. अक्कल वापरोगे तो किशनगढ़ दीखेगो.

ऐसे परमात्माकी सत्ताकु गायब करनी होय तो आनन्दसु करी जा सके है। चुटकि बजाके परमात्मा कहां दीख रह्यो है बताओ, कहीं भी नहीं दीख रह्यो है। जब किशनगढ़ भी नहीं दीख रह्यो है तो हिन्दुस्तान कहां दीख रह्यो है ? यदि हिन्दुस्तानकु देखनो है तो रॉकेटमें बैठके ऊपर जानो पड़ेगो तब जाके हिन्दुस्तान दीखेगो। बाकी यहां बैठे बैठे हिन्दुस्तान नहीं दीखेगो। अब नहीं दीखेगो करके है के नहीं है ये प्रश्न जब आयो तो पाछो वही खटराग पैदा हो जावे के दीख तो रह्यो नहीं है ! अब क्या भरोसा ? श्रद्धासु मानें ? श्रद्धासु भी मान्यो जा सके है अक्कलसु भी मान्यो जा सके है।

ऐसे ही रूप रस गन्ध स्पर्श में परमात्माकी विद्यमानता श्रद्धासु भी गृहीत होवे है यदि आपकी भक्तिमयी वृत्ति है तो और ज्ञानसु भी होवे है यदि आपकी बुद्धिमयी वृत्ति है तो। अब कौनसी वृत्ति वापरनी आपकुं सूट कर रही है वो तो आपके हाथकी बात है। यदि आपकु श्रद्धाकी वृत्ति सूट कर रही है तो श्रद्धा वापरके देख लो के परमात्मा है क्योंकि परमात्मा वाको भीतरी हिस्सा है, बाहरी हिस्सा वाको रूप रस गन्ध स्पर्श है, वामें परमात्मा अनुभूत नहीं हो रह्यो है।

एक सूफीने बहोत अच्छो कह्यो है के “चश्मे जुज रंगे - गुलो - लालाओ बीनद् वर्ना आं चे दर पर्द - ओ - रंगस्त पदीदारतरस्त” “चश्मे” यानि आंख। चश्मपे जो पहर्यो जाय वो ‘चश्मा’। ये आंख फूलके सिर्फ रंगनकुं देखवेकी आदि हो गई है। जब फूल दीखे तो वाके रंग देख देखके आंख संतोष मान ले। पर इन रंगनके परदाके भीतर जो छुप्यो भयो है, यदि अक्कलकी या श्रद्धाकी आंख होय तो इन आंखनके परदाके पीछे जो छुप्यो भयो है ‘पदीदारतरस्त’ माने वो ओर ज्यादा प्रकट हो जावे। क्योंकि वो प्रकट है तो रंग प्रकट होवेगो वो प्रकट नहीं है तो रंग भी प्रकट नहीं होवेगो।

करके उपनिषद् केह है “तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वं तस्या भासा सर्वम् इदं विभाति” (मुण्ड.उप.२।२।११) वो दीख रह्यो है तो ये सब कुछ दीख रह्यो है। यदि वो नहीं दीखे तो ये कुछ भी नहीं दीख सके है। आपकु होयेगो के ऐसे कैसे ? एक सामान्य बात समझो के आज पृथ्वीपे सूर्यको प्रकाश है करके ये सब रूप रंग दिखलाई दे रह्यो है। यदि प्रकाश नहीं है तो बताओ रूप रंग कहां

है ? अंधेरामें रूपको रंग गुलाबी पीलो लाल नहीं है सब कालो ही कालो रंग है। पर होवे क्या है के जैसो सूर्यको प्रकाश आवे है वो सूर्यको प्रकाश तो अपन नहीं देख पावें पर प्रकाशसु प्रकाशित होते रंगनकुं देखके तल्लीन हो जावे। अपनकुं ये रंग दीख रहे है पर असलमें तो सूर्यको प्रकाश दीख रह्यो है। प्रकाश नहीं होय तो कोई भी रंग दीख नहीं सके है। ऐसे उपनिषद् केह है “तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वम्” वो पहले दीख रह्यो है करके वाके पीछे सब चीज़ दीख रहीं हैं। यदि वो नहीं दीखतो होय तो कुछ भी नहीं दीखे। या अर्थमें ब्रह्म प्रकटतर है पर अपनी कामनाकी आदतनुसु मजबूर आंख नाक कान सु अपन देखनो चाहेंगे तो वो दिखलाई नहीं देगो। जब अक्कल या श्रद्धासु देखेंगे तब इन्हीं रूप रस गन्ध स्पर्श में परमात्मा दीखलाई देगो।

या अर्थमें महाप्रभुजी अपनेकुं ये समझानो चाहे है के ब्रह्म सर्वरूप सर्वरस सर्वगन्ध सर्वस्पर्श को एकायन है जेसै सब पक्षी एकनीड हो जावें हैं। वाकी अनुभूति वाको एहसास अपन शुरू करें तो फिर अपन लुट रहे हैं ऐसो अपनेकुं लगेगो नहीं। लुट रहे हैं कब लगेगो ? जब एकनीडता अपनेकुं अनुभव नहीं होयगी। एकनीडताको अनुभव होवे लग जावे तो फिर लुटवेको अनुभव नहीं होवेगो क्योंकि “जिधर देखता हु उधर तू ही तू है。” वो अनुभव स्पष्ट हो जावेगो या अर्थमें स्वभावको विजय होयेगो “स्वभाव विजयो भवेत्” अभी अपनो स्वभाव एलायके कारण ऐसो पड़ गयो है के रूप दीख रह्यो है वहां रस नहीं दीख रह्यो है। जहां रस दीख रह्यो है वहां गन्ध नहीं दीख रही है। यदि स्वभावपे विजय आवे तो रूप रस गन्ध स्पर्श में “तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वम्” की तरह सर्वत्र वाको भास होवे लगे। बस, सर्वत्र वाको भास होवे लगे तो ‘स्वभावको विजय’ अपनेकुं प्राप्त हो गयो।

(योगक्षेमं वहाम्यहम्)

तीसरी बात “योगक्षेमं वहाम्यहम्” की बहोत बड़ी रेन्ज है। योगक्षेमकी रेन्ज लाईफ़ इक्स्योरन्ससु शुरू होके बहोत दूर तक जावे है। क्योंकि योगको मूल है “अप्राप्तस्य प्राप्ति योगः” और “प्राप्तस्य संरक्षणं क्षेमः” जो तुमने प्राप्त नहीं कियो वो तुमकु प्राप्त करवा देनो ‘योग’ है। अक्सर ऐसो होवे है, अखबारनमें पढ़्यो होयेगो के बैंकमेंसु अपन रुपैया लेवे जावें, रुपैया लेके बैंक्सु

बाहर निकलें और आदमी छुरा लेके वो रुपैया लूट ले तो अप्राप्तकी प्राप्ति तो हो गई. पर जो प्राप्त भयो है वाको क्षेम भयो नहीं. योग हो जावे पर क्षेम नहीं होवे. तो योग और क्षेम में आधिभौतिक स्तरपे जाकु प्राप्त करनो है वो प्राप्ति और वाको क्षेम, आध्यात्मिकमें जो प्राप्त करनो है वाकी प्राप्ति और वाको क्षेम, ऐसे ही आधिदैविक दृष्टिस् जो प्राप्त करनो है और वाको क्षेम. भगवान् जो बात केह रहे है वो कोई एक क्षुद्र रेन्जमें नहीं केह रहे है क्योंकि “**तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्**” (भग.गीता.९।२२) वे नित्य अभियुक्त हैं. वे नित्य मोसु जुड़े भयें हैं. उनके योगक्षेमको वहन मैं करूं हूं. अब जाको जो भाव है वाकी लिमिट स्काय है क्योंकि कौनकु क्या चीज़ प्राप्त करनी है और कौनकु क्या चीज़को क्षेम करनो है वो सबके एक तो नहीं होयेंगे. पर जो भगवान्सु जुड़े भये है उनकु जो कुछ प्राप्त करनो है और जो कुछ उनने प्राप्त कियो है वा प्राप्तको संरक्षण जो कुछ भी करनो है वो जिम्मेदारी प्रभु ले रहे है. या अर्थमें भी ‘चक्रवर्ती’ उनकु कह्यो जा सके है. “**तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्**” अब वामें कौनसो योग और कौनसो क्षेम वो अधिकारी भेदसु अलग अलग कथा है.

अपनने अभी तकके प्रकरणमें जो बात देखी हती वो ये देखी के प्रभु सर्वरूप धारण करवेमें समर्थ होवेके कारण हर स्वभावकुं कॉरस्पॉन्ड कर सके है. ये मैं कोई आलोचनाके तहत नहीं केह रह्यो हूं पर परमेश्वरके बारेमें अपनो जो कन्सेप्ट (सिद्धांत) है वा कन्सेप्टकी रिचनेस् कैसी है वो समझानो चाह रह्यो हूं. वो नॅरो कन्सेप्ट नहीं है.

मैंने पहले भी शायद आपकुं ये बात बताई हती. रामपुर करके एक पुरानी स्टेट् हती. वा स्टेट्में कोई एक मौलवीने कुरानको बड़ो अच्छो हिन्दी अनुवाद कियो. मैंने वो हिन्दी अनुवाद मंगायो. वाकी भूमिकामें वाने ऐसे लिख्यो है के कुरानशरीफमें अल्लाहतालाने ऐसे फरमाई है के सतरह हजार फरिश्ता हमने जमीन पर भेजे हैं. उन सतरह हजार फरिश्तान्के तहत राम और कृष्ण भी फरिश्ता हो सकें हैं. उनके फरिश्ता होवेमें हमकु कोई आपत्ति नहीं है. हमकु जो आपत्ति है वो ये हिन्दू लोग उनकु अल्लाह माने हैं. भगवान् मानें हैं यामें आपत्ति है वो भगवान् नहीं हते वो कोई फरिश्ता होयेंगे. ये उनने भूमिकामें लिख्यो. मैंने उनकु चिट्ठी लिखी के आपकी बात तो सच है. कुरानशरीफ यों केह रही है के सतरह

हजार फरिश्ता भेजे. वामेंसु राम – कृष्ण भी हो सके है मगर जितने फरिश्ता भेजे गये है वो अल्लाहके द्वारा भेजे गये है ये तो आप भी मान रहे हो. अब यदि अल्लाहके द्वारा भेजे गये फरिश्ता राम और कृष्ण हमकुं यों केह रहे होयें के हम खुद अल्लाह हैं तो हमकु आपकी बात माननी या उन फरिश्तान्की बात माननी ? क्योंकि आपकु तो हमारे पास भेज्यो नहीं है. आपके अल्लाहने तो हमारे पास राम – कृष्णकु भेज्यो है. वो तो हमकु ये ही मॅसेज् दे रहे हैं के देख ले मैं ही सब कछु हूं.

गीतामें भगवान् केह रहे हैं के मैं सब कुछ हूं “**मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिद् अस्ति धनञ्जय मयि सर्वम् इदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव**” (भग.गीता.७।७) जो फरिश्ता आपके अल्लाहने हमारे पास भेजे वो फरिश्ता यों केह रहे है के हम खुद अल्लाह है. अब हम आपकी बात मानें के उन फरिश्ताकी बात मानें जाको अल्लाहने हमारे पास भेजे ! यदि अल्लाहकु ये बात पसन्द नहीं हती तो ऐसे फरिश्ता भेजे क्यों ? गुनहगार तो अल्लाह है के जाने झूठ बोलवेवाले हमारे पास भेजे. कोईके पास गलत फरिश्ता भेज रह्यो है तो गुनहगार अल्लाह है के हम हैं ? वाने मेरे पत्रको जबाब ही नहीं दियो. अरे भाई, याको कुछ तो खुलासा करो ! हमारे पास तुम्हारे अल्लाहने जो फरिश्ता भेजे वो खुद कबूल कर रहे हैं के हम अल्लाह हैं. अब हम क्या करें हम तुम्हारी बात मानें के उनकी मानें ? तुमकु तो हमारे पास भेज्यो नहीं अरबस्तानमें भेज्यो. तुम मोहम्मद साहिबकु फरिश्ता मानो यामें हमकु कोई आपत्ति नहीं है. ईसाई लोग जीसस् क्राईस्टकु भगवान् ही मानें वामें अपनेकुं क्या आपत्ति है ! भगवान् उनके यहां जीसस् क्राईस्ट् बनके आ सके है. पर उनकु आपत्ति हो जावे के तुम राम कृष्ण कु भगवान् क्यों मान रहे हो ! अब या आपत्तिको हमारे पास तो परिहार है नहीं. या तो तुम ऐसे मानो के कई भगवान् हैं. एक एक देशमें एक एक भगवान् जा रह्यो है या एक एक धर्मके एक एक भगवान् मानों. यदि तुम भी केह रहे हो के ‘ला इलाह इल्लिलाह’ अल्लाह एक ही है दो नहीं हैं तो हमारे पास जो भेज रह्यो है वो भी वाही अल्लाहको भेज्यो भयो है.

तो एक सीधी समझवेकी बात है के अपने यहां शुरूआतसु यों कहें के भगवान्के रूप अनेक हैं अपनू यों नहीं कहें हैं के भगवान् अनेक हैं. अपने या

रहस्यकु ये लोग समझ नहीं पावें और इनकु डर लगे के अपन् अनेक भगवान् मानें. अरे भाई, तुम अगर हमारी बात पूरी तरहसु नहीं समझो तो हम क्या करें! हम तो यों केह रहे हैं के भगवान् एक है और भगवान्के रूप अनेक हैं. हम तो यों केह रहे हैं के भगवान्के पास पहुंचवेके रास्ता अनेक है पर पहुंचवेको गन्तव्य एक है. तुम केह रहे हो के हमारो गन्तव्य भी खोटो है तो फिर दो भगवान् मानो तो काम चलेगो.

यामें एक सीधीसी बात है के यदि भगवान् एक है तो दूसरो गन्तव्य पैदा भयो कैसे और पैदा भयो तो वाकु भगवान् चलवे क्यों दे रह्यो है. भगवान् चलवे दे रह्यो है तो या तो भगवान् कमजोर है जैसे आज अपन् भारतको संविधान चलावें या भारतके विरुद्ध अपन् कोई नयो देश खड़ो करें तो तुरत मिलिटरी आयेगी के नहीं आयेगी? ऐसे अल्लाह क्यों नहीं भेज रह्यो है? नहीं भेज रह्यो है वाको मतलब ये के अपन् वा अल्लाहकु भी पसन्द है. शान्तिसु जीवन जीयो और जीने दो. तुमकु जो भेज्यो है वो तुम करो हमकु जो भेज्यो वो हम करें वामें झगड़ाकी क्या बात है! ये एप्रोच् नहीं समझवेके कारण बहोत सारे झगड़ा हो जावे है. दरअसल या एप्रोचकु समझे तो कोई झगड़ाकी बात ही नहीं है. ये बात जैसे धर्ममें सच्ची है ऐसे ही साधनामें भी सच्ची है. ये बात सम्प्रदायमें भी सच्ची है. सम्प्रदाय अनेक हैं पर परमात्मा अनेक नहीं है. अब परमात्मा एक है तो सब सम्प्रदाय मारपीटके एक करो. सबकुं मुसलमान बनाओ. ऐसे तो थोड़े ही हो सके! ऐसे नहीं हो सके. परमात्मा एक है ये ही या बातको प्रमाण है के एक परमात्मामेंसु इतनी विविधतायें, प्राणीकी देशकी ऋतुकी बुद्धिकी विचारकी भावनाकी, प्रकट भयी है. तो वाही परमात्मामेंसु विविध साधनायें और विविध सम्प्रदाय प्रकट भये. वामें झगड़ाकी बात क्या है? झगड़ाकी बात कब आवे के जब तुम यों सोचो के हम ही सच्चे और सब खोटे तो झगड़ा है. अपने हिसाबसु सब सच्चे हैं.

एक बात समझो. जैसे बच्चाकु मामा आके यों केह के तेरी मम्मी मेरी है तो बच्चा रोवे लग जावे के नहीं नहीं मेरी है. भाई तेरी मम्मी है तो मेरी बहन है वामें झगड़ाकी बात क्या है? पर बच्चाकी समझमें आवे? वाके आगे फिर बच्चाकी बुद्धि क्लोज़ हो जावे. मेरी मम्मीकु तुमने अपनी क्यों कही? फिर

बच्चा रोना शुरू करे. ये तो श्रद्धाको बचपना है वैचारिक बचपना है. ये बात समझनी चाहिये के तेरी मम्मी है वो कोईकी बेटी भी हो सके है. वो कोईकी बहन भी हो सके है. जब वो 'मेरी' केह रहे है तो 'मेरी' केहवेके अर्थ अलग अलग हैं. उन अलग अलग अर्थमें एक ही मम्मी सबकी है. जा अर्थमें तेरी है वा अर्थमें तु अकेलो है या लिये तेरी है. अब तेरो कोई भाई बहन और हो जावे तो वाकी भी मम्मी हो जावेगी. परमात्माके बारेमें भी अपन् ये नहीं केह सके के परमात्मा सिर्फ मेरो ही है और कोईको नहीं है. मेरे ही सम्प्रदायको है और कोई सम्प्रदायको नहीं है ऐसे नहीं केह सके. जब परमात्माके बारेमें अपन् ऐसे नहीं केह सकें तो वो ही बात रूप रस गन्ध स्पर्श के बारेमें भी लागू पड़े है. रूप रस गन्ध स्पर्श में भी परमात्माकी मौजूदगी वाही तरहकी है जा तरहसु सब सम्प्रदायकी मौजूदगी है. मगर वो श्रद्धादृष्टि बौद्धिकदृष्टि आवे तो हर झगड़ाको समाधान हो जावे. अगर ये श्रद्धा और बौद्धिक दृष्टि नहीं आवे तो हर बात झगड़ावाली लगे. इतनी विविधतानसु कौन घबरावे? जो बच्चा होये. क्योंकि अपने अज्ञानके अनुसार बच्चा जिद्द पकड़के बैठ्यो है के मम्मी मेरी है. बच्चामें ये बचपना प्यारो हो सके है पर बड़ो होके भी ऐसो सोचनो मूर्खता है. मूर्ख और बच्चा में अन्तर केवल इतना ही है के मूर्खता जा बखत भोली होवे तो वो 'बचपना' केहवावे. बचपना जा बखत भोलो नहीं रेह जावे, कुटिल हो जावे तो वो 'मूर्खता' केहवावे.

या रहस्यकु अच्छी तरहसु समझो तो महाप्रभुजी अपनेकुं ये समझानो चाह रहे है के प्रभु फलदानमें चक्रवर्ती कैसे है! महाप्रभुजी केह है के यदि तुम्हरो ज्ञानको स्वभाव है तो कृष्ण तुम्हारे ज्ञानके स्वभावकु कॉरस्पोंड करवेके लिये तैयार है. ब्रह्मको स्वभाव है के तुम वाकु जान सको हो और अपने ज्ञानसु तुम शान्त हो सको हो. तुम्हारेमें यदि भक्तिको स्वभाव है तो वाकु तुम परमात्माके रूपमें भी जान सको हो. भीतर भी जान सको हो. तुम भक्तिमय हो सको हो. वो तुम्हारी भक्तिकु भी सेटिस्फाय कर सके है. तुम्हारेमें यदि भगवान्के प्रति पूजाको शरणागतिको भाव है तो वो कृष्ण भगवान् भी है. तुम वाके लिये शरणागत भी हो सको हो वाकी पूजा भी कर सको हो वाको ध्यान भी धर सको हो.

देखो एक बात सच्ची बताऊं के ब्रह्मको ध्यान धरनो बड़ो मुश्किल है. परमात्माको ध्यान धरनो भी बड़ो मुश्किल है पर भगवान्को ध्यान धरनो बड़ो सरल है. क्यों सरल है क्योंकि ब्रह्मको अपन् ध्यान धरवे जायेंगे तो क्या होवेगो ? ब्रह्मको वर्णन करवे जाओगे तो जो कुछ है वो सब ब्रह्म है. वामें तो जासु अपनो झगड़ा चल रह्यो है वो भी ब्रह्म है. जो अपनेसु झगड़ रह्यो है वो भी ब्रह्म है. अब वाको ध्यान करे तो ध्यानमें ही चिंता हो जायेगी के ये ब्रह्म है. ब्रह्मको ध्यान धरनो मुश्किल है. ब्रह्मको समझनो सरल है. ऐसे ही परमात्मा अपने भीतरकी हकीकत है. वाको अपन् ध्यान करवे जायेंगे तो अपने भीतर तो अपन् घुस ही नहीं सकेंगे. देखो, एकसरे घुस जाये, एम.आर.आई घुस जाये. गर्भमें सोनोग्राफी करके बच्चान्के फोटो देख लें पर भगवान्को फोटो अभी तक दिखाई नहीं पड़यो. अपन् जब भीतर देखें तो परमात्माके बजाय कोई हाडमांसकी भलती चीजें ही दिखलाई दें. परमात्मा दीखे नहीं है तो या लिये परमात्माको ध्यान धरनो भी मुश्किल है पर भगवान्को ध्यान अपन् धर सकें हैं. क्योंकि भगवान् दीखे नहीं है पर भगवान्के प्रति अपनी कोई भावना है के भगवान् ऐसो होवे है. वा भावनाके कारण अपन् भगवान्को ध्यान धर सकें हैं. भगवान्के प्रति शरणागत हो सकें हैं.

ऐसे ही वो भगवान् जा बखत अवतार लेवे वा बखत अवतारन्की लीलामें आप स्वयं देख लो. कृष्णावतारकी लीलामें मनुष्यके कोई ऐसे भाव नहीं है जा भावकु भगवान्ने कॉरस्पोन्ड नहीं कियो. द्वेषसु भी भगवान् मिले है कामसु भी मिले है क्रोधसु भी मिले है. माने काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य जो अपने दुर्गुण हैं उनसु भी भगवान् अवतारकालमें तो मिले ही है. पर आज इन दुर्गुणन्सु भगवान्कु पानो चाहे तो पा नहीं सके है पर भगवान् इन दुर्गुणवालेन्कु मिलनो चाहे तो मिल सके है.

(उपसंहार)

ये बात अकबरने गुसांईजीसु पूछी के “साहिब कैसे मिलें ?” और गुसांईजीने कही के “जैसे तुम हम मिले” कोईकु अकबरसु मिलनो होय तो बड़ी मुश्किल है. दरबान रोकेगो दीवान रोकेगो सब रोकेगो पर अकबरकु कोईकु मिलनो है तो न दीवान रोक सके और न दरबार रोक सके. ऐसे भगवान् जाकु मिलनो चाहतो होय वाकु काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य रोक नहीं सकेंगे. भगवान् यदि

मिलनो चाह रह्यो है तो काम करवेवालेकु भी मिलेगो, क्रोधीकु भी मिलेगो, द्वेष करवेवालेकु भी मिलेगो. ये बात भागवतने भगवान्के अवतारमें समझाई है के इन सारी दुर्वृत्तिन्सु भी भगवान् मिल सके है. जा बखत अपन् अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवा पूजा भक्ति, ब्रह्म परमात्मा भगवान् और अवतारी कृष्णके भावसु कर रहे हैं वा बखत अपने घरको ठाकुर पुष्टिभक्तिके रूपमें भी (परमात्मा) मिल सके है. तो अपने कृष्णके फलदाता होवेकी एक रेन्ज् देखो, एक स्पेक्ट्रम् देखो. स्पेक्ट्रम् = सतरंगी धनुष. जाकु ‘धनक लहरिया’ कहें. ऐसे कृष्णके रंगन्को धनकपनो देखो. वो सब रंगन्सु सबकु मिल सके है या अर्थमें कृष्ण फलदानमें चक्रवर्ती फलदाता है. ये बात महाप्रभुजी अपनेकु समझानो चाह रहे हैं.

आजको प्रकरण और या बखतकी किशनगढ़की यात्राको प्रकरण यहां अपन् पूरा करें.

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

गदाधरदासकी वार्ताविवेचना : प्रसंग-२

(उत्सर्ग - अपवाद - प्रतिप्रसव विमर्श.)

प्रकरण : १ पुष्टिभक्तिभावविवेक

(वार्तामें महाप्रभुके उपदेश ब्रजभाषामें - एक अनुमान)

यहां जो अपनी प्रवचनमाला चले है वो मूलमें ८४वैष्णवन्की वार्तामें महाप्रभुके जो वचन है वो महाप्रभुके उपदेशके जो ग्रंथ है - षोडशग्रंथ निबन्ध पंचश्लोकी शिक्षाश्लोकी - उनके अनुवादरूप नहीं होके स्वतंत्र हैं. अन्तर सिर्फ इतना है के वो ग्रंथ संस्कृतमें कहे गये उपदेश है और ये उपदेश महाप्रभुके ब्रजभाषामें कहे गये है. अब आज अपने पास या बातको कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है के महाप्रभुने ये सारे वचन ब्रजभाषामें ही बोले क्योंकि आप तो परिक्रमा कर रहे हते. ३०वर्ष तक आपने परिक्रमा निरन्तर करी, कहीं भी एक ठिकाने रहेके आपको बिराजवेको उपक्रम हतो नहीं. माने गुजरात महाराष्ट्र उड़ीसा बंगाल उत्तरप्रदेश सब जगह तो कोई ब्रजभाषा चलती नहीं होती.

आप स्वयं तेलुगु ब्राह्मण हते तो मातृभाषा तेलुगु हती पर जो खुद परिभ्रमण करे है वो कई भाषानकुं अपने आप बोलतो हो जावे. वाको स्पष्ट प्रमाण अपन्यामें देख सके हैं के जब सूरदासजी महाप्रभुसु मिले और दीनता आत्मग्लानि के पद गाये तो महाप्रभुने अचानक टोक्यो के “सूर होयके काहे धिधियात है कछु भगवल्लीला गा.” अब ये भी निश्चय नहीं है के ये बात आपने ब्रजभाषामें कही के वा बखत वा एरीयामें प्रचलित हिन्दीभाषा हती वामें कही ! पर क्योंकि श्रीगोकुलनाथजीने वचनामृत ब्रजभाषामें लिखे हैं वा लिये वो बात वहां ब्रजभाषामें आयी है. पर इतनी बात तो निश्चित है के वाके बाद जो भगवल्लीला सूरदासजीने गायी वो ब्रजभाषामें गायी “ब्रज भयो महरके पूत जब यह बात सुनी, सुनी आनन्दे सब लोग गोकुल गनित गुनी”. और वो जब ब्रज - नंदालयकी लीलाकु

गाते ही चले जा रहे हते के “तब ता दिनते वे लोग सुख संपत्ति न तजे” तब महाप्रभुने तुरन्त वा पदकी अचानक पूर्ती कर दी के “सुनी सूर सबन्की यह गति जे हरिचरण भजे”. या बातसु ये तो प्रमाणित हो जावे है के ब्रजभाषाके ऊपर आपको एकदम अद्भुत प्रभुत्व हतो. तो जैसे तेलुगु ब्राह्मण होते भये ब्रजभाषापे प्रभुत्व हतो ऐसे गुजराती और मराठी भी अच्छी बोल सकते होयेंगे. बंगाल आप पांच बखत पधारे तो बंगाली भी बोल सकते होयेंगे. चैतन्यमहाप्रभुसु और रूपगोस्वामीसु आपकी बहोत अच्छी मैत्री हती तो बहोत सारी भाषा बोल सकते होयेंगे.

(वचनामृतमें षोडशग्रन्थमें सिद्धान्तको ही उपदेश ब्रजभाषामें है)

अब ये जो चौरासी वैष्णव हैं ये भी बहोत सारे प्रदेशके है कोई एक प्रदेशके तो हैं नहीं. तो इन सबसु आप ब्रजभाषामें ही बोलते होयेंगे ऐसे मानवेको कोई कारण लगे नहीं है क्योंकि आप शायद ब्रजभाषा बोलते भी होय पर वो लोग ब्रजभाषामें बोलते होय के नहीं ये प्रश्न तो है. पर जो श्रीगोकुलनाथजीने इन वार्तानुको संकलन कियो, वो ब्रजभाषामें कियो, करके वो सारे उपदेश आज जो अपने सामने अवेलेबल् हैं वो ब्रजभाषामें हैं. और इन उपदेशन्में भी सिद्धान्तके और आचरणके बहोत गंभीरतम रहस्य रहे भये हैं.

ये मेरी हृदयकी निष्ठा है. खाली संस्कृत ग्रन्थन्में ही है एसो नहीं पर इन ग्रंथन्में प्रकट भये आपके वचनन्में भी सिद्धान्त और आचरण को गंभीर रहस्य है. और उन रहस्यन्कुं भी अपनेकुं उतनी ही आदरकी दृष्टिसु श्रवण चिंतन और मनन करना चाहिये. वा हेतुसु मैंने एक उपक्रम कियो के वल्लभवचनामृत अपन ८४वैष्णवन्की वार्तानुसु छांटे के कहां - कहां कौन - कौनसे वैष्णवके वार्तामें आपने क्या - क्या वचनामृत बोले और उनकी भी सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि क्या है, कौनसी बातकु ध्यानमें रखके वो उपदेश दिये गये हैं, वा प्रसंगकी संगति, वाको श्रुत्यादि शास्त्रन्के अनुसार जो तात्पर्य है वो सब अपनकुं ध्यानमें आवे तो ये वचनामृत भी षोडशग्रंथसु कोई कम नहीं हैं, एसी मेरी निष्ठा श्रद्धा और विश्वास, तीनों ही हैं. वा लिये मैंने वो वचनामृत संकलित करके छापवेको प्रयास कियो.

या बखत जो दो वार्तायें आयी हैं इन दो वार्तान्में एस् सच् महाप्रभुजीको कोई वचनामृत एवेलेबल नहीं है. पर महाप्रभुके सेवकन्की ये वार्तायें हैं और महाप्रभुके सेवकन्की वार्ता होवेके कारण उनके चरित्रमें महाप्रभुके सिद्धान्त तो प्रकट हो ही गये हैं. तो या वार्ताकी थोड़ी विवेचना जरूर मैं आपको समझानो चाहूंगा. एक बात और कहूंगा के यामें थोड़ी कड़ाकूट तो है. पर वाकु आप मेरे साथ सहन करो क्योंकि रसगुल्ला खानो तो बहुत सरल है. अपने राजस्थानमें तो बाटी खावें, वाकु खावें थोड़ी कड़ाकूट तो है, दांतकु जोर तो पड़े ही है, रसगुल्लाकी तरह फटसु नहीं उतर जावे गलामें. तो वो जो चाबवेको परिश्रम है वो थोड़ा आपको भी लेनो पड़ेगा, थोड़ा मैं भी लुंगो, अपन मिलके लेंगे. पर जो भी करेंगे वामें इतनी बात स्पष्ट है के महाप्रभुको मत अपनेकुं स्फुटतः समझमें आ सके है ऐसी ये वार्तायें हैं और इन दो वार्तान्में यद्यपि कोई वचनामृत नहीं हैं पर महाप्रभुके सेवकन्के चरित्रकी ये वार्तायें हैं और उनमें महाप्रभुको सिद्धान्त बड़ी खूबसुरतीसु प्रकट्यो है, झलक्यो है वाको आनन्द अपनेकुं लेनो चाहिये.

(भगवान्की लीलाके दो पहलु १.स्वयं भगवान्की लीला २.शास्त्रनिरूपित

भगवल्लीला)

इन वचनामृतनुं समझवेके पहले दो - तीन बातें खास ध्यानमें रखवेकी हैं. वामें एक बात है जो महाप्रभुने सुबोधिनीमें कई ठिकाने प्रकट करी है के भगवान्की प्रत्येक लीलाके दो पहलु हैं: एक पहलु वो है के लीला जो आपने करी है वामें प्रभुको आनन्द प्रकट हो रह्यो है और वाको तो आनन्द लेवेको होवे है क्योंकि प्रभु आनन्दमय स्वरूप हैं. जो भी लीला कर रहे हैं वो कोई कामनापूर्तीके लिये नहीं कर रहे हैं परन्तु आनन्दके उच्छलनके कारण कर रहे हैं. जैसे सागरपे चन्द्र उगे तो सागरमें हिलोरे आवे. वो सागरको अपने स्वभाव है छलकवेको, चन्द्रकु देखकें. वा तरहसु प्रभु जब लीलामें भूतलपे अवतीर्ण होवे हैं तब प्रभुमें भयों भयो आनन्दको सागर छलके है. वो जो भी लीलार्थें हैं वामें प्रभुको आनन्द ही प्रकट हो रह्यो है कोई भी लीलामें प्रभुको राग - द्वेष - काम - क्रोध - लोभ - मोह - मद - मात्सर्य जैसे जीवके जो दुर्गुण हैं वो प्रकट नहीं हो रहे हैं. वो भगवान्की प्रत्येक लीलाकुं देखवेको एक बड़ी मीठी नज़रिया है, कैसे - कैसे यामें प्रभुको क्या आनन्द प्रकट भयो.

भगवान्की प्रत्येक लीलाकु देखवेको महाप्रभुजी एक ओर नज़रिया बतावे हैं, और वो ये है के शास्त्रमें कई तरहके सिद्धान्त बताये गये हैं. जैसे उदाहरणके तौरपे आपको बताऊं के ज्ञानसु मुक्ति मिले, निष्काम कर्मसु मुक्ति मिले, भक्तिसु मुक्ति मिले, योगसु मुक्ति मिले, वैराग्यसु मुक्ति मिले. और शास्त्र जा साधनाकु जा बखत उपदेश करे हैं वा बखत शास्त्र ये केह दे हैं के या साधनासु मुक्ति मिले है ओर कोई साधन है नहीं. अब लोग उन एक - एक साधनको झंडा लेके दौड़ें. जैसे ज्ञानवाले जो हैं वो केह के ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं है, तो वैराग्यवाले कहेंगे के वैराग्य बिना मुक्ति नहीं है, भक्तिवाले कहेंगे भक्तिके बिना मुक्ति नहीं है, कर्मवाले कहेंगे कर्मके बिना मुक्ति नहीं है. जैसे शास्त्रमें आवे है “**ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः**” : ज्ञानके बिना कोई मुक्ति नहीं है. तो अपनेकुं सुनते ही ऐसे लगे के यदि ज्ञान नहीं है तो कर्मसु मुक्ति नहीं है. एक ठिकाने ऐसे लिख्यो है के “**न कर्मणा न प्रजया न धनेन त्यागेनैके अमृतत्व**” : न कर्मसु न प्रजासु न धनसु, त्याग करो बस तो ही तुमकु अमृततत्त्वकी प्राप्ति होयेगी. कोई ठिकाने ऐसे लिख्यो है के भक्तिके बिना तो भगवान् मिले ही नहीं है तो वो सब भक्तिवाले झंडा लेके दौड़ उठे हैं के चलो भक्तिके अलावा जीवनमें कोई श्रेय नहीं है.

(जीवको कल्याण : भगवदिच्छा)

महाप्रभु इन सारे वचनन्के फूलन्की एक माला बनानो चाहे हैं, जैसे कई फूलन्सु अपन एक माला बनावे है, और माला बनावे ये केह हैं के इनमें जा फूलन्की प्रशंसा आयी है उनको झंडा लेके दौड़वेकी जरूरत नहीं है. ये वचन कोई खोटे भी नहीं हैं सब सच्चे वचन हैं. पर यामें समझवेको रहस्य ये है के भगवान्कु जा जीवको जा साधनसु जैसो कल्याण करनो होय, वा साधनसु वा जीवको वैसो कल्याण करे हैं. जाको ज्ञानसु कल्याण करनो होय वाकु प्रभु ज्ञानसु, जाको कर्मसु कल्याण करनो होय वाकु कर्मसु, जाको भक्तिसु कल्याण करनो होय वाकु भक्तिसु, वैराग्यसु कल्याण करनो होय वाकु वैराग्यसु कल्याण करे है. यामें इन साधनन्के झंडा लेके दौड़वेकी जरूरत नहीं है पर भगवान्की कल्याण करवेकी जो सामर्थ्य है वाकु समझवेकी जरूरत है. और वा सामर्थ्यको वर्णन करवेके लिये ये सारे वचन हैं.

(पुष्टिभक्तिको अर्थ : भगवदनुग्रहसु प्रकट होती भक्ति)

ये एक महाप्रभुको सिद्धान्त है या अर्थमें अपन् अपनी भक्तिकु 'पुष्टिभक्ति' केह हैं. क्यों 'पुष्टिभक्ति' केह हैं वाको अर्थ समझो. क्योंकि भक्तिसु कल्याण नहीं पर भक्ति यदि पुष्टिसु पैदा भयी होय, प्रभुके अनुग्रहसु पैदा भयी होय तो प्रभु भक्तिसु भी प्राप्त हो सके हैं. और भक्ति यदि प्रभुकी कृपासु नहीं प्राप्त भयी और अपने अहंकारसु अपनने करतब विकसित कर दियो, जैसे सर्कस्में जो करतब दिखावेवाले है वो कई सारी सामर्थ्य प्राप्त कर लें. अपनी सामर्थ्यसु अपनी जहां टांग नहीं पहुंच सके वहां टांग दिखा देंगे. तो ऐसे अपन् अपनी सामर्थ्यसु भक्तिके कई करतब दिखा दें पर वासु कोई कल्याण होनो जरूरी नहीं है क्योंकि करतब एक जातको प्रदर्शनमें परिवर्तित हो जावेगो. कल्याण कौनसी भक्तिसु होवे है ? भगवान्ने जा जीवके लिये एसो सोच्यो के "या जीवकु भक्तिके द्वारा मैं कल्याण करनो चाहुं हुं, या जीवकु भक्तिके द्वारा मैं मिलनो चाहुं" तो वाकी भक्ति कल्याणकारिणी भक्ति होवे है.

(भगवान्को अन्यथा कर्तुं सामर्थ्य)

तो भगवान्की सामर्थ्य इतनी है के वो केवल ज्ञान भक्ति कर्म वैराग्य तप आदि सु नहीं, पर भगवान् ऐसे सोचे के "द्वेषसु याकु मैं मिलनो चाहुं" तो जा बखत भगवान्सु द्वेष बराबर कर ले वाकु भगवान् मिल जावे. भगवान् जा बखत नक्की करे के "या जीवकु मैं याके क्रोधके कारण मिलनो चाहुं हुं" तो जब तक पूरो - पूरो क्रोध नहीं करे तब तक भगवान् वाकु नहीं मिले पर जा दिन वो पूरो - पूरो क्रोध कर ले वा दिन वाकु भगवान् मिल जावे. तो ये पुष्टिक्रोध है. जैसे अपन् 'पुष्टिभक्ति' केह हैं तो अपनकुं लगे के पुष्टि और भक्ति बस दूसरी कोई जगह बात नहीं, ऐसे नहीं है. जैसे पुष्टिभक्ति हो सके है ऐसे पुष्टिक्रोध पुष्टिलोभ पुष्टिमोह पुष्टिमद पुष्टिमात्सर्य हो सके है. अपन् भक्ति करवे जायेंगे तो भी भगवान्कुं मिलवेकी कोई गॅरन्टी नहीं है. भगवान्सु अपन् मद मात्सर्य या ईष्या करते होय तो भगवान्के मिलवेकी गॅरन्टी कहांसु होयेगी ! मात्सर्य या ईष्याके कारणपर भगवान् जा बखत जीवकु मिलनो चाहें; तो वा जीवकी ईष्या 'पुष्टिईष्या' है. ये एक रहस्य खास महाप्रभुने अपनकुं समझायो है के वाको जो ज्ञान है वो 'पुष्टिज्ञान' है वाको जो कर्म है वो 'पुष्टिकर्म' है. या लिये पूतना तो भगवान्कुं मारवेके लिये आयी हती, वो भक्ति करवेके लिये थोड़े ही आयी हती ! पर

भगवान्ने नक्की कियो के ये जब बराबर हिंसा करेगी तो मैं याको कल्याण करूंगो. तो पूतनाकी जो हिंसा है वो 'पुष्टिहिंसा' है.

(अपने सामर्थ्यसु प्रभु नहीं मिले)

अब एक सामान्य बात समझो के अपन् पूतनाकु उदाहरण पकड़ लें के वो भगवान्कु मारवे गयी तब अपन् भी भगवान्की मूर्तियां तोड़नी शुरू करें मोहम्मद गज़नवीकी तरह, तो भगवान् मिलेगो ! या तरहसु अपनने भगवान्की मूर्ति तोड़ी भी तो वासु भगवान् मिलवेकी कोई गॅरन्टी नहीं क्योंकि वो करतब अपन् अपने अहंकारसु विकसित कर रहे हैं. जैसे सर्कस्के खिलाड़ियें अपने अहंकारसु या सामर्थ्यसु कई करतब दिखा दें, ये पुष्टि नहीं है. तो महाप्रभु ये सिद्धान्त समझावें हैं के यदि पुष्टि है तो जैसे कर्म ज्ञान भक्ति वैराग्य सु प्रभु मिल सके हैं, वैसे ही पुष्टि है तो काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य सु भी प्रभु मिल सके हैं. पुष्टि है तो अपनी संसारकी जो विषयासक्ति है वासु भी प्रभु मिल सके हैं.

पर यामें एक रहस्य महाप्रभुने समझायो, वो ये है: देखो ये बात बहोत गंभीर है और अक्सर लोग कथा करवेमें ये बातें स्पष्टतया नहीं प्रकट करें पर ये बात खास ध्यानसू समझनी चाहिये के भगवान्के प्रति जैसे क्रोध मोह मद मात्सर्य के भाव भगवान् अपने सामने साक्षात् प्रकट होयें तो तो सहजतया अपन् कर सकें. पर भगवान् यदि अपने सामने प्रकट नहीं हैं और अपन् जैसे भक्ति ज्ञान या कर्म की साधना करें, ऐसे कोई यों नक्की करे के हम भगवान्के प्रति क्रोधकी साधना करेंगे. क्रोधकी साधनाको मतलब क्या ? बहोत सरल है के कोई बैठे ठाले एक बच्चाकु पकड़के देखो. वाके मुंहसु भगवान्को नाम निकले और वाकु गुस्सा होके दिखा दो. बच्चाकु रहस्य पता चल जावेगो के भगवान्को नाम लेवेसु तुमकु गुस्सा आवे है. अब जैसे कोईने 'श्रीराम' केह दियो और गालियां देनी शुरू करो. वो बच्चा केह देगो के "याके सामने 'श्रीराम' नाम लें तो वाकु बहोत गुस्सा आवे." बच्चायें तो तूफानी होवे ही. तुरन्त वो दूसरे बच्चाकु कहेंगे के "याकु चिड़ानो होवे तो 'श्रीराम' कहो. जैसे ही 'श्रीराम' कहेंगे, फिर गाली देगो". दस बच्चानकुं पता चली तो सब लोग केहवे लग जावेंगे. अपनी क्रोधकी साधना प्रकट हो गयी. बात समझमें आयी !

तो या तरीकेकी क्रोधकी साधना भी अपनने करी भगवान् के साथ वासु भगवान् के प्राप्तिकी या अपनी कल्याणकी कोई गॅरन्टी नहीं है. वैसे ही क्रोध द्वेष मद मात्सर्य अहंकार आदि सबके लिये अपन समझ सके हैं. तो अपन जो अपनी सामर्थ्यसु साधना कर रहे हैं वासु भगवान् की प्राप्ति या अपना कल्याण कोई निश्चित नहीं है. पर भगवान् की पुष्टि होवे तो, जाकु अपन सुसाधन या दुष्टसाधन या निःसाधन कहे उन सबसु भगवत्प्राप्ति हो सके है. पर यामें रहस्य इतनो ही है के भगवान् अपने सामने प्रकट हैं तो यह क्रोध द्वेष ये सब भी कामिन्दा हैं. भगवान् यदि प्रकट नहीं हैं और अपन क्रोध या द्वेष करवे जावें तो याकी कोई गॅरन्टी नहीं है के प्रकट होयेंगे के नहीं.

(अनवतारकालमें दुष्टसाधनासु प्रभु नहीं मिलेंगे)

जैसे भयके कारण कंसके सामने प्रकट हो गये तो अपन भी भयकी साधना करें के रोज भगवान्सु बस डरते रहनो. कैसे डरनो ? सेवा नहीं करनी, सेवा करें तो अपराध हो जावे ! ये भयकी साधना. आजकल पुष्टिमार्गमें भक्ति के बजाय भयकी साधना ज्यादा करें ! मैंने याही लिये एक पॅरोडी लिखी हती. महाप्रभु आज्ञा करें हैं “यथा भक्ति प्रवृद्धा स्यात् तथोपायो निरूप्यते” (भ.व.१). मैंने वाकी पॅरोडी बनायी हती “यथा भीति प्रवृद्धा स्यात् तथोपायो निरूप्यते” = भय जैसे बढ़े एसो उपाय बताऊं. “बीजभावे दृढ़े तु स्यात्” = बीजभाव यदि डरवेको दृढ़ है तो “त्यागात् श्रवण कीर्तनात्” = सेवा श्रवण कीर्तन को त्याग करो तो बीज दृढ़ हो जावेगो. सेवाको त्याग करते ही डरवेके सारे सामान पैदा हो जावेंगे. “बीजदाढ्यप्रकारस्तु गृहे संप्रेषितात् सदा” = हवेलीमें जानो शुरू करो घरमें ठाकुरजी मत पधराओ बीजभाव ओर दृढ़ हो जावेगो के “इतनी बड़ी वैभवकी सेवा हमसु कहांसु हो सके !” ऐसे आखी मैंने एक पॅरोडी भक्तिवर्धिनीकी जगह भीतिवर्धिनी लिखी के आज अपन पुष्टिमार्गमें भक्तिवर्धिनीके बजाय भीतिवर्धिनीकी साधना करे हैं, बस डरते रहो. तो अपन वो सब भीतिसाधना ज्यादा करें जो भक्तिसाधनाके बजाय शक्य है. और वा भीतिसाधनासु कोई प्रभु मिल जावेंगे या अपनो कल्याण होवेगो ये तो कोई गॅरन्टी नहीं है. प्रभु कंसकु भयके कारण मिल गये वो तो वाको ‘पुष्टिभय’ हतो, जैसे ओरनकी ‘पुष्टिभक्ति’ हती ऐसे ‘पुष्टिभीति’ हती. वासु प्रभु कंसकु मिले. द्वेषके कारण शिशुपालकु मिले वो ‘पुष्टिद्वेष’ हतो. सुबहसु उठके चौराहेपे खड़े होके अपन रोज गालियां देनो शुरू करें. गाली -

गलौच शुरू करो वासु भगवान् मिलेंगे के नहीं मिलेंगे कोई निश्चित अपन कह नहीं सकें. क्योंकि वो अपने मिथ्या अहंकारसु करी भयी साधना है वो ‘पुष्टिसाधना’ नहीं है. यह एक रहस्य अपनकुं एक साफ़ - सुथरे तौरपे समझनो चाहिये.

तो महाप्रभु एक बात अपनकुं स्पष्ट समझावें के प्रभु जा बखत स्वयं प्रकट हैं वा बखत तो कोई ऐसे दुष्टसाधन भी पुष्टिके अवान्तरव्यापार हो सके हैं. जा बखत स्वयं प्रभु प्रकट नहीं हैं वा बखत दुष्टसाधनको रिस्क लेनो माने साधनाके उद्यमकु चौपट करवेको काम होवेगो. वाके लिये दुष्टसाधन मत अपनाओ. शास्त्रमें जो अच्छे साधन बताये गये हैं कर्म ज्ञान भक्ति, वामेंसु जो कर सकते हो वो करो. उन सब साधननमें महाप्रभु भक्तिकु सबसु अच्छो सरल और सीधो साधन माने हैं के यामें प्रभुको पूर्ण अनुभव अपनकुं हो सके है. वो ‘पुष्टिभक्ति’ है, वो एक पुष्टिभक्तिको भाव है. सो वो ठाकुरजी प्रकट नहीं भये होयें तब भी ‘पुष्टिभक्ति’ करनी अच्छी बात है, ‘पुष्टिज्ञान’ करनो अच्छी बात है, ‘पुष्टिकर्म’ करनो अच्छी बात है. पर प्रकट होये तो फिर कुछ भी करनो कोई बुरी बात नहीं है के फिर जैसे जा तरहसु जुड़ गये वा तरहसु अपनो नाता जुड़ गयो. जुड़ गयो तो जुड़ गयो बस वामें प्रभु प्रकट हो सके हैं. ये महाप्रभुके सिद्धान्ततकी चौखट है.

(संगके कारण आसक्ति)

यामें भक्ति कैसे प्रकट होवे ये भी एक सवाल है. भक्ति कैसे प्रकट होवे वा बातके लिये महाप्रभुने कुछ बातें अपने मनके स्वभावके आधार पर पकड़ी के मनको स्वभाव क्या है ! तो मनको स्वभाव ये है के जा चीज़को मनसु संग अपन नियमित करें वा चीज़की अपनकुं आसक्ति हो जावे. बीड़ी सिगरेट् फूँकी तो वाकी आसक्ति हो जावेगी. फिर सिगरेट् बिना चलेगो नहीं. नियमित सुबह छापा पढ़ो फिर छापाकी आसक्ति हो जावेगी. सुबह छापा नहीं मिल्यो तो दिनभर सुस्ती रहे. नियमित चाय पियेवालेनकुं सुबह एक कप चाय पी ली फिर स्फूर्ति आ जावे. नहीं चाय पियो तो चेहरापे मुरदनी छावे पैरनमें मुरदनी छावे. सब जगह सुस्ती - सुस्तीको वातावरण लगे. तो जा चीज़कु अपन नित्य संग करें वा वस्तुमें अपने मनकी आसक्ति पैदा हो जावे है.

(कायिक – वाचिक – मानसिक भगवत्संगसु प्रभुप्रेम प्रकटे)

या कारणसु भगवान्को नित्यसंग करनो और नित्यसंगको उपाय शास्त्रने ये बतायो “श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यम् आत्मनिवेदनम्” (भाग.पुरा.७।५।२३) ये जो नव प्रकार बताये इनसु प्रभुको नित्यसंग करें. लीलाके गुणको नामको श्रवण करें, वाके कीर्तन करें, वाको स्मरण करें, वाके स्वरूपको अर्चन करें, वंदन करें, दास्य करें, और वा सेव्यप्रभुकु अपन् अपनो स्वामी मानें, सखा मानें, और अपनो सर्वस्व मानें. तो या तरहसु अपन् संग करें तो मनको वो स्वभाव बन जावेगो जैसे रोज चाय पीवेसु चाय पीवेको स्वभाव बन जावे. वा मनके स्वरूपकु महाप्रभुने पकड़के नवधा भक्तिकु गुंथवेको एक प्रकार समझायो और वा गुंथवेसु फायदा क्या होवे के अपन् कायिक – वाचिक – मानसिक, तीनों रूपसु प्रभुको संग पूरो – पूरो प्राप्त कर सकें. जैसे श्रवण कीर्तन स्मरण अपनो प्रभुके साथ वाचिक संग है, अर्चन वंदन पादसेवन अपनो प्रभुके साथ कायिक संग है और दास्य सख्य और आत्मनिवेदन अपनो प्रभुके साथ मानसिक संग है. तो हर व्यक्तिके ये तीन पहेलु होवे हैं काया वाणी और मन. उन तीनकुं पाछो तीनमें ओर गुणित करके और नव प्रकारसु अपन् प्रभुकु संग करें तो वो संगके कारण प्रभुमें प्रेम पन्पेगो. कीर्तनको वाचिक संग श्रवणादि – स्मरणान्त होनो चाहिये. अर्चनको कायिक संग पादसेवनादि – वंदनान्त होनो चाहिये. प्रभुके सख्यभावको मानसिक संग दास्यादि – आत्मनिवेदनान्त होनो चाहिये.

वाके लिये दसवीं प्रेमलक्षणा भक्ति कही गयी के नवविधभक्ति साधनरूपा है और दसवीं भक्ति प्रेमलक्षणा है के ये नव तरहसु प्रभुकी भक्ति करेंगे तो अपनकुं प्रभुमें प्रेम प्रकट होयेगो. पर वामें एक तकलीफ़ यही है जो मैं कई बखत बता चुक्यो हुं के एक डोकरीके प्राण छूट रहे हते. सबन्ने वाकु इकठे होके कही के “अब तेरे प्राण छूट रहे हैं तो ‘राम’को नाम ले”. तो मरते – मरते डोकरी इतनो बोली के “तु जो बोलत है वो मुंहसे नाहीं निकरत” पर ‘राम’ नहीं बोली ! मनकी एक तरहकी जिद्द है के इतने शब्द बोली पर ‘राम’ नहीं बोली.

(आदतनुसु छुटकारा कठिन)

हमारे दादाजीके एक परिचित हते. उनकी भी ऐसे देह छूट रही हती. तो उनके बेटाने दादाजीकु कही के “हमारे पिताजीकी अंतिम अवस्था है, क्या करें ?” दादाजीने कही के “शास्त्रमें कही है के मरते समय गोदान करनो चाहिये”. वो करोड़पति हते, कई मिलनके मालिक हते. तो उनकु कही के “गोदान इनके हाथसु दिवा दो”. उन्होंने कही के “गोदान तो यहां बम्बईमें कहांसु लाउं.” तो दादाजीने कही के “एक काम करो एक गाय जितनेकी आवे उतने रूपैयान्को दान अभी इनके हाथसु दिवा दो. फिर उन रूपैयान्की गाय लेके दिवा दीजियो.” तो बेचारे बेटाने मुनीमकु कही के “उतने रूपैया लाके पिताजीके हाथमें दे”. मरते – मरते पिताजीने कवर खोलके देख्यो. उसमेंसु २००००/- निकालके तकीयाके नीचे रख दिये, खाली ५०००/-को मरते – मरते दान दियो. एक जिद्द हती आदमीकी के पैसा छोड़नो नहीं. ५०००/-की गाय आती होवे के नहीं आती होवे, २००००/- तकीयाके नीचे रख्यो होवे तो वो मरते बखत कैसे लेके जावेगो ? पर आदत जो पड़ गयी वो छूटे नहीं. तो ऐसे ही अपनकी भी कुछ – कुछ आदतें पड़ जावें -- मश्रवणमें भी, कीर्तनमें भी, स्मरणमें भी, अर्चनमें भी, वंदनमें भी, दास्यमें भी, सख्यमें भी, आत्मनिवेदनमें भी. उन आदतनुसु कैसे छुटकारा पानो ये गंभीर समस्या है. इन आदतनुसु जल्दीसु छुटकारा नहीं पायो जावे भले वामें महाप्रभु कुछ कहते होवे तो भी. बाडमेरेके तरफके भीतरिया किशनगढ़ लाये हते उनको एक बड़ो मज्जेदार मुहावरा हतो. कुछ भी बात करें तो उनको बड़ो पेटन्ट हतो के “बापजी मारहो के करहो हुं !” अपनकुं महाप्रभु भी कुछ केहते होवे तो अपनकुं यों लगे के “गरीब माणहरी मशकरी क्या करें बापजी, मारहों के करहों हुं ?”

(शास्त्रविरोधी पद्धतिसु कियो श्रवणादि भक्त्यंग नहीं हो सके)

तो वो जो आदत पड़ी भयी है वो जल्दीसे छूटे नहीं अपनी करके अपन् श्रवण कीर्तन स्मरण अर्चन वंदन दास्य सख्य आत्मनिवेदन करते होवे वामें भी कुछ न कुछ अपनकुं उपद्रव हो ही जावे. श्रवण करनो है, तो श्रवण करवेकी जो पद्धति बतायी है वा तरहसु श्रवण नहीं करनो. टीवी खोलके श्रवण कर लियो, विडियो खोलके श्रवण कर लियो ! आजकल, क्योंकि, ‘आस्था’ चॅनल् और ‘संस्कार’ चॅनल् में कीर्तन और स्मरण आ रहे हैं, वामें अपनकुं श्रवणकी जो पद्धति बतायी है वा पद्धतिसु तो श्रवण करें नहीं. बैठे हैं, सो रहे हैं, देख रहे हैं ‘आस्था’.

चॅनलको नाम 'आस्था' है पर वासु वो 'आस्थाकी चॅनल' अपनमें प्रकट हो रही है ? चायकी चुस्की लेते हुये आस्था भी देख रहे हैं, बोल रह्यो है तो बोलते रहो, बकते रहो. तो या तरहको जो श्रवण है वो श्रवण नहीं है. श्रवणकी एक विधि है. ऐसे ही कीर्तनकी एक विधि है वा तरहसु नहीं करके ओर कोई रँकोई या टेप् बजा दी. रँकोई बज रही है, अपन् भी साथ - साथ गा रहे हैं; गा रहे है तो कीर्तन तो हो ही रह्यो है न, कीर्तन नहीं हो रह्यो है ऐसो तो नहीं ! पर वो कीर्तनकी पद्धति नहीं है. जैसे कीर्तनकी एक पद्धति है ऐसे ही स्मरणकी भी एक पद्धति है. वा पद्धतिसु अपनकुं करनो माफ़क नहीं आवे. अर्चनकी जो पद्धति हती के व्यक्तिकु प्रतिदिन स्वयं अर्चन करनो चाहिये. अपनने एक पद्धति बना ली के मंदिरमें जाके रूपैया जमा कराओ और अर्चन हो गयो, बेकार खोटी झंझट !!! घरमें ठाकुरजीकु पालके फायदा क्या ? ठाकुरजीकु अपन् हवेलीमें जाके वंदन कर ले, बात पत गयी !

(आचार्यचरणके बताये प्रकारसु ही भक्ति करनी)

ये सब पद्धतिनकुं विकसित कर ली वामें अपनी नवधाभक्ति जा तरहसु शास्त्रमें बतायी गयी है वा तरहसु होवे नहीं. करके महाप्रभुने इन नवधाभक्ति और प्रेमलक्षणाभक्ति को सच्चो स्वरूप अपन् कैसे निभा पावें, वाकी सावधानी अपनमें स्वयं पनपे वाके लिये महाप्रभुने कुछ बातें षोडशग्रंथमें बतायी हैं के जैसे “बीजदाढ्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः”(भ.व.२):परिवारजनके साथ हिलमिलके घरमें सेवा करो के जासु व्यर्थमें तुमकु भक्तिके कारण संताइकी सनक न चढ़े. क्योंकि भक्ति करते ही संताइकी सनक चढ़े के “अब तो संसारसु हम विरक्त हो गये”. अब संसारसु विरक्त हो गये तो वो धीरे - धीरे फिर तुम्हारे भीतर भगवान्में भी विरक्ति ला देगो. तो वो व्यर्थमें संताइकी सनक न चढ़े करके महाप्रभुने आज्ञा करी के परिवारके लोगनके साथ हिलमिलके सेवा करो. व्यर्थमें क्रियाकाण्ड इतनो जटिल मत बना दो के बस ठाकुरजी नहीं होके जैसे कोई पहलवान हो गये वाके साथ कुस्ती लड़ रहे हैं सेवाकी !! ऐसो न हो जावे वाके लिये महाप्रभुने भावनाकी भी बात बतायी के भाइ, भावनाके साथ सेवा करो, भावना खंडित न हो ऐसे ढंगसु क्रिया करो. इतनी क्रिया नहीं बढ़ा दें के जासु अपनी भावना ही खंडित हो जावे. भावनाकु पोषण मिले ऐसी सब क्रिया सेवामें

सच्ची क्रिया और जिन क्रियानकुं करवेसु भावना ही खंडित होती होवे वा क्रियाके अपन् एक्स्पर्ट हो जावें.

(भावनारहित सेवामें प्रवीणता कपालक्रियाके समान है)

हमारे यहां कई लोगनकुं मैं जानु वो पहले कभी आयें होय के नहीं पर उनकु पता चले के कोईकी डेथ भयी, तुरन्त पहुँच जावें; ठठड़ी बांधवेमें, वाकु उठाके ले जावेमें, वाकु जलावेमें एक्स्पर्टपनो यामें हांसिल कर लियो. हमारे एक परिचित हते उनकु यही बातको शौख के कोई भी मर जावे तो वो माथामें डंडा मारे कपालक्रिया करवेके लिये. मैं अकसर केहतो हतो के “मैं मरूं तो उनकु मत बुलाइयो. अभीसु मोकु डर लगे के कहीं कपालक्रिया न कर दे.” इतनो शौख डंडा मारवेको ! वो क्रियामें एक्स्पर्ट होवें हैं. वो पूछें बेटाकु “कपालक्रिया करनी है?” “हां करनी है पर कैसे करनी है ?” वो केह “अरे ठहर अभी करता हूँ !” ले ले घोंचा कपालमें मारे है. ऐसे कई लोग एक्स्पर्ट होवे ! ऐसे सेवामें एक्स्पर्ट हो जावें. उनकु भावना तो अंदर कुछ होवे नहीं, डंडा लेके ठाकुरजीके पीछे पड़ जावें. बहोत खतरनाक होवे हैं या तरीकेके लोग.

(सेवामें भावनाकी महत्ता)

वो अपन् न हो जावें वाके लिये महाप्रभुने भावनाकी भी बात करी के “कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ताः गुरवः साधनं च तत्, भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते” (स.नि.८) कुछ भावन्की भावना करो और वो भावन्की भावना करके सेवा करोगे तो तुम्हारी सेवामें या तरहको कपाल - क्रियापनो नहीं रेह जावेगो, भावनाकी अभिव्यक्तिसु सेवा होयेगी. वामें महाप्रभुने इन सब सावधानिनके तहत एक सावधानी बतायी है. ये नवधाभक्ति अपन् करेंगे जासु अपनकुं प्रभुके नामको, प्रभुके रूपको, प्रभुकी लीलाको, इन तीननको जो वाचिक कायिक मानसिक संग मिले, वासु अंतमें अपनकुं प्रभुमें प्रेम प्रकट होवेगो. वा प्रकट प्रेमकी शुद्धताकु निभावेके लिये महाप्रभुने एक बात ये भी आग्रहपूर्वक कही के तुम अपने तनसु और अपने धनसु सेवा करो, जो बात महाप्रभुने सिद्धान्तमुक्तावलिमें कही “चेतस् तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा” (सि.मु.२).

(पुष्टिभक्तिभाव जगावेकी प्रक्रिया)

ये आखो संदर्भ है के नवधाभक्तिसु चित्तसु तनसु धनसु अपन् जब भगवान्की सेवा कर रहे हैं तो वामें ऐसे कपालक्रियाकारी होवेको अपनकुं भाव जगेगो ही नहीं. जब सेवा दूसरेके लिये कर रहे हैं, कोईकु दिखावेके लिये कर रहे हैं, तो कपालक्रियामें एक्सपर्ट होनो ही पड़ेगो क्योंकि जब तक आप एक्सपर्ट होनो दिखाओ नहीं तब तक दूसरो मानेगो कैसे ? क्योंकि जा बखत बाप मर गयो होवे तो बच्चा तो घबरायो भयो होवे ही के कैसे कपालक्रिया करूं, क्या करूं. तो एक्सपर्ट हो गये तो उनकु कपालक्रिया करवेमें कोई तकलीफ़ नहीं होवे, मार घोंचा मार. घबराहट होवे हों चित्तमें ! तो सेवाके लिये जब आ जावें तो बड़ी घबराहट होवे के अब छोड़ेंगे नहीं, मारेंगे ! भक्तिकी कपालक्रिया करे बिना मानेंगे नहीं ये लोग. तो इनसु सावधानी रखवेके लिये महाप्रभुने एक ये भी नियम बतायो के तनुवित्तजा सेवा करो, माने अपने तनसु, अपने धनसु, अपने परिवारजनोके साथ हिलमिलके अपने घरमें सेवा करो. और कुछ भावनाके साथ सेवा करो जासु सेवा क्रिया मात्र न रहे जावे. यह महाप्रभुको पुष्टिभक्तिके भावकु जगावेको एक आखो सेट - अप् है.

इतनी बात जो आप समझोगे तो यह वार्ताको रहस्य अपनकुं बराबर समझमें आवेगो. और या लिये महाप्रभुने षोडशग्रन्थमें कई तरहके उपदेश दिये के या चौखटकु बराबर अपन् निभा पावें. और वही चौखटकु निभावेके लिये ये ८४वैष्णवकी वार्तामें भी बहोत सारे उपदेश ऐसे दिये हैं के जिन उपदेशनपर अपन् ध्यान दें तो अपनसु ये चौखट बराबर निभ पावें.

प्रकरण : २ नियम - अपवाद विवेक

(नियम - अपवादकी विवेचना)

पर एक रहस्य यामें सावधानीसु ओर समझवेको ये है अपने तनसु अपने धनसु अपने परिवारजनके साथ अपने घरमें अपने भावको प्रदर्शन किये बिना अपने प्रभुकु भजनो, वो नियम तभी 'नियम' केहवावे के जब वा नियमको कोई अपवाद होवे. यदि कोई अपवाद ही नहीं है तो फिर नियम, 'नियम' नहीं केहवावे. वाको कारण क्या ? वैसे तो याको उदाहरण मिलनो मुश्किल है पर फिर भी अपन् थोड़ी देरके लिये अकलकी दौड़ा - दौड़ करें तो बात समझमें आयेगी के जैसे अपन् यों सोचें के 'जो जकम्यो है सो मरेगो', ये एक नियम है. अपन् याकु नियमके तहत मान रहे हैं. पर जो जकम्यो है सो मरेगो या नियमके भी कुछ अपवाद तो होवे. अश्वत्थामा बलि व्यास ये सब चिरजीवी हैं तो ये वाके अपवाद हैं. वो अपवाद हैं तो 'जो पैदा भयो है वो मरेगो' याकु अपन् 'नियम' केह सकें. यदि वो अपवाद नहीं होवे तो याकु 'नियम' भी केहनो मुश्किल है. क्योंकि कोई चीज़ नियम है ये बात अपने खयालमें तभी आवे के दो चार दस अपवाद होवें. वो होवेके बावजूद भी बात निरंतर चलती रहेती होवे तो फिर अपनकुं खयालमें आयेगो के ये नियम है. जैसे अपन् जाने के पृथ्वीपे जो भी आदमी या प्राणी पैदा भयो वो कोई कुदका लगावेगो तो पाछो पृथ्वीपे ही गिरेगो. ये नियम है. पर याको अपवाद हैं विमान और पक्षी. पक्षी कुदका लगावे वो गिरे नहीं है पाछो आकाशमें पहुंच जावे. तो वा अपवादको नियम अपनेकुं समझमें आ रह्यो है के जो आदमी पृथ्वीपरसु कुदका लगावेगो वो पाछो पृथ्वीपे ही गिरेगो.

पारमार्थिक सत्य और नियम में यही अंतर है के पारमार्थिक सत्यको कोई अपवाद नहीं होवे. और कोई भी नियमको कुछ न कुछ अपवाद होवे. जैसे अपन् जाने हैं के स्तनपायी जानवर जितने हैं सब पशु हैं पर चामाचिड़िया वाको अपवाद है क्योंकि चामाचिड़िया स्तनपायी होते भये भी, पशु होते भये भी उड़वेवालो पक्षी जैसो है, अपवाद हो गयो के नहीं ! पृथ्वीपे चलवेवाले प्राणीकु अपन् 'पशु' केह हैं पर चामाचिड़िया या नियमको अपवाद है. समुद्रमें भी रेहवेवालो हर जलचर पशु है वो एक नियम है. पर व्हेल् मछली वाको फिर अपवाद है, वो पशु है. ये अपवाद हैं करके ये नियम सिद्ध होवे हैं. तो जो भी नियम हैं चाहे फ़िज़िक्सके

होवें, चाहे कॅमिस्ट्रीके होवें, चाहे सोशियोलॉजीके होवे, सभीमें नियम और अपवाद तो होवे ही है। जैसे अपन् देखें के भारतमें संविधानके हिसाबसु सारो कार्य चले, पर इमरजन्सी वाको अपवाद है, आपात्काल वाको अपवाद है। तो एक नियम होवे है और एक अपवाद होवे है। और वामें रहस्य यह समझवेको होवे है के अपवादके कारण नियम खंडित नहीं होवे है पर ओर पुष्ट होवे है क्योंकि अपवादके कारण ही अपनेकु नियमकी बराबर रेखा समझमें आवे के अच्छा ये नियमकी रेखा है। जैसे अपन् चित्र कहीं भी बनावें तो कोई कागज कोई भीत या कोई जमीन तो चाहिये, तब वाको चित्र बने। तो जो अपवादको चित्र है वो नियमके कागजपे बने तब तो वो 'अपवाद' केहवावे और नियमके कागजपे नहीं बन रह्यो है वो चित्र तो वो अपवाद नहीं केहवावेगो। तो हर नियमको कोई अपवाद है और हर अपवादके तहत कोई नियम होवे है।

जैसे प्रसिद्ध कथा आपने पढ़ी होगी, अपने भागवतकी नहीं है पर गोपालोत्तरतापिनीमें आवे है के गोपीजनने कृष्णकु पूछ्यो के “कौनकु व्रतके अन्तमें फलाहार करवायें तो?” कृष्णने कही “यमुनापार दुर्वासामुनिकु!” उनके लिये गोपीजनने कुछ फलाहार या कोई आहार लेके गयी तो बीचमें यमुनाजीसु रस्ता नहीं मिल रह्यो हतो। तो कृष्णने कही के “जाके यमुनाजीसु प्रार्थना करो के कृष्ण यदि ब्रह्मचारी होवे तो उनकु रस्ता दे दो” और यमुनाजीने रस्ता दे दियो। तब गोपीजननकुं चिंता हो गयी के “ये १६०००के साथ लीलाविहार करवेवालो ब्रह्मचारी कबसु हो गयो!” फिर एक ओर भयंकर घटना घट गयी। मुनिने सब भोजन कियो और गोपीजननने फिर कही के “जानो कैसे”? मुनिने कही के “यमुनाजीकु विनती करियो के “मैंने कुछ भी खायो नहीं होवे तो रस्ता दे दो”। फिर पाछो रस्ता खुल गयो। तो एक नियम है के जो भी आदमी खा रह्यो है या विहार कर रह्यो है वो कोई वासनासु कर रह्यो है। पर वासनारहित कोई विहार है या वासनारहित कोई भक्षण है तो वो न तो विहार है न वो भक्षण है। ये बात सत्य होवेके कारण यमुनाजीने रस्ता दियो। वो आखी वार्ताको रहस्य ये है। तो वो अपवाद हो गयो के नहीं!

(नियम – अपवादकी परस्पर पूरकता)

अब वो अपवाद हो गयो वाकु अपन् 'नियम' नहीं केह सके के जो देखो वो सब कृष्णकी काँपी करवे लगे, जो देखो वो खूब खावे और फिर केह के “जाके केह दीजियो के हमने कुछ खायो नहीं है” तो रस्ता देगी यमुनाजी? कुछ रस्ता नहीं देगी। तो अपवादके कारण न तो नियम टूटे है और न नियमके कारण अपवाद खंडित होवे है। दोनोंकी ही एक दूसरेकु संभालवेकी एक पूरकता है। वो पूरकतापे अपनकुं जा बखत ध्यान नहीं जावे तब अपनी विचारशील बुद्धिके बजाय वानरबुद्धि शुरू हो जावे के अपन् नियमकु अपवाद और अपवादकु नियम मानवे लग जावे। जैसे आपने इतिहासमें पढ़्यो होयेगो के पुरुकु सोलह घाव हते और सिकंदरसु लड़तो रह्यो। अपनेकु थोड़ीसी सुई चुभे तो लड़ाई – वड़ाई ठप तुरन्त दवाई लगावेकी इच्छा हो जावे। ये नियम है वो अपवाद है।

एसे यहां जो दो वार्ता हैं वो नियमकी नहीं होके अपवादकी वार्ता हैं ये बात खास ध्यानमें रखोगे तो वार्ताको आखो स्वारस्य समझमें आयेगो।

प्रकरण : ३ नवधा भक्त्यात्मिका सेवा और पुष्टिभक्तिविवेक

प्रश्न : नवधाभक्ति माहात्म्यज्ञान सेवा – इन सबन्को सम्बन्ध क्या ?

(पुष्टिभक्तिकी भावाभिव्यक्ति ही सेवा है)

उत्तर : देखो महाप्रभुको मूल सिद्धान्त ये है के भक्ति कई प्रकारकी हो सके. वही तरहसु सेवा भी कई तरहसु हो सके. तो जो सेवारहित भक्ति है अथवा जो भक्तिरहित सेवा है वो अपने यहांकी साधनाप्रणाली नहीं है. फर्स्ट ऑफ़ ऑल ये बात अपन् एकदम साफ़ समझके चलें. अपने हृदयमें भक्ति होवेको मतलब के प्रभुके माहात्म्यको अपनेकु ज्ञान है और प्रभुके प्रति मनको लगाव भी है, तो भक्ति तो है. पर वो मनको लगाव यदि सेवाके रूपमें प्रकट नहीं भयो तो वो सेवारहित भक्ति हो गयी. क्योंकि एक बात ध्यानसू समझो के जब अपनो कोई चीज़पे लगाव है तो वो लगाव कुछ न कुछ प्रकट होनो भी चाहे.

कोई बच्चा अपनेकु अच्छो लगे तो अपन् वाके गालपे माथापे हाथ फिरावें तो वो लगाव प्रकट होवे. और प्रकट नहीं हो रह्यो है पर मनमें है तो अपन् यों तो नहीं केह सके के लगाव नहीं है. जैसे अपन् बसमें या ट्रेनमें जा रहे हैं, कोई अपने सहयात्रीको बच्चा सुन्दर है. अपनो वाको परिचय नहीं है तो अपनेकु लगाव तो होवे पर अपन् फिर रिस्क नहीं लें. व्यर्थमें क्यों दूसरेके बच्चान्के माथेपे या गालपे हाथ फिरानो ! तो वो अपन् अपनो लगाव प्रकट नहीं करें, नहीं हो रह्यो है ऐसी बात नहीं. तो लगाव होनो एक बात है और वाकु प्रकट करनो दूसरी बात है. ऐसे ही कोई चीज़को ज्ञान होनो एक बात है और वाकु अपन् प्रकट करें वो दूसरी बात है.

(माहात्म्यज्ञान और स्नेह को सतत विनियोग ही भाववर्धक होवेगो).

तो भक्तिके जो मुख्य दो अंश हैं, एक अंश 'माहात्म्यज्ञान'. 'माहात्म्यज्ञान'को मतलब क्या के 'जो सेव्य प्रभु हैं वो महान हैं' एसो ज्ञान. अब एसो ज्ञान तो अपनेकु है पर वाकु अपन् प्रकट नहीं करें तो धीरे – धीरे वो ज्ञान अपनेमेंसु लुप्त हो जावे. ये ज्ञान और स्नेह की ही बात नहीं है शरीरके प्रत्येक क्रिया – कलापको

यही स्वभाव है के जब अपन् वाकु प्रकट करनो बंद कर दें, धीरे – धीरे वो इन्एक्टिव्, इन्ऑपरेटिव् होतो चल्यो जावे.

जैसे आप लोग जानते होंगे एपेन्डिसाइटिस् रोग है. पुराने जमानामें अपन् कच्चो खाते हते बिना पकायो भयो, वो जब पेटमें जातो हतो वाकु पचावेको काम एपेन्डिक्स करतो हतो. अब प्रायाः अपने जीवनमेंसु कच्चे खावेकी पद्धति हट गयी है. सब चीज़ गरम करके खावें, कोई चीज़कु नेचरल् स्वादमें तो अपन् खावे नहीं. जैसे आम या केला के जैसे मीठे फलमें भी शक्कर मिलाके खावें तो केलाकी या आमकी जो मिठास लेवेकी अपनी वृत्ति धीरे – धीरे खत्म हो गयी. अब कभी – कबार कोई कच्ची चीज़ गलतीसु पेटकी तरफ आवे तो पेट एपेन्डिक्सकी तरफ भिजवा दे, वहां कोई काम तो हो नहीं रह्यो है, डिपार्टमेंट क्लोज़ हो गयो है. तो वो वहां स्टोर हो जावे, स्टोर होके सड़े. सड़के फिर वो एपेन्डिसाइटिस् रोग होवे. जा चीज़कु अपन् नहीं वापरें वामें या तरीकेकी इन्ऑपरेटिवनेस् आनी शुरू हो जावे. ये सिर्फ एपेन्डिक्सकी बात नहीं है पर जैसे बहोत दिन आंख या कान मत वापरो तो आंखमें या कानमें ये प्रॉब्लेम् हो सके, बहोत दिन हाथ मत वापरो, हाथसु कुछ भी काम मत करो, धीरे – धीरे हाथकी मसल्स ढिली होके चलनो बंद कर दें.

हमारे एक परिचित हैं बम्बईमें, अब तो चले गये. एक दिन बैठे – बिठाये उनकु ख्याल आयो के “मैं पलंगपेसु उठ नहीं पाउं हुं”, चालीस बरस नहीं उठे, फिर उनकी उठवेकी शक्ति खत्म हो गयी ! अपन् जाने हैं अच्छी तरहसु के जा कुंवाके जलकु अपन् वापरे नहीं वा कुंवाको जल पीवे लायक नहीं रेह जावे. तो अक्कल या वाणी या ज्ञान या स्नेह या सद्भाव, वाकु जब आप वापरोगे तो वपरासके कारण वो ऑपरेटिव् रेह है और जब वपरास नहीं है फिर धीरे – धीरे वो रिसीड होवे लग जावे. जैसे प्रभुको अपनेकु माहात्म्यज्ञान है के प्रभु महान हैं. हर एक व्यक्तिकु प्रभु कहां मान्य है ये तो वाके धर्म और सम्प्रदाय के हिसाबसु नक्की होवेगो. कोईकु राममें, कोईकु कृष्णमें, कोईकु शिवमें, कोईकु बालाजीमें, कोईकु मस्जिदमें, कोईकु चर्चमें, कोईकु गंगामें, कोईकु यमुनामें, कोईकु नर्मदामें मान्य होवेगो. कौनकु प्रभु कहां मान्य हैं वो प्रश्न नहीं है. पर जाकु प्रभु जहां मान्य

हैं वहां आपने झुकवेको व्यवहार बंद कर दिया फिर धीरे-धीरे वो माहात्म्यज्ञान इन्ऑपरेटिव् हो जावे, काम करना बंद कर दे.

मैं बनारस युनिवर्सिटीमें पढ़े गये. तो वहां मदनमोहनमालवीयाने एक विश्वनाथमंदिर बनायो. क्योंकि जो अपना असल विश्वनाथमंदिर हतो वो तो औरंगज़ेबने तोड़के मस्जिद बना दी. नयो मंदिर हतो वो तो वाके स्थलपे अहल्याबाईने बनवायो. मूल विश्वनाथमंदिर तो हतो नहीं. सब लोगनके दिलमें ये तकलीफ़ रहती हती के मूल विश्वनाथमंदिर नहीं है, तो कई लोगनने फिर विश्वनाथमंदिर बनाने शुरू किये. वामें मदनमोहनमालवीयाने भी विश्वविद्यालयमें विश्वनाथमंदिर बनायो. मैं वहां पढ़े जातो तो सोच्यो के चलो एक दिन देखे तो सही, क्या कैसा है. आपकुं आश्चर्य होवेगो, वहां शिवलिंगके तरफ पुजारीजी पैर करके और शिवलिंगके चारों ओर मेंड जैसी हती वामें थोड़ीसी एक-एक ईंटकी उठान हती वापे माथा रखके सो रहे हते, क्योंकि दोपहरको समय हतो. जैसे ही मैं गयो पुजारीजी घबराके बैठ गये.. “हहहह..ॐ नम शिवाय”.. मैंने कही “ना ना आराम करो, शिवजी आपके हैं आप शिवजीके हो, आपके उनकी दोस्ती है. मैं यहां कोई शिवपूजन करवे नहीं आयो मैं तो देखवे आयो क्या है कैसे है”. अब देखो बात समझमें आयी ! उनकु शिवजीको डर नहीं है दर्शन करवे आनेवालेको डर है. यदि शिवजीको डर होतो तो शिवजी तो पहलेसु बिराजे भये हते, वहां पग कैसे करके सोते ? उनकु डर तो रह्यो नहीं. और जो दर्शन करवेवाले उनकु पहचान न जावे वाके डरके कारण बैठ गये तुरत और कुछ-कुछ बोलवे लग गये.

हरिद्वारमें महाप्रभुकी बैठक है. वहां भी मैं गयो एक बखत तो ऐसे ही काण्ड भयो. मैं तो पूछते-पाछते घुस गयो अंदर, मोकु क्या पता क्या चक्कर है ! वहां प्राइमस्पे चाय गरम हो रही थी. अब कुछ समझ नहीं आयो आगे कहां जानो क्योंकि वो तो एक रूम हतो जो क्लोज़ हो गयो. तो मैंने पूछी “महाप्रभुकी बैठक कहां है ?” और मुख्याजीने अपनी पत्नीकु और बच्चानकुं गाली देनी शुरू करी “अरे मूर्खों ! समझो नहीं हो महाप्रभुजीपे चाय रख दी, प्राइमस् रख दिया”. मैंने कही “कोई चिंताकी बात नहीं है महाप्रभुजी भी अग्निस्वरूप हैं तुम्हारी चाय गरम हो रही है आरोग लेंगे”. बोले “आप कहांसु आये?” मैंने कही “मैं श्याममनोहरबावा हूं”.वाने कही “अरे अरे ! यहां तपेली करो”. मैंने कही

“तपेली चायकी गरम हो रही है बस वामें ही अब संतोष हो गयो. अब कोई ज्यादा तपेलीकी यहां दरकार है नहीं.” भाग्यो वहांसु मैं.

केहवेको मतलब क्या के जब अपन माहात्म्यज्ञान वापर नहीं रहे हैं तो वो फिर एपेन्डिक्सकी तरह काम करना बंद कर दे. जब अपन स्नेह वापर नहीं रहे हैं तो वो भी काम करना बंद कर दे. जैसे माता-पिता और संतति या दो भाई या पति-पत्नी एक दूसरेके प्रति स्नेहको प्रकट करते रहें तो बुढ़ापा तक भी स्नेह कायम रहे सके. नहीं तो वो या गाममें गये वो वा गाममें गये, वो यहां रहे रहे हैं वो वहां रहे रहे हैं. पहले शुरूआतमें महीना-महीनामें चिट्ठी लिखे, फिर छ-छ महीनामें, फिर तीन-तीन बरसमें चिट्ठी आवे है, और फिर छेले सब नदारद हो जावे, वो मरे के जीये पता ही नहीं ! स्नेह वापर्यो नहीं तो वो स्रोत सूख जावे और वापरते रहो तो वो स्रोत बन्यो रहे. मूल बात ये है. ज्ञानकी भी ये बात है क्रियाकी भी ये बात है.

बहोत बड़े इंग्लैंडके पियानो वादक हते. उनने एक ठिकाने ऐसे लिखी के “जब एक दिन मैं अभ्यास नहीं करूं पियानो बजावेको तो मोकु कुछ खालीपनसो लगे. एक सप्ताह अभ्यास नहीं करूं तो बजाते बखत मोकु कुछ थोड़ो अविश्वास लगे और एक महीना नहीं बजाउ तो मेरी उँगलियाँ चलनी बंद हो जावे. रोज करतो रहूं तो बजतो रहे” फिर उनने वामें छेल्ले लिख्यो के “वाके बाद एक महीना नहीं बजाउ तो मेरे श्रोताकु भी समझ पड़े के अच्छा पियानो आजकल बजा नहीं रहे है” केहवेको मतलब क्या के अपन जा चीज़कु वापरते रहे हैं वो चीज़ अपने भीतर काम करती रहे. चाहे ज्ञान होये, चाहे स्नेह होये, चाहे क्रिया होये, चाहे संबंध होये, चाहे सद्व्यवहार होये. एक बात समझो, अब तो सारे हिंदुस्तानमें टीवी छाप कल्चर डेवलप् हो गयी है पर यहां राजस्थानमें जा तरीकेकी पुरानी संस्कृति हती वामें कोईकु पागल भी केहने है तो एसो केहते के “काई सा गांडा गेला जैसी बात कर रह्या थे” ! तो ‘सा’ लगाके केहते, मुफ्तमें ‘पागल’ नहीं केह देते. ‘पागल’ भी केहने है तो “काइ सा” करके केहते, “अब्बे ए पागल” राजस्थानकी संस्कृति नहीं हती. तो एक कल्चर हती के वा तरहसु लोग बोलते हते, वा तरहसु बरतते हते तो वो सब बात कायम हती. जब पहली बार होशमें आके मैं किशनगढ़ आयो तो सब लोगनने आके मोसु पूछी के “आपका दुश्मनारी

तबीयत क्यान' मैं घबड़ा गयो के भाइ मेरे दुश्मनकी चिंता तुमकु क्यों हो रही है. फिर पता चल्यो के 'दुश्मनारी तबीयत क्यान'को मतलब मेरी तबीयत कैसी है यों पूछ रहे हैं. दुश्मनसु तुम्हारे क्या लेना देना पर एक एसो सद्भाव हतो के आपकी तबीयत तो बिगड़ ही नहीं सके बिगड़े तो आपके दुश्मनकी बिगड़े. अब कोई ऐसे यहां बोलतो सुनाई नहीं दे क्योंकि अब वो दूसरी कल्चर् आ गयी है. एक तहज़ीब हती वाकु वापरते हते तो वैसो भाव भी जगतो हतो. वा तरीकेको सद्भाव भी हतो लोगनमें, वापरनो बंद कर दियो तो सब बात नदारद हो गयी. जैसे कुवाको जल नहीं वापरतो तो नदारद हो जावे जल ही.

ऐसे भक्ति भी अपनने वापरी नहीं तो वो धीरे-धीरे कम होवे लग जावे. और जो भक्तिकु वापरवेको तरीका है वो सेवा है. भक्ति तो दिलमें है. भक्ति दिलमें है वाको मतलब क्या के प्रभुकी महानता अपनने स्वीकारी, वा प्रभुके प्रति अपनेकु लगन भी है. पर वा महानताकु स्वीकारी वाके हिसाबसु दिनमें एक बार या दस बार ठाकुरजीके सामने आप हाथ जोड़ो, दण्डवत् करो, कुछ ऐसे व्यवहार प्रकट करो जा व्यवहारसु एसो लगतो होवे के प्रभु महान हैं आपकी तुलनामें, तब तो वो माहात्म्यज्ञान काम करतो रहेगो और वो आपने बंद कर दियो तो माहात्म्यज्ञान काम करतो बंद हो जावेगो. ऐसे ही स्नेहकु अपन वापरेंगे कैसे? सेवाके माध्यमसु. बाकी तो अपन स्नेहकु कैसे वापर सकें प्रभुके लिये? प्रभुके स्नेहकु कहां वापरनो? वा समस्याको कई लोगनने अलग-अलग समाधान खोज्यो.

(आचार्यचरण निर्दिष्ट भक्तिभावमूलक सेवा ही सेवा है)

जैसे स्वामी विवेकानन्द केहते के प्रभुके प्रति जो अपनो स्नेह है वो दरिद्रनकी सेवामें आप वापरो. उनने कही के दरिद्रकी सेवा वाकु दरिद्र मानके मत करो पर वाकु भगवान् नारायण मानके करो. वहां आप प्रभुको स्नेह वापरो. तो सबकी साधनाप्रणालीमें वो प्रभुके स्नेहकु कैसे प्रयोगमें लानो वाकी विधि अलग-अलग हो सके. कोई प्रभुके स्नेहकु प्रभुके सामने जैसे प्रार्थनाके रूपमें वापरे, कोई प्रभुके स्नेहकु मूर्तिपूजाके रूपमें वापरे, कोई प्रभुके स्नेहकु नाम-जपके रूपमें वापरे. स्नेहकु कैसे प्रयोगमें लानो वो मेथड सबकी अलग-अलग हो सके.

महाप्रभुको वामें स्पेसिफिक् आइडिया ये है के आपके भीतर जो प्रभुके प्रति स्नेह है वाकु आप अपनी सेवाके रूपमें व्यक्त करो जासु के वो काम करतो रहे. हर बखत आपको स्नेह कोई-कोई प्रकारसु प्रकट होवे तो वो स्नेह चालु रहेगो. तो याके लिये भक्ति सेवाके रूपमें प्रकट होनी चाहिये. अब सेवा तो अपन नौकरीकी भी कर सके, सेवा तो बैल भी बिचारो गाड़ीमें जोत दो तो कर ही रह्यो है. पर बैलको ये भाव थोड़े ही है के आप स्वामी है और वो सेवक है! वाकु तो डंडा लगवेको डर है. वो ही भीतिवर्धिनी है, वहां कोई भक्तिवर्धिनी तो है नहीं. वाकु पता है के चलुंगो नहीं तो ये डंडा मारेगो. डंडा खावे वाके बजाये चलनो बेहेतर है. तो डंडा नहीं खावेके कारण जो बैल या घोड़ा चल रह्यो है वो सेवा तो है पर वो भीतिमूलक सेवा है भक्तिमूलक सेवा नहीं है.

कई लोग सर्विस् एजन्सी खोलें. जैसे आपकु सर्विस् चाहिये तो आप उनकु किराया दे दो वो आपकु सर्विस् प्रोवाइड कर दें. वो कॉन्ट्रक्टकी सेवा है. कोई शादी-ब्याहको मंडप बना दें और सब सारी सर्विस् करें. जैसे हॉस्पिटलमें नर्स है वो सगी माँ जितनो ध्यान नहीं रख सके उतनो एक अच्छी नर्स पेशन्टको ध्यान रख सके. सर्विस् तो अच्छी दे सके पर वो सर्विस् भक्तिकी सर्विस् नहीं है वो तो वाके नौकरीकी सर्विस् है. तो सेवाके भी कई प्रकार हो सके.

(सिद्धान्तमुक्तावली सिद्धान्तरहस्य और भक्तिवर्धिनी की एकरूपता)

उन सब प्रकारकु महाप्रभुजी अपने मार्गमें मान्य नहीं रखे हैं. सेवा कौनसी प्रकारकी: भक्तिके प्रकारकी. भक्ति कौनसे प्रकारकी: सेवाके प्रकारकी. करके सेवा और भक्ति कु क्लब् कियो है. जो 'सिद्धान्तमुक्तावली' और 'भक्तिवर्धिनी' कु जोड़वेपे बात प्रकट होवे. भक्तिवर्धिनी देखोगे तो वहां सेवाकी बात नहीं मिलेगी. सिद्धान्तमुक्तावलीमें भक्तिकी बात भक्तिवर्धिनी जैसी नहीं है. पर दोनोंकु जोड़ोगे तो सेवा-भक्तिकी आखी बात मिल रही है. आयो ख्यालमें? तो ये जो सेवा-भक्ति है यामें महाप्रभुने ये सोच्यो के सेवाको अंग समर्पण है और भक्तिको अंग माहात्म्यज्ञान और स्नेह हैं. तो ऐसे समर्पण, माहात्म्यज्ञान और स्नेह, तीन अंगसु अपनी सेवा-भक्ति हो रही है. जहां समर्पण है, जाकु तुम समर्पित हो वाकी सेवा करो; असमर्पित हो वहां सेवा करनी नहीं.

(सेवा - भक्ति)

समर्पणके भी पाछे कई प्रकार हो सके. जैसे एक राजा दूसरे राजाकु जीत जातो, तो जो हाथी भयो राजा है वाकी सारी सम्पत्ति जीते भये राजाकी हो जाती. तो बिचारो समर्पित हो ही जातो. वो समर्पण पराजयको समर्पण है. तो जय - पराजयसु समर्पण हो सके. कोईकु खरीदके भी समर्पण करवायो जा सकें. आज तो प्रथा नहीं रही. पुराने ज़मानामें क्या होतो जिन लोगनकुं अपने आपकु सुरक्षाकी सामर्थ्य नहीं होती वो खुद अपने आपकु समर्पित करके कोईके यहां घरमें दास तरीके रहेते. वो जो दास्यभावको समर्पण है वो एक पाछो समर्पण अलग है. जैसे कई बार आप देखो तोताको छोटे बच्चा होवे वाके पीछे कौआ पड़े तो वो बचवेके लिये अपने पास आ जावे. अर्द्धाङ्ग तोताको बच्चा मनुष्यसु बहोत डरे. तो वो भी अपनेकुं समर्पित हो रह्यो है पर वो समर्पण भयको समर्पण है. यदि वाकु कौआ पीछे नहीं पड़े तो मनुष्यके पास तोता कभी नहीं आनो चाहे. पंद्रह साल तोताकु पालो घरमें, पर एक दिन पिंजरा खुलो रेह जावे फुर्र... उड़ जावे. मतलब के वाको समर्पणे आत्मसमर्पण नहीं है, भयको समर्पण है. तो समर्पण पराजयको हो सके, समर्पण भयको हो सके, अपने असामर्थ्यके कारण अपन समर्पित हो सके. जैसे अपनेमें कोई चीज़कु या अपने आपकु मेन्टेन् करवेकी सामर्थ्य नहीं है तो अपन कोईके प्रति समर्पित हो जावे के तुम हमारो निर्वाह करो. तो निर्वाहार्थ समर्पण हो सके. वैसे कई तरहके समर्पण हैं.

उन समर्पणनुके कारण करी जाती सेवा महाप्रभु आवश्यक नहीं माने हैं. आत्मसमर्पणपूर्विका सेवा है अथवा सेवार्थ आत्मसमर्पण है, वो समर्पण और आत्मसमर्पण के कारण की जाती सेवाकु महाप्रभु सेवा माने हैं. सेवा - समर्पणके कई प्रकार हैं, उन दोनोंमें सब प्रकारनकुं केन्सल् करते चले जाओ और सेवार्थ समर्पण और समर्पणके कारण की जाती सेवा, वो महाप्रभुने सेवा तरीके पकड़ी, और वो सेवा पाछी भक्तिके रूपमें होनी चाहिये. तो भक्त्यर्थसेवा है या भक्तिके रूपमें सेवा है. वो अपनी भक्ति जा बखत कोई भाव प्रकट करनो चाहे, तो सेवारूप भाव प्रकट करे ये महाप्रभुको सिद्धान्त है. अब ये कितनी सारी कॉम्प्लिकेटेड बात हैं. इन सबको एक - एक खाना बनाओ.

तनुवित्तजा सेवा (पादसेवन, अर्चन, वंदन)	सुद्रढस्नेह (सख्य, दास)
समर्पण (आत्मनिवेदन)	माहात्म्यज्ञान (श्रवण, कीर्तन, स्मरण)

एक चतुष्कोण बनाओ. सेवाके भागमें समर्पण और सेवा के दो छोटे चतुष्कोण बनाओ. जो भक्तिको खाना होयेगो वा खानामें पाछे दो छोटे चतुष्कोण कौनसे आयेंगे, माहात्म्यज्ञान और स्नेह. अब ये चार चतुष्कोण मिलके सेवा-भक्ति भयी. जाके भीतरे चार खाना हैं. अब इन चारों खानानुकी सावधानी कैसी बरतनी, मुद्दा ये आयो. **Draw** करके देखोगे तो समझमें आयेगो. एक **square** बनाओ, जा **square**को नाम सेवा-भक्ति है. वाके भीतर एक **line** डालो. एक सेवाको लम्बचौरस, एक भक्तिको लम्बचौरस. वो सेवाको जो लम्बचौरस है... जैसे या **square**में आप **line** डालोगे तो दो लम्बचौरस हो जायेंगे. वो एक लम्ब चतुष्कोण सेवाको है. दूसरो भक्तिको है. वा सेवामें पाछो समर्पण माने आत्मसमर्पण और आत्मसमर्पणके भावसु की जाती सेवा, वो क्रियाको समर्पण, क्रिया. वो वामें दो खाना और बनेंगे तो फिर छोटे दो चतुष्कोण बन जावेंगे या बाजु, माहात्म्यज्ञान और स्नेह. तो अब वो एक चतुष्कोणके भीतर चार चतुष्कोण आ गये. अब इन चारों चतुष्कोणनुं निभावेके लिये क्या करनो, कौनसो काम करनो ? वाके लिये महाप्रभुने कहे के सेवामें नवधाभक्ति डालो. तो जब नवधाभक्ति डालेंगे तो श्रवण कीर्तन स्मरण सेवामें अपन कैसे करेंगे ? आत्मसमर्पणके द्वारा की जाती प्रभुकी क्रिया अपन वा ढंगसु नहीं करेंगे के अपन प्रभुके माहात्म्य रूप गुण लीला कु श्रवण किये बिना जो मनमें क्रिया आ गयी, जच गयी वैसे करेंगे.

जैसे हमारे एक परिचित हैं बहोत बड़े धनवान हते. वाकु सेवा जच गयी. एक बार वो स्वीज़र्लैंड गये. स्वीज़र्लैंडमें पानीमें सब लोग स्कींग् करें. वाने कही

“ठाकुरजीकु भी स्कींग् कराई” नाव जोरसु चली वामें ठाकुरजीकु डोरी बांधके पीछेसु तालावमें घसीट्यो. तब मैंने कही के “ये तो गजबकी सेवा है तुम्हारी”. वो बोले “क्यों हमारे बच्चायें स्कींग् करें तो ठाकुरजी भी करें”. मैंने कही “भाव तो सच्चो और अच्छो है वामें तो कोई गड़बड़ी नहीं है पर यामें प्रभुको माहात्म्य एकदम खंडित हो रह्यो है के नाव आखी चल रही है और ठाकुरजी बिचारे ठंडे पानीमें गुड़कते – गुड़कते नावके साथ बहे जा रहे हैं, खींचते जा रहे हैं”. पर उनकु वैसे ही जच गयी बात अब वामें क्या कर सकें ! वो प्रकार सिन्सीयर् भी हो सके. मैं वाकी निंदा नहीं कर रह्यो हूँ. उनके ठाकुरजी टीवी भी देखवे बैठें. खुद यहां बैठे हैं बाजुमें ठाकुरजी बिराजें, टीवी चल रह्यो है. वो कहे बच्चायें टीवी देखे हैं तो बालभावकी सेवा है तो ठाकुरजी भी टीवी देखें. कोई चिंताकी बात नहीं है ठाकुरजीकु टीवी देखनो; ‘सास भी कभी बहु थी’ पसंद आ रह्यो है के नहीं आ रह्यो है वो तो प्रभु जाने और वो जाने पर प्रभुको यामें माहात्म्य है के नहीं है वो केह पानो थोड़ी मुश्किल कथा है.

केहवेको मेरो मतलब क्या है के जब अपन् सेवा कर रहे हैं तो प्रभुकी उन लीलानुको अपन् श्रवण करें, उन लीलानुको अपन् कीर्तन करें, उन लीलानुको स्मरण करके सेवाकी क्रिया करें तो वा लीला संबंधी प्रभुको जो माहात्म्यज्ञान है और प्रभुके प्रति जो भाव है वो अपनो दृढ़ होयेगो.

अब एक सामान्य बात समझो, कर रहे हो आप कृष्णकी सेवा और पद गा रहे हो गणपतिजीके. तो जा चीज़के पद गा रहे हो वा चीज़की सेवा नहीं कर रहे हो, जाकी सेवा कर रहे हो वाके पद नहीं गा रहे हो. तो वो श्रवणभक्तिको, कीर्तनभक्तिको, स्मरणभक्तिको सेवामें विनियोग तो नहीं भयो न ! तो वा तरहसु श्रवण कीर्तन स्मरण को सेवामें विनियोग करवेसु सेवा अपनी क्रियात्मिका नहीं रहेके ज्ञानात्मिका और भावात्मिका हो जावे के ये वो कृष्ण है. जैसे अपन् यशोदाजीके पद गाके ठाकुरजीकु जगा रहे हैं तो अपनेकुं वो आइडेंटिफिकेशन होयेगो के जा कृष्णकी मैं सेवा कर रह्यो हूं वो कृष्ण यशोदोत्संगलालित कृष्ण है, वैसी समझ जगेगी, वैसी धारणा बनेगी, तो वो भाव भी जगेगो. या अर्थमें श्रवण कीर्तन स्मरण अर्चन वंदन पादसेवन दास्य सख्य और आत्मनिवदन को सेवामें विनियोग होवेगो.

अब देखो बात ध्यानसू समझो के जैसे ही अपन्ने घरमें सेवा शुरू करी तो घरकी सेवाके उदाहरण पकड़ो के जैसे संतति माता – पिताकी सेवा करे, माता – पिता अपने बच्चाकी सेवा करे, या पत्नी पतिकी सेवा करे, या पति पत्नीकी सेवा करतो होय वो तो घरकी कथा है वा सेवामें अर्चन वंदन और पादसेवन नहीं होवे है, सेवा होवे है. चायके बखत चाय पिला दी, नहावेको टाइम् भयो तो पानी गरम करके रख दियो, खवावेको टाइम् भयो तो खवा दियो, सुवावेको टाइम् भयो तो गादी बिछा दी. तो सेवा भयी के नहीं पर वामें अर्चन कहां भयो, वंदन कहां भयो. अब पुराने जमानामें तो अपनो नियम हतो के सुबह होते ही या सांझकु लाइट जुड़े तो अपने बड़ेनुकुं अपन् हाथ जोड़ते; अब वो अपनी संस्कृति हती वो धीरे – धीरे लुप्त हो गयी. तो वंदनको भी घरमें अब प्रकार नहीं रहे गयो. सेवा तो करे हैं घरमें आज भी, माता – पिताकी सेवा संतति भी करे है, संततिकी सेवा माता – पिता भी करे हैं, पति – पत्नी भी एक दूसरेकी सेवा करे हैं, घरको नौकर भी घरकी, मालिककी सेवा तो करे ही है. पर वो वंदनको अर्चनको और पादसेवनको जो एक माहात्म्यज्ञान हतो के जाकी अपन् सेवा कर रहे हैं वो वाकी आवश्यकता या लाचारी के कारण नहीं कर रहे हैं. जैसे बीमारकी अपन् सेवा करें तो क्यों सेवा करें ? बड़ो दया भाव लाके सेवा करें के लाचार है याकी सेवा नहीं करेंगे तो कौन सेवा करेगो. और वाकु वन्दनीय मानके, वाके चरणकु सेवनीय मानके, अर्चनीय मानके सेवा करवेसु वामें माहात्म्यज्ञान बढ़े है.

जैसे अपने यहां सेवामें ठाकुरजीकु जगावे तो एसो नहीं जगावे के “चलो चलो उठो सुबह हो गयी कितनी देर सोओगे” ऐसे करके नहीं जगावें. घंटी बजावे थोड़ो कुछ पद गाके जगावे, तो वो वाको अर्चनको सब प्रकार है. आरती करनो, तुलसी चरणमें समर्पनी ये सब अर्चनके प्रकारको सेवामें विनियोग है. और टाइम् टु टाइम् अपन् आरती भी करें. वैसे घरके बच्चाकी कौन आरती करे ? अब आपके यहां रिवाज है के नहीं पर जैसे भाईदूजके दिन बहन भाईकी आरती उतारे. अब पता नहीं बहननुकुं भी पता होयेगी के नहीं के क्यों आरती उतार रही है पर वो एक कस्टम् है करके उतार रही हैं पर वामें माहात्म्यज्ञान प्रकट नहीं होवे. पर अपन् ये आरतीसु पूजन कर रहे हैं ठाकुरजीको माहात्म्यज्ञान प्रकट कर रहे के यह प्रकाश जो जीवनकी सबसु बड़ी आवश्यकता है वा प्रकाशकु हम तुमपे न्योछावर

कर रहे हैं. प्रकाशकी आवश्यकता उल्लूको और चामाचिड़ियाको नहीं होवे बाकी तो हर एककु प्रकाशकी आवश्यकता एक ढंगसु नहीं अनेक ढंगसु है. अपनी अभयताके लिये अपने अन्नके लिये अपने जलके लिये अपने वातावरणकी रक्षाके लिये; वा प्रकाशकु अपन् प्रभुपे न्योछावर करके प्रभुको ये जतानो चाहें के प्रभु अपने लिये प्रकाशसु भी ज्यादा हैं. जैसे पुराने जमानेमें रूपैया न्योछावर करते, मोती न्योछावर करते. क्यों न्योछावर करते ? ये जतावेके लिये के मोतीकी जो कुछ कीमत है वो तुम्हारे आगे कुछ भी नहीं है. तो तुम्हारेपे मोती न्योछावर करके फैंक दिये. ऐसे अपन् आरती प्रभुकी करें. अब ये जो भाव है आरतीको के प्रकाशकु हम तुमपे न्योछावर कर रहे हैं ये वामें कन्टिन्युअस् वाके प्रति अपनो माहात्म्यज्ञान वापरवेको एक अभिव्यक्तिको तरीका है.

ऐसे ही वंदन. तो वंदनको मतलब क्या ? आज तो लोग वंदनको मतलब समझें नहीं. आजकल कई लोग यों करे नमस्ते जी, नमस्ते जी, जैसे कोई डंडा मार रह्यो है. ये कोई वंदनको

तरीका नहीं हतो. पुरानो वंदनको तरीका हतो, हाथको जोड़ो और माथाको इतनो नमाओ के जुड़े भये हाथ तक यों आवे. वाको नाम 'वंदन'. क्योंकि वंदनको दूसरो पर्याय है 'नमन'. 'नमन'को मतलब है 'झुकनो'. तो सर तो झुक्यो ही नहीं और अपन् कहे के हम नमन कर रहे हैं. पर ये अपनी प्राचीन संस्कृतिके हिसाबसु वंदन और नमन के प्रकार नहीं है. वंदनको सच्चो प्रकार हतो के यों हाथ जोड़्यो वहाँ तक सरकु झुकायो ये सबसु पहलो नमनको प्रकार. क्योंकि सिर अपनो शरीरको उत्तमांग मान्यो जावे और सिरके नीचेके जो धड़ है वो अधमांग मान्यो जावे. तो जो अपनो उत्तमांग है वाकु अपनने कोईके प्रति झुकायो तो अपन् वाकु केहनो चाह रहे हैं के मेरो उत्तमांग :माथा तुम्हारे सामने झुका रह्यो हूँ मतलब के मेरे उत्तमांगसु भी तुम उत्तम हो. ये मूल वंदनको तात्पर्य हतो. अब अपन् वा तरहसु वंदन करते रहते तो वो भाव ऑपरेटिव् रहतो बॅटरीकी तरह, नहीं तो जैसे कारमें बॅटरी आपने डाल दी पर कार चलाई नहीं तो पड़ी - पड़ी बॅटरी डिस्चार्ज हो जावे. और चलाते रहो तो बॅटरी भी कारमें चार्ज होवे और कार भी चलती रहेगी. तो ऐसे ही ये जो अपनी नवधाभक्ति हैं वो अपने यहाँ सेवाके कॉम्पलेक्स चतुष्कोण हैं वाकी बॅटरीयां हैं, श्रवण कीर्तन स्मरण वंदन अर्चन पादसेवन, वामें बॅटरी वापरते रहोगे तो सेवा - भक्तिकी कार भी चलती रहेगी. और अपने सेवा - भक्तिकी

कारमें ये बॅटरी नहीं चलायी तो न सेवा - भक्ति चलेगी और ये बॅटरी भी पड़ी - पड़ी सब डिस्चार्ज हो जावेगी.

वाके बाद सख्य दास्य और आत्मनिवेदन, वो अपने भावकी बात है. अपन् प्रभुके सामने सिर्फ झुक ही नहीं रहे हैं पर 'सख्य'को मतलब के प्रभुको कुछ अपन् हितको विचार कर रहे हैं. अब सीधीसी बात ये हो गयी के प्रभु सारी दुनियाको हित विचार करे वाको हित विचार करवेवाले अपन् कौन ? ये यदि भाव अपनेमें आयो तो एक बात समझो के अपनेकुं प्रभुको माहात्म्यज्ञान है पर प्रभुके प्रति स्नेह तो नहीं है. क्योंकि यदि स्नेह है तो अपनेकु सख्यभाव भी जगेगो.

जैसे शबरीके घरपे अचानक श्रीराम पहुँचे तो वाने झुठे बेर क्यों खवाये ! जंगलके ही फल तो वाके पास हते वामें कोई ज़हरीलो कीड़ा फलकु खा गयो होवे और वा फलके कारण रामकु कुछ होवे तो ? यदि रामकु कुछ होतो होवे तो वो राम नहीं है और रामकु कुछ होनो नहीं है तो फिर खावेकी, टेस्ट करवेकी जरूरत क्या ? पर या तरहसु जाकी प्रेक्टीकल् बुद्धि चल रही है वाकु माहात्म्यज्ञान है पर सख्य नहीं है. शबरीकु जो रामके प्रति सख्य हतो वाने वाकु ये बात समझाई के "नहीं नहीं, यदि या फलकु कोई जहरीले जानवरने काट्यो होवे या फलमें कोई जातकी खराबी भयी होवे तो वो फल पहले मैं भुगतुं पर राम तक वो तकलीफ जानी नहीं चाहिये." वो सख्यभाव हतो करके रामकु ये भयो के एसो फलको स्वाद तो न कभी अयोध्यामें आयो, न जनकपुरीमें आयो. अब कहां अयोध्या कहां जनकपुरी ! वहां भी तो कोई खराब फल थोड़े ही मिले होंगे ? पर ये जो शबरीको सख्यभाव हतो वा सख्यभावने रामकु या मानवेके लिए मजबूर कर दियो के भले शबरी भीलनी होय. आज तो अपनकुं जातिको भेद नहीं रह्यो पर प्राचीन कालके हिसाबसु ये जो भीलजाति हती वे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इनसु भी नीचेकी जाति हती. तो अपन् शूद्रको झुठो नहीं खावें और भीलनीको झुठो खानो माने हाय - तौबा कैसी मची होयगी वा बखत रामके बारेमें के भ्रष्ट हो गये भीलनीके झुठे बेर खाये ! शबरीको सख्य कितनो हतो वाको कोरस्पाँडिंग् सख्य राममें भी जग्यो. तो रामकु भी भयो के नहीं याको सख्य एसो है के वाके कारण भीलनीके झुठे बेर खावेसु जो भी कुछ अपवित्रता होती होय वो मोकु मंजुर है पर ये बेर तो मैं खाउंगो खाउंगो खाउंगो. जैसे शबरीके मनमें ये भाव हतो के या बेरकु

कोई कीड़ा या कोई जानवरने खायो होय के जासु यामें कोई पॉइज़न् लग गयो होय तो वो तकलीफ रामकु नहीं पर मोकु होवे. तो जैसे वाको एक दोस्तानाभाव हतो रामके प्रति, ऐसे रामने भी दोस्तानाभाव प्रकट कियो के भीलनीके झुठे बेर खावेके कारण जो भी कुछ अपवित्रता आती होय भले आवे. डीसेन्सीसु भी सोचो तो अच्छी बात नहीं है. कोईके झुठे बेर कोई क्यों खावेगो ! वो बात तो अलग रही पर पुराने आचार-विचारके दृष्टिसु देखो तो तो वर्णाश्रम चौपट हो गयो भीलनीके झुठे बेर खायो करके. भीलनी तो भंगीसु भी नीचे केहवावे पर रामने आरोगे क्योंकि वो सख्यभाव राममें भी पैदा भयो.

अब आत्मनिवेदन: नवधाभक्तिमें जो नवमी भक्ति है वाकु महाप्रभुने आत्मनिवेदन तरीके पहले ले लियो सेवाको अंग बनाके. वहांसु सेवा स्टार्ट होयगी. माने नवधाभक्ति जहां पूरी होती थी वहांसु अपनी सेवा महाप्रभुने शुरू करी के यदि तुम प्रभुके हो तो ऐसे दास नहीं के जाने आत्मनिवेदन नहीं कियो है. जैसे बैल भी अपना दास है घोड़ा भी अपना दास है. घोड़ा बिचारो थोड़े ही अपनेकु आत्मनिवेदन करे ! वो तो डरके मारे, डंडा मार रह्यो है करके चल रह्यो है. घरमें अपन् पगारदार नौकर रख लें तो वो भी अपना दास है. वो तो पगारके लिये नौकरी कर रह्यो है आत्मनिवेदनको थोड़े ही दास है. तो अपन् जो प्रभुके दास हैं वो इन बातनूके दास नहीं हैं. पर, क्योंकि अपन्ने आत्मनिवेदन कियो है वा अर्थमें अपन् प्रभुके दास हैं. इन बातनूके दास नहीं हैं के नहीं प्रभुकी सेवा करेंगे तो कोई डंडा मारेगो. अब डंडा मारे याके बजाय सेवा करनी अच्छी ऐसो जब मनमें भाव आ गयो फिर साधना अपनी नहीं रह गयी. प्रभुसु डरनो भी अच्छी बात है पर जब डरके अपन् सेवा कर रहे हैं तो वो सेवाको प्रकार कुछ ओर हो गयो.

ऐसे ही सख्य भी अपन् कर रहे हैं प्रभुको, तो वो सख्य दो तरहसु हो सके है. जैसे एक बिजनेस्मेन्को दूसरे बिजनेस्मेन्सु सख्य हो सके. दो साथ पड़ोसी होय उनकु सख्य हो सके. तो वो सब सख्यके प्रकार दूसरे हैं अपना सख्य आत्मनिवेदनको सख्य है. अपन् प्रभुके सखा हैं कौनसे अर्थमें, क्योंकि अपन्ने प्रभुको अपना आत्मनिवेदन कियो है. अपन् जो प्रक्रियासु प्रभुके सामने अपना आत्मनिवेदन करें वो आत्मनिवेदनकी प्रक्रियाकु अपन् ब्रह्मसंबंध केह हैं और जो ठाकुरजीकु अपन् पुष्ट कर रहे हैं वो ठाकुरजीको जीवसंबंध है. अपन् ही थोड़े

खाली आत्मनिवेदन कर रहे हैं ठाकुरजीकु, ठाकुरजी भी खुदको आत्मनिवेदन अपनेकु कर रहे हैं के तु जगावेगो तो जगुंगो, तु पोढ़ावेगो तो पोढ़ुंगो, तु भोग धरेगो तो खाउंगो नहीं तो मैं भूख्यो हुं, तु नहीं पोढ़ावेगो तो जाग रह्यो हुं. तो अपना परस्पर आत्मनिवेदनसु पैदा होतो सख्य और दास्य है. ये वो भयके कारण या स्वार्थके कारण पैदा होतो सख्य-दास्य नहीं है. ये आखो नवधाभक्तिमें सेवाको विनियोग है.

(गदाधरदासजीकी वार्ताको तात्पर्य)

या वार्तामें जो महाप्रभुको वचनमृत हतो वो तो अपन् पहले कर गये हैं. अब तो वचनमृत नहीं बच्यो है वार्ता ही बची है. पर या बखत अपन् वचनमृत आगेको नहीं करके वा वार्ताकु ही ले रहे हैं. या गदाधरदासजीकी वार्तामें मुख्य तीन वार्तायें आयी हैं. जामेंसु पहली वार्ता नियमकु समझा रही है. ये विषय मैंने कल छेड़्यो हतो के सेवाको नियम महाप्रभुने तनुवित्तजा समझायो. देखो तनुवित्तजाको जो नियम है वो सेवाको नियम है भक्तिको नियम नहीं है ये बात अन्डरलाइन् करके ध्यानसू समझियो.

(सेवारहित भक्ति हो सके)

अब ये आपने चतुष्कोण बनायो है वामें देख लियो के अपनी सेवा-भक्तिकी साधनामें कुछ कम्पार्टमेन्ट हैं. तो वा चार कम्पार्टमेन्टमेंसु ये जो तनुवित्तजाको नियम है के सेवा तनुवित्तजा होनी चाहिये भक्तिवाले कम्पार्टमेन्टपे लागु होती बात नहीं है पर सेवावाले कम्पार्टमेन्टपे लागु होती बात है. भक्ति तनुवित्तजाके बिना भी हो सके है, मतलब तनुजा भक्ति भी हो सके है वित्तजा भक्ति भी हो सके है. और न तनुजा होय न वित्तजा होय, वैसी भी भक्ति थियोरैटिकली तो हो सके है, नहीं हो सके ऐसी बात नहीं है.

(सेवारहित भक्तिसाधना अपने यहांकी नहीं है)

जैसे एक प्रसिद्ध उदाहरण दूं तो आपकु समझमें आयेगो. अपने यहां वो साधनाप्रणाली नहीं है पर मुसलमानन्में सूफीन्में वो साधनाप्रणाली हती. क्योंकि परमात्माको रूप कैसो है वो जाने नहीं और उनके यहां मूर्तिपूजा भी

पाप है. तो मुसलमाननकुं जो समस्या हती वो यही हती के परमात्माको ध्यान करना तो कैसे करना ? कैसे है परमात्मा ? तो जब ये समस्या उनकु सतायी तो सूफी लोगनने एक उपाय ये निकाल्यो के जो भी होयगो परमात्मा अच्छो होयगो, खूबसूरत होयगो. 'जो भी हो तुम खुदाकी कसम लाजवाब हो', एसो होयगो. तो कोई अच्छो बच्चा कोई अच्छी औरत कोई अच्छो आदमी दीखे, वा रूपको ध्यान करते. वाकु पता भी नहीं होवे के ये मेरो ध्यान कर रह्यो है. उनकु वा आदमीसु कुछ लेनो-देनो नहीं है पर परमात्माको रूप एसो सुन्दर होयगो ऐसे करके ध्यान करते और उनको स्नेह बढ़तो हतो. सूफीयनको अपन स्नेह देखें तो परमात्माके प्रति उनको अतिशय स्नेह दीखे है. पर वो सेवात्मक स्नेह नहीं है क्योंकि जाकु स्नेह कर रहे हैं वाकु भी नहीं पता है, वाकु प्रकट भी नहीं करते. उनके यहाँ ये डिसिप्लिन् हती के जा स्त्री या पुरुष या बच्चा को परमात्माके रूपमें ध्यान धर रहे हो वाकु केह दोगे तो वो परमात्माको ध्यान होवे के बजाय मनुष्यको ध्यान हो जावेगो. तो वाकु जताते नहीं के तेरे रूपको हम परमात्मा तरीके ध्यान कर रहे हैं, पर ध्यान करते वाको परमात्मा तरीके. तो अब देखो सेवा रहित भक्ति वहाँ स्पष्ट प्रकट हो रही है के नहीं ! उनकी भक्ति निश्चित भक्ति होती है. बहोत अच्छे-अच्छे भक्त भये सूफी संत. अपन उनको साहित्य देखें तो अपनेकुं पता चले के उनकी अपार अकूट भक्ति हती. पर वामें सेवात्मिका कोई साधना नहीं हती. सेवा रहित प्रेमकी आखी साधना हती. तो या तरीकेकी सेवा रहित भक्ति भी हो सके. पर वो भक्ति अपने यहांकी साधना नहीं है.

(तनुवित्तजा सेवाको अनिवार्य अंग)

यालिये चतुष्कोणमें जो आत्मनिवेदनको प्रकार है वासु दास्य और सख्य कु प्रकट करना और वाकु पाछो सेवाके रूपमें आउटलेट देनो. तो ये जो तनुवित्तजा सेवाको प्रकार है वो भक्तिको अंग नहीं है पर सेवाको अंग है. तनुवित्तजाके ढंगसु सेवा करोगे तो महाप्रभु केह रहे हैं के तुम्हारी सेवा भक्तिके रूपमें खिल सकेगी. "चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्धयै तनुवित्तजा" (सि.मु.२): चित्त वामें प्रवण होनो ये सेवा है और तनुवित्तजा करवेसु चित्त प्रवण होयगो ये बात वहाँ समझायी. तनुवित्तजा भक्तिको अंग नहीं होके सेवाको अनिवार्य अंग है.

प्रकरण : ४ तनुवित्तजाको विवेक

प्रश्न : तनुवित्तजा ये सेवाको नियम है या भक्तिको ?

उत्तर : अच्छो सवाल कियो. अब ध्यानसु देखो तो तनु और वित्त कु महाप्रभु 'मैं' और 'मेरो' के रूपमें ले रहे हैं. 'मैं' माने 'मेरो तनु' और 'मेरो' माने 'मेरो वित्त'. तो मैं अपने तनसु मेरो वित्त सेवामें वापर रह्यो हुं तो तनुवित्तजा है और वो सेवा आत्मनिवेदनकी अभिव्यक्ति कहलावेगी. जब सेवामें मैं मेरो तन नहीं वापर रह्यो हुं और कोई ओरको तन वापर रह्यो हुं, या मेरो धन नहीं वापर रह्यो हुं कोई ओरके धनसु मैं, अपनो खाली तनसु सेवा कर रह्यो हुं तो वो सेवा अपने पुष्टिमार्गकी सेवा ही नहीं है क्योंकि पुष्टिमार्गकी सेवामें अपनने पहले ही बात बता दी है के आत्मनिवेदन मुख्य बात है जहांसु वो स्टार्ट हो रही है. आत्मनिवेदनके बिना तो वो है ही नहीं. आत्मनिवेदनमें आत्मा और आत्मीय सकलको निवेदन है तो आत्मा तरीके वहां तनु लियो है और आत्मीय तरीके वित्त लियो है.

(वित्त = जो अपनेकुं प्राप्त भयो है वो)

वित्त आज अपनेकुं सिर्फ पैसाके अर्थमें लगे है पर सचमुचमें वित्तको अर्थ केवल पैसा नहीं है. क्योंकि पुराने जमानामें जब बार्टर्सिस्टम् चलती थी तब पैसा हतो ही नहीं. बार्टर्सिस्टम्को मतलब क्या ? एक बोरी अनाज तुमकु चाहिये; तुम्हारे पास कपड़ा है पर अनाज नहीं है; वाकु कपड़ा चाहिये तो तुम वाकु पैसा थोड़े ही देते हते ! तुमकु कपड़ा चाहिये तो ये कपड़ा तुम रखो अनाज हमकु दो. वस्तुविनिमयसु चलतो हतो वित्त हतो ही कहां ? वो तो भाव-तोल नक्की नहीं हो पाते हते करके बीचमें सु एक वित्त खड़ा कियो गयो. मूल तो पुराने कालमें तो वस्तुविनिमय ही होतो हतो. द्रव्यविनिमय होतो ही नहीं हतो. संस्कृतमें 'वित्त'को मतलब पैसा नहीं है पर तुमकु जो हासिल भयो वाको नाम 'वित्त'. आज 'रूपैया' शब्द अपन कहें. 'रूपैया' शब्दको मतलब चाँदीको सिक्का. अब चाँदीको सिक्का तो कबको बंद हो गयो पर एक रूपैया याने जो कागजके छोटेसे टुकड़ा है वाकु भी अपन रूपैया केह रहे हैं. अब कागजके टुकड़ामें चाँदी है कहां ? पर वो नाम चल पड़्यो 'रूपैया'. 'रूप्यतम्' माने 'चाँदी', 'रूप्यतम्' वासु रूपैया बन्यो, फिर वासु रूपिया बन्यो. अब वामें कोई चाँदी तो है नहीं ! नाम

चल पड़्यो सो चल पड़्यो. जैसे कोईको नाम मामाजी चल पड़े, कोईको नाम काकाजी चल पड़े. न वाकी बहन अपनी माँ होवे न वाको भाई अपनो बाप होवे. जगतके मामाजी या काकाजी हो जावें. ऐसे रूपिया नाम चल पड़्यो वो चाहे एक टुकड़ाको भी नाम हो.

ऐसे ही वित्त नाम चल पड़्यो करके वो यामें वपरा रह्यो है. मूल वित्तको मतलब द्रव्य नहीं है 'वित्त'को मतलब है जो तुमकु हासिल है वो. अब समझो के तुमकु गाय हासिल है, दूसरेकु अनाज हासिल है. तो तुमने वाकु दूध दे दियो वासु तुमने अनाज ले लियो तो बस वो वित्त हो गयो. आपसमें बटवारा हो गयो एक-दूसरेकी आवश्यकता पूर्ति हो गयी वा अर्थमें वो वित्त कहलातो हतो. 'विद्' = लाभे: 'विद्' धातु संस्कृतमें लाभके अर्थमें होवे है के तुमकु क्या लाभ भयो, वो तुम्हारो वित्त. तो 'वित्तजा'को मतलब जो तुम्हारो लाभ है वासु तुम प्रभुकी सेवा कर रहे हो. जो तुम्हारो लाभ नहीं है वासु तुम प्रभुकी सेवा नहीं कर रहे हो.

(देहात्माको संघात = तनुजा)

अहं = तनु सब चीज़को संघात है: चारों तरहके अंतःकरणको, पांचों प्रकारकी ज्ञानेन्द्रियन्को, पांचों प्रकारकी कर्मेन्द्रियन्को, देहको और आत्माको, इन सबको संघात है वो तनु है. तो जब तुम ये सारे संघातकु सेवामें वापर रहे हो वा अर्थमें वो तनुजा है.

(सोदाहरण तनुजा – वित्तजाको विभाग)

अब याके टुकड़ा करके भी सेवा हो सके है, तनुजा और वित्तजा. वाको टुकड़ा किये बिना भी तनुवित्तजा सेवा हो सके है. महाप्रभु यों केह रहे हैं के जा बखत तुम अपने तनुसु सेवा कर रहे हो पर तुम अपनो वित्त नहीं वापर रहे हो तो तुमकु स्वार्थ बढ़ जावेगो पर सेवा नहीं बढ़ेगी. जा बखत तुम अपनो वित्त वापर रहे हो पर तनु नहीं वापर रहे हो तो तुमकु अहंकार बढ़ जावेगो के हम ये सेवा करवा रहे हैं.

अमरिकाके बहोत बड़े एक सेठके पिता बीमार भये. तो उनकु खबर करी के तुम्हारे पिताजी बहोत बीमार हैं जल्दी आओ. तो प्लेन्में बैठके आ गये और आके डॉक्टरनुसु पूछी के क्या हाल है ? डॉक्टरने कही अभी सांस चल रही है मगर कब तक चले केह पानो मुश्किल है. तो उनने सब दवाके और जो भी इलाज हो सके वाके रूपैया और कफन् तक भी मंगाके वहां तैयार रख दियो. मर जावेगो तो कफन् तो चहियेगो न ! वा बखत बुलानो याके बजाय पहलेसु तैयार रखनो क्या खोटो ? खैर, वो तो थके भये आये हते सो गये. रातकु ढाई बजे पिताजीके प्राण छूट गये तब फिर उनकु फोन कियो. उनने कही प्राण छूट गये तो मेरे प्राण क्यों ले रहे हो ? कफन् तक तो तैयार है ओर क्या तैयारी चहिये. कफन्में उनकु पोढ़ाओ सुबह जाके उनकु डाट देंगे, अब अभी मेरे प्राण लेवेसु फायदा क्या ! मतलब वित्त तो वापर्यो पर तनु वापरवेकी तैयारी नहीं हती. ये वित्तजा सेवा भयी. तैयारीमें कोई कसर नहीं हती, सारी दवाकी तैयारी कर दी, नसें बैठा दी, डॉक्टरनुकु अपॉइन्ट कर दियो, कफन् भी लाके रख दियो के मरे तो कफन्में पोढ़ाओ फिर तो अब शांतिसु सोवे दो, आराम करवे दो!! ये वित्तजासेवा करवेवालेको भाव है.

ऐसे ही अक्षयकुमार जैन, जो टाइम्स ऑफ़ इन्डियामें एक एडिटर हते. तो उनने बड़ो अच्छो अनुभव लिख्यो के वो जब अमरिका गये तो वहांके टाइम्सके एडिटरके वहां उनकु लंचके लिये बुलायो हतो. एडिटरके बेटायें सब खाना परोस रहे हते. फिर उनने कही के “यार हम तो समझ रहे हते के पाश्चात्य संस्कृति भोगवादी संस्कृति है पर ये तो मेरी धारणा बहोत गलत निकली, तुम्हारे जवान बेटायें देखो अपने बापके गेस्टकु या तरहसु खाना परोस रहे हैं.” तो बापने कही “चुप रहो या बातकु बोलवेमें कोई मजा नहीं है !” उनने कही, “क्यों ?” उनने कही “बाहरसु बुलाते खाना परोसवेवालेकु तो दस डॉलर लेते, ये बच्चानकु पांच डॉलरमें फिक्स कियो है. जब तुम खाना खावे आओ पाँच डॉलरमें तुमकु परोस जावें. हम याकु पांच डॉलर दे देंगे, ये छुट्टे, हम छुट्टे. बाहरवालेकु बुलाते तो महंगो पड़े. ये घरको बच्चा है पाँच देके छुटकारा कियो.” ये क्या है तनुजा सेवाको प्रकार है बाहरसु महंगो पड़तो ये सस्तेमें पड़्यो, चलो छुटकारा करो.

तनुजा और वित्तजा सेवाके जब अपन् भाग पाड़ें तो या तरीकेकी गड़बड़ी होवे है, होवे है, और होवे है. वा लिये महाप्रभु केह है के तनुवित्तजा सेवा करनी

चहिये. कोई जरूरी नहीं है के बहोत सेवा करो. जितनी तुम्हारे तनसु बने उतनी सेवा करो. कोई जरूरी नहीं है के छप्पन्नभोग धरो. जितनो तुम्हारो लाभ है, एक कौड़ीसु लेके एक करोड़ तकको, वा हिसाबसु जैसे भावसु सेवा होनी होय वैसी सेवा करो. पर तुम्हारो तन और तुम्हारो वित्त होयगो तो तुम्हारी प्रभुकी सेवा, सच्ची सेवा कहलावेगी. नहीं तो या तो तुम्हारो अहंकार बढ़ जावेगो वो अमरिकन् बेटाकी तरह या तुम्हारो भाड़ैती खाता हो जावेगो वो एडिटरकी तरह. वो तो भाड़ैती हो गयो, कोई महेमाननवाजीको प्रकार नहीं हतो के बापके महेमान आये हैं तो उनकी बड़ी आव - भगत करो. अरे बापके क्या महेमान हैं वो तो बापके ही नहीं हैं. बाप भी पाछे बेटान्को सगो नहीं है वो भी गिनती कर रह्यो है के बाहरवालेकु बुलावेंगे तो दस लेंगे, ये पांचमें सस्तेमें पटे. बेटायें भी गिनती कर रहे हैं के बापके महेमानसु थोड़े ही लेनो - देनो है, पांच तो दे रह्यो है न ! 'आजनो लावो लीजिये जी काल कोणे दीठी छे'. तो ये जो सारो भाव है ये सेवाभाव नहीं है ये धंधाभाव है. वो सेवा अपने यहांकी मूलमें सेवा हती नहीं.

(तनुवित्तजा सेवाको नियम है भक्तिको नहीं)

वा तरहसु आखो प्रकार जो योजित कियो गयो वामें तनुवित्तजाको जो नियम है वो सेवाको नियम है भक्तिको नियम नहीं है ये सूत्र खास पकड़के चलो. सेवाको नियम है के तनुवित्तजा होनी चाहिये.

(तनुवित्तके बिना भक्ति सम्भव है)

भक्ति तो बिना तनुवित्तके भी हो सके है. जैसे सूफीन्को उदाहरण मैंने दियो. एक साल पहले वो सुनामी आयी थी तब अखबारमें एक बहोत मजेदार न्युज़ पढ़्यो के जो गेंडा होवें वो नदी किनारारे या समुद्रकिनारारे रहवें. तो सुनामीमें एक मादा गेंडा बहके चली गयी वाको बच्चा किनारारे कोई तरहसु बच गयो. अब वो निरंतर माँकु खोज रह्यो हतो. माँ तो गयी सो गयी सुनामीके बहावमें बहके. अब एक समुद्री कछुवा, गेंडा जैसो ही बहोत बड़ो होवे, वो निकलके आयो. तब वो गेंडाके बच्चाकु लग्यो के मेरी माँ आ गयी तो कछुवाके पीछे माँ समझके गयो. वा कछुवाने भी वाकु पाछो अपनो बच्चा ओर मान्यो. वो दोनों फिर साथ ही रहेवे लगे. अब देखो ये शुद्ध स्नेहको भाव है. कछुवाकु गेंडासु कुछ लेनो - देनो नहीं, गेंडाकु कछुवासु कुछ लेनो - देनो नहीं पर दोनों

एक - दूसरेके साथ चले. तो दोनोंमें एसो आपसको भाव हो गयो. कछुवीको एसो भाव हो गयो के ये मेरो छोटा कछुवा है, भले कछुवा नहीं है, है गेंडा और मैं याकी माँ. और वो गेंडाको एसो भाव हो गयो के ये मेरी माँ आ गयी पाछी. बाकी तो वो माँ नहीं, माँ तो बह गयी थी. तो या तरीकेको भाव शुद्धभाव है.

वा शुद्धभावके कारण महाप्रभु अपनेकुं बतानो चाह रहे हैं के तनुवित्तजाके बिना भी भक्ति हो सके. देखो, न वाने तनुजा करी, न वाने वित्तजा करी, पर भाव तो प्रकट हो गयो -- मकछुवामें माँको भाव और गेंडाके बच्चाके बेटाको भाव. ऐसे अक्सर उदाहरण आवे हैं: मनुष्यके बच्चाकु कोई भेड़ीया पाल ले है. एक बखत पेसिफिक् ओशनमें बच्चा डूब रह्यो हतो तो डोल्फिन् मच्छीने उठाके वाकु किनारारे रख्यो, डूबवे नहीं दियो. अब डोल्फिन्कु क्या लेनो - देनो. कई बखत अपनेकु तनु - वित्तके बिना, या तरीकेको विनियोगके बिना भी स्नेह तो जगे ही है.

मैं जैसे एक अपनी बात बताऊं आपकु. हमारे बम्बईमें समुद्रमें एलीफन्टा है. वो १५०० साल पुराने शिवजीकी गुफायें हैं. वहां आज - कल लोग सब टफरी करवे जावें कोई पूजा - बूजाको प्रकार तो होवे नहीं. मैं भी एक बखत वहां गयो. तो वहां जो गुफामें शिवजीको मंदिर हतो वापे कॉलेजके छोरा - छोरीयें जूता पहरेके बैठे भये चना - मूंगफली फाक रहे हते. मेरी आंखमें आंसु आ गये; या महादेवजीकु जा बखत पूजा होती होयगी तो लोग पास जावेमें सिहरते होयगे और अब उनके माथेपे बैठके जूता पहरे भये छोरा - छोरी चना फाक रहे हैं और मूंगफली खा रहे हैं. अब मैंने कभी महादेवजीकी भक्ति नहीं करी पर वो दृष्य मोसु देख्यो नहीं गयो. उनकी ये दुर्दशा देखके महादेवजीके प्रति मोकु स्नेह प्रकट हो ही गयो. तो एसो नहीं है के स्नेह तनुवित्तजासु ही प्रकट होवे, तनुवित्तजाके बिना भी स्नेह प्रकट हो सके. अपनेसु कोई दृश्य देख्यो नहीं जावे तो अपनेकुं स्नेह आ जावे. मेरी आंखें भरी आयी ये देखके के शिवजीके साथ ऐसे कैसे दुर्व्यवहार करें ! तो एक बात ध्यानसू समझवेकी है के तनुवित्तजा भक्तिको प्रकार नहीं है सेवाको प्रकार है.

(नियम अपवाद को विवेक सेवा और भक्ति में)

यहां जो पहली वार्तामें श्रीगोकुलनाथजी बात समझा रहे हैं वो ये के गदाधरदासजीने तनुवित्तजाको नियम कैसे पाल्यो है ! ये वार्ताकी खूबसूरती देखो. दूसरी वार्ता या बातकी है के वा नियमकु तोड़्यो कैसे ? वो नियम सेवाके आवेगमें नहीं पर भक्तिके आवेगमें तोड़्यो ! सेवाकी आवश्यकतासु नहीं तोड़्यो भक्तिकी आवश्यकतासु वा नियमकु तोड़ दियो. अब आपकु आश्चर्य होयगो के भक्तिके आवश्यकतासु सेवाको नियम तोड़्यो तो फिर सेवा केहवायी के नहीं केहवायी.

मैं एक अपनी बात बताउं तो समझमें आ जायेगी के एक बखत हम लोग एसी ही गर्मीके दिनमें दिल्लीसे मथुरा जा रहे हते. दुपहरके ११ - १२ बजे हम १० - ११ जने कारमें ठुसके गये. अब बैठवेकी जगह नहीं सो कमर टेड़ी और हाथ टेड़े ओर त्राही - त्राही हो गयी. जब हम मथुरा पहुंचे तो कमरमें दर्द इतना हतो के नहाके सेवा करवेकी सामर्थ्य नहीं रहे गयी. तो कोईने मोसु पूछी के “आपकी कमर दबा दें ?” मैंने कही “दबावेसु अब काम नहीं चलेगो तुम एक काम करो कमरपे चढ़के पैरसु दबाओ.” तो उनने कही “महाराजके ऊपर हम पैरसु ऐसे कैसे कमरकु दबावें ?” मैंने कही “तुमकु शर्म आती होय तो एक काम करो के एक कपड़ा कमरपे ढक दो जासु कमर तुमकु दिखे नहीं पर या बखत दबावेसु नहीं पैरसु करोगे तो राहत मिलेगी.” अब कोई वैष्णव देख जाय के महाराजके ऊपर चढ़के कूद्यो जा सके और एकके बाद दूसरे एप्लीकेशन आनी शुरू होय के “महाराज ये सेवा मोकु भी दो” तो महाराज तो मर गयो न ! वा बखत मेरी आवश्यकता माहात्म्यज्ञानकी नहीं हती, कमरके दर्दके निवारणकी हती. तो वाके लिये मोकु भी पसंद आयो के भले वैष्णव है तो वैष्णव है पर या बखत क्योंकि कमजोर आदमी हाथसु कमर दाबे वामें कोई दर्द मिटे नहीं. मैंने कही या बखत तो तुम कमरपे चढ़ोगे, कूदोगे तो कमरको दर्द मिटेगो. तो वो वा बखत मेरी आवश्यकता हती वाको उनने भी थोड़ो अपनो दैन्य वापर्यो के आपपे पैर कैसे रखें ? तो वो सेवाकी रीत नहीं हती वो भक्तिकी रीत हती. अब दुबलो पतलो कोई कमरपे कूदे तो तो खैर सहन भी करें मोटे - मोटे फिर सेवा करवे आवें तो मेरी कमर न टूटती होये तो टूट जावे ! तो ऐसी सेवा तो भारी पड़ जावे !

नॉर्मली सेवा और भक्ति मिलके चले हैं पर कभी - कभी उनकु विभागके द्वारा भी निभावेकी जरूरत पड़ जावे है. विभाग कैसे हो सके ? जैसे ३६५दिन अपन भोजन करे हैं, भोजन किये बिना अपनो काम चले है ? पर कोई दस्तकी बीमारी ऐसी हो जावे, तो भूखे रहेके भी तो अपनेकु सुधरनो तो पड़ेगो के नहीं ? अब वा बखत भी अपन कहें के नहीं खाये बिना तो चलेगो ही नहीं तो फिर मरे बिना भी नहीं चलेगो, ये बात तो नक्की है ! वो अपवाद है. अब यहां वो खायो नहीं करके ३६५दिन नहीं खानो अथवा ३६५दिन खायो करके वा दिन भी खानो ये सब जीवेके रस्ता नहीं हैं मरवेके रस्ता हैं. तो नियम और अपवाद को बेलेन्स है वामें जीवन चले है जैसे पंखीके दो पंख होवें और दोनो पंख फड़फड़ें तो पंखी उड़ सके. ऐसे नियम और अपवाद दोनों पंखनकुं जा बखत अपन बराबर फड़फड़ावें तो अपन जीवनके आकाशमें उड़ान अच्छी तरहसु भर सके वरना अपन उड़ान अच्छी तरहसु नहीं भर सके.

सो पहली वार्ता या बातकी समझाई के वा नियमकु कितनी सच्चाईसु पाल्यो, दूसरी वार्ता वा बताई के भक्तिके तेहत कितनी सच्चाईसु वा नियमकु तोड़्यो. तीसरी वार्ता भी पाछी वो ही ढंगकी है के वा नियमकु तोड़्यो कैसे ! ऐसे कुल ये वार्तानुको सार है के वा नियमकु पाल्यो कैसे और तोड़्यो कैसे ! ये सूत्र पकड़के अब वो वार्ता आप देखोगे तो फिर तकलीफ नहीं होयगी.

प्रकरण : ५ वार्ताविवेचना

“सो गदाधरदासकु श्रीमदनमोहनजी सानुभावता जतावते. आगे जजमानके घर जाते.” क्योंकि ब्राह्मण हते तो उनकी जजमानकी वृत्ति होती. “जजमानके घर जाते जो चाहिये सो ले आवते.” वो उनकी वृत्ति होती. ‘वृत्ति’ माने वित्त = लाभ उनको कहांसु होतो हतो ? अपने यजमाननुसु. “वैष्णव भये पाछे अव्यावृत्तसु रहते.” क्योंकि वाके बाद यजमानके पास जावें और कहीं यजमान ऐसे समझे के ये सेवाके लिये मांगवे आये है या इनकु ऐसे भाव जगे के आज ये सेवा करनी है तो याके लिये जैसे ‘दे दान छूटे ग्रहण, दे दान छूटे ग्रहण’ करके पहुंच जायें दाकोतिया लोग, ऐसे कहीं ‘दे दान छूटे ग्रहण’ की तरह तो नहीं आ गयो सेवा लेवे ! तो उनने कही के अब अपनकु मांगवे नहीं जानो, बिना मांगे जो यजमानसु मिले वासु निर्वाह करनो. महाप्रभुकी कोई मनाई नहीं होती; ब्राह्मणकु यजमानके घर जाके पैसा लेनो ब्राह्मणवृत्ति है. पर उनने अपने मनसु ये सोच्यो के कहीं यासु वैष्णवताको खोटो अर्थ कोई न करे या वैष्णवताको अपनो कोई खोटो स्वरूप यामेंसु न उभर जावे वाकी सावधानी बरतवेके लिये उनने वो व्यावृत्ति छोड़ी. और फिर उनने ऐसे सोच्यो के जो आवे वासु अपनो निर्वाह करनो.

(धनार्थ सेवा – क्रूरताको स्वरूप)

जैसे कोई टीचर् है तो टीचरपनेसु कमा रह्यो है वो वाकी व्यावृत्ति है वैसे वो ब्राह्मणवृत्तिसु कमा रह्यो है, वासु सेवा करे तो वो वाकी व्यावृत्ति है. महाप्रभुने कोई ना नहीं पाड़ी के ये व्यावृत्ति निषिद्ध है. पर उनके मनमें ऐसे भयो के कहीं यासु वैष्णवताको कोई स्वरूप विकृत न हो जावे करके अब मैं ये व्यावृत्ति नहीं करूंगो, अव्यावृत्ति करूंगो. अव्यावृत्ति करूंगो करके यजमाननुसु लेनो छोड़्यो नहीं. यजमाननुसु ही उनको खर्चा चलतो हतो पर यजमाननूके घर जाते हते वामें उनकी आवश्यकता प्रकट होती थी. अब यजमान जो दे जावे वामें उनकी आवश्यकता नहीं उनकी निस्पृहता प्रकट हो रही है. दे जावेगो तो वासु करेंगे, नहीं दे जावेगो तो वैसे करेंगे. जैसे हर लड़कीके माता-पिता अपनी लड़कीकु दागीना कपड़ा और सब चीज़ें देते ही हते. वो जो देते हते वो देवेमें एक बड़ी पवित्रता होती क्योंकि माता-पिताको अपने पुत्रीके प्रति प्रकट होतो स्नेह

हतो. पर जमाइयनने जब दहेज मांगनो शुरू कियो, वामें पवित्रता नष्ट हो गयी. वो व्यावृत्ति हो गयी अव्यावृत्ति नहीं रही. वाको रूप ऐसो भयो के अब लड़की काहेके लिये चाहिये है क्योंकि दहेज ला रही है. लड़कीके साथ दहेज नहीं आ रह्यो है, दहेजके लिये लड़की आ रही है. तो रंग बदल गयो, बातमें अन्तर पड़ गयो. क्रूरता कब प्रकट भयी ? पत्नीके साथ दहेज आतो हतो वामें कोई क्रूरता नहीं होती, वो तो वाके माता-पिताको वात्सल्य प्रकट होतो हतो. पर दहेजके लिये जब पत्नी आनी शुरू भयी तब वो सम्बन्ध राक्षसी हो गयो और उनमें वो पवित्रता सारी खत्म हो गयी.

ऐसे सेवाके लिये धन आवे और धनके लिये सेवा करनो दोमें अन्तर पड़ गयो. कहीं सेवाके लिये धन आ रह्यो है वो तो स्वाभाविक बात है; कर रह्यो है सेवा, आ भी रह्यो है धन तो वापर भी रहे हैं. पर धनार्थ सेवा करनी वामें राक्षसीवृत्ति प्रकट होवेको, मने दहेजके लिये लड़की लानी, वैसे स्वरूप प्रकट होवे. वालिये उनने व्यावृत्ति करनी छोड़ दी, बाकी पैसा तो उनकु यजमानको ही आतो हतो. वो ही तो उनकी आजीविका होती, पहले भी होती और बादमें भी. तो आजीविकाको निषेध नहीं है.

(गदाधरदासजीको सेवाप्रकार)

पर या आजीविकासु वो जो दरवाजा खुल रह्यो है वा दरवाजाकु उन्होंने ताला लगायो के या दरवाजासु कहीं चोर न घुसे. तो “अव्यावृत्तिसु रहते. सो सब ठोरको जानो छोड़ दियो. जो आवे तामें निर्वाह करे. चित्त मानसीसेवा फलरूपमें इनको लग्यो.” अब एक बात समझो के जब कोईके यहां जानो नहीं है, आवश्यकताके अनुसार कोईके यहां व्यावृत्ति नहीं करनी है, तो तो जो मिलेगो वहीमें निर्वाह करनो है. तब सेवाके प्रकारमें कटौती तो आवेगी. पर वो कटौतीके साथ इनने मानसीसेवासु निभाके नेकके रूपमें करते. प्रभु क्योंकि सानुभाव तो जताते हते, तो जो इनसु निभ नहीं पाती वो मानसीसेवाके रूपमें हो जाती होती, जो उनके पास विनियोगार्ह सामग्री होती वासु बाह्य सेवाके रूपमें कर लेते हते. जैसे कोई चीज़ है तो वो बाह्य सेवाके रूपमें करी, नहीं अवेलेबल् है वाकु मानसीसेवाके रूपमें कर देते. जैसे मेरे पास ठंडीमें धरावेकु गद्दर है तो मैंने गद्दर धरा दियो. नहीं है और ठंड तो लग ही रही है, अब ठाकुरजीके प्रति मोकु

सख्यभाव है तो ये फील होयेंगे के 'मेरे ठाकुरजीकु ठंड लग रही है' अब गहर नहीं है तो क्या करूंगो, हाथ घिस-घिसके ठाकुरजीकु लगाउंगो के थोड़ी गरमाहट आ जावे. या कोई ऐसे ठिकाने पधरा जाउंगो के जहां ठाकुरजीकु ठंड कम लगे, चाहे तो धूप होय, चाहे तो कोई ऐसी जगह होय. तो वा तरहसु उन मानसी उपायनूपे उनकी आखी सेवा निर्भर होनी शुरू भयी. माने सेवाको मेक्सीमम् प्रकार मानसीको हतो और मिनिमम् प्रकार-जो आतो वामें जो हो जाय उतनी कर देते बाह्य सेवा, बाकी आंतरिक सेवा करते, ये आखो सेवाको स्वरूप हतो.

(यथालब्धोपचारद्वारा प्रभुको सेवन)

ये बातनूपे ध्यान नहीं दें लोग. एक खोटी जिद्द पकड़के केह के वो देखो ऐसो करते हते के नहीं. पर ये वार्ताके शब्द पढ़ो तो इन बातनकुं खुलासा होयगो. 'चित्त मानसीसेवा फलरूपमें इनको लग्यो'. "चेतस् तत्प्रवणं सेवा" या भावमें मग्न रहें, तनुवित्तजा जो बनें सो करें.' अब वामें आग्रह नहीं रहे गयो, क्यों? क्योंकि जब उनने ये नियम पकड़्यो के मोकु व्यावृत्ति नहीं करनी है, फिर जो बनेगो वही तो करनो है, जो मिलेगो वही तो खानो है और जो मिलेगो वो खिलानो है.

(प्रभु भी मानसी करे)

अपने यहां तो नहीं है पर चैतन्य सम्प्रदायमें याकी एक बड़ी अच्छी वार्ता है. वामें एक भक्तकु ठाकुरजीने स्वप्न दियो के 'मेरो स्वरूप यहां वृक्षके नीचे है तुम मोकु सेवामें पधराओ'. वो तो गद्-गद् हो गयो. सचमुचमें वृक्षके वहां गये तो ठाकुरजीको स्वरूप मिल्यो. ये तो प्रभुने सानुभाव प्रकट जतायो. घर पधराके लाये; ठाकुरजीने फिर उनकु दूसरे दिन ये आज्ञा करी के "ये सब तु भीख मांगके लाये वामें मोकु मजा नहीं आवे कुछ लड्डु-पूरी अच्छो खवाओ". तो उनने ठाकुरजीकु विनती करी के "लड्डु-पूरी खानी होय तो कोई ऐसेके यहां पधारो न महाराज जो खवा सके, मैं तो जो भीख मांगके मिल रह्यो है वो ही आपकु भोग धर सकु, नहीं तो कहो तो अभी पधराउं"! तो ठाकुरजीने कही "नहीं नहीं नहीं, तेरे पास ही रेहनो है वहां नहीं जानो है". जैसे पद्मनाभदासजीके मथुराधीशजी छोलामें सब सामग्रीको भाव मानते, तो कहीं पद्मनाभदासजी ही मानसी करते ऐसी बात नहीं है, मथुराधीशजी भी बिचारे मानसी करते हते. मैं 'बिचारे' केह

रह्यो हूं पर बहोत सावधानीसुं 'बिचारे' केह रह्यो हूं के पद्मनाभदासजी धरते तो छोला ही हते. बच्चायें कैसे करें! लड्डु है, ये लो लड्डु, लड्डु खा लियो. चाय है, ये लो चाय, चाय पी ली; बच्चायें खेल तो ऐसे ही खेले न! वा खेलमें जैसे पद्मनाभदासजी शामिल हते ऐसे मथुराधीशजी भी तो शामिल हते न! "महाराज आरोगो मोहनथाल" और मथुराधीशजी छोला आरोगके केहते "हां मोहनथालको स्वाद आ गयो, मजा आ गयी". तो वा खेलमें मथुराधीशजी भी शामिल हते, वो भी मानसी कर रहे हते. जीव मानसी करे एसो नहीं ठाकुरजी भी मानसी करें. वो जा भावसु जो धरे वा तरीकेकी मानसी कर दे. तो वा मानसी करवेके कारण जो उपलब्ध होयगो वही तो करेंगे, सब कहांसु लायेंगे!

यही लिये आप लोग गुसांईजीकी वार्तामें पढ़ेंगे तो आयेगो के जब यात्रा कर रहे हते और जन्माष्टमी आयी तो यात्रामें पलना ही नहीं हतो. अब उनने कही "जन्माष्टमीको, नन्दमहोत्सवको पलना कैसे झुलानो"? तो गुसांईजीने कही "पलना नहीं है तो क्या भयो अपनो उपरना तो है न!" दो छोर श्रीगिरधरजीकु पकड़ाये, दो छोर खुदने पकड़े, वामें नवनीतप्रियाजीकु पधराके पलना झुलायो. वाके बाद बहोत कीमती पलना जब आयो तब फिर उनने कही "आज वा दिनकी याद आ रही है". गुसांईजीने कही "वा दिनकी याद नहीं आ रही है वा दिन वो मानसी पलनामें जो झूलवेमें मजा आयो और झूलावेमें मजा आयो वो मजा सच्चेमें नहीं आ सके" क्योंकि वो मानसीको पलना हतो और ये लकड़ाको या समझो रत्नजटित पलना होयेंगे. और ये तो आप भी अपनो बचपन याद करोगे के जब बचपनमें अपनू खावेको खेल खेलें के लो खाओ लड्डु और खायो, वा लड्डु खावेमें जो स्वाद आवे, खेलवेमें आनन्द आवे वो सच्चो लड्डु खावेमें नहीं आवे, ये तन्मयताकी बात है. लड्डु तो स्वादिष्ट होवे ही है पर जो खेल लड्डुको है वामें जो आनन्द आवे है वो सच्चे लड्डु खावेमें नहीं आवे, सच्चे लड्डु खावेमें स्वाद आवे है पर स्वाद आनो एक अलग कथा है और आनन्द आनो एक अलग कथा है. तो आनन्द तो नवनीतप्रियाजीकु भी वो ही पलनामें ज्यादा आयो, स्वाद शायद आयो होयेंगे सोना-चाँदीके रत्नजटित पलनामें!

तो ये आखो सेवाको प्रकार गदाधरदासजीको हतो के जामें यों समझ लो के ८०% सेवा या ९०% सेवा उनकी मानसी हती और १०% सेवा उनकी बाह्य हती. यासु आपकु व्यावृत्त और अव्यावृत्त क्या, सारी बात समझमें आयेगी.

(सेवाके लिये उधार लेनो निषिद्ध प्रकार है)

“मदनमोहनजीको भोग धरें, वैष्णवन्को महाप्रसाद लेवाय देते..”. पाछो खुद नहीं लेते, “... या प्रकार त्यागपूर्वक रहते.” आज तो जितनी हवेली चले वामें जो आवे सो खावे, खवावेको प्रकार है ही नहीं. जो आवे सो खावे और जो आवे सो खवावे वामें बहोत अन्तर है. “एक दिन भगवद् इच्छाते यजमानके घरसे कछु आयो नाहीं तब मंगलामें जलकी लोटी भोग धरे, शृंगारमें, राजभोगमें जल ही धरें, पाछो उत्थापनसे सैन पर्यंत जल ही धरे, परन्तु उधार न लियो.” क्यों उधार न लियो ? सेवामें तो उधार भी लियो जा सकतो हतो.

तीसरी वार्तामें देखो के उनने ठग्यो भी है, वहां तो ठग्यो है तो यहां उधार लेवेमें क्या तकलीफ आ गयी ! तो वहां वार्ता विवेचनमें श्रीहरिरायजी यही बात समझा रहे हैं के उधार यदि लेते तो जब तक उधार चुक्यो नहीं तब तक पैसा तो वाको है मेरो थोड़ा है ? तो तनुवित्तजा कहां भयी ? यालिये उधार नहीं लियो. तो देखो, पहली वार्तामें तनुवित्तजाको नियम निभायो है तोड़्यो नहीं है के मेरी यामें सेवा क्या भयी उधार लेके सेवा करी तो !

(तीनों वार्तामें नियम अपवाद की संगति)

“ऐसे करत रात्री डेढ़ पहर गयी सोई रहे परन्तु छातीमें आग सी लागी रही के आज मेरे ठाकुर भूखे रहे.” अब ये सेवाकी के भक्तिकी भूख है ये बात ध्यानसू देखो. भक्तिमें तो कोई भूख हती नहीं क्योंकि भक्तिसु तो उनने जल धर्यो है और भगवान्ने भी बात कबूल करी है के “पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति. तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः.” (भग.गीता.९।२६) तो प्रभु भी भक्तिसु यदि पद्मनाभदासके छोलासु संतुष्ट हो सके तो इनकी जलकी लोटीसु प्रभु क्यों नहीं संतुष्ट भये ! पर वो सेवा और भक्ति के बीचमें हिलोरा खातो भयो मन है करके उनकु सेवामें ये फील भयो के आज ठाकुरजीकु भोग नहीं धर्यो.

“ठाकुर भूखे रहे. सो तब एक यजमान आयो गदाधरदासजीकु पुकारी, किंवार खोलायके, रूपिया चार दियो” ये वा जमानाके चार रूपैया हों आजके रूपिया चार नहीं ! मेरे बचपनमें मोकु याद है हमारे यहां मुख्याजीको महिनाको पगार दस रूपैया और पांच रूपैया हतो. आज तो भिखारीकु भी अपन दस रूपैया दें तो वो कहे “जाओ जाओ दूसरो कोई ले लेगो”. आज तो रूपियाकी कीमत नहीं, वा जमानेमें चार रूपैया बहोत कीमती हतो. माने गोकुलनाथजीके अन्नकूटके नेगकी सखड़ी एक रूपियाकी हती तो सोचो एक रूपिया कितनो कीमती हतो ! तो वा बखत उनके कोई यजमानने अपने बापके श्राद्धके चार रूपैया गदाधरदासजीकु दिये. अब उनने कही “या बखत रातकु क्या मिलेगो, कहांसु अनाज खरीदु, कहांसु सामग्री लाउं, कैसे सिद्ध करूं !” करके जलेबीवालेकी दुकानमें गये.

अब ध्यानसू देखो अपरसको नियम तोड़्यो. अपरसको नियम सेवामें नहीं तोड़्यो जा सके है पर भक्तिमें तोड़्यो जा सके है जैसे शबरिने तोड़्यो. जैसे ब्रजवासीनूने तोड़्यो के “जिन नहीं चाख्यो सुन मेरे भैया मेरी अंगुरिया चाट.” सेवामें तनुवित्तजाको नियम नहीं तोड़्यो जा सके है पर भक्तिमें तोड़्यो जा सके. तो उनकु भक्तिमें ये बात थोड़ी खलल पहुंचा रही थी के आज सेवा बराबर भयी नहीं करके बजारकी जलेबी लाके ठाकुरजीकु भोग धरी और वामेंसु एक भी कणिका खुदने चाखी नहीं सब वैष्णवन्कुं खिला दी. तो तनुवित्तजाको नियम पाल्यो के तोड़्यो ? पाल्यो क्योंकि उनने ठाकुरजीकी जो जलेबीकी सेवा करी वो ठाकुरजीके द्रव्यसु नहीं करी, ठाकुरजीके नामपे मागे द्रव्यसु नहीं करी. वो बाह्मण होवेके नाते यजमानके बापके श्राद्धके रूपैया उनकु मिले वो उनको खुदको वित्त हतो वासु भी उनने अपरस नहीं पाली और बजारकी जलेबी धरी. क्योंकि दिनभरसु उनकु या बातकी व्यग्रता हती के “आज ठाकुरजीकु भोग नहीं धर्यो तो या बखत जलेबीके अलावा ओर कोई सामग्री मिले नहीं”. वो अपरस नहीं पाली वाकु खुदकु इतनो दंड दियो के वाको प्रसाद खुद नहीं लियो सब वैष्णवन्कुं लिवायो. और वैष्णवन्ने ये बात कबूल करी के “ऐसी जलेबी तो कभी हमने खायी नहीं”. और वाके बाद सब सामग्री तीन रूपैयामें लेके आये और सबकु प्रसाद लिवायो. गदाधरदासने कही ‘काल मेरे पास कछु न हतो, जो रात्रीकु रूपैया चार ही आये एक रूपियाकी जलेबी बजारसु लायो’, तो ये सब प्रकार कह्यो ये उनको

अनाचार हतो पर वो अनाचारको छुपायो नहीं जो बात हती साफ़ केह दी. “तब सगरे वैष्णव गदाधरदासके ऊपर प्रसन्न भये.” ये देखो पहली वार्ताको रहस्य के उनने तनुवित्तजाको नियम कितनी सच्चाईसु पाल्यो. दूसरी दो वार्तान्में तनुवित्तजाके नियमको कैसे तोड़्यो वो आखी वार्ता हैं.

(नियम अपवाद सन्दर्भके बिना नक्की नहीं हो सके)

पूर्व प्रसंगमें अपनने या वार्ताके तहत सबसु पहली बात ये देखी के वार्तामें जहां उपदेश हैं वहां तो कोई न कोई नियमको उपदेश है. और जो नियम समझायो जाय है वो कोई देश, कोई काल, कोई अधिकारी, कोई प्रसंग कु ध्यानमें रख कर कह्यो जाय है. महाप्रभुकी शैलीमें केहनो होय तो ‘देश काल कर्म कर्ता मंत्र कर्म स्वभावतः, ये “षट्भिस् संप्रध्यते धर्मः” वो धर्मकी ही बात है एसो नहीं है कोई भी कानूनके जो रूल्स अँड रेग्युलेशन्स् हैं वो भी यही तरहसु फॉर्म्युलेट् होवे हैं के कौनसे देशमें क्या कालमें कौनके लिये क्या पर्पससु कैसी सिच्युएशनमें कौनसे रूल्सु वामें एक्सेम्पशन है क्या एक्सेपशन हैं, वगरह – वगरह. तो ये जो हैं वो धर्मके ही अंग नहीं हैं जहां भी कर्तव्यको उपदेश देनो है वामें ये छ अंगन्की सावधानी तो लेनी पड़ेगी. जब अपन् इन छ अंगन्की सावधानी ले है तब ये प्रसंग आवे है के जो नियम है वो नियम भी सब छ अंगन्में ही उपदिष्ट होवे है. माने कोई नियम कौनसे देशमें है. सब देशमें सब नियम तो नहीं होवे.

अभी जैसे आप लोगन्कुं ख्याल होयेगो के गुजरातमें दारूबंदी है पर यहां शायद राजस्थानमें नहीं है. तो वो देशके नियमसु वो नियम है. यहां दारू पीनो गुनाह नहीं है, कानूनन् वहां दारू पीनो गुनाह है. ऐसे ही कालमें कोई नियम होवे के या कालमें ये बात ऐसे होयेगी तो वो गुनाह नहीं होवे दूसरे कालमें वो काम करो तो गुनाह हो जावे. अब मंत्र वाली बात जो है वो टेक्निकली अपन् सोच सके के जो साधारण दुन्यवी कानून है उनमें मंत्र जेसो कोई फिनोमिना नहीं होवे है. पर जो गवर्नमेन्ट सर्विसमें हैं वो या बातकु अच्छी तरहसु जाने है के जो रूल्स और रेग्युलेशन्स् लागु भये है वाके कनेक्टेड् कोई मंत्र वहां होवे है, वो सिक्युर्ड या नोटिफाइड इन्स्ट्रक्शन्स् होवे है के जो पब्लिकमें प्रकट नहीं करवेके होवें पर वो ऑफिसर् खुद जानते होवें. वो एक्ज़ेक्ट् वो ही काम है जो मंत्रको काम है. मंत्रकी तरह वो गाइडलाइन्स् दी जाय है. यही लिये पुराने जमानामें मंत्रके लिये

एसो कह्यो जातो के “षट्कर्णों भिद्यते मंत्रः” : केहवेवालेके दो कान और सुनवेवालेके दो कान वामें दूसरे दो कान जुड़े और मंत्रकी शक्ति खत्म भयी. ये तो एक वाकी मजाक समझ लो पर हकीकत एसी है के कोई भी मंत्र कोईकु पता चल जावे फिर आदमीकी एक वृत्ति होवे के वो दूसरेकु केह “कोईकु कहियो मत पर ये रहस्य ऐसे है.” वो पाछो दूसरेकु जाके केहगे के ये बहोत रहस्य है पर कोईकु केहवेको नहीं है. फिर वो पाछो तीसरेकु केहगे. ऐसे करके सब लोग वो मंत्रकु केहते ही रहें. तो ये एक पद्धति होवे मंत्रके भेदनकी. अभी भी गवर्नमेन्ट डिपार्टमेन्टके जो भी सीक्रेट् जर्नलीस्ट्सु लीक्आउट् हो जावे है वो ऐसे ही के केहना मत, हमारा नाम मत लेना, मगर इन्स्ट्रक्शन्स् ऐसे है. विश्वस्त सूत्रोंसे पता चला है.

तो अपनेकु सामान्यतया यों लगे के जो लौकिक कर्मके निर्देश है उनमें मंत्र नहीं हैं पर दरसल बात ऐसी नहीं है. शास्त्रकारनने जो क्लासीफिकेशन कियो है वो कितनो गंभीर विचारके बाद कियो है के देश काल मंत्र कर्म कर्ता और स्वभाव ये सब धर्मके ही अंग है ऐसे नहीं, कर्मके भी अंग हैं, क्रियाके भी अंग हैं. अब वो कोई भी क्रिया होवे, कोई भी धर्म होवे, जैसे कानूनकी क्रिया है, पढ़ावेकी क्रिया है के कुछ भी क्रिया है सब जगह या तरीकेके छ अंग होवे है. जब इनको छ अंग मानके अपन चले तो बात स्पष्ट हो जावे के जो कर्म जा कालमें जा देशमें जा अधिकारीकु विहित है; वो कर्म वा कालमें वा देशमें वा अधिकारीके लिये कर्तव्य है. पर वाको दूसरो अर्थ यदि कोई ले के वो कर सके तो हम क्यों नहीं कर सके ? जैसे आर्मीके आदमीकु बंदूक या राइफल या ए.के – ४७ रखवेकी छूट है. अब क्योंकि आर्मीको आदमी, जो कर्ता, वाकु राइफल रखवेकी छूट है वाके लिये सिटिज़न् राइफल रखने लगे तो ? आर्मी रख सके तो तुमकु रखवेकी छूट कौनने दे दी ! तो वो एक कर्ताकु छूट है वाको मतलब दूसरे कर्ताकु छूट है ऐसे मान नहीं लेनो.

(नियम अपवाद विरोधाभास नहीं है सिस्टम् है)

तो वा सन्दर्भमें मैंने आपकु ये बात बतायी थी के जो भी नियम है वाको कोई न कोई अपवाद होवे है. वो अपवाद क्यों होवे है ? नियमकु केन्सल् करवेके लिये नहीं. क्योंकि कोई भी इन्स्ट्रक्शन् दियो जावेगो तो याही तरहसु दियो जावेगो

के जा देशमें, जा कालमें, जा कर्ताकु, जा प्रयोजनसु, जा कर्मकी छूट है वो नियम है, और जाकु नहीं है वो वाको अपवाद हो जावेगो. तो अपनेकु युं लगे है के नियमके कारण अपवाद कोई कॉन्ट्रिडिक्शनमें है, वो दरसल कॉन्ट्रिडिक्शनमें नहीं है.

जैसे अपन् या बातकु अच्छी तरहसु जाने है के जितने भी जमीनपे पैरसु चलवेवाले जानवर है, उनमेंसु कुछ पानीमें तैर सकें कुछ पानीमें नहीं तैर सकें. तो साउथ् अमरिकामें एक एसी गिलेरी है वाकी ये खासीयत है के वो किनारारे फुदकती रहे और कोई भी खावेके लिये आयो तो वो तालाबपे या नदीपे युं बाकायदा चलके जाय. अपने यहां योगवालेन्की सामर्थ्य बतायी जाय के वो पानीपे चल सकते हते. वा गिलेरीमें सहज सामर्थ्य है के यहां कोई वापे अटेक् करवे आयो और वो फुदकती भयी पानीपे वा पार चली जाय. वो बिचारो ललचायो भयो रह जाय खा नहीं सके वाकु. अब ये पैरके जो चलवेके नियम है वाको अपवाद है क्योंकि पैर जमीनपे चलवेके लिये बने है पर वाके पैर पानीपे भी चल सके है. वाके पैरमें ही एसी खासियत बतायी जाय के वहां वेक्युम् क्रिएट होतो जाय. जैसे छापकी भी क्यों चल सके उपर, क्योंकि जब वो पैर धरे तो वेक्युम्के कारण वहां चिपक जाय और फिर पड़े नहीं है. तो जैसे वेक्युम्सु वो छतकु पकड़ सके है ऐसे गिलेरीके पैरमें ये सिफत है के वो पानीके सर्फेसपे बाकायदा जमीनपे चल सके एसो चल सके. अब वो चल सके करके सब नहीं चल सके.

अपने वार्तामें आवे के चाचा हरिवंशजी पानीपे चलके पधारे तो वैष्णवने कही “तुम कैसे गये?” चाचाजीने कही “अष्टाक्षर बोलते.” वैष्णवने कही “हम भी बोलें” पर वो अष्टाक्षर बोलते भये भी डूब गये. तो देखो मंत्र तो कॉमन् है, मंत्रमें कहां अन्तर आयो पर वो ही मंत्र उनकु छूट दे रह्यो है और वो ही मंत्र उनकु छूट नहीं दे रह्यो है. यहांसु नियम और अपवाद घड़्यो जाय. जो भी नियम है वो कोई न कोई देश काल कर्ता मंत्र कर्म और स्वभाव के संदर्भमें दिये गये नियम हैं, वो चाहे धर्मके नियम होय चाहे कानूनके नियम होय चाहे समाजके नियम होय.

जैसे आपकु बताउं तो ख्याल आयेगो के अपनी लड़की है. वासु जो शादी करवे आयो वो जमाई. आजकल तो प्रायः जमाई लोग भी सब अपने ससुरकु पिताजी ही केहवें. पिताजी केह रहे है फिर जमाईके पैर क्यों धोवे, पिताजी कोई पैर धोवे बच्चाजीके ! पर जमाई आयो है तो वाके पैर धोने पड़ेंगे. वहां पिताजीपनो नहीं चलेगो क्योंकि जो कर्ता है वाके लिये वो नियम है के जमाईके पैर धोने पड़ेंगे. अब वो जमाई गलतफहमीमें यों समझ ले के देख लियो, पैर तो धोये हते हमारे. तो एक बात समझो के पैर धोवेकी प्रक्रिया है वो सिर्फ विवाह तक है. जैसे ही विवाह पूरो भयो जमाईको कर्तव्य है के ससुरके पैर पड़े. फिर ससुर वाके पैर धोवेके लिये नहीं है वो पिताजी है. तो जो कर्म है वो जा सन्दर्भमें, जा प्रसंगमें विहित है, वा प्रसंगमें तो वो कर्म है. जैसे हमारे यहां भी जन्माष्टमीके दिन हम यशोदाजी बनते तो दादाजी हमारे चरणस्पर्श करते. अब मैं यदि ऐसो अहंकार रखुं के देखी श्यामुबावाकी शान के सगो बाप भी पैर छूतो हतो ! अरे भाई ! सगो बाप श्यामुबावाको पैर नहीं छूतो हतो, सगो बाप पैर छूतो हतो यशोदाजीके. तो वो कर्म – कर्ता और याके जो नियम है वो हर बखत या तरहसु विहित होवे हैं. और उनकु वा संदर्भमें जब अपन् नहीं समझे तो बहोत गड़बड़ फैल जावे.

ये बात समझावेके लिये मैंने ये बात बतायी के जो भी नियम है वाको कोई न कोई अपवाद होवे है. अपवाद और नियम वैसे एक दूसरेके कॉन्ट्रिडिक्शनमें होवे हैं क्योंकि अपन् नियमकी बात सुने तो वो बात करनी है और अपवादकी बात सुने तो वो बात नहीं करनी है, ऐसे हो जाय अर्थ तो अपनेकु लगे के ये तो आपसमें विरोधाभास हो गयो. पर वो जो विरोधाभास है वो सचमुचमें विरोधाभास नहीं है, एक पूरी सिस्टम् बनावे है.

जैसे दिन और रात की एक सिस्टम् है. दिनको उजाला है रातको अंधेरा है. अब दोनों एक दूसरेके विरोधी है पर दिन और रात को सायकल् जीवनके प्रक्रियाकी एक सिस्टम् बना रह्यो है, जाके कारण पेड़ खिले हैं, फूल खिले हैं. दिनभर समझो रात होती नहीं होय तो बहोत सारे पेड़ मर जावेंगे. पेड़कु जीनो काहेके लिये मिल रह्यो है के रात हो रही है. बहोत सारे पेड़ – फूल रातकु खिले है तो दिनकु बन्ध हो जावें क्योंकि दिनकी जो गर्मी है वाकु झीलवेके लिये वो फूल नहीं बने भये हैं. बहोत सारे फूल दिनकु खिले वो रातकु बन्ध हो जावें. तो

ये बात अपनेकु खास समझनी चाहिये के इनमें दीखे है अपनेकु विरोधाभास, पर दरसल वो दोनोको विरोधाभास नहीं होके एक सिस्टम् बना रहे है, और दोनोको सिस्टम् बने तब वो बात पूरी प्रकट होवे.

जैसे कोई भी एक ब्लेक् एन्ड वाइट फोटो ले लो. तो वामें कुछ कालो रंग है कुछ सफेद रंग है और दोनों मिलके चेहरा बना रहे है. अब यदि आपने कालो रंग मिटा दियो रबर लेके या इन्क्सु तो भी फोटो नष्ट हो जावेगो और यदि आपने जहां-जहां सफेद है वहां-वहां कालो कर दो फिर देखो फोटो, फोटो नहीं रहे जावेगो ब्लेक् हो जावेगो. तो जो भी फोटो बन रह्यो है वो काले और सफेद के विरोधाभाससु बन रह्यो है. ऐसे जितने भी नियम है वो उत्सर्ग और अपवाद के विरोधाभाससु नियम बने है. कोई भी उत्सर्गनियम एसो नहीं है के जाको कोई अपवादनियम नहीं होय, कोई भी अपवादनियम एसो नहीं है के जाको कोई न कोई उत्सर्गनियमको संदर्भ नहीं होय.

(सेवा – भक्तिके नियमसु साधनाको चित्र बने है)

ये बात समझाके मैंने ये बात बतायी थी के अपनी सेवा और भक्ति में कुछ सेवाके नियम है और कुछ भक्तिके नियम है वो दोनों नियम मिलके एक अपनी साधनाको आखो चित्र बना रहे है. वो जो चित्र बना रहे है वामें कहीं अपनेकु विरोधाभास लग रह्यो है पर वा विरोधाभासकु देखवेको एक तरीका आनो चाहिये. जैसे एक सामान्य बात आपकु बताउं के कोई एक सिक्का लो, वापे पतलो कागज़ रखके और पेन्सिल् घिसो. पेन्सिल् घिसते ही सिक्कामें जो छाप है वो चित्रपे उभरेगी. सिक्काको चित्र कागज़पे क्यों उभर रह्यो है क्योंकि सिक्काको जो लेवल है वो समतल नहीं है विषमतल है. अपन् जब पेन्सिल् घिस रहे है तो जो उभर्यो भयो हिस्सा है वापे पेन्सिल् ज्यादा ताकतसु घिसा रही है वाके कारण कालोपन आ जावे और जो वाके दबे भये हिस्सा है वापे उतने ताकतसु नहीं घिसा रही है करके वहां थोड़ी सफेदी रहे जावे है. वो कालो और सफेद मिलके पाछो चित्र बन जावे. वहां सिक्कामें कालो और सफेद नहीं है पर वो काले और सफेद रंगके विरोधाभासके कारण चित्र उभरे है. यदि कालो और सफेद को विरोधाभास नहीं होय तो चित्र वहां उभर नहीं सके. सीधोसो उपाय वाको एक

बखत चित्र उभारके देखो, वाके बाद एकदम समतल भूमिपे फिर वापे पेन्सिल् घिसो, सारो चित्र कालो होके गायब हो जावेगो.

तो कुछ सेवाके नियम है और कुछ भक्तिके नियम है वो आपसमें मिलके एक साधनाको चित्र बनावे है. वो नियममें आपसमें भी पाछे कुछ विरोधाभास हो सके है, नहीं हो सके है एसी बात नहीं है. पर उन विरोधाभाससु उनको, जो मैंने आपकु चार चतुष्कोणको एक चतुष्कोण वालो चित्र बताया, वो चित्र वहां बन रह्यो है. वाके तहत मैंने आपकु ये बात बतायी के गदाधरदासजीने प्रथम वार्तामें ‘चेतस्तत्प्रवणं सेवा’ या सेवाको नियम पाल्यो कैसे, दूसरी वार्तामें वो नियम तोड़्यो कैसे ये बताया. अब तोड़्यो करके अपन् झंझा लेके फिरेंगे !! गुजरातीमें एक कहावत है के ‘लाम्बा साथे टूको जाय मरे नहीं तो मांदो थाय’ = लंबे आदमीके जैसे डग भर-भरके यदि कोई ठिंगनो आदमी चले तो उतने-उतने लंबे डग भरवेके लिये वो दो डग भरेगो तो याकु चार डग भरने पड़ेंगे. अब वो मरेगो नहीं तो बीमार तो पड़ेंगे ही इतने-इतने लंबे डग भरवेके कारण. तो ये बात खास समझनी चाहिये के साधनाप्रणालीमें याकी सावधानी अपन् बरतें के कहां कौनसे नियमके तहत बात कही गयी है और कहां कौनसी बात अपवादके तहत कही गयी है.

(उत्सर्ग अपवाद और प्रतिप्रसव)

ये नियम और अपवाद को आखो जो कॉन्स्टीट्युशन् है वाकु शास्त्रीय शब्दमें ‘उत्सर्ग’, ‘अपवाद’ और ‘प्रतिप्रसव’, ऐसे तीन तरहसु समझायो गयो है. मैं उदहारण दुं तो आपकु ख्यालमें आ जावेगो.

जैसे शास्त्रमें याकी विवेचना ऐसे ढंगसु करी जाय है के “‘सत्यं ब्रूयात्’”: ये उत्सर्गनियम है के ‘सच बोलो’. पर कोई निरपराध आदमीके पीछे कोई गुंडा हत्याके लिये पड़्यो भयो होय, अपन् रोक नहीं सकते होय और वो निरपराध आदमी बिचारो कहीं जाके छुप्यो होय वा बखत अपन् सत्यवादी बनके वा गुंडाकु कहे “देखो वहां छुप्यो भयो है” तो वाकु मारवेको अपराध अपनेकुं लगेगो. तो शास्त्रने या उत्सर्गको अपवाद बताया है के ऐसे निरपराध आदमी मरतो होय वा बखत सच बोलवेको दुराग्रह रखवेके बजाय झूठ बोल देनो के “‘भाई यहां नहीं वहां छुप्यो है’”. कमसु कम अपन् वाकी हत्याके हेतु न बने. ये जो झूठ बोलवेकी

छूट दी है याकु शास्त्र कहे है के ये उत्सर्ग नहीं है ये 'अपवाद' है. तो एक उत्सर्ग भयो के सच बोलो, एक अपवाद भयो के जब निरपराध आदमीकी कोई जान लेवेके लिये आमदा हो गयो होय वा प्रसंगमें झूठ बोलनो. शास्त्रने ओर भी कई बात बतायी है के दोस्तीमें आपसमें मजाकमें झूठ बोलनो कोईको नुकसान पहुंचानो नहीं है. दोस्तीको स्वरूप ही ये है के थोड़ी बहोत गप लगायी तो तो दोस्ती है. अब हर बात सच - सच बोलने शुरू कर दें शत - प्रतिशत सच ही बोलेंगे सचके अलावा कुछ नहीं बोलेंगे तो तुम जज और वकील रह जाओगे पर दोस्त नहीं रह सको. अक्सर दोस्तनमें झगड़ा यही बातको होय के झूठ नहीं चलेगी सच ही बोलेंगे. अरे भाई दोस्तीमें झूठ नहीं बोलो तो वो मजाक नहीं हो सकेगी और मजाक नहीं होवे तो दोस्ती नहीं होवे. तो जैसे कोई निरपराध व्यक्तिकी हत्या होती होय, कोई दोस्तीमें मजाकमें झूठ बोलतें होय उन सबमें शास्त्रने कह्यो है के झूठ बोलनो अधर्म नहीं है वाकी छूट है. अब वा अपवादमें जा प्रसंगमें वो छूट दी है वा प्रसंगमें झूठ बोलनो पाप नहीं है. जो झूठ बोलवेकी छूट दी वामें फिर अपन् क्या करे; जैसे गुजरातीमें वाके लिये एक बड़ो मजेदार मंत्र बोले के 'दाइनो घोड़ो रमतो जमतो छुट्टो' आंख मिचौनीमें एक बच्चा आंख मीचे फिर वो आंख खोले और खोजे के छुपवेवालो कहां छुप्यो; ऐसे अपन् केह के अब 'दाइनो घोड़ो रमतो जमतो छुट्टो' क्योंकि झूठ बोलवेकी तो छूट दे दी ! अरे वो 'रमतो जमतो छुट्टो' नहीं वो तो पाप लग गयो तुमकु. सब प्रसंगमें अपन् झूठ बोलनो पाप नहीं है एसो समझले तो वो धर्म नहीं है अधर्म है.

वाके बाद आवे 'प्रतिप्रसव' कुछ प्रसंग ऐसे गंभीर होवे है वा प्रसंगकी गंभीरताकु निगाहमें रखके उन प्रसंगनमें मजाकमें भी झूठ बोलवेकी मनाई है वाकु 'प्रतिप्रसव' कह्यो जाय. तो वहां शास्त्रमें ये चर्चा करी के झूठ बोलवेकी तो मनाई पहलेसु ही हती फिर ये दूसरी मनाई क्यों आयी ? तो दूसरी जो मनाई आवे है वाकु नियम नहीं केहके 'प्रतिप्रसव' कह्यो जाय क्योंकि पहले जो सच बोलवेको नियम = उत्सर्ग, वाको अपवाद के कोई - कोई परिस्थितिमें झूठ बाल्यो जा सके, फिर प्रतिप्रसवके प्रसंगमें तुम झूठ नहीं बोल सकोगे सत्य ही बोलनो है. तो वो सत्य बोलवेको जो नियम फिरसु आयो वाकु 'प्रतिप्रसव' कह्यो जाय. 'प्रसव' यानि 'फिरसे वाकु पैदा करना'. तो जो ये अपवाद हतो वाके सामने वा नियमकु फिरसु पैदा कियो जावे है. उत्सर्गमें तो नियम पैदा हो गयो हतो के "सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यं अप्रियं, सत्यं च नानृतं ब्रूयात्, एते धर्म सनातन" = सच बोलनो, प्रिय बोलनो, अप्रिय सत्य नहीं केहनो, प्रिय

असत्य नहीं केहनो. ये एक नियम स्थापित कियो. पर इन - इन प्रसंगनमें छूट दी के दो दोस्त गप लगा रहे हैं या कोईको प्राणभय है तो वा बखत झूठ बोलनो पाप नहीं है वो उत्सर्गको अपवाद है. अब तीसरी कोटिपे प्रतिप्रसव माने नियमकु फिरसु पैदा करो जो अपवादके कारण स्थगित भयो हतो. ऐसे तीन लेवलपे नियम होवे है उत्सर्ग अपवाद और प्रतिप्रसव.

तो अपनके यहां सेवाको जो नियम है के "तत्सिद्धयै तनुवित्तजा" वो उत्सर्ग है. गदाधरदासजी कर रहे है और वो अपवाद कर रहे है वासु नियम खंडित नहीं हो रह्यो है पर वो प्रसंग एसो है के जा प्रसंगमें कोई प्रयोजन विशेषके कारण यहां 'तत्सिद्धयै तनुवित्तजा' की थोड़ीसी छूट देवेके लिये एक वार्ता आ रही है और वो वार्ता अपन् श्रीगोकुलनाथजीके वाणीसु पढ़के देखेंगे.

प्रश्न: प्रतिप्रसवमें समझ नहीं आयो.

उत्तर: प्रतिप्रसवको उदाहरण शास्त्रमें ऐसे कह्यो है के जब अपन् यज्ञ करवे बैठे है वा अपन् गंगामें जब आधे कमर खड़े होके स्नान कर रहे होय तो वामें मजाकमें भी झूठ बोलवेकी मनाई है. ख्यालमें आयो न. जैसे यज्ञ करते बखत यदि मजाककी छूट दी जावे तो यज्ञकी जो गरीमा है वो खंडित हो जावेगी.

जैसे यहां है के नहीं पता नहीं पर बम्बईकी मैं कथा बता रहा हुं. वहां क्या होवे के कोई मर जावे तब सब इकट्ठे तो होवे स्मशानमें. फिर सब बाट ही देखते होवे के कैसे कोई बात छिड़े. कोई एक बात छेड़े वामेंसु कोई एकाद जोक् कट करे. अब बिचारो जाको मर गयो होय वो रो रह्यो होय और वो दोनों जोक्में फिर हसनो शुरू करे. वो हसते सुनके दो जने आके पूछे के क्या भयो और फिर वो भी हसनो शुरू करे और स्मशानके वातावरणमें जो गंभीरता होनी चाहिये, जो मर गयो वाके प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार होनो चाहिये, वाके बजाय लोग शादी - ब्याहके जैसो मजाकिया माहौल बनाके रख दे. तो अपने यहां शास्त्रमें मनाई है के कुछ प्रसंगनकी गरीमा निभावेके लिये कुछ ऐसे व्यवहार अपन् करे. मजाककी मनाई नहीं है बात ध्यानसू समझो अपने शास्त्र अंधे नहीं है बड़ी सूझबूझवाले है. पर जैसे शादी - ब्याहके प्रसंगमें शास्त्र मजाककी छूट दे है वैसे कोईकी स्मशानयात्रामें जा रहे हो वा बखत अपन् हा - हा ठी - ठी करें, एक - दूसरेकु जोक् सुनाते होवे

क्योंकि उनकु तो मरवेको दुःख है नहीं पर आंखकी शर्मके कारण इकठ्ठे भये है, वाकी छूट नहीं है. कई लोग सौदा पक्की करी आवे वहां बैठे-बैठे, कई लोग शादी-ब्याह पक्की कर लें, कौनकी छोरी कितनी बड़ी भयी कौनको छोरा कितनो बड़ो भयो. चल बात पक्की आज. अरे भाई, स्मशानमें गये हो तुम के कहां गये हो ! पर ये क्या है के आदमीकु सब

तरहकी छूट लेवेकी वृत्ति इतनी खतरनाक पैदा हो गयी है के उत्सर्ग अपवाद और प्रतिप्रसव को कोई सेन्स् रह्यो नहीं.

तो ये अर्थमें जा प्रसंगकी गरिमा चाहे शोकपूर्ण गरिमा होय चाहे आनंदपूर्ण गरिमा होय वाकु निभानी चाहिये. अब जैसे एक साधारण बात बताउं के अपने यहां शादी-ब्याहमें कंकण बंध जावे फिर कोई गमी भी हो जावे तो वहां वाको समाचार दियो नहीं जावे. अब अपन् कहे, नहीं सच बोल रहे है हम तो. अरे भाई, तुम्हारे पास रखो सत्यवादी हरिश्चन्द्रपनो. वहां बिचारेको प्रसंग क्यों खराब कर रहे हो तुम ! अब तुम कहो के नहीं हम तो सत्यवादी हरिश्चन्द्र है, शादीमें जाके डिक्लेर् करेंगे के क्या बैङ्क बजा रहे हो वहां तो गमी हो गयी. ये बेवकूफी है ! शास्त्रमें भी छूट दी है के शादी तब तक रोकी जा सके जब तक कंकण नहीं बंध्यो. कंकण बंध गयो वाके बाद शादीमें वो समाचार ही नहीं दियो जावे भले मर गयो तो मर गयो, क्योंकि जीवन-मरण तो कोईके हाथमें नहीं है. समझो कोईकु अंदेशा भी होतो होय तो वाकु झूठ बोलवेकी फिर वहां छूट है के पता नहीं क्या है कैसे है ! तो वा झूठ बोलवेमें पाप नहीं है. पर कोई प्रसंग ऐसे आवे के उन प्रसंगनकी गरिमाकु निभावेके लिये यदि अपन् मजाककी छूट दें तो वासु प्रसंगकी गरिमा नष्ट हो जावे. यों कह्यो जावे के डोकरी मरे वाको गम् नहीं है पर यमराज घर देख जावे वाको बड़ो डर रहे. जैसे अपन् यज्ञ कर रहे है गंगास्नान कर रहे है और वहां भी हा-हा ठी-ठी करके मजाक कर रहे है तो वो गंगास्नानकी यज्ञकी सेवा-पूजाकी जो महिमा है वो महिमा खतम हो जावेगी. और एक बखत खतम हो गयी वाके बाद फिर वाकु पकड़नो बहोत मुश्किल है.

अहमदाबादवाले महाराजके वचनानामृतमें बहोत सुन्दर एक वचनानामृत है के “काकाजीने ठाकुरजीके बहोत सुन्दर शृंगार किये और उनने खाली इतनी कही

के शृंगार बहोत सुन्दर धरे है. काकाजीने कही तुम्हारे ये बोलनो ही गलत है, क्योंकि, ध्यान ठाकुरजीपे नहीं जाके मेरेपे गयो”. जब अपन् सेवामें है तो मैंने सुन्दर शृंगार धर्यो यापे तुम्हारो ध्यान नहीं जानो चाहितो हतो. तुम्हारो ध्यान ठाकुरजीपे रहनो चाहितो हतो. यदि केहनो भी होय तो आज ठाकुरजीके बहोत सुन्दर दर्शन हो रहे है यों केहनो चाहिये. तो वहां उनने वचनानामृतमें ये बात कही के “तुमने ये अधिकार ले लियो आज ये केहके के आपने बहोत सुन्दर शृंगार धरे. कल सुन्दर नहीं धरेंगे तो तुमने ये भी अधिकार ले लियो के आपने सुन्दर शृंगार नहीं धरे. तो कैसे तुम बेटा हो !” वहां प्रश्न सुन्दर और असुन्दर को नहीं है, प्रश्न वहां सेवाके बखत सेवाकी गरिमामें ठाकुरजीकी गरिमा निभावेको है. और वा गरिमाकु तोड़नी शुरू करे आपसी प्रशंसासु तो धीरे-धीरे फिर टूटती जावेगी. और वा बातको बतक्कड़ होते देर नहीं लगे के आपने सुन्दर धरे पर वो ऐसे सुन्दर नहीं धरे है, फिर वामेंसु कोई तीसरी बात निकलेगी, फिर वो तो ऐसे धरते हते. और फिर ठाकुरजी कहीं बिराजे रेह जावे और बात कहांकी कहां पहुंच गयी. तो ऐसे उपद्रव सेवा करते बखत नहीं होवे चाहिये. प्रभुपे चित्त एकाग्र होके सेवा करनी चाहिये तो सेवाकी गरिमा निभेगी, और नहीं तो सेवाकी गरिमा नहीं निभेगी. तो ये सब गरिमा निभावेके लिये कुछ उपदेश दिये गये है के जासु वो गरिमा निभे तो वामें अपनी एकाग्रता बने. अपन् वाकी गरिमा खंडित कर दें फिर चाहे तो भी वो हासिल होनी मुश्किल हो जावे.

कामवनवाले महाराजश्रीके लिये ऐसे कह्यो जातो के गर्मीके दिननमें वो छतपे फिरते नहीं. देखो पुराने लोगनकी समझ कैसी हती वाको उदाहरण दूं. क्योंकि वो केहते के गर्मीके दिनमें सिर्फ गर्मी अपनेकु नहीं लगे गाँववालेकु भी गर्मी लगे. गाँववालो भी छतपे आके सो रह्यो है. अपन् छतपे फिरेंगे तो गाँववालो कब तक अपनेकु रिस्पेक्ट देगो ! वाकु भी तो सोवेकी इच्छा है. अपन् फिरेंगे तब तो वो रिस्पेक्ट भी नहीं दे सकेगो. याके लिये वो खुद नहीं फिरते छतपे क्योंकि गाँववालो बिचारो थक-थकाके गरीब छतपे सो रह्यो है. तुमकु तो कोई पंखा करवेवालो भी है वाकु तो कोई पंखा करवेवालो नहीं है. तो वाकु वो नियम तोड़नो न पड़े के महाराज तो दिनभर छतपे घूमे है अब क्या याकु खड़े होके सन्मान देनो ? वाके लिये वो छतपे नहीं पधारते गर्मीमें. अपनेपे इतनो संयम रखते के गाँववालेकु भी गर्मी लगे. वाकी भी रिस्पेक्ट देवेकी एक मर्यादा है वा मर्यादा अपन् पालेंगे

तो वो भी पाल पायेगो और अपन तोड़ेंगे तो वो भी पाल नहीं पायेगो. तो ये सब क्या है कोई चीज़की गरिमाकु - सेवाकी गरिमा, व्यवहारकी गरिमा, सद्भावकी गरिमान् कु - निभावेके पुराने प्रकार हते. वाके कारण प्रतिप्रसव वहां होतो हतो के भले छूट है; अब कोई छतपे घूमनो गुन्हा थोड़े ही है, गर्मी लगे और महाराज छतपे घूम रह्यो है तो वामें कोई गुनाह कछु ही नहीं है पर दूसरेको विचार कर्यो के कब तक एक आदमी आपकु खड़े होके रिस्पेक्ट देगो ! वो भी फिर कहेगो के छतपे फिर रह्यो है फिरवे दो, अब अपन सोओ आनंदसु.

हमारे साथ एक बखत एसी घटना भयी. हम जूनागढ़ गये बेटीजीके ब्याहमें. मंदिरमें कमसु कम पांच-दस हजार वैष्णव. कहीं बैठवेकी जगह नहीं, कहीं उठवेकी जगह नहीं. बड़ी मुश्किलसु एक कोना छतपे हमने खोज्यो के यहां कोई नहीं है चलके वहां बैठे. वहां उन महाराजश्रीके गोकुलके देवीद्विज कवि हते. थोड़ी देर बाद उनने आके दण्डवत् लगायी. हम समझे कोई भाव आ गयो होयेगो. बीस मिनट, पचीस मिनट, मैंने कही कहीं गुढ़क तो नहीं गये तो उनकु जगाके पूछी “देवीद्विजजी, क्या भयो !”. तो वो बोले “नाय कृपानाथ आपके सामने अविनय कैसे करूं सोवेको, पर दण्डवत् तो लगाये सकु. क्योंकि मैं हु जगह खोज रह्यो हूँ कहां सोउं कोई जगह ही नहीं मिल रही है यहां इतनो आदमी भयो भयो है तब सोवेको अविनय तो कैसे करूं पर दण्डवत् तो लगाय सकु. फिर लगायी दण्डवत् और सो गये. बिचारो आदमी निभानो चाहे पर निभावेकी भी एक सीमा है. वा सीमामें आदमी बरते तो वो सामनेवालो भी बरते, नहीं बरते तो क्या करे देवीद्विज दण्डवत् तो लगा ही सके.

प्रतिप्रसव अक्सर वा परिस्थितिन्में आवे है के जहां छूट मिली है वाकु केन्सल् करके फिरसु वा नियमकु लागु करो. पुनः स्थापन है.

प्रश्न : प्रतिग्रह माने क्या ? प्रतिग्रह दोष केहवावे ?

उत्तर : जैसे एक बात बताउं के आप कपड़ा बेच रहे हो. अब कपड़ा खरीदवेके लिये समझो के कोई मर्डर या चोर आयो और वो आपकु आपके

कपड़ाको पैसा चुका गयो. तो वामें कोई आपने चोरीको पैसा लियो ऐसे नहीं कह्यो जावे. पर जब आप कुछ काम नहीं कर रहे हो; समझो चोर चोरीको पैसा लायो आपकी दुकानपे. आपसु कपड़ा नहीं लेके आपके यहां युं केहके रख जावे के आप याकु संभालके रखियो तब फिर लफड़ा होवे है. पर जैसे आप कपड़ा बेच रहे हो और वो चोरीको रूपैया लेके आयो है या कोईको पाकिट मारके आयो है वासु कपड़ा खरीद गयो. समझो इन्क्वायरी आवे तो कितनी आयेगी के आपने याकु कपड़ा बेच्यो ? बेच्यो भाई, मेरी कपड़ाकी दुकान है. ऐसो मेरो अध्यापन कार्य है मैंने अध्यापन करायो वाकी मोकु दक्षिणा है. वामें दोष नहीं है. पर प्रतिग्रहमें वो लफड़ा होवे है क्योंकि आप कुछ काम तो कर नहीं रहे हो बैठे - बैठे ले रहे हो. जब बैठे - बैठे ले रह्यो है तो सदसत्को विवेक करो.

एक सच्ची बात बताउं. जूने जमानामें भी लोग घी खूब खाते. आज खा नहीं सके. उतनो अच्छो घी आज मिले भी नहीं पाछो. तो उनकु तकलीफ नहीं होती पर अपनेकु तकलीफ होवे क्योंकि उनके जीवनमें पग - पगपे कसरत हती. कुंवामेंसु जल भरनो है तो कसरत है, गाँवसु बाहर जानो है तो कसरत है, कोईसु मिलवे जानो है तो चलवेकी कसरत है. आज मिलवे जानो है तो ऑटोरिक्षा है, नहानो है तो नलकी टॉटी खोल लो, गर्मी लग रही है तो स्विच् ऑन् करके पंखा चला लो. वा बखतमें तो सोनो भी है तो पंखा यों करना पड़तो हतो तो कसरत तो होती हती के नहीं ? तो वो घी पचतो हतो और शक्ति देतो हतो. अब वो घी पचे नहीं है और कोलेस्ट्रॉल् पैदा करे, क्यों ? घीको गुनाह नहीं है, घीकु जितनी व्यायामकी जरूरत है वो व्यायाम अपने जीवनमेंसु उड़ गयो. तो वो घी नुकसान पैदा करे.

ऐसे अपने समाजमें ब्राह्मणको व्यायाम हतो पढ़ानो और लोगनकु धर्माचरणमें सहयोग करना. वो यदि धर्माचरणमें सहयोग कर रह्यो है और पढ़ा रह्यो है धर्मग्रंथ तो वो अपनो व्यायाम कर रह्यो है. तब दूसरेको पैसा असत् भी होयेगो तो भी वाकु पचेगो. घी तो पहले भी हेवी हतो कोई छाछके जैसो हलकी खुराक नहीं थी. पर पहले क्यों कोलेस्ट्रॉल् नहीं होती थी क्योंकि व्यायाम हतो अपने यहां. अब हर पहलुमेंसु व्यायाम उड़ गयो है. अब घी तो लड्डुमें भी मठड़ीमें भी बूंदीमें भी और मोहनथालमें भी रेह गयो है पर वो अपनेकु मारे है क्योंकि व्यायाम

रेह नहीं गयो. तो हर बखत या तो फिर जितनो व्यायाम घट गयो है उतनो आप गरिष्ठ खोराक घटा दो तो स्वस्थ रहोगे. नहीं घटा पा रहे हो तो उतनो व्यायाम करो तो पाछी कोई हरकत नहीं आयेगी. याही लिये पुराने लोगनकुं तकलीफ नहीं हती क्योंकि जीवनमें हर पगपे बहोत व्यायाम हतो. खाली दोस्तसु मिलने जानो है तो पैदल चलके जाते हते.

अब एक सामान्य बात बताउं, यहां यमुनाजलकी गागर कुन्दनजी पैदल चलके लाते हते. अब कौनकी ताकत है आज ? कुंवासु भरवेकी ताकत नहीं है. जो कुंवामेंसु जल भरके नहाते उनकी कसरत किये बिना मसल्स बन जाती, जल खींचवेकी प्रक्रियासु. वजन उठावेकी प्रक्रियासु पीठ और रीढ़ मज़बूत हो जाती. अब वो सब बैठे - बैठाये कमजोर हो गयी है हड्डीयां, मसल्स तो सब ढीली पड़ गयी है. माने पुरुषके हाथ औरताना हाथ हो गये ढीले - ढीले, पुरानी औरतनके हाथ पुरुष जैसे हते चक्की पीस - पीसके. चक्की पीसवेमें अच्छी खासी एक्सर्साइज़ औरतकु होती थी. अब वो आटा पीस्यो - पीसायो मिल जावे तो कौन चक्की पीसे है ! नुकसान कछु भी नहीं है पर अब जब कसरत नहीं रेह गयी तो खुराक घटनी चाहिये. वो तो घटे नहीं फिर तो वो नुकसान करेगी. बस मुद्दा यहां है. आज जो कुछ खराबी पैदा हो रही है वो या बातकी है के अपने जीवनमेंसु श्रम हट गयो है और मौज - मजा रेह गयी है. पुराने जमानामें भी खावे - पीवेकी बहोत मौज - मजा हती; चुरमा दाल - बाटी कितनो खाते लोग, इतनी तो खुराक आजकी नहीं है. हमारे दादाजीके पास एक श्याम नामको आदमी हतो, दुबलो - पतलो ब्रजवासी. बीस रोटी पक्की खातो, वाके इलावा और सब चीज़ अलग. अब बीस रोटी खाओ तो तो यहां गलामेंसु निकल जावे कौन खा सके ! तो उन लोगनके जीवनमें श्रम हतो. श्रम हतो तो खायो भी पचतो हतो अब खायो नुकसान दे, चक्कर यहां पड़ गयो.

या लिये जो याजन और अध्यापन करा रह्यो है वो श्रम कर रह्यो है तो वामें पचावेकी भी सामर्थ्य है. प्रतिग्रह माने 'बावा बैठो जपे जे आवे ते खपे'. वो तो खाली बैठे भये है जो आवे सो लाओ लाओ लाओ. तो तो कोलेस्ट्रॉल बड़ा ही देगो ! चक्कर यहां पड़ गयो है. ये कोई जमानामें होयेगी रईसी बीमारी पर आजकल गरीबनकुं हो रही है क्योंकि जीवनमेंसु श्रम घट गयो है, कोई जगह

श्रम रेह नहीं गयो है. एक साधारण बात सोचो के गर्मी लगती होय तो अपनने समझो एक घंटा पंखा कियो तो नींद आ जावे, कितनो श्रम भयो ! अब तो हर जगह कहीं श्रमको नाम नहीं रेह गयो फिर वो कोलेस्ट्रॉल बनके नसन्में नहीं फसे, तो जावे कहां घी ? घीकु भी अपनो जमा - खर्चको हिसाब तो रखनो पड़े. बचपनमें आप देखो बच्चाये आंख - मिचौनी खेलते, लिपा - छुपी खेलते, दौड़ा - दौड़ी खेलते. आज बच्चाये सब टीवीके सामने उल्लूकी तरह एकाग्र चित्तसु बैठे भये है. तो बचपनमेंसु खेल - कूद हट गयो है. सब ध्यान लगाके योगीराज बनके बैठे भये है, न दौड़ - भाग है, न उछल - कूद है. बच्चा तो दौड़तो उछलतो - कूदतो होनो चाहितो हतो, नहीं उछले, क्योंकि, वो उल्लूके डब्बाने सबकु उल्लू बना रख्यो है. सुबहसु बैठे रहे शाम तक. बैठ्यो देखतो ही रहे तो ढीलो नहीं पड़ेगो तो होयेगो का !

हम हमारे बचपनकी याद करें तो इन छतनपे दौड़नो हमारो बड़ो भारी शोख हतो. कुछ लेना - देना नहीं बस इन छतनपे एक उमरके दो जने मिल जाते और तालनपे दौड़ते, अच्छी एक्सर्साइज़ होती. अब बच्चानमें दौड़वेके कूदवेके शोख ही नहीं रेह गये, सब योगीराज हो गये, फिर तो क्या होवे ? तकलीफ वहां हो गयी. गाना गानो बंध कर दियो रॅकोर्ड बजा दे, नाचते हते वो नाचनो बंध कर दियो. आखिर शरीर करे क्या ? जैसे गनगोर होती तो औरतें खूब नाचती, नाचवेमें अच्छी एक्सर्साइज़ हो जाती, अब कोई नहीं नाचे. जीवनके हर पहलुमेंसु, आमोद - प्रमोद, धर्म - कर्म और व्यवहार, सबमेंसु एक्सर्साइज़ हट गयी है. और खाना - खुराक तो वैसे ही रेह गये. फिर तो शरीरको क्या दोष ?

आज भी ब्राह्मण यदि अध्ययन - अध्यापन, यजन - याजन में रत होतो तो कोई कारण नहीं हतो के ब्राह्मण समाजमें अनादरणीय होतो. वो अध्ययन - अध्यापन यजन - याजन में रत रहे नहीं और लाओ लाओ लाओ रेह गयी. जो स्वाभिमानी ब्राह्मण है वो ब्राह्मणवृत्ति छोड़के दूसरी नौकरी करवे लग गये, जिनमें स्वाभिमान नहीं है या लाचार है वो बेचारे ब्राह्मणवृत्ति करें. वो लाओ, लाओ, लाओ करें तो उनके प्रति समाजमें आदर नहीं होवे. फिर, क्योंकि, अपनेकु पता है के ये मंगतल है. वाके लिये प्रतिग्रहमें शास्त्र यों केह के सदसत्को विवेक करनो चाहिये.

कर्ममें ये छः अध्ययन यजन और दान ये ब्राह्मणको धर्म है और अध्यापन याजन और प्रतिग्रह, ब्राह्मणकी आजीविका है. जैसे क्षत्रियकी आजीविका रक्षा है, जैसे वैश्यकी “**कृषि – गोरक्ष्य – वाणीज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्, परिचार्यत्मकं कर्म शूद्रास्यापि स्वभावजम्**” (भग.गीता.१८।४४) आजीविका है. तो वामें शास्त्र स्पष्ट ये आज्ञा करे है के ब्राह्मणकु लेवेकी छूट है पर असत् प्रतिग्रह नहीं करनो चाहिये. असत् प्रतिग्रहको मतलब के कोई डकैती करके लायो और तुमकु दान दे रह्यो है. अब ब्राह्मण कहे मोकु क्या मतलब ? डकैती वाने करी मैं थोड़े ही डकैती करवे गयो मोकुं तो वाने दियो सो लियो. शास्त्र ऐसे स्पष्ट केह है के जासु तुम ले रहे हो वाने वो पैसा यदि गलत ढंगसु कमायो है तो प्रतिग्रह मत करो. जैसे तुम अध्यापन करा रहे हो तो जाकु अध्यापन करा रहे हो वासु गुरुदक्षिणा ले सको. यदि तुम याजन करा रहे हो तो जाकु याजन करा रहे हो वासु यज्ञकी या पूजाकी दक्षिणा लेनो ब्राह्मणकी आजीविका है वामें दोष नहीं है. पर प्रतिग्रहको मतलब के कयों – धर्यों कुछ भी नहीं सिर्फ लियो. तो जब सिर्फ लेनो है वामें शास्त्र या बातकी सावधानी बरतवेकी केह है के जासु ले रहे हो वाने गलत ढंगसु कमायो होय तो मत लो. वाने यदि ठीक ढंगसु कमायो है तो लो. वो तुमकु राजी – खुशीसु दे रहे होय तो तुम राजी – खुशीसु ले सको. ये आखो अपनो आइडीयल् सेटअप् हतो. असद्वृत्तिसु कमायो होय तो प्रतिग्रहकी छूट नहीं है, सद्वृत्तिसु कमायो होय तो तुमकु प्रतिग्रहकी छूट है.

यही लिये अपने यहां सिरोहीके राजाकी दो रानीयां हती लाडबाई और धारबाई उनकी वार्ता आवे. उनने तलवार खोलके राजाके सामने अपनो हक मांग लियो. तो गुसांईजीने कही के ये पैसा नहीं चाहिये. पति – पत्नीमें आपसमें तलवार चले वो पति – पत्नीको आपसी रंग है वामें अपनू क्या कर सकें ! वो भी क्षत्रिय है तो ये भी क्षत्राणि है. राजाने कही “हम तलवार खेचें”, तो उनने कही “ले तु ही तलवार खेंचे ऐसो थोड़े ही है हमकु भी तलवार चलानी आवे”. पतिने कही “विदा करो इनकु. ये तो अपने घरमें तलवार चलाती लड़कियां आ गई. तो वा बलपे पैसा इकठ्ठो करके ले आयी और गुसांईजीकु भेट धर रही थी तो गुसांईजीने इनकार कर दियो के ये लड़ाई – झगड़ाको पैसा हम नहीं लेंगे. गुसांईजीने थोड़े ही उनकु कही हती के लड़ो – झगड़ो ! पर वो पैसा लेवेकी गुसांईजीने मना कर दी

क्योंकि असत्प्रतिग्रह नहीं करनो. लाडबाई – धारबाई असत् नहीं हती, वैष्णव हती ! या बातको ध्यान रखो. पर उनने वो पैसा पतिसु राजी – खुशीसु नहीं, पर तलवारके जोरपे खींच्यो वाके लिये गुसांईजीने इनकार कर दियो के ये पैसा अपनू नहीं रख सके.

“और एक दिन गदाधरदासने वैष्णव महाप्रसादकों बुलाये हते. सगरी सामग्री करी परन्तु साग कुछ न हतो.” अब देखो या बातकु ध्यानसू समझो के उनने तो पहलेसु ये व्रत ले रख्यो है के अव्यावृत्तिसु रेहनो जो आवे वासु करनो. पर अब सब वैष्णव आये वा बखत साग नहीं जुट पायो कोई कारणसु. तो उनकु ये संकोच भयो के अब ये वैष्णवन्कुं प्रसाद लेवानो कैसे, साग तो है नहीं. “तब गदाधरदासने वैष्णव बैठे हते तिनसु कही ऐसो कोई वैष्णव है जो साग ले आवे ?” सो माधोदास, बेनीदासके भाई जिनने वेश्या घरमें रखी हती सो बोले, “कहो तो मैं ले आउं.”

अब देखो पुराने जमानामें एसो हतो के वेश्याको तो संग बुरो मानते पर वेश्याको जो संग करतो वाको संग भी बुरो मानते. अब वो माधोदासकु तो महाप्रभुने भी पूछ्यो हतो के भाई क्या चक्कर है ? तो वाने कही के मेरी तो आसक्ति वेश्यापे इतनी है के मोकु वेश्या बिना रह्यो नहीं जावे. तो सबन्ने निंदा करी के देखो कितनो बेशरम है के याने महाप्रभुके सामने भी कबूल कर लियो. पर महाप्रभुको तो गहरी दृष्टि हती. उनने कही के “यदि याको आसक्तिको इतनो दृढ़ स्वभाव है तो ये आसक्ति यदि भगवान्के तरफ मुड़ गयी तो भगवान्में भी ये इतनो आसक्त हो जावेगो”. यालिये महाप्रभुने तो वो बातकी बुरी नहीं लगायी.

वो अपवाद हतो हों पाछो, नियम नहीं हतो करके जब माधोदासने अचानक ये बात कही कि “कहो तो मैं ले आउं”. तब, सामान्यतया लोग वाको संग करनो बुरो मानते हते पर, गदाधरदासने वो महाप्रभुकी पॉलिसी एडॉप्ट करके “गदाधरदास कहे ‘ले आओ’.” देखो भावप्रकाशकार केह रहे है के “कहो तो मैं लाउं” ऐसे माधोदासने कयों कही. तो माधोदासके भीतरको भाव ये है के मैंने तो घरमें वेश्या रखी है अब मेरो शाक चलतो होय तो लाउं, उनने तो अपनी बात

साफ कर दी. और “गदाधरदासके हृदयमें दोषदृष्टि नहीं आचार्यजीको संबंध जानत है.” उनकी एक ही दृष्टि है के ये माधोदास वेश्या रख रह्यो है के नहीं रख रह्यो है वासु मेरे क्या मतलब ? महाप्रभुको सेवक है के नहीं मोकु वासु मतलब है. तो वो गुणदृष्टिसु उनने कही के “ले आओ” और वो ले आये बथुवाकी भाजी. तब गदाधरदास प्रसन्न ढ़ैके केह “बेगी संवारी देयो”. यामें यह जताये के “प्रीतिसु लाये तो संवारवेकी मुख्य सेवा हुं दिये तामें जताये के सेवा प्रीतिसु करें. जैसे हुं हों ताके हाथको ठाकुरजी प्रीतिसु अंगीकार करें”. क्योंकि ये सब जो मर्यादाके नियम है वो तो मनुष्यके लिये सच्चे है पर प्रभुके लिये तो सभी समान है. तो प्रभुके लिये ये नियम सच्चे नहीं है, प्रभुपे अपनू ऐसे नियम नहीं लागु कर सकें के तुम पापीको अंगीकार नहीं कर सको हो. तुम पुण्यात्माको ही अंगीकार करो.

रविन्द्रबाबुकी अकसर मैं कविता पसंद करूं हुं. रविन्द्रबाबु वामें केह है के “मोकु रातकु तेरी बंसीके सुर सुनाई दिये और उन बंसीके सुरनकी दिशामें चलते - चलते तेरे द्वार तक पहुंच गयो अंधेरामें, उजाला नहीं हतो रस्तामें. जब द्वार तक पहुंच्यो तो वहां बड़े - बड़े ज्ञानी और तपस्वी सब बैठे भये हते. उनने कही “तुम कैसे आये”? तो रविन्द्रबाबुने कही के “मोकु तो पता भी नहीं चलयो के मैं कौनसे रस्तासु आयो ! रस्तासु आयो के बंजर भूमिसु आयो ये भी मोकु पता नहीं है. क्योंकि मैं तो बस एक धुन लेके आयो के बंसीकी आवाज जहांसु आ रही है वा दिशामें मेरे चलनो है वा दिशासु मैं यहां पहुंच गयो. अब रस्तासु आयो के बिना रस्ताके आयो ये भी मोकु पता नहीं है”. तो ज्ञानी, तपस्वीनने कही के “हम यहां रस्तासु चलके आये है तब अभी दरवाजा नहीं खुल्यो है तो तुमकु तो पता भी नहीं है के तुम कैसे चलके आये तो तुम्हारे लिये कहां दरवाजा खुलेगो !” और रविन्द्रबाबु वामें बहोत अच्छी बात केह है के “तब तेने दरवाजा खोल्यो, तेने मोकु अंदर खींच्यो और ज्ञानी लोग हल्ला मचाते रेह गये के ‘महाराज ये अंधेरामेंसु भटकतो भयो आयो है याकु अंदर मत लो, याकु अंदर मत लो’ पर तेने हाथ खींचके मोकु अंदर बुला लियो”.

ये जो रहस्य है वो प्रभुके लिये सब समान है; ये जो मर्यादाके, अच्छे - बुरेके पाप - पुण्यके सुख - दुःखके सुन्दर - असुन्दरके पवित्र - अपवित्रके, नियम

है वो प्रभुपे लागु नहीं हो रहे है वो अपनेपे लागु हो रहे है. अपनू कैसे चतुर है के अपनेपे लागु नहीं है करके प्रभुपे लागु कर दें. जैसे अक्सर अपने पुष्टिमार्गको सारो कबाड़ा यालिये भयो के आचारके नियम जो अपनेकु पालने चाहिते हते वामें अपने तो छूट ले ली के “काइ करां कलयुग है चाले” ठाकुरजीपे सब नियम लागु हो जावे. ठाकुरजीकु कुछ भी नहीं चले. अरे भाई, ठाकुरजीकु क्यों नहीं चले ! ठाकुरजी तो नंद - गोपके यहां प्रकटे. ग्वालनके यहां कितनी अपरस होवे आज भी जाके देख लो. अपनूकु तो पालनी नहीं है और ठाकुरजीपे लागु कर दें के नलको जल है तो झारी नहीं भरी जा सके और ढीकडो है तो ये नहीं हो सके, पूछडो है तो ये नहीं हो सके. अरे भाई ! वो सब नियम तुम्हारे लिये हते, तुम तो पाल नहीं रहे हो और ठाकुरजीपे वाकु लागु कर दे रहे हो. तो ये खोटी पद्धति है.

यालिये ठाकुरजी प्रसन्न हो रहे है भावसु, या मर्यादासु नहीं. और गदाधरदासने माधवदासके हृदयमें वो भाव देख्यो के याकु प्रभुमें तो भाव है. प्रभुके भावके कारण वाको जो दुष्कर्म है वो सत्कर्म नहीं हो जा रह्यो है पर वा दुष्कर्मके कारण वाको प्रभुको भाव खंडित हो रह्यो है वो भी नहीं है. वो ही उत्सर्ग - अपवाद वालो नियम है. वाके तहत उनने ठाकुरजीकी मुख्य सेवा भी दी. “पाछे सामग्री सिद्ध करी श्रीठाकुरजीकु भोग धरे समय भये भोग सराये अनोसर करे वैष्णवनुं महाप्रसाद लिवायो पातरि धरे तब सब वैष्णव महाप्रसाद ले साग बखान्यो. तब गदाधरदास परोसत माधोदास पास आये और प्रसन्न होयेके माधोदाससों केह ‘जो तिहारो लायो साग ठाकुरजीने आरोग्यो.’” माधोदास अपवित्र है हों ! या बातको मत भूल्यो पर वाको लायो भयो साग ठाकुरजीने आरोग्यो. “तातें तोकु हरिभक्ति दृढ होउ या आशीर्वाद दिये, यामें यह जताये जो रंच सेवा सागकी माधोदास दीनतासु किये तातें श्रीठाकुरजी प्रीतिसु आरोगे. यह तब जानिये जो वैष्णव प्रसाद ले सराहना करें तब दोउ सेवा सिद्ध होय. भगवदीय समान उद्धार कोउ नाहीं जो रंच सागकी सेवा किये जन्म - जन्मको संसार मिटायो, हरिभक्ति कर दिये, ऐसे गदाधरदास भगवदीय है.” तो उनने ये आशीर्वाद दियो के तुमकु हरिभक्ति दृढ होय. अब अपनू देखें है माधोदासकी वार्तामें के अन्तमें माधोदासने वा वेश्याकु छोड़के और भगवद्भक्तिमें एकदम बहोत ही तल्लीन - तन्मय हो गये.

तो ये वार्तामें अपन् देख सके है के यामें तनुजा गदाधरदासकी है वित्तजा माधोदासकी है. अब झंडा लेके दौड़ो के गदाधरदासने वाको लियो भयो धर्यो हतो तो हम क्यों नहीं धर सकें ? तो फिर ऐसे तो कहां - कहां झंडा लेके नहीं दौड़्यो जा सकेंगे ! अब जितने जमाईके तुमने एक बखत पैर पूजे, तो ३६५दिन पैर पूजो. क्यों जब कन्यादान देते भये तुमने जमाईके पैर धोये के नहीं धोये ! रोज धो. कोई धोयेगो ? कोई नहीं धोयेगो. तो या बातके रहस्यकु समझे बिना लोग झंडा उठाके दौड़ें. उन लोगनकुं मूलमें क्या है के न तो उत्सर्गको ज्ञान है न अपवादको ज्ञान है न प्रतिप्रसवको ज्ञान है. ये वा उत्सर्गको अपवाद भयो. ये अपवाद अपन् देख सके है कि **भक्तिके आवेशमें भयो है सेवाके लिये नहीं भयो है.** भक्तिको आवेश क्या के वैष्णवन्कुं प्रसाद लेवे बुलाये हते वामें सामग्री घटी वामें माधोदासने कही के मैं ला दुं. वो धराके और वैष्णवन्कुं खवाई. खुदके खावेके लिये उनने कुछ सामग्री मंगाई नहीं थी. फिरतो जो वेश्याके साथ घरमें रहवेवालेकी हरिभक्ति दृढ़ होवे. कोईके यहां वित्तजा सेवा कर देवे मात्रसू ऐसे भी सिद्धान्त गले पड़ेगा !

महाप्रभुकी वार्तामें भी याको प्रसंग आयो है के जो सोनेकी कटोरी हती वो गिरवी धरके ठाकुरजीकु भोग तो धर्यो पर वाको प्रसाद खुद महाप्रभुने नहीं लियो गायनकुं खवायो. ऐसे ही उनने वैष्णवन्कुं प्रसाद लेवेके लिये बुलाये हते वामें जो सामग्री घट गयी वामें माधोदास जो सामग्री लाये वो अपने ठाकुरजीकु भोग धरके और पाछे वैष्णवन्कुं प्रसाद लिवा दियो. वो खुदकु खावेकी या जीभके चटकारासु उनने मंगायो नहीं हतो. तो वा जनरल् फ्रेममें देखोगे तो तनुवित्तजाको नियम पाल्यो है पर वाके स्थूल रूपमें देखोगे तो तनुवित्तजाको यहां अपवाद स्पष्टतया दिखलायी दे रह्यो है.

और वामें सिर्फ तनुवित्तजाके नियमको ही अपवाद नहीं दिखलायी दे रह्यो है मर्यादाके एक नियमको अपवाद दिखलाई दे रह्यो है. जैसे दुर्वृत्तिसु जीते होय उनको द्रव्य लेवेकी शास्त्रमें स्पष्ट मनाई है, कमसु कम ब्राह्मणकु. कयी लोग या बातके रहस्यकु समझे नहीं. वैसे ब्राह्मण अब नहीं बचे वो कथा दूसरी है पर शास्त्रके हिसाबसु ब्राह्मणके छः कर्म गिनाये है. **“षट्कर्म निरतो ब्राह्मणः”**

कह्यो जातो : अध्ययन - अध्यापन यजन - याजन दान - प्रतिग्रह, ये छः कर्म करे वो ब्राह्मण केहवावे. अध्ययन - अध्यापन = शास्त्र खुद पढ़ें, शास्त्र दूसरेकु पढ़ावें. यजन खुद करें, याजन दूसरेकु करावें. और खुद दान दें और दूसरो कोई दान देतो होवे तो लेवे भी. ये छः कर्मसु ब्राह्मण, ब्राह्मण केहवावे. इन छः कर्मनसु जो च्युत भयो वाके ब्राह्मणत्वमें कमी आनी शुरू भयी. इन छः कर्मनमें ध्यानसु देखोगे तो पता चलेगो के यजन अध्ययन और दान ब्राह्मणको धर्म है. यजन यानि देवपूजन, यज्ञ करनो, वेदको - शास्त्रको अध्ययन करनो और दान देनो ये ब्राह्मणको धर्म है. आजकी तारीखमें ब्राह्मण दान दे वो तो लोगनकुं कल्पना ही नहीं आवे. ब्राह्मणको मतलब ही लोग ये समझे के जो लाओ - लाओ करे. दानकी कल्चर ही ब्राह्मणमेंसु गायब हो गयी ! देवेवालो ब्राह्मण नहीं, देवेवालो बनीया और लेवेवालो ब्राह्मण ऐसे लोगनके मनमें हो गयो है. शास्त्र ऐसे नहीं माने है शास्त्रको स्पष्ट मतलब है के दान देवे भी और दान लेवे भी.

असत् प्रतिग्रह नहीं करनो वो एक प्राचीन ब्राह्मणके नियममें शामिल बात हती. याजन और अध्यापन की दक्षिणा ब्राह्मणकी स्वस्थ आजीविका है. पर प्रतिग्रह जब कर रहे हो तब जासु प्रतिग्रह कर रहे हो वाने सत्त्वृत्तिसु कमायो है के असत्त्वृत्तिसु कमायो है या बातकी सावधानी बरतनी ब्राह्मणके लिये बहोत अनिवार्य हती. पर वो यहां गदाधरदासजीने तोड़ी है ये अपन् देख सके हैं. वो नियम नहीं तोड़्यो है पर नियमको एक अपवाद बतायो है और वाको मुख्य कारण उनकी खुदकी स्वार्थवृत्ति नहीं है. मुख्य कारण ये है के वैष्णवन्कुं प्रसाद लेवानो है, खुदकु तो खानो नहीं है. माधोदासजी केह रह्यो है के “ला रह्यो हुं” तो लाके और खवा दियो. तो एक एगलसु देखो तो तनुवित्तजाकु और असत्प्रतिग्रहकु नहीं करवेको नियम तोड़्यो पर अपवादके एगलसु देखो तो उनने बड़ी खुबसूरतीसु वा नियमकु पाल्यो भी है ये बात समझमें आयेगी.

तीसरो प्रसंग : “और एक दिन गांवके बाहिर बनजारा आइ उतर्यो. ताकु बैल चहिये. सो गाममें आई दस - पंद्रह गदाधरदासके सगे ब्राह्मण बैठे हते, सो गदाधरदासकी ईर्षा करते जो भगत भयो है, सो बनजारोने उन ब्राह्मणसों पूछ्यो ‘हमको बैल मोलको लेवेसों कहां मिलेंगे ?’ तब उन ब्राह्मणनने कही गदाधर भगत है उनके यहां जितने चहिये तितने लेहु. परन्तु

यों तो वे न देंगे. उनके पास रुपैया दे आवो. कहियो, हमको जहांसो चाहो तहांसो मंगवाई देहु. पाछे दूसरे दिन जइयो. तब बैल तुमकों मिलेंगे. तब बनजारा सो रुपैया ले गदाधरदासके पास गयो. कह्यो, ‘हमकों बैल लेने हैं. सो तुम मंगाइ देहु.’ तब गदाधरदासने कही ‘बाबा, हमारे बैल कहां ? गांवमें पूछो, हमतो जातन नाही.’ तब बनजारने सो रुपैया गदाधरदासके आगे धरी दिये. उठी चल्यो, कह्यो, ‘काल्हि बैल लेन आऊंगो. मोसों गांवके लोगन्ने या भांति बताए हैं.’ तब गदाधरदासने जानी जो हमारी जातिके ने याको बहकायो होयेगो. तब गदाधरदासने कही ‘काल्हि मध्याह्न समे तो न देखोगे.’ तोऊ बनजारा प्रसन्न होईके केह, ‘जो आछो, यह रुपैया राखो.’ पाछे १००रुपैयाकी सामग्री मंगाये. सगरे पाक सिद्ध करि दूसरे दिन भोग धरे. फेरि सगरे वैष्णवन्कुं परोसत हते मध्याह्न समे तब बंजारा आयो. तब गदाधरदासने कही ‘भले समय आयो. ए सब ठाकुरजीके बैल है. यामें बछरा हु है. तरुन हु है. जैसे चाहिये तैसे देखि लेहु.’”

अब ये बात देखो के या तरीकेके बेचारे ब्राह्मणपे ईर्षा होनी स्वाभाविक है करके दूसरे सब गांववाले उनसु ईर्षा करते, और उनने बंजाराकु चढ़ायो के ये बैल बेचे है, सो तुम १००रुपिया वहां जाके धरी आओ. और वो ना पाड़े तो भी धरी आइयो और कहियो के नहीं नहीं तुम ही हमकु बैल लाके दो. अब गदाधरदासजीको पता पड़ गई के बंजाराकु क्या खबर के मैं बैल बेचु हुं के नहीं बेचु हुं. पर गांववालेनूने मोकु फसावेके लिये चढ़ायो है. अब, क्योंकि, गामकु तो सुधार्यो नहीं जा सके पर बंजाराकु कमसु कम सुधार्यो जा सके करके उनने वो १००रुपियाको पाछो वैष्णवन्कुं प्रसाद लिवा दियो. जब प्रसाद ले रहे हते और बंजाराने आके पूछी के कहां है बैल ? तो उनने कही ये जितने वैष्णव हैं सब बैल हैं. देखो ये सब घास चर रहे हैं तुम्हारे १००रुपियाको. वो लोग भी तूफान कर रहे हैं इनने भी एक तूफान कर दियो. गांव सुधरे के नहीं सुधरे पर बंजारा सुधर गयो. वाकु पता चल गई के इनकु फसावेके लिये जानकरके गांववालेनूने ऐसो कियो. और इनने वा मजाकके ऊपर एक दूसरी काउन्टर् मजाक ऐसी कर दी.

पर एक बात ध्यानसू समझो के बैल अपने यहां धर्मको प्रतीक मान्यो जावे है. धर्मको स्वरूप मान्यो जावे है. अब जब बैल चाहिये है तो बैलकु घास तो

खवानो पड़ेगो ! तो वैष्णवन्कुं प्रसाद लेवायो. उनने बैलके रूपमें दिखा दियो और बंजाराकी बुद्धि सुधर गई और वो पाछो वैष्णव भयो. यहां भी पाछो उत्सर्गको अपवाद ही दिख रह्यो है. देखो, माधोदासने तो स्वेच्छया बथुवाकी भाजी लायो है. बंजाराने तो स्वेच्छया लायो नहीं है बैलके लिये लायो है पर गदाधरदासजी भी क्या कर सकें. ये कोई बैल बेचवेको धंधा तो करे नहीं है. जबरदस्ती माथेपे १००रुपैया धरके जावे तो क्या करनो ! उनने कही फिर ये कयों जा सके. या करके उनने खुदके खावेके लिये १००रुपैया नहीं वापरे पर वैष्णवकु प्रसाद लिवावेके लिये. उनकु ये एक ही नियम हतो के अपनी जो ठाकुरजीकी सेवा है वो मेक्सिमम् मानसीरूपसु करते हते पर ठाकुरजीकी तरफसु जो भी समाधान करते हते वो सब वैष्णवन्कुं करते हते. उनने याकु एक यद्दृच्छा मानी. ‘यद्दृच्छा’ माने अकस्मात्. तो अकस्मात् १००रुपिया आये तो उनने कही “‘खवावो बैष्णवन्कुं.’” वो उनने खवा दिये. या तरहसु ये भी एक अपवादकी कथा है उत्सर्गकी कथा नहीं है. और इन कथानसु तनुवित्तजाको सिद्धान्त खंडित नहीं हो रह्यो है पर गदाधरदासजीकी वार्तासु तनुवित्तजाको सिद्धान्त मंडित हो रह्यो है. कौनसे अर्थमें के उनने स्वार्थ उपभोगके लिये दूसरेके पैसा ठाकुरजीकी सेवामें नहीं वापरे पर भक्तिके आवेशमें उनने दूसरेके पैसासु भी ठाकुरजीकी सेवा करी और वो दूसरेनकुं खवा दियो.

ये आखो या वार्ताको स्वारस्य है या रहस्यकु समझोगे तो “‘कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता. चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा. ततः संसार – दुःखस्य निर्वृतिर्ब्रह्मबोधनम्’” (सि.मु.२-३), ये महाप्रभुको उपदेश सरलतासु समझमें आयेगो.

आज या वार्ताकु महाप्रभुकी कृपासु उपसंहार हम कर सके. यद्यपि वचनामृत करनो चाहितो हतो पर ये वार्ता भी आपकु समझवेमें काम आयेगी क्योंकि या तरीकेकी वार्ता अक्सर लोग सिद्धान्तके विरोधमें क्वोट करते रहें. तो ये सिद्धान्तको विरोध नहीं है ये नियम उत्सर्ग अपवाद की वार्ता है. वा रहस्यकु समझोगे तो फिर कभी आपकु घबराहट नहीं होयेगी के अब ये वार्ता आ गई तो हम क्या करें. वालिये या वार्ताकु सच्चे लाइटमें समझनो जरूरी है.

महाप्रभु अपनेकु सामर्थ्य दें के उनके सिद्धान्तनुकुं अपन् समझके और पुष्टिभक्तिके मार्गपे अपने पुष्टिप्रभुको रिझा सकें वालिये उन आचार्यचरणके आश्रयको पद गाके या बखतको प्रसंग यहां सम्पूर्ण करें.

दृढ़ इन चरणन केरो भरोसो ॥

श्रीवल्लभनखचन्द्रछटा बिन सब जग मांझ अन्धेरो ॥१॥

साधन और नहीं या कलिमें जासों होत निवेरो ॥

सूर कहा केह द्विविध आंधरो बिना मोलको चेरो ॥२॥

महावनकी क्षत्राणीकी वार्ता (विरुद्धधर्माश्रयतामें अविरोधी समन्वित सिद्धान्त)

अथवा

(स्मरणभक्तिसू कृष्णभक्ति)

(उपक्रम-षोडशग्रन्थप्रकरणमें आते उपदेश और वार्ताप्रकरणमें आते उपदेशको भेद)

षोडशग्रन्थके भी बहोत सारे उपदेश याही ढंगके हैं. महाप्रभुके सेवकनुकुं पुष्टिमार्गपे चलवेमें जो भी कुछ कठिनाई हती वो उनने महाप्रभुजीके सामने प्रकट करी और समाधानरूप महाप्रभुजीने षोडशग्रन्थ कहे हैं. जो समझवेकी या पालवेकी कठिनाई हती वो वार्तानुमें सबको उल्लेख आवे हैं. षोडशग्रन्थके जितने भी उपदेश हैं वो प्रकरणात्मक उपदेश हैं और यहां वचनामृतमें जो उपदेश हैं वो प्रकरणात्मक नहीं होके माने उपदेशके प्रकरणात्मक नहीं होके वार्ताके प्रकरणात्मक हैं. प्रकरणको सामान्य मतलब अपन् चेप्टर समझे. यहां प्रकरणको मतलब चेप्टर नहीं. आजकी तारीखमें 'शोर्ट एसे' (निबन्ध) केह. एक कोई घटनाके प्रकरणकु लेके अपन् एक बात उद्गारके रूपमें केह तो ऐसी घटनाके प्रकरणमें कह्यो गयो उपदेश प्रकरणरूप नहीं होवे, पर वार्तामें जो प्रकरण बन्यो है वा प्रकरणके अन्तर्गत प्रकट किये गये आपके एक दो या बहोत वाक्यके उपदेश है. उपदेशमें वर्णित जो सिद्धान्त है वो प्रकरण नहीं है पर वार्ताके प्रकरणमें आते उपदेश हैं.

ये जो क्षत्राणीकी वार्ता है-वाको प्रकरण बहोत ही विचारणीय है. कैसे? वार्ताको ये प्रकरण बन रह्यो है वामें क्षत्राणीकी आचार्यके उपदेशमें निष्ठा हैं या स्वरूपमें निष्ठा

(धर्मनिष्ठा धर्मनिष्ठा को भेद)

जब अपन् यों केह हैं के आचार्यके उपदेशमें निष्ठा या स्वरूपमें निष्ठा? या निष्ठाको भेद है या दोनोमें अधिकारको भेद हो रह्यो हैं? जैसे अपन् यों समझे के आचार्यचरण भगवन्मार्गके उपदेशक हैं, तो उत्सर्गके ढंगसु भगवन्मार्गके उपदेशक आचार्यके उपदेशमें अपनी श्रद्धा अधिक होनी चाहिये बजाय उपदेशकमें. जैसे संगीतकारके संगीतमें अपनी ज्यादा पसंदगी होनी चाहिये बजाय संगीतकारके.

जैसे चित्रकार या संगीतकार के दोनो पहेलु हैं ऐसे कोई उपदेशक है तो वाके भी दो पहेलु हैं. एक वाको स्वरूप उपदेशक होवेको है और दूसरो वाके व्यक्तिको स्वरूप है. अपनी वामें कौनसी तरफ झोंक ज्यादा है? यदि अपनी झोंक वाके व्यक्तिके तरफ है, जैसे कोई बड़ो डॉक्टर वकील होवे वाके घर-परिवारके लोगनकुं निस्बत वाके कामसु नहीं होवे, पर वा व्यक्तिसु निस्बत होवे है. ये स्वरूपनिष्ठा है. यदि व्यक्तिनिष्ठा नहीं होके वाके कार्यमें निष्ठा होवे, जैसे चित्रकारी वकालत चिकित्सा या उपदेश में निष्ठा होवे तो वाको अपने यहां ‘धर्मनिष्ठा’ कही जावे. ‘धर्मनिष्ठा’ नहीं कही जावे.

तो ये वातार्किक प्रकरणमें जो द्वंद्व पैदा भयो है के आचार्यके स्वरूपमें धर्मनिष्ठा प्रमुख है या धर्मनिष्ठा प्रमुख है यदि आचार्यके व्यक्तित्वसु कोई निस्बत रख रह्यो है, उपदेशसु निस्बत नहीं रख रह्यो है तो वामें अपन् यों केहंगे के वाकी धर्मनिष्ठा ज्यादा है. और व्यक्तित्वसु निस्बत नहीं है और वाके उपदेश या कार्य सु निस्बत है तो वो ‘धर्मनिष्ठा’ है. केहवेके लिये दो विभाग बन जावे धर्मको और धर्मीको. पर वाको कोई जुड़वेको भी पोईन्ट है. व्यक्ति कभी निर्धर्मक होवे नहीं. व्यक्ति है तो वामें कोई न कोई धर्म तो होवेगो. ‘धर्म’ याने गुण-अवगुण. जब भी गुण या गुणधर्म केह रहे है तो कोई न कोई व्यक्तिको ही होवेगो. तो या विभागमें वोटराइट् कम्पार्टमेन्ट नहीं होवे है. हर गुणधर्म धर्मी बन सके है और हर धर्मी गुणधर्म बन सके है. व्यक्तिकी अपनी अपनी रुझानके कारण फरक आतो होवे है.

जैसे अपन् यों समझ सके के अपनेकु फूल पसंद है के सुगंध पसंद है यामें यदि फूल पसंद है और सुगंध पसंद नहीं है तो प्लास्टिकके फूल बनाके अपने घरके फूलके गुलदस्तामें सजा सके. जाकु फूलको रंग आकृति रूपसौंदर्य पसंद है वाकु गंधसु निस्बत नहीं है. कोईकु गंध पसंद है तो जरूरी नहीं है के वो फूल लावे. वो अत्तर पाउडर् सेन्ट ला सके है और वाकु बिना फूलके सुगंध मिल सके है. यहां अपनेकु धर्मी-धर्ममें बटवारा दीख सके है. यामें अपनी आवश्यकताके हिसाबसु अपनी निष्ठा निभा सके.

(प्रभुके सत् चित् आनन्द रूप धर्मन्सु कर्म ज्ञान भक्ति मार्ग होवे है. प्रभु स्वयं शरणागतिको मार्ग बने है)

पर जब भी सवाल प्रभुको आवे तो महाप्रभुजीने या बारेमें जो वैचारिक संघर्ष प्रकट कियो है के ब्रह्मकु वाके गुणधर्म रहित मत देखियो. और ब्रह्मके गुणधर्मन्कुं या तरहसु मत चाहो के तुम धर्मीकु भूल जाओ. जैसे ब्रह्मकु अपन् सच्चिदानन्द केह तो ब्रह्मके सदंशसु कर्ममार्ग प्रकट होवे है. चिदंशसु ज्ञानमार्ग प्रकट होवे है और आनन्दांशसु भक्तिमार्ग प्रकट होवे है. यामें सत् चित् और आनन्द भगवान्के धर्म तरीके ट्रीट् करके अपन् मार्ग लेवे हैं. जब अपन् भगवान्के धर्मन्को आश्रय करेंगे तो ये तीन मार्ग है. और यदि अपन् धर्माश्रय नहीं कर पा रहे है वा स्थितिमें धर्मीको आश्रय लेनो वो शरणागति हो गयी. जाकी भगवान्ने गीतामें आज्ञा करी है **“सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः”** (भग.गीता.१८।६६)माने मेरे धर्मके सहारे तु यदि अपने आपको ढाल नहीं सकतो होय तो तु मेरेपे छोड़ दे, जैसे तोकु ढलनो होवे वैसे ढालुंगो. या एनाल्सु देखे तो शरणागतिको मार्ग धर्मिमार्ग है. कर्म ज्ञान भक्ति धर्ममार्ग है. क्योंकि भगवान्के कोई एक-एक धर्मकु लेके चल रहे है.

(संयोजित वियोजित होवे है. सहजसिद्ध वियोजित नहीं होवे)

पर जा तरहको बटवारा अपन् लौकिक वस्तुन्में धर्म-धर्मीको करे हैं वा तरहसु बटवारा यदि अपन् भगवान्में करें तो अपन् भगवान्के साथ अन्याय या अपराध करे है. क्योंकि कुछ गुणधर्म फेसवेल्त्युपे ऐसे होवे (सच्चाईसु नहीं) के धर्मीसु छूटे रेह सकते होवे. कुछ धर्मी भी ऐसे होवे हैं के अपने गुणधर्मन्कुं प्रकट किये बिना भी दीख पाते होंय पर यहां धर्म धर्मी अन्योन्यात्मक है. धर्म कभी धर्मीसु अलग नहीं होवेगो और धर्मी कभी धर्मसु रहित नहीं होयगो. फूल और सुगंधमें, जैसे धर्म और धर्मी कु अलग करके देख सकें. वामें जैसे फूल अपनी आकृतिसु अपनी आवश्यकता पूरी कर सकें. पर वाको कारण ये है के फूलकी आकृति और वाके गुणधर्म फूलमें संयोजितरूपसु होवे है. जो संयोजित होवे है वाकु वियोजित कियो जा सके है. जो संयोजित नहीं होवे, सहज सिद्ध होवे वाकु वियोजित नहीं करी जा सके.

(वर्चुअल् रियालिटी और ओब्जेक्टिव् रियालिटी को भेद)

जैसे कम्प्यूटरमें वर्चुअल् रियालिटीको कन्सेप्ट होवे है.अब वर्चुअल् रियालिटी और ओब्जेक्टिव् रियालिटी में अन्तर क्या? जैसे अपनने या रूमको चित्र लियो. वामें आगेको भाग दीखेगो परन्तु साईडको दरवाजा या गोखला दीखे नहीं है. वामें जो साईडको भाग या गोखला नहीं दीखे वो वर्चुअल् रियालिटी नहीं है. 'वर्चु' याने 'गुण'. गुण कुछ ओर तरहके है और चित्रमें वाको प्रस्तुतीकरण ओर ढंगसु है. कम्प्यूटर दरवाजा और गोखला कु दीखा सके है. वा स्थितिमें कम्प्यूटरको चित्र वर्चुअल् रियालिटी हो जावेगो. माने चित्र जाको है वामें जो जो वर्चु है उन सारे वर्चुकु रिप्रोड्युस् कियो जा सके है. जैसे व्यक्तिकी आवाज़ आकृति क्रिया वर्चुअल् रियालिटीमें दीख सकें हैं. याकु अपन् ऐसे केह सकें के हकीकतको डिजिटल् क्लोनिंग् भयो. ऐसी रियालिटीकु 'वर्चुअल् रियालिटी' केहं. यों वर्चुअल् रियालिटी और ओब्जेक्टिव् रियालिटी जो हैं वामें भेद आवे हैं. यदि दोनो रियालिटी समान जाति होवें, तो अपन् कम्प्युज हो जावें के अपन् ओब्जेक्टिव् रियालिटीसु बात कर रहें हैं या वर्चुअल् रियालिटीसु. जैसे विडियोफोनमें अपन् देख सके और सुन भी सके पर वो वर्चुअल् रियालिटी है ओब्जेक्टिव् नहीं. हर बखत या तरीकेको भेद वर्चु (गुणधर्म) और वस्तु (धर्मी)में भेद पाड़ सके है.

ब्रह्ममें भेद नहीं पाड़्यो जा सके ऐसो नहीं है. ब्रह्ममें भी भेद पाड़्यो जा सके है. ब्रह्मने अपनी सृष्टि पैदा करी है वो एक तरहसु वर्चुअल् रियालिटीके जैसी प्रकट करी है वामें ब्राह्मिक रियालिटी नहीं होके वर्चुअल् रियालिटी है. अपन् सभी ब्रह्मकी वर्चुअल् रियालिटी हैं. क्योंकि ब्रह्म सच्चिदानन्द है मतलब वो है, वाकु होवेको भान है और वा अपने होवेके भानमें आत्मरति या आत्मानन्द भी प्रकट हो रह्यो है. अपन् भी हैं, अपनेकु होवेको भान है वामें अपनी आत्मरति या आत्मानन्द को भान हो रह्यो है. अपन् ब्रह्मसु प्रकट भये तो ब्रह्मकी वर्चुअल् रियालिटी भये के नहीं ब्रह्मके लिये यों कह्यो जाय-जड़ ब्रह्मके चिदंशको शरीर है और चित् ब्रह्मके आनन्दांशको शरीर है. अपने सन्दर्भमें भी ये ही कह्यो जावे के सबसु भीतर अन्तर्यामी है वो जीवात्माके भीतर है. जीवात्मा (शरीर)शरीरात्माके भीतर है.

(अपनी वर्चुअल् रियालिटी ब्राह्मिकद्रव्यसु बनी भयी है)

वो जो मॉडेल है तो अपनेकु लगे के अपन् भी ब्रह्मकी वर्चुअल् रियालिटी है. पर वर्चुअल् रियालिटी होवेके बावजूद ब्राह्मिक क्रियेशन और अपने डिजिटल् (कम्प्यूटर) क्रियेशन में कुछ मूलभूत भेद आ रह्यो है. बहारको जो फूल या व्यक्ति है वो बायोलोजीको कन्स्ट्रक्शन है. वा तरीकेको जो डिजिटल् कन्स्ट्रक्शन है वो द्रव्यको बन्यो भयो नहीं है. दूसरे द्रव्यको बन्यो है. पर ब्रह्म जा द्रव्यको बन्यो है अपन् वाहीके बने हैं. वा स्थितिकु अपन् चक् करे तो कम्प्यूटरमें वर्चुअल् रियालिटीको जो प्रस्तुतीकरण है और अपनी वर्चुअल् रियालिटीके बीच कन्स्ट्रक्शनमें थोड़ो नहीं परन्तु बहोत बड़ो डिफरन्स है. या लिये ब्रह्मके जो गुणधर्म हैं अपन् वर्चुअल् रियालिटीकी तरह कहीं प्रकट कर सकें हैं. पर जब भी अपन् प्रकट करवे जावेंगे वा बखत ब्रह्मको ही द्रव्य वापरनो पड़ेगो. ये ब्रह्मके बारेमें अपनी एक लाचारी है. जैसे असुरनकी कथा पुराणमें पढ़े तो अपन् देख सकें के उनकी असाधारण पराक्रमी ताकत, जो वीर्यसामर्थ्य हती वो ओलमोस्ट भगवान्के जैसी सामर्थ्य हती. उनकी सामर्थ्य भगवान्की वर्चुअल् रियालिटी हती. पर वाको द्रव्य ब्रह्मको हतो. वो बात अपनने स्थानलीला पोषणलीला के अन्तर्गत देखी. वो ब्रह्मके ही बने भये रूप हते. अपने यहां न शैतान है न माया है. यदि शैतानियत प्रकट हो रही है तो ब्राह्मिकद्रव्यसु ही बनी है. द्रव्य तो ब्रह्मको ही है.

(प्रभुकी समग्रताको स्वीकार करके प्रभुकु एकरूपमें देखनो अपनी दीनता है)

अपने यहां यों कह्यो जावे के धर्म-धर्मीको प्रभेद समझनो अच्छी बात है. वामें अपन् ब्रह्मके जो गुणधर्मनकुं या धर्मीकु कोपुअप् कर सकें तो अपनेमें कोई तरहकी नास्तिकता या अनीश्वरता नहीं है क्योंकि सारे ब्रह्मकु तो मैं नहीं देख पा रह्यो हुं. जैसे अर्जुनके सामने भगवान् अनेक बाहु मुख अस्त्र धारण करके प्रकट भये और अर्जुनने भगवान्कुं कही “तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते” “इन सारे रूपनकुं देखवेके लिये मेरी आंखे अभ्यस्त नहीं है. मैंने तो जा रूपकु अभीतक देख्यो है वा रूपमें तोकु देखनो चाहु.” (भग.गीता.११।४६) जब या रूपमें अपन् ब्रह्मकु देखनो चाह रहे हैं तो अपनो

दैन्य प्रकट कर रहे है और वाके जा रूपकु देख नहीं पा रहे है वाके प्रति अनादरको या अस्वीकारको भाव प्रकट नहीं कर रहे हैं.

जैसे गंगा यमुना गोदावरी में स्नान करनो चाहे तो घाटपे ही स्नान करेंगे. जब घाटपे स्नान करेंगे तो क्या ऐसो केहंगे के घाटपे स्नान कर रहे है, गंगा या यमुना में नहीं स्नान करवेके लिये कोई एक घाट चूननो वामें कुछ गलत नहीं है, पर घाटके चूनवेके कारण वाकी समग्रताको इन्कार करनो वो वा नदीन्के अस्वीकारके बराबर हैं. वा बखत (अस्वीकारमें) आपके माथेपे घाट ही पड़ रह्यो है गंगास्नान नहीं. घाट सिलेक्शनमें गंगाकु आपत्ति नहीं हो सके, पर गंगाकी समग्रताकु इन्कारनो या अस्वीकारनो लफड़ा है. अपनी जो अपेक्षा/रुजान है वो समग्रताके बारे नहीं होके अंशके बारेमें है वामें कोई बूरी बात नहीं है. बहोत सारे फूल ऐसे होवें जामें चिंटीयां चोंटे जावे और बहोत सारे ऐसे होवें जामें चिंटीयां चोंटे नहीं. क्योंकि फूलन्में रही भयी मीठास चिंटीयां ले पावें, अपन् नहीं ले पावें. अपन् फूलन्की मीठास और फूल कु छूट्टो नहीं कर पावे, पर वो फूलन्में हैं करके शहदमें मीठास आवे है. ये मीठास अपन् नहीं ले सकें. मीठासकु निकालवेके लिये कुछ सोच-समझ चाहिये. गुणधर्मसु सम्पन्न जो व्यक्ति है वाके गुणधर्मकी मधुरता या महत्ता कु कोई व्यक्ति निकाल सके कोई नहीं निकाल सके. शहदवाली मधुरता अपनेकु अनुभव नहीं हो सकें. पर अपन् समझ तो सकें हैं के शहदकी मधुरताको सोर्स फूलमें है. अपन् नहीं समझ पावे वो अपनी असामर्थ्य है. फूलमेंसु परागको मधुमख्खी चयन करे है वामें मधुमख्खी शक्कर अपनी तरफसु मिलावे नहीं है वो तो मीठास फूलन्में हैं.

एक बात ध्यानसू समझो के फूलके परागमेंसु मधुमख्खी जो शहद लेवे है, वामें रही भयी मिठास मधुमख्खी बहारसु नहीं डाले है. शहदकु इकट्ठो करवेके कारण वामें मधुरता आ रही है. अपन् चाब रहे है करके अपन्कुं मधुरताको अनुभव नहीं होवे. इन दोनों बातन्कुं जा बखत अपन् चक् करे तब अपन्कुं पता चले के मिठास फूलन्में हैं, अपन् वाकु चखवेमें असमर्थ हैं. मधुमख्खी वाकु चखवेमें समर्थ है.

ऐसे ही भगवान्को कोई गुणधर्म चखवेमें अपन् असमर्थ है करके अपनी असामर्थ्यको दोष भगवान्पे तो न लगावें इतनी बात अपन् समझे तो यहां वार्ता-प्रकरणमें रही समस्याको समाधान आ जावे. हर व्यक्तिकी अपनी अपनी सामर्थ्यसु कौनसे गुणधर्मकु ग्रहण कर सके, पचा सके और वाकु शहद बना सके वो व्यक्तिके सामर्थ्यपे निर्भर होवे. फूलमें या फूलकी गंधमें कोई न्यूनता नहीं है. ये बात, जेसे भगवान्के बारेमें सत्य है, ऐसे भगवन्मार्गको उपदेश करवेवाले आचार्यके लिये भी सत्य है. कोईकु आचार्यके व्यक्तित्वमें ज्यादा आकर्षण है तो वाके उपदेशमें ग्रहण करवेकी क्षमता नहीं है. पर वो उन उपदेशन्कुं इन्कार नहीं करे हैं. उनकी समग्रताको अस्वीकार नहीं करे है.

वल्लभपंथी जैसे केह हैं के उपदेश हमारे लिये नहीं हैं. उपदेश तो कोई हीनाधिकारीके लिये है. हम तो आचार्यके स्वरूपके ही भक्त हैं क्योंकि हमारी धर्मनिष्ठा हैं. ऐसी सोच और प्रचार में वे लोग आचार्यचरणकी पीठमें खंजर भोंक देवें हैं. वे लोग भक्तिके मार्गपे आचार्यचरणकु पुलिस मानते तो उपदेशरूप सिद्धान्तन्को बेल्ट पहनते. उनकु आचार्यचरण दीखे नहीं करके उपदेशन्कुं नहीं माने. जैसे रास्तेमें यदि कार चलाते बखत पुलिस दीखे तो सीटबेल्ट बांधनो पड़े ऐसे आचार्यचरण दीखते और आचार्यचरणके उपदेशन्को भी स्वीकार करते तो आचार्यचरणके सिद्धान्तन्को बेल्ट बांधते.

ऐसे कोई कलाकारके घरके सम्बन्धन्कुं, वाकी कलासु सम्बन्ध नहीं होके व्यक्तिसु सम्बन्ध होवे और वे लोग कलासु ज्यादा व्यक्तिसम्बन्धकु ज्यादा माने तो वामें कोई बुरी बात नहीं है यदि वे लोग कलाकु और वाके गुणधर्मकु इन्कार नहीं करे तो यदि इन्कारे तो कलाकारकु निश्चितरूपसु ठेस पहोंचेगी. ऐसे महाप्रभुजीके उपदेशकु जो जुटलानो चाह रह्यो है वाकी ठेस महाप्रभुजीकु तो पहोंचेगी. पर, आचार्यचरणके स्वरूपमें निष्ठा रख रह्यो होवे और प्रभु जैसे केह है “सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज” ऐसे आचार्यचरणके उपदेश पालवेमें सामर्थ्य नहीं है फिर भी मेरे लिये आचार्यचरण सब कुछ है. अपन् उनकी पूर्णताको स्वीकार करके अपनी अपूर्णताको स्वीकार करे है वामें दोष नहीं है. जैसे दिया जलते ही पतंगियाको दीपको कितनो आकर्षण होवे के मरवे तक तैयार हो जावे तो क्या पतंगियाकु ही आकर्षण है अपन्कुं नहीं है? अपनेकु भी प्रकाशको

आकर्षण है, पर वा प्रकाशके स्वरूपके प्रति मनुष्य इतना आकर्षित नहीं होवे के वामें जाके जल मरे. प्रकाशसु लाभ लेना चाहे, अपनी जीवनदिशाको निर्देश चाहे है फिर भी प्रकाशमें जल मरनेकी पतंगियाके जैसी इच्छा नहीं रखे है. यामें समझवेकी बात ये है के यदि दीयाकी लाँ जली है और वाके कारण पतंगिया आ रह्यो है तो जहांसु पतंगिया आ रह्यो है वहां तक दीयाकी लाँको प्रकाश जा रह्यो तभी तो आ रह्यो है. यासु समझ सके के दीयाकी लाँको प्रकाश वाकी लाँ तक सीमित नहीं रहेके समग्र दिशामें जावे है. वो बात पतंगिया भी स्वीकार करे है, नहीं तो पहाँच कैसे सके

यासु अपन समझ सकें के प्रकाश और दीयाकी लाँ में इतना भेद मानना उचित नहीं है. यदि माने तो अपनी क्षुद्र समझ है ऐसे आचार्यचरणको व्यक्तित्व और वाके उपदेशमें भेद नहीं मानना चाहिये. अपन कैसे जुड़ पा रहे है वो अपनी क्षमताके ऊपर आधारित है. यदि ये नहीं समझे तो या वार्ताकी नायिका महावनकी क्षत्राणी, जाकु महाप्रभुजीके स्वरूपके प्रति इतना आकर्षण है, वाकु अपन अन्याय कर बैठेंगे. और महाप्रभुजीके प्रति भी अन्याय कर बैठेंगे. बिना समझे कई लोग ऐसे कहें के महाप्रभुजीने उनकी बातको समर्थन दियो पर ये बात गलत है क्योंकि आचार्यचरणने देख्यो के वो जितना स्वीकार सकती हती वाको स्वीकार करके अपना दैन्य प्रकट कियो है महाप्रभुजीके स्वरूपकी समग्रताको इन्कार नहीं कियो है.

(धर्म-धर्मी तादात्म्यभावकी वार्ता-प्रकरणमें संगति)

या वार्ताके प्रकरणमें सबसु पहले ये आयो के क्षत्राणीने आचार्यचरणके दर्शन करते ही ये भयो के इनकी शरणमें जानो चाहिये और वाने विनती करी. वाने ये कही “मेरे लौकिक प्रतिबन्धक छूटे.” आचार्यचरणने वाको नाम-निवेदन करायो. यासु अपनेकु अपनी छोटी समझ और उन दोनोन्की सच्ची समझको पता चलें.

नाम-निवेदन जब करायो तब ‘श्रीकृष्ण’नामवाले अष्टाक्षरको करायो के ‘वल्लभ’नामवाले अष्टाक्षरको करायो? आचार्यचरणकी समझ साफ हैं के यदि कोई जीव मेरी तरफ आ रह्यो है तो वाकु भगवान् तक पहाँचावेको मार्ग मैं बता

रह्यो हूं. करके महाप्रभुजीने नाम-निवेदन करायो. तब क्षत्राणीने कही “महाराज, अब मोकुं कहा आज्ञा है?” महाप्रभुजीने कही “भगवत्सेवा करो” महाप्रभुजीने भगवन्मार्गके उपदेशक होवेको रूप छोड़्यो नहीं है. भगवत्सेवा करो ऐसे कही, मेरी सेवा करो ऐसे नहीं कही. क्षत्राणीने भी ये कही के “लीलामें सदा आपकी ही सेवा करी हैं अरु आपने भगवत्सेवाकी कही. सो भगवत्सेवा तो बहोत लोग करत हैं परन्तु आपके चरणारविन्दकी सेवा बहोत दुर्लभ है सो मोकु साधनमें मति डारो. मोकु सदा अपनी सेवा देउ”.

वा क्षत्राणीको भाव ऐसो हतो के आपके उपदेशके कारण आप मोकु धर्ममार्गमें प्रवृत्त करना चाहो हो पर मैं धर्ममार्गमें प्रवृत्त होना चाहु हूं. वाकु लीलाले स्वरूपको माने मूलस्वरूपको ज्ञान है. लीलामें सेवा करती हती. जन्म लेवेके बाद आचार्यचरण केह रहे है के “भगवत्सेवा करो” तो क्षत्राणी केह रही है “भगवत्सेवा तो सभी करें हैं आप मोकुं आपुके संग रखियो” तब आचार्यचरणकु लग्यो के याकु ठाकुरजीमेंसु मीठास ग्रहण करवेकी क्षमतामें न्यूनता है. वो न्यूनताकु निवृत्त कैसे करनी? क्योंकि सेवामें जबरदस्ती करवेसु सेवाको स्वरूप ही नहीं निभे. और महाप्रभुजी केह है के तु मेरी सेवा करना चाहे है पर करेंगी कैसे? वार्तामें स्पष्ट है के “हमकों पृथ्वीपरिक्रमा करनी है ताते स्त्रीजनकों संग ठीक नाही.” ये सारी बातमें महाप्रभुजीने वाकी इच्छा पूरी नहीं करते भये धर्मिरूप प्रकट कियो है. इतनी बात नक्की है.

या वार्ताको सबसु मीठो पहेलु है, जापे लोगन्को ध्यान नही जावें. महाप्रभुजीके उपदेशके अनुसार सेवा करवेमें तत्पर नहीं होवेके बावजूद महाप्रभुजीके स्वरूपमें निष्ठा प्रकट करी. वाकु यमुनाजीमें स्नान करते चार स्वरूप मिलें. वाकी महाप्रभुमें स्वरूपनिष्ठा कितनी है वा चारों स्वरूपने कह्यो “हमकु तुम पधराके ले जाओ सेवा करवे.” तो वाने कही “पहेले महाप्रभुजीकु पूछी आउं. वो केहते होय तो पधरा जाउं.” जब वाने महाप्रभुजीकु पूछी “पधरा लाउं?” तो महाप्रभुने कही “अचूक पधरा ला”. महाप्रभुजीने पधराके वाकी सेवा करी है. यहां रीवर्सल् ओफ ओर्डर् हो गयो है. शिष्यके पधराये स्वरूपकी सेवा गुरु करे हैं. नोर्मलमें गुरुके पधराये स्वरूपकी सेवा शिष्य करे है. महाप्रभुजीने वाके पधराये स्वरूपकी सेवा खुदने करी. वैसे तो गज्जन धावनकु पधरा दिये हते पर,

महाप्रभुजी जीवनमें नवनीतप्रियाजीके आकर्षणसु कभी भी मुक्त नहीं हो पावे. यहां तक के श्रीनाथजीके प्रकट होवेके बावजूद भी महाप्रभुजीकु नवनीतप्रियाजीके प्रति आकर्षण इतना जबरदस्त रह्यो के गज्जनधावनकु पधरावेके बाद भी महाप्रभुजीकु खटक रही के नवनीतप्रियाजी तो मेरे घर बिराजने चाहिये. महाप्रभुजी यात्रामें हते वा बखत तो गृहसेवाको प्रकार नहीं हतो और ये बाई सेवा करवे तैयार नहीं हती लिहाजा नवनीतप्रियाजी गज्जनधावनके माथे पधार गये. वहां पधरावेके बाद भी महाप्रभुको ये खटका गयो नहीं के ये स्वरूप तो मेरे माथे पधारनो चाहिये. अन्तमें खुद नवनीतप्रियाजी गज्जनधावनके संग महाप्रभुजीके घर पधारे. और महाप्रभुजी नवनीतप्रियाजीकी सेवा करवे लगे. यामें जो रीवर्सल् है वो बहोत ही मीठो है. शिष्यके पधराये स्वरूपकी सेवा गुरु करे है. यासु समझ सके है के महाप्रभुजीने अपनी स्वरूपनिष्ठाके कारण क्षत्राणीकु क्या बात जता दी के तु मेरी स्वरूपनिष्ठाके कारण या स्वरूपकी सेवा नहीं कर रही है वा स्वरूपकी सेवा तो मैं करनो चाह रह्यो हूं. वा स्वरूपके आकर्षणसु मैं कभी मुक्त नहीं हो पाउंगो.

अब अपन् ऐसे विभाग करे के आचार्यचरणके उपदेशकी महत्ता नहीं स्वरूपकी महत्ता है, धर्मकी महत्ता नहीं है धर्मीकी महत्ता है तो वहां अपनी समझ कितनी खोटी है आचार्यचरण करनो क्या चाह रहे हैं और अपन् कैसे समझ रहे हैं ये एक प्राकरणिक अर्थ है, जो ध्यान देवे लायक है. और भी स्वरूप हते वो ओरनकुं पधराये, जियदासजीकु नारायणदासकु और देवाकपूरकु पधराये.

(आचार्यचरणने गज्जनधावनकु दिये प्रभुके स्वरूपको अपहरण नहीं कियो.)

गज्जनधावनकु नवनीतप्रियाजी पधराये वो पाछे पधराये है. यामें एक टेक्नीकल् इश्यु है. सिद्धान्तरहस्य देखे तो वामें आवे के दत्तको अपहार होवे नहीं. जा चीज़ कोईकु दे दी वो पाछी ले नहीं सके. पुराने राज्यके द्वारा दिये गये जितने भी जमीन जायदात के शिलालेख ताम्रपत्र हैं वो सबमें आवें के “यद् स्वदत्तं परदत्तं न अपहरेत्” स्वदत्त या परदत्त को अपहरण नहीं करनो चाहिये. ये प्रश्न कानूनसु ज्यादा अपनी संस्कृतिको हतो. नवनीतप्रियाजी गज्जनधावनकु पधराये तो महाप्रभुजी अपहरण कैसे कर सके? महाप्रभुजी मनमें अफसोस करके बिराज रहे हते के कोई प्रसंग ऐसो आवे के वामें मैं अपहरण नहीं करूं पर नवनीतप्रियाजी मेरे यहां आवे. करके नवनीतप्रियाजीने गज्जनधावनकु आज्ञा करी के अपन् दोनों महाप्रभुजीके

वहां चले. और गज्जनधावन नवनीतप्रियाजीकु पधराके आ गये. यहां अपहरण भी नहीं भयो और महाप्रभुजीकु चहितो हतो वो भी प्रकट हो गयो. या वार्ताको बहोत मीठो प्रकरण है.

(वार्ताप्रकरणमें आते वचनामृतको तात्पर्य)

या वार्तामें जो वचनामृत है वाको प्रकरण बन रह्यो है. उपदेशको प्रकरण नहीं बन रह्यो है पर ये वचनामृत जो प्रकट भये है वाको प्रकरण क्या है के धर्ममार्ग और धर्मिमार्ग को जो कम्पार्टमेन्ट अपन् सोच रहे है वा तरीकेको कम्पार्टमेन्ट प्रभुमें या महाप्रभुमें है नहीं. एक ये पोईन्ट और दूसरो पोईन्ट, जहां वार्ता प्रसंगमें ये वचनामृत आ रहे हैं के “आचार्यजीने चारो स्वरूप चारों वैष्णवन्के माथे पधरायें. नवनीप्रियाजी गज्जनधावनके माथे पधराये, गोकुलचन्द्रमाजी नारायणदासजीके माथे पधराये, लाडलेशजी जीयदाससूरीके माथे पधराये और त्रिभंगीजी देवाकपूरके माथे पधराये. और चारों वैष्णवन्कुं श्रीआचार्यजीने कही ये मेरो सर्वस्व हैं” चारों ठाकुरजीकु महाप्रभुजीने सर्वस्व कही. फिर भी मन नवनीतप्रियाजीपे ज्यादा आकृष्ट है. वही फेशनमें जैसे के गंगाजीमें नहानो होवे तो कोई घाट पकड़नो पड़ेंगो. वामें गंगाकी समग्रताकु झुठटला नहीं सके चारों स्वरूप मेरे सर्वस्व होवेके बावजूद भी नवनीतप्रियाजी महाप्रभुजीकी वीकनेस् है करके दिये भये ठाकुरजी पाछे पधारे है. वाको संकेत महाप्रभुजी कैसे दे रहे है? “ये मेरे सर्वस्व है जो तिहारे माथे पधराये देत है तो सेवा प्रीतिसों निक्की भांतीसो करियो. तुमसों न बनी आवे तो हमारे घर पधराईयो.” चारों सर्वस्वके लिये कोमन् विधान है और गज्जनधावनके लिये? गज्जनधावनसु सेवा न बनी आवे ऐसो तो सवाल ही नहीं. गज्जनधावनने महाप्रभुजीके वहां नवनीतप्रियाजी पधराय दिये तब भी, वाकु खाली जब पान खरीदवेके लिये भेज्यो वामें भी नवनीतप्रियाजीने कही गज्जन नहीं आवे तो मैं अरोगो नहीं. वो जैसी सेवा कर रह्यो हतो वामें नवनीतप्रियाजी राजी है. नवनीतप्रियाजी राजी होवे वैसी सेवा वो करे है.

गज्जनधावनकी सेवाको क्रम महाप्रभुजीने उपदेश दियो वैसो नहीं हतो. एक-दूसरे राजी हते वा तरीकेकी सेवा होती हती घोड़ा बनवेकी, सवारी करवेकी. ये कोई महाप्रभुजीके सेवाके क्रमको उपदेश नहीं है, फिर भी सेवाके

क्रममें वा तरीकेको फलकचुएशन् महाप्रभुजीके सिद्धान्तसु एलाउड है के नहीं? वो भी अपन् या वार्तामें ही देख सके है के “जब आचार्यजी गज्जन और नवनीतप्रियाजीकु संग लेके गोकुल पधारे तब संगमें दामोदरदास हरसानी कृष्णदास गोकुल आये, प्रातःकाल जन्माष्टमी हती. गोकुलमें उत्सव कियो. एक दहेडी दहींसु दहींकादो किये और उपरनामें नवनीतप्रियाजीकु झुलायो. दामोदरदास और कृष्णदास ने एक-एक छोर पकरे और गज्जनने नृत्य कियो. आचार्यने पालने झुलाये. साक्षात् नंदयशोदाको अनुभव करायो.” पलना नहीं है तो अपने उपरनामें नवनीतप्रियाजीकु पलनामें झुलाये. नवनीतप्रियाजी पलनाके मोहताज नहीं है. नवनीतप्रियाजी बालभावसु झुलवेके शोखिन है. जो अपने यहां सहजतया उपलब्ध है वामें झुलाओ. कोई बच्चाकु मां हाथमें झुलावे, पैरेपे थपथपाके झुलावे. बच्चाकी आवश्यकता झुलवेकी है. बच्चाकु लकड़ीके या रत्नजटित पलनाकी आवश्यकता नहीं है. वाकी झुलवेकी आवश्यकता है, सहजतासु जैसे पूरी होवे वो बच्चाकु पसंद आवे है. या तरीकेकी अस्थिरता बच्चाकु नशा चढ़ाती होवे है. आंखे स्थिर नहीं होवे ऐसो दृश्य बच्चा देखें तो नशा आ जातो होवे. वो बच्चाकी आवश्यकता है, वाके फलकचुएशन्की सिफत होनी चाहिये. वो आचार्यचरणने नवनीप्रियाजीके साथ करी है. फिर गुसांईजीने भी करी है, गिरधरजीने भी करी है. उपरनाके दोनों छोरमें नवनीतप्रियाजीकु झुलाये हैं, फिर पलना सिद्ध भयो तो गिरधरजीने कही के “वा दिनकी याद आ रही है तो गुसांईजीने स्पष्ट कह्यो के वा दिनको आनन्द आज नहीं आयो.” अपने इन्वोल्वमेन्टकी मीठास प्रभु लेनो चाह रहे है. मिठास लेवेको अपनो भाव स्पष्ट है तो वाकी कुछ लाचारी हो सके है. जैसे बच्चा कोई भी प्रकारके पलना झुलवेमें बुरो नहीं माने. यहां जो आचार्यचरणने वचनामृत प्रकट कियो के “ये मेरे सर्वस्व हैं. सों तिहारे माथे पधराये देत हैं. सो सेवा प्रीतिसों नीकीभांतिसों करियो. और तुमसों न बनि आवे तब हमारे घर पधरायियो” वा वचनामृतको एक पार्ट है-“ठाकुरजी मेरे सर्वस्व है”. दूसरो पार्ट है-“मेरे सर्वस्व होवेके बावजूद भी तुम्हारे माथे पधराये है”. तीसरो पार्ट-तुम्हारे माथे पधराये वाको प्रयोजन क्या? तो वाको प्रयोजन स्पष्ट बता रहे है, “सेवा प्रीतिसों नीकीभांतिसों करियो”. चोथो पार्ट है-“तुमसो न बनी आवे तब हमारे घर पधरायियो”.

(वचनामृतको प्रथमांश-“ये मेरे सर्वस्व हैं”-आचार्यचरणके ये भावसु विपरीत अपनो प्रभुमें तरतमताको भाव)

आजकी तारिखमें सम्प्रदायको सबसु बड़ो दुर्भाग्य ये है के वचनामृतके चारों अंशमेंसु एक अंशकु भी अपन् सच्चाईसु फोलो नहीं कर रहें हैं. जैसे, आचार्यजीकु नवनीतप्रियाजी सर्वस्व होवेके बाद भी खुदकी वीकनेस् लगते हते. वाके कारण दूसरे स्वरूप सर्वस्व नहीं है ऐसो भाव आचार्यचरणको नहीं है. सारेके सारे स्वरूप आचार्यचरणके सर्वस्व हैं. या लिये आचार्यवंशज/हमलोग हमारे ठाकुरकु अधिक चाहते या भजते होवें. यामें कोई बुरी बात नहीं पर जा बखत हम दुर्व्यवहार करें के हमारे ही ठाकुरजी ऊंचे क्योंकि ताम-जामसु बिराजे भये हैं. तुम्हारे ठाकुरजी उतने ताम-जामसु नहीं बिराजे सो कुछ नीचे दरज्जाके है. ये बात आचार्यचरणके भावसु विपरीत बात है. वैष्णवके घर बिराजतो ठाकुर आचार्यचरणके सर्वस्व है के नहीं है आचार्यचरण केह के सेवा तो तुम ही करो, पर सर्वस्व मेरे हैं. ये भाव आचार्यचरणको स्पष्ट हतो, वो भाव सम्प्रदायके दुर्भाग्यके कारण आज हम गुसांईयन्में स्पष्ट नहीं रह्यो. कहीं न कहीं हमारे मनमें अपने ठाकुरकु ज्यादा प्रमोट करनो और वैष्णवन्के ठाकुरकु डिग्रेड करवेको भाव ज्यादा जड़ हो गयो हैं. ये भाव जड़ होवेके कारण सम्प्रदायकी महद् ही हानी भयी है. दरअसल् ये बात खुदके या वैष्णवन्की गृहसेवामें बिराजमान प्रभुके बारेमें स्वरूपनिष्ठाके फिक्सेशनसु महाप्रभुने नहीं कही है. जैसे महावनकी क्षत्राणीकु आचार्यचरणके स्वरूपमें निष्ठा हती उपदेशमें निष्ठा नहीं हती. ऐसे हम अपने स्वरूपमें अधिक निष्ठाके कारण केहते तो भी क्षम्य होती. पर हमारेमें स्वरूपनिष्ठा कहां हैं? अपनेकु समग्रताके तौरपे ये बात समझनी पड़ेगी के प्रत्येक व्यक्ति, जो पुष्टिमार्गी है, वाके माथे जो ठाकुर बिराज रह्यो है वाकु अपनो सर्वस्व माननो चाहिये. नहीं तो कहीं न कहीं हम महाप्रभुजीके या भावसु वंचित हो रहे हैं. आजकी तारिखमें वैष्णवन्कुं ढोल बजा बजाके केह रहे हैं के तुम हमारे ठाकुरके दर्शन करो, हमारे ठाकुरको प्रसाद लो, हमारे ठाकुरजीकुं भेट धरो. यामें स्पष्ट आशय ख्याल आवे के आचार्यचरणको इन चारों प्रभुके प्रति जो विशुद्ध आशय हतो वो खो गयो. वा केन्सर्को चेप वैष्णवकु भी लग्यो. आपकु भी अपने प्रभुमें ये भाव नहीं है के हमारे माथे बिराजते ठाकुर हमारो सर्वस्व हैं. आपकु यों लगे के हमारे सर्वस्व तो हवेलीमें बिराजतो ठाकुर हैं. ये तो केन्सर् हो गयो पुष्टिमार्गमें ये वचनामृतके प्रथमांशमें ही भारी लोचा दीखे है.

(वचनामृतको द्वितीयांश-“तिहारे माथे पधराये है”-प्रभु मेरो सर्वस्व है या भावसु सेवा निर्वाहकी आवश्यकता)

आज हम गुसाईंयनकुं ये केहवेमें शरम नहीं आवे हैं के तुम्हारे वहां ठाकुरजी पुरुषोत्तमभावसु नहीं बिराज रहे हैं, गुरुभावसु बिराज रहे हैं. हमारे यहां पुरुषोत्तमभावसु बिराज रहे हैं. कुछ वैष्णव यों केह के बालकनके वहां जो ठाकुरजी हैं वो नंदालयके भावसु बिराजे है और हमारे यहां कुंजके भावसु बिराजे हैं. नंदालय और कुंज को प्रभेद क्या? वामें भी यदि शुद्ध आशय होवे तो हरकत नहीं आवे. पर, वामें विचित्रभाव ये है के कुंजमें भक्तजनकु मिलवेके लिये पधारे है, पर बिराजे है तो नंदालयमें ही. प्रभुके स्वरूपकु असमग्रतासु स्वीकारे हैं. महाप्रभुजीको तो स्पष्ट सिद्धान्त है के ठाकुरजी तो सर्वत्र बिराजे है पर जहां जो भक्त जा तरहसु जो सेवा करनो चाहे वहां वो भक्तके लिये ठाकुरजी प्रकट होवे है. कुंजमें सेवा करनो चाहे तो वाके लिये प्रभु कुंजमें प्रकट हो रहे है. जो नंदालयके भावसु सेवा करनो चाहे तो वाके लिये प्रभु नंदालयमें प्रकट हो रहे है. उतनी समग्रताको स्वीकार अपन् क्यों नहीं करें अपन् ठाकुरजीकु क्यों दंड दे है कुंजमें तो पधारे है रेहवे नहीं है रेहवे तो नंदालयमें यदि या तरहसु ठाकुरजी रेहते तो हमारे यहां तो सेवा करावे पधारे हैं पर, ठाकुरजीको आनन्द कहां है? कुंजकु यदि अपन् पिकनिक मूडमें लेवे तो घरसु ज्यादा आनन्द है पिकनिकमें. तो ऐसे क्यों नहीं सोचो के घरमें ठाकुरजी बोरियत फिल् करते होंगे और वैष्णवके यहां पिकनिक मूडमें आ जाते होयेंगे ऐसे सोचो तो ठाकुरकु सर्वस्व माननो पड़ेगो. वो महाप्रभुके ठाकुरजीकु सर्वस्व मानवेको गले घंट ना बंध जाय करके अपन् कतरा रहे हैं. हमारी तकलीफ क्या हैं? यदि तुमने तुम्हारो ठाकुर सर्वस्व मान्यो तो हमारे यहां आयेगो कौन? वा लिये हम भी वो रहस्य प्रकट नहीं करनो चाहे. अन्धेकी लाठी दूसरे अन्धेकु थमाई. जहां तक महाप्रभुकी दृष्टिको सवाल है अपन् दोनों अन्धे हैं. चर्मचक्षु हम सबकु हैं पर महाप्रभुकी दृष्टि है वो ना वैष्णवन्में बची हैं ना हममें बची हैं. वासु हम दोनो वंचित हो गये हैं. या वचनामृतको सबसु बड़ो रहस्य अपन्कुं ये समझनो पड़ेगो. आचार्यचरण कमसु कम या दृष्टिसु ठाकुरजी पधरानो नहीं चाहते हते के तुम तुम्हारे ठाकुरकु असर्वस्व मानके सेवा करो या खुदके ना मानते भये सेवा करो. यदि कोई अपनो सर्वस्व कोईकु पधरा रह्यो है तो वाकु सर्वस्व मानके वाकी हिफाजत करनो हमारो कर्तव्य हैं. राजस्थानके इतिहासमें

पन्नाधाईको इतिहास मौजुद है. पन्नाधाईने जो राजकुमारकु दूध पिलायो वाकु वाने अपने बेटा तरीके कौनसी हद तके मान्यो? पतंगिया बनवेकी हद तक. ये सर्वस्वताकु स्वीकारवेको मनोभाव है. जो प्रत्येक वैष्णव और प्रत्येक वल्लभसम्प्रदायके उपदेशकमें होनो चाहिये. नहीं है तो सचमुचमें अपनो दुर्भाग्य है.

(वचनामृतको तृतीयांश-“सेवा प्रीतिसों नीकी भांतिसों करियो.”भक्त-भगवान्की परस्पर भावविवशता)

यामें महाप्रभुजी सबसु पहेली बात भक्तिकी समझा रहे है. नीकी भांति कौनसी? जामें प्रभुको माहात्म्यविलोपन नहीं होवे. प्रीति कैसी? के जो प्रभुके प्रति आपके हृदयकु सहज जुड़वेको भाव वो प्रीति. इन दो बातनकु, मतलब प्रेम और माहात्म्य, अपन्ने संभाल लिये तो भक्ति सिद्ध हो गयी. क्योंकि “माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोधिकः स्नेहो इति भक्ति”(वो ही ‘नीकी’ बात है.) आपके वहां बिराजते ठाकुरजीको माहात्म्य पहेले समझनो चाहिये. यदि अपन् माहात्म्य नहीं समझ रहे हैं और केवल प्रीतिसु सेवा कर रहे हैं तो भगवान् सेवा नहीं स्वीकारे ऐसी बात नहीं है. नीकीके बिना प्रीतिसु करी भयी सेवा स्वीकारे है. पर वो स्वीकार प्रभुके सामर्थ्यसु है, जैसे शबरीने नीकी भांतिसु नहीं पर प्रीतिसु अपने जूठे बेर श्रीरामकु भोग धरे और श्रीरामजीने अरोगे. जा तरहकी सेवा-पूजा बताई है वा तरहसु कोई नीकी भांतिसु थोड़ी करे है? प्रीति नहीं है तो प्रीति प्रकट हो जावेगी. प्रीति बिनाकी नीकीको स्वीकार भी प्रभुके सामर्थ्यसु हैं. प्रभु अपने सामर्थ्यसु जो स्वीकार करें वो एक अलग बात हैं और प्रभु अपने भावविवश होके जो स्वीकारें वो अलग बात हैं. भावविवश होके स्वीकारनो मतलब जामें अपनेकुं इन्कार करवेको सामर्थ्य न रेह जावें. प्रभु जब अपनो असामर्थ्य अनुभव करे के याकु इतनो भाव है तो कैसे इन्कारूं? जैसे डोकरीकी वार्तामें आवे के मदनमोहनजीके अलावा कोईमें भाव रख्यो नहीं हतो तो लड्डुगोपालजीकु वो स्वीकार नहीं पायी. तो प्रभुने भावविवश होके वाकु वैसे स्वरूपको दर्शन दियो.

अपन् खुद ये बातकु हृदयपे हाथ रखके समझ सकें के जो वस्तु अपन् भावविवश होके स्वीकारे और जो वस्तु अपन् सामर्थ्यसु स्वीकारे वामें सेहरन

कौनसी बातमें ज्यादा होवे? यामें अपन् स्पष्ट समझ सके के जब अपन् सामर्थ्यसु स्वीकारे तो एक प्रकारको व्यवहार प्रकट होवे. नीकीको व्यवहार बाह्य है प्रीतिको व्यवहार आन्तर है, पर ये 'व्यवहार' है भाव नहीं है. भाव जब प्रकट होवे तो प्रभुने स्पष्ट ये बात स्वीकारी है के भावके कारण मैं भावात्मक हो जाऊं. **“यद्यद्विद्या त उरुगाय विभावयन्ति तत् तद् वपुः प्रणयसे सदनग्रहाय”** (भाग.पुरा.३।१।११) या स्थितिमें प्रभुको जो बाह्यस्वरूप है वो आपको जैसो भाव है वैसो दर्शन देवे है. आपको भाव जैसो है वैसो बाह्य ठाकुरजीको स्वरूप. उन दोनोनोंमें एक तरहकी एकाकारता आ जावे वाको नाम 'भावविवशता'. जहां एकाकारता नहीं आ रही है और दोनोमें टकराव हैं वहां भावविवशता प्रकट नहीं होवे. जैसे समझो के भीतके ऊपर छोटी स्पोट है वाकु देखवेके लिये अपनो सामर्थ्य वापरनो पड़ेगो, विवशताकी जरूरत नहीं है. ऐसे कोई झीनी आवाज़ आ रही है तो वाकु सुनवेके लिये अपनेकु सामर्थ्य वापरनो पड़ेगो. कुछ वस्तुकी सामर्थ्य होवे जैसे रूपकी आकृतिकी आवाज़की, जाकु अंग्रेजीमें 'आई केचिंग', 'इयर् केचिंग' कहें. जा बखत कोई वस्तु अपनी तरफ आ रही है और इन्द्रिय अपनो सामर्थ्य खो दे, नहीं देखवेको या नहीं सुनवेको. याकु तुम खावेके सन्दर्भमें ऐसे समझ सको के भोजन करवेके बाद अपनेकु जो चीज़ अच्छी लगती होवे और वाकी फरमाईश आवे तो स्वादके भावविवश होके अपन् खा लें. जैसे अपनी इन्द्रिय भावविवश हो जावे ऐसे प्रभु जा बखत भावविवश हो जावे वा बखत प्रभु भी एकाकार हो जावें. जब एकाकार हो जावे वा बखत व्यक्ति वाको सच्चो आनन्द ले सके. सामर्थ्यसु लियो भयो आनन्द खोटी होवे ऐसी बात नहीं है, पर वा आनन्दमें वा तरहसु उत्कर्ष प्रकट नहीं होवे, जैसो उत्कर्ष अपनेकु भावविवशतामें प्रकट होवे है.

ब्रिटीशके जमानेमें कलकत्ताके चीफ् जस्टीस् हते. वो एक दिन गंगास्नान कर रहे हते वा बखत एक डोकरी वहां नाह रही हती. वाने इनकु ब्राह्मणवेशके कारण ब्राह्मण समझ्यो. तब डोकरीने इनकु विनंति करी के “आप मेरे पतिको श्राद्ध करवेके लिये आयेंगे?” तब जस्टीस्ने कह्यो “हां, आउंगो” गंगातटसु गीले कपड़ामें वा डोकरीके घर पहुंचे. वाकु श्राद्ध करवायो. दक्षिणामें वा डोकरीने एक रूपिया दियो. जब डोकरीके घरके बहार निकले तब सबनूने हल्ला मचायो के हाईकोर्टके चीफ् जस्टीस् यहां आये. वा बखत उन्होंने ना पाड़ी के “मैं चीफ्

जस्टीस् ओफ् हाईकोर्ट नहीं हूं. मैं तो ब्राह्मण हूं और डोकरीके पतिको श्राद्ध करवानो हतो करके ब्राह्मणकी हेसियतमें आयो हूं. जो एक रूपियाकी दक्षिणा प्राप्त भयी है वाकी कीमत जस्टीस्के पगारसु बहोत ज्यादा है. ये आवक मोकुं जीवनभर याद रहेगी.” ये जो उन्होंने एक रूपिया लियो वो उनकी भावविवशताके कारण लियो. वहां सामर्थ्यकी बात नहीं हती. भावविवशताके कारण स्वीकारवेकी अपनी सेहरन अलग होवे है. सामर्थ्यसु स्वीकारे वो तो व्यवहार होवे है. प्रभु भावविवश होके स्वीकारे है या बातकु बतावेके लिये आचार्यचरण कहे हैं **“प्रीतिसों नीकी भांतिसों सेवा करियो और जब तुमसों न बनी आवे तब हमारे घर पधरायियो”**

(वचनामृतको चतुर्थांश-“तुमसों न बनी आवे तो हमारे घर पधरायियो.”-आचार्यचरणको प्रभुके प्रति अचल 'सर्वस्व'को भाव)

यामें यदि अपन् आचार्यचरणके वचनकु इन्स्ट्रक्शनकी तरह लेवे तो दो बाते समझमें आवे हैं. यदि प्रीति कोई कारणसु न नभती होवे तो मेरे घर पधरायियो और नीकी भांतिसु न होती होवे तो मेरे घर पधरायियो. क्यों? तुमकु जो पधरायो है वो मेरो 'सर्वस्व' है. मैंने भावविवश होके तुमकु पधरायो है. तुमकु मैंने अपने समझे है.

मेरे दादीजीने कोटाघर छोड़्यो और अमदावाद पधारे. बादमें मदनसिंहजी, किशनगढ़वाले महाराजकु पता चली तो वो उनकु पधरावनीके लिये अमदावाद गये. उनकु बिनती करी किशनगढ़ पधारवेके लिये. दादीजी जहां रुके हते उनके वहां बाप-दादाके जमानेसु वैभवी सेवा हती. बादमें कोई कारणसु अमदावादके ये वैष्णवसु सेवानिर्वाहमें अशक्ति हती. वो अशक्ति मोकुं बताई. उनकु कुछ शर्तके साथ ठाकुरजी मेरे वहां पधरावने हते के प्रभुको जो भी साहित्य है वो प्रभुके लिये ही वापरनो अन्यत्र नहीं, जैसे व्यवहारमें अपन् शर्त लिखवावे वा हिसाबसु अन्य भी शर्त कही. और वो शर्तनामा मोकु भेज दियो. मैंने उनकु पत्रमें जवाब दियो के “आपको पत्र मिल्यो. आपने इतनो पुराने सम्बन्धकु याद कियो याके लिये मैं आपको बहोत कृतज्ञ हूं. प्रभुकु पधरावेकी आपने बात कही वामें मेरी समस्या ये है के मेरे यहां ठाकुरजी बिराजे है और मैं खुद मेरे ठाकुरजीकी सेवा अच्छी तरहसु पहोंच नहीं सकु. तो आपके ठाकुरजीकी सेवा पहोंचनी सम्भव नहीं

है. जहां तक प्रभुके साहित्यको सवाल है वामें मोकु दामोदरदास याद आ गये के उन्होंने सारो वैभव महाप्रभुजीके वहां भिजवा दियो और महाप्रभुजीने कही के “ये सारो वैभव यमुनाजीमें डुबा दो और ठाकुरजीकु पधरा लावो” ऐसे मोकु आपके प्रभुके साहित्यकु डुबा देवेकी छूट दो तो प्रभु पधराके लाउं. और यदि ये शर्त नहीं है तो मैं प्रभुकु पधरा नहीं सकु. पीछेसु ये बात पता चली के उनके पूर्वज ये लिखके गये हते के जहां प्रभु बिराजे हैं वो स्थान ऐसो ही रहेनो चाहिये और इनकु वहां बहुमंजिल इमारत बनवानी हती. वामें ये मंदिर आडे आतो हतो. वा लिये मोकु पधराने चाहते हते.

यामें दोनोंके बिचमें रिवर्सल् भयो. मेरे पार्टमें ये रिवर्सल् भयो के जैसे आचार्यचरण कहते के तुमसो नीकी या प्रीति सु सेवा न बनी आवे तो मोकु पधरायियो. ऐसी सर्वस्वकी फिलीन्ग् मोकुं नहीं हती. उनके पार्टमें भी ये रिवर्सल् भयो के उनसु नीकी भांतिसु सेवा तो हो रही हती पर प्रीतिसु सेवा करवेमें बहुमंजिल इमारत बन नहीं सकती हती. बहुमंजिल इमारत बनावेमें प्रभु आडे आ रहे हते करके प्रभुकु पधराने चाह रहे हते.

(आधुनिक सन्दर्भ-संशय: कोन्ट्राक्टमें दिये प्रभुको सर्वस्व माननो?)

वैष्णव आज-कल ऐसे समझे है के यदि उनसु सेवा नहीं निभती होवे तो बालकके वहां पधरा दो, पर वामें हमारी भी कुछ लाचारी हैं. महाप्रभुजीके कालमें बहोत मर्यादित वैष्णव हते और सेवाको प्रकार भी मर्यादित हतो. आज जो सेवाके नामपे अपनने इतनो ताम-जाम खड़ो कियो हैं के वो एक परिवारसु निभ सके ऐसो नहीं है, ये तो शां बिज्ञनेस् है. शां बिज्ञनेसकु निभावेके लिये नोकर रखने पड़े. हालको जो ट्रेन्ड है वामें तो सरकार मंदिरकु कोन्ट्राक्टपे दे रही है और बालकें कोन्ट्राक्टपे मंदिर ले रहें हैं. उनकु कोन्ट्राक्ट रिन्यु भी करवानो पड़े हैं. वा कोन्ट्राक्टके दरमियान होतो प्रोफिट बालकको होवे है. कोन्ट्राक्ट रिन्युअलके लिये सरकार नक्की करे के किनकु देनो अब यामें इश्यु ये है के या तरहके कोन्ट्राक्टपे दिये गये ठाकुरजीकु सर्वस्व माननो के नहीं माननो?

(पूर्वोक्त संशयको निष्कर्ष)

मेरो यामें स्पष्ट मत ऐसो है के जा वैष्णवके माथे ठाकुरजी बिराज रहे है और कोई कारणसु प्रीति-नीकीसु सेवा नहीं निभ रही है तो वाको स्वरूपमें भाव खंडित हो गयो, या भाव खंडित नहीं भयो ऐसी दो पोसिबिलीटी रहेंगी. यदि भाव खंडित हो गयो है तो बालकके वहां पधरावेकी जरूरत नहीं है क्योंकि भाव खंडित होवेके बाद वो तो मूर्ति रेह गई भाव हतो तब तक भगवान् हते, नहीं तो मूर्ति हो गई. मूर्ति तो शॉकेस्में भी रह सके. आपके ठाकुर यदि मूर्ति हो गये है तो वाकु आपके शॉकेस्में रखो. यदि भाव अखंडित है तो आपके पास जो सहज उपलब्ध है वासु सेवा करो. जैसे पलना नहीं है तो उपरनामें झुलावो. महाराना प्रतापकु जब किल्ला छोड़नो पड़्यो तब अपने राजकुमारकु घांसकी रोटी खिलानी पड़ी. ये तो नीकीभांत और प्रीति है. जो मेरे पास सहजतया उपलब्ध है वासु सेवा करुंगो. जो मेरे पास सहजतया उपलब्ध नहीं है वासु सेवा करवेको मोह, प्रभुको मोह नहीं होके सेवाके प्रकारको मोह है. यदि सेवाके प्रकारको मोह है तो कहीं न कहीं भक्तिसु अपन चूक रहे हैं और मर्यादामें बंध रहे है. अब प्रभु वा मर्यादाकी सेवाकु नहीं स्वीकारे ऐसी बात नहीं है क्योंकि प्रभु तो शिशुपालकी गाली स्वीकारे तो मर्यादाकी सेवा क्यों नहीं स्वीकारे पर वो सामर्थ्यकी बात है. प्रभु भावविवश होके नहीं स्वीकारेंगे.

(उपसंहार)

ये सारे वचनामृत बहोत महत्त्वके हैं. वा जमानामें हते ऐसे नहीं. आज भी अभी भी इतने महत्त्वके हैं. या वार्ताके चारो अंश या तरहसु सोचे तो आजकी तारिखमें ये वार्ता अपनेकु पुष्टिमार्गपे कैसे चलनो वो न सिर्फ वैष्णवनकु अपितु गुसाईनकु भी सच्चो मार्गदर्शन देवेवाली वार्ता हैं. प्रकरण और उपदेश की विरुद्धधर्माश्रयता या वार्तामें प्रकट हो रही है. प्रकरण है आचार्य स्वरूपनिष्ठाको और उपदेश है भगवत्स्वरूपनिष्ठाको. ये विरुद्धधर्माश्रयता यामें प्रकट भयी है.

दिनकरदास सेठकी वार्ता (श्रवणभक्तिसू कृष्णभक्ति)

(उपक्रम)

महावनकी क्षत्राणी और दिनकरदास सेठ उन दोनोन्में कुछ महत्वपूर्ण समानता और विलक्षणता भी हैं. समानता ये है के इन दोनोंने ब्रह्मसम्बन्धके बाद भगवत्सेवा नहीं पधराई हैं. भगवत्सेवा नहीं पधरावेमें दोनोंके हेतु अलग-अलग है. वामें दोनोंमें विलक्षणता भी है. क्षत्राणीमें महाप्रभुजीके प्रति धर्मिनिष्ठा ज्यादा है. दिनकरदासकु महाप्रभुजीके धर्मिस्वरूपमें निष्ठा नहीं पर धर्ममें (उपदेशमें) ज्यादा निष्ठा है. कल अपनने ये भी देख्यो के उनकी या निष्ठाकु देखके महाप्रभुजीने ब्रह्मसम्बन्ध देवेके बाद आज्ञा करी के “सेवा करो” तो ये दोनों इन्कार कर गये वो इन्कार करवेके बाद उनकु ठाकुरजी मिले.

प्राचीन नियम ऐसो हतो-शिष्य या बच्चा की गलतीकी माफी गुरु या पिता मांगते. शिष्य या बच्चा माफी अगर दिलसु नहीं मांगे तो वो पोपटकी तरह मांगेगो. अपने कीर्तनमें भी यशोदाजी प्रभुके तुफानकी माफी मांग रही है. “गारी मति दीजो मों गरीबनीको जायो है” (उराहनेके पद) पेनल्टी होवे तो मोसु ले लो, पर मेरे बच्चाकु गाली मत दो. शिष्यके तुफानकी गुरु, माता-पिताकी हेसियतमें माफी मांगे. क्रिश्चियानीटीको तो बेस् ही या बातपे रह्यो है. क्राइस्ट् मनुष्यके पापन्की भगवान्सु माफी मांगवेके लिये क्रुसिफाइड भयो. या लिये जाकु क्रुसिफाइड क्राइस्ट्में श्रद्धा है वाकु वाके पापन्की माफी मिलेगी.

(आचार्यचरणको अद्भुत उत्तरदायित्वको निर्वहन और प्रभुके प्रति सर्वस्वके भावकी पराकाष्ठा)

महाप्रभुजीने धर्माचार्य धर्मोपदेशक तरीके जो धर्मोपदेश देनो चाहिये वो तो ये दोनोनु दियो ही हतो करके दोनोन्ने पूछी के “अब हमारो का कर्तव्य?” तब आचार्यचरणने आज्ञा करी के “भगवत्सेवा करो” वाके बावजूद वो इन्कार कर रहे हैं. वो इन्कार गुरुकी अवहेलना करवेके लिये नहीं कर रहे हैं. पर खुदकी कोई असामर्थ्य और गुरुके प्रति श्रद्धाके अतिरेकके कारण कर रहे हैं. वा पर

महाप्रभुजीने महावनकी क्षत्राणीकु कितनो बड़ो पाठ पढ़ायो वाकु ठाकुरजी मिले वा बखत भी वो इन्कार कर रही है के (प्रभु) पधरावेगी तो सेवा करनी पड़ेगी. तो या लिये वो महाप्रभुजीसु पूछवे गई. महाप्रभुजी कहे “पधरा लाओ”. कल ये सारी बातें आपकुं बताई. वामें ब्रह्मसम्बन्ध लेवेके बाद जो सेवा क्षत्राणीकु करनी चाहिती हती वा सेवाकु, क्षत्राणीके गुरु होवेके नाते आचार्यचरणने करी है के नहीं करी? वो नवनीतप्रियाजीकु अपनो सर्वस्व मानते. महाप्रभुजीने कितनी प्रीतिसु और नीकीभांतिसु नवनीतप्रियाजीकी सेवा करी ये मूलमें कर्तव्य महावनकी क्षत्राणीको हतो. वाकु मिले हते और वो नहीं कर पा रही है. वो अपनो सर्वस्व मान नहीं पा रही है तो कोई बात नहीं. मैं तो आपकुं अपनो सर्वस्व मान रह्यो हुं. जब नवनीतप्रियाजी घरमें पधारे तो महाप्रभुजीने सारी शैया संवारके अपने साथ पोढ़ाये. नवनीतप्रियाजीकु परिश्रम नहीं होवे करके खुदने भी वा बखत उत्तर धारण कियो. फिर बड़ी शैया सिद्ध भयी और नवनीतप्रियाजी वहीं पोढ़े. अपन देख सकें के महाप्रभुजीने कौनसे हद तक महावनकी क्षत्राणीकु मिले भये ठाकुरकु अपनो सर्वस्व मान्यो शिष्यको कर्तव्य गुरुने कैसे निभायो याके लिये गुसाईंजी सर्वोत्तमस्तोत्रमें आज्ञा करे है “स्वदासार्थकृतशेषसाधनः सर्वशक्तिधृक्” जो महाप्रभुजीके सेवक भये उनकु जो साधन करने चाहिते हते वो साधन यदि वो नहीं कर पावे तो वो साधन महाप्रभुजी करे हैं.

महाप्रभुजीको चरित्र हिमालयके शिखर जैसो हैं, पर वर्तमानकालमें भी काशीवाले मुरलीधरजी महाराज मुकुन्दरायजीकु पधराके यहां (किशनगढ़) पधारे हते. एक बखत उत्सवको दर्शन खुल्यो हतो और वा दर्शन करवेके लिये वैष्णव आयो. उनकु पता हती के वाके यहां विस्तारसु सेवा होवे. तो महाराजश्रीने पूछ ली के “ठाकोरजीकी सेवा पहुँचके आये?” तो वाने कही “नहीं जेजे, वो पीछे हो जावेगी. यहां दर्शनसु कैसे वंचित रह जावें?” तो मुरलीधर महाराजने आज्ञा करी के “तुम्हारे यहां बिराजे ठाकुरको अनादर कियो वाको प्रायश्चित मैं करुंगो. आज मैं उपवास करुंगो. तुम ठाकुरजीकी सेवा छोड़के मेरे ठाकुरके दर्शनके लिये आये वाके प्रायश्चितको उपवास मैं करुंगो.” ये तो वर्तमानकालकी बात है. जाके भीतर थोड़ी भी सहृदयता है वाकु तो इतनो जागृत रहनो ही चाहिये. कोईके भी घरमें प्रभु बिराजते होय उनके प्रति सर्वस्व होवेको भाव खंडित नहीं होवे वाकी अपनी कलेक्टिव जिम्मेदारी हैं इन्डीविज्युअल् जिम्मेदारी नहीं है.

कलेक्टिव जिम्मेदारी और इन्डीविज्युअल जिम्मेदारी अलग होंगे। इन्डीविज्युअल जिम्मेदारीमेंसु आदमी छटक सके। गांवमें होते दंगाफसादमें लगे कर्फ्यू वो अपनी कलेक्टिव जिम्मेदारी है। पुराने कालमें भी ऐसी नियम हतो के जो ब्राह्मण शास्त्र नहीं पढ़्यो होवे और वाकु यदि गांव दक्षिणा दे रह्यो है तो शास्त्रने लिख्यो है के राजाकु आखे गांवकु कलेक्टिव दंड देनो चाहिये। नहीं तो ब्राह्मणमें ये वृत्ति पनपेगी के कुछ किये बिना भी तो हमारो गुजरान तो चले है। बिना पढ़े ब्राह्मणकु यदि दक्षिणा मिले तो वाको दंड पूरे गांवकु दो क्योंकि तुम चोरकु प्रश्रय दे रहे हो। ब्राह्मण यजन-याजन अध्ययन-अध्यापन करके यदि दक्षिणा ले तो वाकु तो शास्त्र 'श्वेत द्रव्य' कहे। बहोत उंचो द्रव्यको प्रकार माने। शास्त्र पढ़्यो नहीं है और खोटे झांसा देके पैसे मांगे तो राजा पूरे गांवकु दंड दो। कभी-कभी राजा प्रजाके अपराधको प्रायश्चित्त करते हते। क्योंकि जा प्रजाने अपराध कियो वो मैंने नहीं कियो पर राजा होवेके नाते मेरो उत्तरदायित्व है के मोकु प्रायश्चित्त करना चाहिये।

कोईपे अपनो अधिकार है तो कर्तव्यरहित नहीं होनो चाहिये। जापे अधिकार अपनो जतायो है और वो कर्तव्य नहीं निभावे तो जिम्मेदारी वाकी नहीं, मेरी है। जानवरनकु पालो और वो मर जावे तब वाकु रस्तापे फेंक दियो तो कठोर दंड दो। एक तो तुमने जानवरकु तुम्हारे भरोसे पाल्यो और वो मर गयो तब वाकु रस्तापे फेंक दियो। माने अपनो पालकपनो नहीं निभायो। शास्त्रने कठोर दंड दियो। वाकु विधिवत् दफनावो। वाकेलिये गुसाईंजीकी वार्तामें आवे है-उन्होंने एक पोपट पाल्यो हतो। जब मर गयो तो अग्निसंस्कार कियो।

जो पालक पिता या गुरु है वाको पालित संतति या शिष्य के प्रति उत्तरदायित्व होवे है। पालित संतति या शिष्य कु सन्मार्गके ऊपर चलानो और वाको उत्तरदायित्व खुद स्वीकारनो। याही लिये महाप्रभुजीकु "स्वदासार्थकृताशेषसाधनः सर्वशक्तिधृक्" कह्यो जाय है। जिनकु महाप्रभुजी सेवक बनाते उनसु कोई चीज़ पल रही है कोई चीज़ नहीं पल रही है। तो वाके साधन महाप्रभुजी खुद करते हते। जैसे मुरलीधर महाराजने एक दिन उपवास खुद कियो। प्राचीनकालमें ऐसे भी हतो के जो शिष्य गुरुकुलमें रहेतो होवे और गुरुके

साथ वाको खान-पानको व्यवहार है और गुरु मर जावे तो शिष्यकु तीन दिनको सूतक पालनो पड़तो। शिष्य मर जावे तो गुरुकु सूतक पालनो पड़तो। आजकल तो शिष्यकी संख्या हजारनमें होवेके कारण सूतक पालवे जावे तो सूतकमेंसु बहार ही नहीं निकले। शिष्यकी जिम्मेदारी नहीं लेवे, करके हजारनकी संख्यानमें शिष्य बनावें।

ये नियम याके लिये हतो के गुरुको शिष्यके प्रति अपनो उत्तरदायित्व अनुभूत होवे। जाको शिष्य बनायो है वो सन्मार्गपे चले और यदि वो नहीं चलतो होवे तो वाको उत्तरदायित्व हमारो है। महावनकी क्षत्राणीकी वार्तामें ये बात अपन देख सके के ठाकुरजी मिले फिरभी वाने इन्कार दियो। वाकी कुछ लाचारी हती वो महाप्रभुजीके आगे प्रकट करी। वो लाचारी वाकी गुरुकी अवहेलना करवेकी नहीं है। वाके कोई भावकी लाचारी है। वा लाचारीके कारण क्षत्राणीको उत्तरदायित्व पूरा नहीं भयो करके वाकु मिले ठाकुरजीकु महाप्रभुजीने अपनो सर्वस्व मान्यो हतो और सर्वस्व मानके ठाकुरजीकी सेवा करी। यासु पता चले के गुरु-शिष्यके सम्बन्ध कितने घनिष्ठ और कितने मीठे हते

(वार्ता प्रसंग-दिनकरदास सेठको कथासक्तिको असामान्यगुण)

ऐसी ही वार्ता सेठ दिनकरदासकी है। दिनकरदासजी एक तुफानी जीव हते। घरमेंसु चीज़ उठाके कथावाचकनके वहां देके आते। घरमें और जातमें बदनाम हते। सब उनकु 'चोर' कहते। कथावाचकनमें उनकु सब 'सेठ' कहते। चोरी बहार नहीं करते घरमें ही करते। वो भी कथावाचकनकु देवेके लिये। उनकु खुदकु दियो भयो भी वो बेच आते। जैसे वार्तामें आवे के बरातमें सजवेके वस्त्र और हार दिये वो भी दे आये। या बातसु अपनकु पता चले ये उनकी स्वभावगत लाचारी है। ये लाचारीके कारण उनकु भगवान्की कथामें विशेषासक्ति है। आचार्यचरणसु मिलवेके पहले कथामें वाकु व्यसनके जैसी अवस्था है। उनकी चोरीकी वृत्ति कामनामूलक न होके भक्तिभावमूलक है। उनकी कथा सुनवेकी लाचारीके कारण आचार्यजीके पास कथा सुनी। आचार्यजीकु सुनवेके बाद उनकु ये हो गयो के अब इनके सिवा ओर कोईकु सुननो नहीं है। या लिये महाप्रभुके शरणमें आये। ब्रह्मसम्बन्ध लेवेके बाद महाप्रभुजीने सेवाकी आज्ञा दी, पर उनकी कथासक्तिकी पराकाष्ठा है। उनके पास घर नहीं है, भगवद्भयसनावस्थाके कारण आयो भयो

आर्थिक संकोच भी है। इन सारे पहेलुनकु देखते भये यदि वो चाहते तो भी उनके पास सेवाकी अनुकूलता नहीं होती। क्योंकि सेवा तो गृहस्थको कर्तव्य है। श्रीगोपीनाथजी तो “गृहस्थस्य एतन् मुख्यं कर्तव्यम्” (ऐसे केह रहे हैं) महाप्रभुजी भी केह रहे हैं “गृहं सर्वात्मना त्याज्यं तच्चेत् त्यक्तुं न शक्यते कृष्णार्थं तत् प्रयुज्जीत कृष्णः संसार मोचकः” (पञ्चश्लोकी-१) उनके कथाव्यसनके कारण उनके पास सेवाको कोई भी साधन नहीं हतो ये बात समझके महाप्रभुजीने उनकु कथापरायण रहेवेकी कही। यासु अपन खोटो अर्थ निकाले के सेवा नहीं करनी और कथा करनी तो अपन जो जूतामें अपनो पैर नहीं जा रह्यो है वामें अपनो पैर डाल रहे है। इनको बड़ो जूता है जामें अपनो पैर फिट होवे नहीं। उनके भीतर कथासक्तिको गुण असामान्य है।

(वार्तामें मिलते वचनामृतको अर्थ सैद्धान्तिक संगतिसु ही देखनो चाहिये)

ये वार्ताप्रकरणमें एक महत्वको वचनामृत आयो है। यहां प्रकरणात्क उपदेश नहीं है। वचनामृतरूप उपदेश है करके याको प्रकरण वार्ताको है। षोडशग्रन्थमें उपदेश खुद प्रकरणात्मक हो जावे, यहां तो एक वाक्य है। यदि वार्ताप्रकरण नहीं देखे तो अपनेकु ये संशय हो जावे के ऐसे क्यों बोले? षोडशग्रन्थमें कुछ बोले तो उपक्रम उपसंहार विगरे मिले है, प्रकरणग्रन्थ होवेके कारण। पर ये वचनामृत प्रकरण नहीं है कोई वार्ताप्रकरणमें दिये गये उपदेश है करके इनकी संगति वार्ताप्रकरणके बिना मिले नहीं।

दूसरी संगति ये देखनी चाहिये के वार्ता प्रसंगमें जब उपदेश दियो होवे वा बखत वाकी सैद्धान्तिक संगतिको विचार करनो चाहिये जासु वार्ताको अर्थ समझमें आवे। ये संगति हर वार्तान्में छापी भयी हैं। ये संगति षोडशग्रन्थमें भी छापी भयी है। अन्य सभी ग्रन्थ, गीता भागवत महाभारत आदि ग्रन्थन्में भी ये संगति छापी भयी है।

(आधिभौतिक स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य को विचार)

प्रकृतिको एक सेटअप ऐसो है के नदी किनारेके पेड़ होवें वाकु पानी अपनेमें संग्रह करवेकी जरूर नहीं होवे, पर रणमेदानके जो पेड़ होवे वामें पानीको संग्रह

ज्यादा होवे है पानीकी उपलब्धि सरलतासु नहीं होयवेके कारण। यासु समझमें आवे के वृक्ष पानीकु प्राप्त करवेकी साधना कर रह्यो है। वृक्षकी संरचना ऐसी होवे के जा प्रदेशको वृक्ष है वाकी पानीकी प्राप्तिकी साधना भी प्रदेशके अनुसार होवे है। जैसे कुछ वृक्ष हवामेंसु पानी सोखते होवें, कुछ वृक्ष जमीनमेंसु पानी सोखते होवें, कुछ वृक्ष बरसातको ही पानी पीके स्वस्थ रहेते होवें हैं। बरसात ज्यादा पड़े तो फसल खराब हो जावे, पर नीम और बट को वृक्ष खराब नहीं होवें।

चरकऋषी एक बात कहें हैं-“यो ही यद्देशजो जन्तुः तस्य तज्जौषधं वरम्” जो जन्तु जा प्रदेशको है वा प्रदेशकी वनस्पतिसु वाकी चिकित्सा अच्छी होवे। जो जंतु जा प्रदेशको नहीं है वा प्रदेशकी वनस्पतिसु वाकी चिकित्सा अच्छी नहीं होवे है। जैसे यहां राजस्थानमें रहेवेवाले व्यक्तिनके लिये राजस्थानकी वनस्पति जितनी फायदेमंद होवेगी वो वनस्पति अन्यके लिये उपकारी नहीं होवे है। लद्दाखके आदमीनके शरीरमें खूनकी मात्रा मैदानी इलाकेके रहेवेवाले व्यक्तिनसु डेढ़ी होवे हैं। क्योंकि लद्दाखमें ओक्सीजनकी मात्रा कम होवे है। जैसे थोरकु अपन पानी देवे तो थोर मर जावे है क्योंकि वो रणप्रदेशको वृक्ष होवेके कारण वो हवामेंसु पानीसंग्रह करे है। पानी पिलावेके कारण वृक्ष अस्वस्थ या नष्ट हो जावे है। हर वनस्पति या जन्तु को ये स्वभाव है के अपने प्रदेशके अनुसार वनस्पति वाके लिये स्वास्थ्यकारी होवे है। ये आधिभौतिक स्वास्थ्यकी बात है।

(आध्यात्मिक स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य को विचार)

ऐसे ही अपनो आध्यात्मिक स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य भी हो सके हैं। वामें भी हर जीवको आध्यात्मिक स्वास्थ्य अपने अपने ढंगको होवेगो। वा जीवकी संरचना कैसी है वापे वाको स्वास्थ्य निर्भर करे है। वासु विपरीत कुछ कियो भी तो सफल होवेके बजाय सड़वे लग जावेगो। जैसे थोरमें फूल भी उगे है पर बहारसु दियो भयो पानी वाकु सड़ा देवे है। जैसे वृक्षके पत्ता खिर रहे है वा पिले पड़ रहे है वाको मतलब वृक्ष अस्वस्थ हो गयो। ऐसे हर जीवको आध्यात्मिक स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य होवे हैं।

आजकी तारिखमें कोई भी व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक स्वास्थ्य या अस्वास्थ्य के बारेमें विचार करे नहीं है। जैसी आध्यात्मिकता जाके गले पड़ गयी वो वाको

ट्राय् करे है. वामें कोईको स्वास्थ्य सुधरे नहीं है. आज भागवतकथा जितनी चले है उतनी पहले कभी चलती नहीं हती. जितने भगवान् आज प्रकट हो रहे हैं उतने भगवान् सतयुग त्रेतायुग में भी प्रकट नहीं भये हते. मतलब अपन् भूखसु ज्यादा खाना खावे, जो शरीरकु अस्वस्थ करे है. हर धर्मको अनुयायी ज्यादा धार्मिक बननो चाह रह्यो है, पर सचमुचमें ज्यादा अधार्मिक है. यदि सहजरूपसु धर्म चुन्यो होतो तो धर्मको अतिरेक नहीं होतो. कोई अपनेकु कहेवे के मनोरथ करवेसु अपने चोर्यासीलाख पाप जल जावे हैं, ऐसो तो कभी होवे नहीं है. अपन् होस्पिटल्में एडमिट होवे हैं. डॉक्टरन्सु इलाज हो नहीं पा रह्यो हैं. दिलमें घबराहट है के जियेंगे के मरेंगे होमियोपेथी आयुर्वेदिक यूनानी वि. सभी प्रकारकी दवान्को उपाय करे हैं. क्योंकि मूलमें अपन् अस्वस्थ हैं. यामें स्वस्थ होवेके जो सरल उपाय है उन उपायनकु कोईकु करना नहीं हैं.

शास्त्रकारने या बातकी कॅर लेनी चाही हती जैसे अपने यहां पदमें आवे है “जे जे जा रसके अधिकारी भरत संभारे न छलके” जो जा रसको अधिकारी है वाकु वो रस प्रदान कियो जावे तो रस छलकेगो नहीं. और अनधिकारीकु वो रस प्रदान कियो तो वो रस छलकेगो. ये कॅर आजकी तारिखमें बहोत कम ली जा रही है. जैसे आदमी थोड़ो कुछ व्यायाम करे या चलवे-फिरवेको रखे तो वाकी कॅलेरी वपरा जावे. और अतिरिक्त चरबी इकट्ठी नहीं होवे. परन्तु हालमें लाईफ् ऐसी हो गई के सभी काम बैठके ही करें. वामें व्यायामशील जीवनशैली रही नहीं करके खायो-पीयो लगे नहीं. सबकुं बिमारी होवे. जीवनमें नियमितरूपसु व्यायाम करते तो सहजरूपसु स्वस्थ रहेते. अब रेह नहीं गयो है करके व्यक्ति अस्वस्थ हो जावे. अब हार्टएटेक् आवे वा बखत जोगिंग्को जोश चढ़े तो तो नहीं मरते हो तो भी मरवेके काम होवे. “जिंदगी इश्कके बुतामें काटी आखरी वक्त क्या खाख मुसलमा होंगे?” आज अपन् या प्रकारसु जीवें हैं. जोगिंग करके कोई स्वर्गमें कोई खुदाके पास, कोई क्राईस्ट्के पास कोई रामके पास, कोई कृष्णके पास, कोई आत्मसिद्धि, कोई सर्वज्ञता के लिये दौड़ें हैं. पर हार्टएटेक् आयो है वा बखत थोड़ो आराम करना चाहिये. अपनी जीवनचर्या ऐसी रखेंके हार्टएटेक् आवे नहीं.

(आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्रदानकी भागवतदृष्टि)

भागवतमें जैसे केह रहे है “निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनाम् इह कर्मसु, तेषु अनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनां, यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगो अस्य सिद्धिदः” (भाग.पुरा.११।२०।७) यदि तुमकु दुनियामें अनुराग नहीं हो रह्यो है, सर्वत्र तुमकु निर्वेद (अनासक्ति/निस्पृहता) हो रह्यो है तो ज्ञानमार्गकी साधना करनी चाहिये. यदि दुनियाकी आसक्तिमेंसु तुम छूटकारा नहीं पा सकते हो तो व्यर्थमें ज्ञान प्राप्त करोंगे तो आसक्तिको लफड़ा संसारके बजाय ज्ञानमार्गमें घुस जावेगो. जैसे आजकल संतनको आवास बहारसु झोपडी लगे और भीतरसु एक्कन्डिशन होवे. संसारकी आसक्ति ज्ञानमार्गमें घुस गई संत जो धर्मको उपदेश देवे है उनकु कमान्डोके साथ घूमनो पड़तो होवे तो दूसरेकु निर्भयताको उपदेश कैसे दे सके खुदकु तो निर्भयता भयी नहीं और ज्ञानसु निर्भयताको बोध दें, कैसी विचित्रता है यहां(संसार)की इनसिक्युरिटी धर्ममें आ गई.

(धर्मसाधनामें अधिकारविवेक छोड़वेसु पनपती आध्यात्मिक अस्वास्थ्यता)

क्यों ऐसो भयो? अधिकारीके हिसाबसु धर्मसाधनाको जो विवेक हतो वो छोड़ दियो. विवेकानन्दने रामकृष्ण परमहंसकु ये कही के क्रिश्चियन् लोग इतनो धर्मान्तर करे है तो इनके विरोधमें अपनेकु भी मिशन् ऐसो खोलनो चाहिये जासु धर्मान्तर रुक जावे. वा बखत रामकृष्ण परमहंसने ये कही “मा तेरे सामने प्रकट हो जावेगी तो भी तु ये कहेगो के मोकु एक बिल्डिंग दो, जामें मैं मिशन् चलाऊं” तो निर्भयता कहां रही? सभी धर्ममें ये हाल है. जैनमुनि आजकल कृष्णगीताको प्रवचन करे. कृष्ण तो जैननूके वहां नारकिजीव (नरकमें रहवेवालो जीव) है. तो वाकी गीताको तुम क्यों प्रवचन करो? वाके भजन तुम क्यों गाओ? अपनी श्रद्धापे तो कायम रहो अपनी श्रद्धापे रेहवेमें सबकु डर लगे. कहीं कोई अपनेकु सांप्रदायिक केह देगो तो? व्यर्थमें अपनेकु कोईकी गालीके भयसु असाम्प्रदायिक क्यों होनो? हालमें युनोमें सर्वधर्म सम्मेलन भयो. वामें अपने एक बालक पधारे. सम्मेलनके नियमके हिसाबसु उनकु लिखित वक्तव्य भेजनो हतो. वामें ये लिख्यो “आजकी तारिखमें मानवसमाजकु ‘सम्प्रदाय’की आवश्यकता नहीं है, ‘धर्म’की आवश्यकता है” तो सम्प्रदाय क्या अधर्मको है? मेरे पास जब लिखित आयो तब मैंने पूछी “आप कौनसे सम्प्रदायके प्रतिनिधि तरीके जा रहे हो? उन्होने कही “वल्लभ सम्प्रदायके” मैंने कही “सम्प्रदायकी आवश्यकता नहीं है तो आपकु

पधारवेकी क्या आवश्यकता?” तो कहे “गड़बड़ हो गई” मैंने कही “सुधारो” तो वो कहे “अब सुधर नहीं पावेगो, वो लेख तो छप गयो” राजनीतिज्ञ वोट् लेवेके लिये ऐसी बात करे तो उनके लिये ठीक है, पर अपने लिये शोभास्पद नहीं हैं. यदि सम्प्रदायकी आवश्यकता नहीं है तो अपनेकु क्यों रहनो चाहिये? क्यों जीनो चाहिये? ये आत्मविश्वास अपनो खो गयो है करके अपन् दूसरेके कंधापे सवार होके जीनो चाहे हैं. प्राचीनकालमें ये व्यवस्था नहीं हती.

(सहज उपलब्धिसु ही आध्यात्मिक उत्कर्ष होवे है)

जा व्यक्तिकी जो अवस्था है वा अवस्थामें वाको आध्यात्मिक उत्कर्षको साधन वाकु उपलब्ध होनो चाहिये. वैज्ञानिकन्ने एक प्रयोग कियो के पानीके टबमें काई जमाई और दूसरी बाजु लाईट् जोड़ी. कुछ अरसामें सारीकी सारी काई प्रकाशकी दिशामें मुड़ गई. फिर उन्होंने दूसरी साइड लाईट् जोडी तो सारीकी सारी काई वा दिशामें मुड़ गई. क्योंकि काईकु लाईट्की जरूरत होवे है. काईमें न तो तैरवेके लिये हाथ है, न तो मछलीके जैसी पूंछ है, न तो कछुवाके जैसे पैर है. फिरभी काईको पानीमें तैरवेकी सुविधा उपलब्ध है के नहीं? साँपकु पैर नहीं होते भये भी वो पेटसु तेजीसु दौड़ सके है के नहीं? क्योंकि प्रकृतिने वाकु सुविधा उपलब्ध करवाई है. इन सामर्थ्यसु अपन् उत्कर्ष खोजें तो उत्कर्ष होवें. पर दूसरेकी कोपी करवेमें अपनो उत्कर्ष सम्भव नहीं है.

(आचार्यचरणकी भागवती दृष्टि)

या लिये शास्त्रने ये बात बताई के कोई भी धर्मको अधिकारी कौन है वाको निर्णय पहले करो. वाकी अधिकारिताको निर्णय कैसे करनो? वाको बीजभाव क्या है वो खोजनो चाहिये. भक्तिको बीजभाव है तो याकु भक्तिमें प्रवृत्त करनो चाहिये. ज्ञानको बीजभाव है तो वाकु ज्ञानमार्गमें प्रवृत्त करनो चाहिये. कर्मको बीजभाव है तो वाकु कर्ममें प्रवृत्त करनो चाहिये. शरणागतिको बीजभाव है; जो महावनकी क्षत्राणीको बीजभाव हतो, वाकु शरणागतिमें प्रवृत्त करनो चाहिये. वाकु कर्म ज्ञान भक्ति को बीजभाव हतो नहीं, स्वरूपनिष्ठाको बीजभाव हतो तो वाकु महाप्रभुजीने वाके ढंगको कोर्स बताया. वोही तरहको कोर्स सेठ दिनकरदासजीकु महाप्रभुजीने बताया क्योंकि आप दिनकरदास सेठकी कथासक्तिकु जानते होते. याके लिये ब्रह्मसम्बन्ध देवेके बाद अपनो उत्तरदायित्व निभावेके लिये उनकु कही

के “भगवत्सेवा करो” तब उन्होंने कही “मैं तो कथाश्रवण करनो चाहूँ” श्रवण कीर्तन और स्मरण भगवत्सेवाके लायक अपनो बीजभाव नहीं होवे माने अपनी मानसिक शारीरिक पारिवारिक या सामाजिक क्षमता नहीं होवे वा स्थितिमें जबरदस्ती सेवाको मार्ग दिखानो वा व्यक्तिके लिये हानिकारक हो सके है. उतनी सावधानी यदि उपदेशक नहीं बर्ते तो जिम्मेदारी शिष्यकी नहीं होके उपदेशककी होवे है. जैसे रोगीकु कौनसी दवा माफक आवे वाको उत्तरदायित्व डॉक्टरको होवे है. वा तरीकेको निदान महाप्रभुजीने इनको कियो है. याके लिये महाप्रभुजीने उनकु कथा सुनवे आवेके लिये कही. दिनकरदासजीकु तो महाप्रभुजीकु मिलवेके पहले ही कथासक्ति हती जो बादमें भी लिनार्ओन् कर रही है. क्योंकि उनको बीजभाव कथासक्तिको हतो.

(वार्ताप्रसंग)

“सों दिनकरदासकों कथाके ऊपर बहोत आसक्ति हती.” बहोत आसक्तिको मतलब ही ‘व्यसन’ है. “सों श्रीआचार्यजी महाप्रभु अड़ेलमें कथा कहते. तब एक दिन दिनकरसेठ यमुनाजीके तीर रसोई करनको गये. तहां नाहीके चून सानीके अंगाकरि गढि. पातरि पर धरि उपरा बराई दियो. ताही समय श्रीआचार्यजीको जलघरिया जल भरन आयो. तब तासों दिनकरदासने पूछी ‘जो श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहा करत हैं’? तब जलघरियाने कही ‘श्रीआचार्यजी पोथी खोले हैं. अब कथा कहेंगे’. तब दिनकरसेठ उन जलघरियाके वचन सुनत ही कच्ची लीटी ले जलपान किये. सेके नाही. बेगि ही आय कथा सुने. पाछे कथा श्रीआचार्यजी कहि चुके तब जलघरियाने श्रीआचार्यजीसों कह्यो ‘महाराज, दिनकरसेठ कच्ची अंगाकरि बिना सेकी खायके आयो है’. तब श्रीआचार्यजी दिनकरसेठ ते पूछे ‘तु बिना सेकी अंगाकरि क्यों खायो?’ तब दिनकरसेठ बोले ‘महाराज, अंगाकरि तो नित्य सेकीके लेऊंगो परन्तु यह आपुके मुखसों कथामृत कब सुनुंगो? जो अंगाकरि सेकतो तो यह अमृत कैसे मिलतो?’”

(सहज उपलब्ध साधनसु ही उन्नति होवे)

ये उनकी कथासक्तिको हेन्ओवर् सेवक बनवेके बाद भी कायम रह्यो है. ये उनके पास उपलब्ध साधन है. हर प्राणीके पास जो उपलब्ध साधन हैं वाके

हिसाबसु वाकी उन्नतिकी साधनाको प्रकार गढ़्यो जानो चाहिये. जैसे शेरकु काटवेको, हाथीकु सूँढको, गधाकु दुलत्ती मारवेको साधन उपलब्ध है. उपलब्ध साधन यदि वापरेंगो तो वामें उत्कर्ष आयेगो. जैसे अपने दांत है वामें तीन प्रकार है कुतरवेके चबावेके और काटवेके. दांतको साधन एक होवे परन्तु वामें तीन प्रकार है. जो साधन अपने पास उपलब्ध है वो अपनेकु वापरनो नहीं आयो तो धोबीको कुत्ता न घरको न घाटको रहे.

ये शिस्त प्राचीन सभी चिकित्सक-गुरु लेते हतें. जाको जो बीजभाव है वा बीजभावके अनुरूप वाकी आध्यात्मिकता खिले, वाकी सावधानी लेते हते. महाप्रभुजी इनके पास जबरदस्तीसु सेवा करवाते तो ठाकुरजीकु परिश्रम होतो परन्तु ऐसे नहीं केहके कथा सुनवेकी छूट दी. भक्तिवर्धिनीमें जैसे आप कहो हो “सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिदृढा भवेत्, यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मर्तिमम” भगवान्को जैसे रूपको भजन हो सकें हैं वैसे भगवान्की लीलाके भी श्रवण कीर्तन स्मरण हो सकें हैं. ऐसे भगवन्नाम-गुणके श्रवण कीर्तन स्मरण हो सकें हैं. प्रभुकी लीलाके स्थलन्को जाकु अपन् ‘यात्रा’ कहवे है (आजकी इन्द्रियभोगार्थ की जाती वैभवी यात्राको नहीं) मतलब प्रभुकी लीलास्थलीकी सिहरनको अनुभव करवेके लिये यात्राके लिये जाते हतें. प्रभुने जा स्थलन्पे लीला करी वाके अनुभवके लिये यात्रा करतें वो भी एक प्रकार है. ऐसे अनेक साधनाके प्रकार, जैसे पूजाके ढंगसु सेवाके ढंगसु ध्यानसु बाह्य ढंगसु आन्तरिक ढंगसु, जाके पास जो साधन उपलब्ध है वासु सेवा करनी ये मुख्य सिद्धान्त हतो. जाके पासमें वो साधन नहीं है वाको मतलब ये नहीं कि भगवान् वाको उद्धार नहीं करें, पर कथासाधनासु वाको उद्धार कर सकें हैं.

ये ही बात महावनकी क्षत्राणीमें है के स्वरूपनिष्ठाके कारण उनकु भगवद्दर्शन भये, भगवान्के साथ संवाद भी भयो. जा अधिकारपे वो जी रही हती वा अधिकारसु वाकु ऊपर उठानो है. ऐसे ये कथाकी आसक्तिसु जीवेवाले भक्त हैं और वासु ही उनकु आगे बढ़ावे तो उनकु उत्कर्ष होवेगो.

(गुरुको कर्तव्य धर्मचेला बनावेको है, खुदके चेला बनावेको नहीं)

कर्म ज्ञान भक्ति या स्वरूपनिष्ठा जो अपने पास जो उपलब्ध सामर्थ्य है वाको अपन् धार्मिक सदुपयोग कर सकें हैं. अनुपयोग और दुरुपयोग भी कर सकें

हैं. जैसे खुद आचरण नहीं कर रहे हो और अपनी श्रद्धाकु लेके गांवसु झगड़ा करे वो दुरुपयोग है. यदि गुरुकी आस्था शिष्यकु भगवन्मार्गपि प्रवृत्त करवेकी है तो वो सच्चो आचार्य है. शिष्य मूंडवेके लिये की जाती प्रवृत्ति अलग प्रकारकी है. वामें धर्मको चेला नहीं बनके गुरुको चेला बन रह्यो है. वास्तविकता गुरुके चेला नहीं बनके धर्मके चेला बनवेकी है.

(कथाके कारण भीतर प्रकट होते प्रभुको भोग धरवेकी आज्ञा)

“तब श्रीआचार्यजी बहोत प्रसन्न होईके कहे ‘आजु पाछे रसोई संवारीके भोग धरीके महाप्रसाद लेके आईयो. जब तु आवेगो तब कथा कहूंगो. तेरे आये बिना कथा न कहूंगो. आजुते तु मुख्य कथाको श्रोता है.’ ता पाछे दिनकरसेठ हु बेगि रसोई करते. जो श्रीआचार्यजी मेरे लिये बैठि रहें सो आछो नाही. और कोई दिन रंच ढील हु लगे तब दिनकरसेठ आवे तब आपु कथा कहेंतें” या वार्ता प्रकरणमें अपन् ये समझ सकें कि इनके पास ठाकुरजी नहीं है तो भोग कहांसु धरेंगे? ये तो कथामार्गी है सेवामार्गी नहीं. स्वरूप नहीं है तो भोग कहांसु धरेंगे? अपने यहां प्रसादको जो उटपटांग माहात्म्य जो बढ़ायो है के ठाकुरजीकु भोग धराये बिना नहीं खानो. या बातकु महाप्रभुजीने कभी नहीं बढ़ायो. महाप्रभुजीने समर्पितके भोगधरावेके आर्दश बढ़ायो है. तुम्हारे पास जो है वाकु तुम समर्पित करो. इनके पास क्या है? रोटीके साथ शाक खावेकी स्थिति नहीं है. और ये रोटी भी कैसे समर्पित करेंगे? जैसे मूर्तिकार कोई मूर्तिकु पत्थरमें घड़े है और वामें भगवान्को आकार प्रकट होवें और वो अपने लिये सेवनीय पूजनीय या अर्चनीय हो जावे, ऐसे ही कथाकी प्रणालीसु अपने हृदयमें भगवान्को रूप निर्मित होवें हैं. कोई भी कथा अपन् निरन्तर पढ़ते रहेवें हैं तो कथामें आते चरित्र या वाके गुण व्यवहार के कारण अपने मनमें रूप निर्मित होवे है. वो रूप दिनकरजीकु प्राप्त है. उनके भीतर जो रूप प्रकट भयो वा रूपकु भोग धरवेकी यहां कही है.

(श्रवणभक्तिसू कृष्णभक्तिको संकेत षोडशग्रन्थमें)

षोडशग्रन्थमें या बातको संकेत मिले है “सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिदृढा भवेत्” ऐसो भी कह्यो है “बीजभावे दृढे तु स्यात् त्यागात् श्रवणकीर्तनात्...ततः प्रेम तथासक्तिः व्यसनं च यदा भवेत्” ये दिनकरसेठको

केसू है. घर छोड़के श्रवण-कीर्तनकी प्रणालीसु (दृढ़)बीजभाव प्रेमासक्तिव्यसन तक खिल सकें हैं.

(निरन्तर श्रवणके कारण मनमें भावात्मक स्वरूपको प्राकट्य)

यामें एक विचार सहज ऐसो आवे कि कथाव्यसन तो उनकु पहलेसु ही हतो. पर वो कथाव्यसन हतो. जब कृष्णकी कथा सुननी शुरु करी तब वो कृष्णकथाव्यसन हो गयो. तब उनके मनमें कृष्णको एक स्वरूप घड़ायो.

जैसे मेरी छोटी बेटीकु जब मैं अमदावादके जूमें शेर दिखावे लेके गयो वाके पहले उनकु शेरकी भयानकताको वर्णन कियो हतो. जो सुनके उनके मनमें शेरको रूप उभर्यो. जब मैं वाकु पिंजराके पास लेके गयो वा बखत मेरे दुर्भाग्यसु शेर दहाड़्यो. और वाने रोना शुरु कियो कि अब यहां नहीं रहेनो. वाके मनमें शेरकी इमेज् पहलेसु हती. यदि वा शेरकी ऐसी कहानी सुनाई होती के कोई जंगलमें छूटे भये भयो बच्चाकु शेरने उठायो पाल्यो बड़ो कियो तो ऐसी कहानीके कारण उनके मनमें शेरकी पोजिटिव् इमेज् बनती. अपनने कौनसी कथा सुनी वाके कारण अपने मनमें कथानायककी इमेज् होवे है.

महाप्रभुजीके संगके कारण दिनकरजीकु कृष्णको एक विलक्षण स्वरूप मनमें प्रकट भयो जाके बारेमें महाप्रभुजी केह रहे है तुम भोग धरो. महाप्रभुजीने उने दो जवाबदारी दी. एक तो कथा सुनवेकी और दूसरी कथाके कारण उनके मनमें बिराजते प्रभुको भोग धरवेकी. प्रभु कितने प्रेमसु उनको धर्यो भयो भोग अरोगते होयेंगे क्योंकि वो उनको भावात्मक स्वरूप हतो जो स्वयं दिनकरसेठने गढ़्यो हतो.

(श्रवणभक्तिसु दिनकरदासको उत्कर्ष)

जैसे तुलसीदासजीकु राममें दृढ़ बीजभाव है तो उनकु श्रीनाथजीके दर्शन करते समय भी ऐसो लग्यो कि धनुष्य-बाण हाथमें लो तो कुछ दर्शन भये ऐसो लगे. बीजभावके दृढ़ होवेको भक्तिमें बहोत मेज् रोल है. अदृढ़ बीजभाव कहीं भी टुल जावे है. जा भक्तकु अपने इष्टदेवमें जैसो दृढ़भाव होवे है वो अपने यहां

हर बखत मान्य रख्यो है. याके कारण श्रीगुसांईजीने तुलसीदासजीकु कह्यो के “तुम कृष्णके कीर्तन गावत हो ऐसे कीर्तन गावेवारे हमारे यहां बहोत हैं पर जैसे रामके कीर्तन गावत हो ऐसे गावेवारो कोऊ नाही. तासों तुम रामके ही पद गावो.” जाके पास जो उपलब्ध है वाके आधारपे वाको उध्धार होनो चाहिये. दिनकरसेठकु कथाव्यसन उपलब्ध है और इनको उत्कर्ष इतनो के आचार्यचरण इनके बिना कथा नहीं करते, ये कितनो बड़ो अधिकार आचार्यचरणने इनको मान्यो इनको इतनो उत्कर्ष क्यों मान्यो क्योंकि कथाकी प्रणालीसु भी भक्तिको या तरीकेको उत्कर्ष हांसिल हो सके है. जाके पैर इनके जूतामें समाते होवे उनकु प्रयास करनो चाहिये. नहीं समाते होवे और जबरदस्ती पहेनके चले तो गिरेगो ही. ये रहस्य अपनकु समझनो चाहिये. ये श्रवणभक्तिके मुख्य अधिकारी है. कथाश्रवणकी प्रक्रियासु इनके हृदयमें प्रभुको एक ऐसो स्वरूप प्रकट्यो है जाकु ये जब चाहे तब इनकु भोग धर सके है. कथाकी उनकी जो आसक्ति हती वाकु संतुष्ट करवेके बाद वो उपलब्ध साधनसु मानसी सेवाको प्रकार महाप्रभुजीने प्रदान कियो. क्षत्राणीकी वार्तामें उनकी स्वरूपनिष्ठासु उनको उत्कर्ष कियो. वाके कर्म ज्ञान भक्ति के साधन महाप्रभुजीने स्वयम् आचरे.

(षोडशग्रन्थ और वार्ता की एकवाक्यता)

क्षत्राणीकी वार्ता और दिनकरसेठकी वार्तामें मौलिक अन्तर ये है के दिनकरसेठमें स्वरूपनिष्ठासु प्रबलनिष्ठा कथाभक्तिकी है वाके कारण महाप्रभुजी इनकु यहांसु आगे बढ़ा रहें हैं. भक्तिमें भी श्रवणनिष्ठा ज्यादा है. वा श्रवणभक्तिकी निष्ठासु इनकु मानसी तक पहुंचावेको महाप्रभुजीने ये वचनामृत कियो है. इतनो खुलासासु षोडशग्रन्थमें वाक्य नहीं आयो है. संकेतरूपसु भक्तिवर्धिनीमें जरूर आयो है. पर ये वार्ताको प्रकरण या बातको अपनेकु खुलासा देवे है. क्षत्राणीजी स्मरणभक्तिके अधिकारी है, दिनकरसेठ श्रवणभक्तिके अधिकारी है और मुकुन्ददास कीर्तनभक्तिके अधिकारी है. सेवा नहीं करी तो भक्ति तो करी. स्वरूपनिष्ठासु ज्यादा धर्मनिष्ठा प्रबल है और धर्मनिष्ठासु धर्मी प्राप्त हो सके है. धर्मनिष्ठासु धर्म प्राप्त हो सके है. क्षत्राणीकु खुदकु प्राप्त नहीं हो रह्यो है तो “स्वदासाथ-कृताशेष-साधनः सर्वशक्तिधृक्” आचार्यचरण कर रहे है. आचार्यचरण स्वयं सेवा करें हैं जो क्षत्राणी नहीं कर पायी हती.

(उपसंहार)

इन दोनो वार्ताको मूल रहस्य ये है कि स्वरूपनिष्ठा होवे चाहे धर्मनिष्ठा होवे, जो अपनेकु उपलब्ध है वासु अनुपलब्धकु खोजनो है. जैसे अपन् जो पहेलो कदम रखें, दाये या बाये को, वाके बादमें दूसरो कदम दाये या बाये को धरनो है. जो गंगाको घाट उपलब्ध है वामें अपनेकु गंगाकी समग्रता खोजनी है. गंगाकी समग्रता अपनेकु उपलब्ध नहीं है.

दिनकरदास मुकुन्ददासकी वार्ता

(भगवद्रागमूलक भक्तिरसानुभूति)

अथवा

(नामभक्तिसं कृष्णभक्ति)

(उपक्रम)

महावनकी क्षत्राणीकु महाप्रभुजीमें धर्मनिष्ठा ज्यादा हती, सेठ दिनकरदासकु महाप्रभुजीद्वारा किये जाते लीलोपदेश कर्तव्योपदेश शरणधर्म में ज्यादा निष्ठा हती. गंगाके कौनसे घाटपे स्नान कर रहे है वो इश्यु नहीं है गंगामें स्नान कर रहे है वो मुख्य इश्यु है.

(भगवान्‌के छह गुण अपनेमें अनुस्यूत होवें हैं)

प्रभुको स्वरूप सच्चिदानन्द है. सच्चिदानन्द होवेके कारण वो 'है' वाकु 'होवेकी अवेरनेस् है' और 'आनन्दरूपता' है. वो आनन्दरूपता-आनन्द है वाकु धर्मी तरीके ट्रीट् कियो है. आनन्दके धर्म ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य माने गये हैं. महाप्रभुजी आज्ञा करे है "ये जो आनन्दमें रहे भये धर्म हैं ये धर्म ब्रह्मकु भगवान् बनावे है." भग्=ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य. भग जामें होवे वो 'भगवान्'. आनन्द भगवान्‌के रूपमें प्रकट है. भगवान्‌के ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य में सबमें एक तरीकेकी आनन्दात्मकता रही भयी है. अपनेमें भी ये छह गुणन् छोटे-मोटे रूपमें तो होवें हैं.

(ऐश्वर्य और वीर्य)

कोईपे भी अपनो ऐश्वर्य चले है, कुछ काम करवेको सामर्थ्य अपनेमें भी हैं. धर्मनिष्ठाके तहेत कोई भी साधन-कर्म ज्ञान भक्ति या प्रपत्ति होवे, वाकी अपने भीतर सामर्थ्य तो होवे ही है जब अपन् वाकु अपनी साधना तरीके जी रहे होंय.

(भक्त-भगवान्‌के यशमें एकरूपता)

यशमें भी, जैसे अपन् भगवान्‌को यश गावें वैसे ८४-२५२ वैष्णवन्की वार्तामें भगवदीयन्को यश गायो है. हर वार्ताके उपसंहारमें आवे के 'तासों इनकी

वार्ता कहां तांई कहि जाय'. यामें साफ है के यहां भगवदीयको यश गानो है. यशोगानरूप वार्तामें भगवान्को यश यदि प्रकट हो रह्यो है तो कैसो? जैसे भक्त वैसे भगवान्. महाप्रभुजीने शिष्य नहीं बनाये, सेवक बनाये हैं. सेवक प्रभुके बनाये. अष्टाक्षरकी दीक्षासु या ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षासु, भगवान्की शरणागति या भगवान्की सेवा-कथात्मिका भक्तिमें प्रवृत्त करवेके लिये दीक्षादान दियो. वा दीक्षादानके बाद प्रभुके सेवक बनाये है खुदके सेवक नहीं बनाये. ये बात उत्सर्गके रूपमें सच्ची है, पर अपवादके रूपमें कुछ सेवकनुने जब महाप्रभुजीसु दीक्षा लेवेंके बाद ये बिनती करी और “आचार्यदेवो भव”के अनुसार आचार्यचरणको सेवक होनो पसंद कियो. महाप्रभुजी स्वयंके लिये सेवक नहीं बनाते हते पर कोईकु प्रभुसेवाकी अनुकूलता नहीं हती तो उन्होंने ये पसंद कियो के आचार्यचरणने जिनके सेवक बनाये हैं उनकी सेवा नहीं कर पा रहे हैं तो हम आचार्यचरणकी सेवा करें.

वृत्रासुरकी चतुश्लोकीमें धर्मार्थकाममोक्षको एक आदर्शके स्वरूपमें स्वीकार्यो गयो है. तो वामें अपन देखें के “अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः” (वृत्र.चतु.१) मैं दासको भी दास हूं. ये भावकु धर्मके रूपमें स्वीकार्यो है. तब समझ सकें के आचार्यचरण जो प्रभुकी सेवा कर रहे है वो आचार्यचरणकी सेवामें प्रभुकी सेवा आ ही रही है. यहां कोई कर्मको अपवाद नहीं हो रह्यो है पर धर्मकु जीवके अन्तःदृष्टि है, वाको एक्सटेन्शन हो रह्यो है. साक्षात् सेवा तो धर्म है ही, पर सेवकन्की सेवा भी धर्म हैं. ‘दासानुदासो भवितास्मि भूयः’ महाभारतमें “तद् भृत्य भृत्य परिचारक भृत्य भृत्य. भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ” हे मधुकैटभहरि, मेरो जन्मको फल मोकुं यामें मिल जावे है. मैं जो तोकुं प्रार्थना कर रह्यो हूं वो इतनीसी प्रार्थना है के यदि तेरी सेवा मोकुं नहीं मिलती होवें तो तेरे सेवकन्की सेवा मिलें. यदि तेरे सेवकन्की सेवा नहीं मिलती होवें तो सेवकन्के सेवकन्की सेवा मोकुं मिलें. या तरहसु भी तु मोकुं याद रख ले के मेरे भृत्यके भृत्यको भृत्य है. ये भक्ति बोल रही है. ये भक्तिकी भाषामें, अहंकारके विलोपन या खंडन के कारण प्रकट्यो दैन्य नहीं है पर दैन्यवश प्रकट्यो ‘दैन्य’ है. भगवान्में प्रेमके वश कहे है अच्छा तेरी सेवा नहीं मिलती होवे तो तेरे सेवकन्की सेवा मिलें. सेवकन्की सेवा नहीं मिलती होवें तो सेवकन्के सेवकन्की सेवा मिलें. सावधानी क्या है? सेवा कोईकी भी मिले पर तु मोकुं याद रखियो.

मैं तेरे सामने नहीं आतो होउं, तेरे सेवकन्की सेवामें लग्यो होउं और मोकुं तु भूल जावे तो ऐसी सेवकन्की सेवा मोकुं नहीं चाहिये. तु याद रखे के ये तो मेरे सेवकन्के सेवकन्के सेवकन्की सेवा कर रह्यो है, तो मैं भी याद रखुंगो, नहीं तो इमिडियेट् बाँस्के प्रभावमें आके मैं तोकु भूल सकुं. तु मोकुं भूले नहीं तो मेरी सामर्थ्य नहीं है कि मैं तोकु भूल सकुं. “भृत्यस्य भृत्य इति मां स्मर लोकनाथ.” तु लोकनाथ होवेके कारण ये मत भूल जाईयो के मैं तेरी सेवा नहीं कर रह्यो हूं. मैं तो तेरे सेवकन्के सेवकन्की सेवा कर रह्यो हूं. ये भक्तिको (तकाजा) है. ये झगड़ा है. “ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः” (वृत्रासुर चतु.४) मेरे कर्मके हिसाबसु मैं अनेक जन्म-मरणमें भटकुंगो. वे अनेक जन्म-मरणमें मेरे परिवारके लोगनमें मेरो सख्य होवेंगो. उनमें मेरो सख्य या स्नेह तेरे जो भगवदीय है उनके सख्यमें बाधक न हो जावे. “संसारचक्रे भ्रमत स्वकर्मभिः” वो कभी विलुप्त नहीं होनो चाहिये. ये विलुप्त नहीं होतो होय तो मैं अपने आपकु मुक्त मान रह्यो हूं. भगवान्के भगवदीय हैं उनमें अपनो स्नेहभाव है वासु ज्यादा मुक्तिकी जरूरत हमकु नहीं हैं. हमकु उनमें स्नेह हैं तो हम मुक्त हैं. उनमें स्नेह नहीं है और परिवारमें ही स्नेह है तो बन्धे भये हैं.

अपनेमें भगवदीयता हैं, भगवदीयन्के प्रति भीतर सख्यभाव हैं तो ये सख्यभाव भगवदीयन्को यश हैं इतनो ही नहीं भगवान्को भी यश है ही. भगवदीयताके उपदेशक आचार्यको भी यश है, याके अलावा या मार्गको भी यश है. या मार्गके उपर चलवेके कारण दोनोन्में सख्य प्रकट भयो हैं. कालिदास कहेवे ‘सख्यं साप्तपदीन् उच्यते’ सात कदम कोई भी मार्गमें साथ चलो तो सख्य हो ही जावे है. चाहे कोई भी मार्ग होवे, कर्म ज्ञान भक्ति प्रपत्ति वैराग्य सांख्य योग, जो भी मार्गके ऊपर अपन भगवान्के प्रति सख्यभाव रखके, दास्यभाव रखके, आत्मनिवेदनभाव रखके आगे बढे तो एक बात दिलमें स्पष्ट होनी चाहिये, वा मार्गमें भगवान् भी अपने तरफ चलके पधार ही रहें हैं. प्रभु जा मार्गसु पधार रहें हैं अपन वा तरफ जा रहें हैं. सों दोनोन्को मार्ग वा बखत एक हो जावे. जो जीव ज्ञानमार्गको अनुसरण करे है वा जीवके तरफ प्रभु ज्ञानमार्गसु पधार रहें हैं. जो जीव कर्ममार्गको अनुसरण करे है वाके तरफ कर्ममार्गको अनुसरण करके पधार रहें हैं. भक्तिमार्गको अनुसरण करे तो वा जीवके लिये भक्तिमार्गपे चलके पधार रहें हैं. जा दिन दोनोन्की गतिमें तालमेल बैठ जावेगो वा दिन दोनोन्की मुलाकात हो

जावेगी. अपने यहां यों कहे के “साहिब कैसे मिले? जैसे हम तुम मिले.” यदि अपनेकु चलके जानो है तो रस्ता बहोत दूर है बहोत लम्बी सफर है, पर वाकु अपनी तरफ आनो है तो रस्ता भी दूर नहीं है मंजिल भी दूर नहीं है. सफर भी कष्टकारी नहीं है. या बातकु अपने यहां ‘कृपा’ कही गई है. अब अपन् कौनसे मार्गसु चल रहे हैं वामें अपनो यश है तो वाको भी यश है.

(श्री और ज्ञान)

वा मार्गपि चलवेकी अपनी श्री है तो वाकी भी श्री है के वो अपने मार्गपि चलके आ गयो. जीवात्मा और परमात्मा के मिलनकी बात चल रही है तब ‘ज्ञान’को मतलब (१) अपने स्वरूपको ज्ञान (२) परमात्माके जा स्वरूपकु अपन् मिलवे जा रहें हैं वा स्वरूपको ज्ञान (३) जा मार्गके द्वारा मिलवे जा रहे है वा मार्गके स्वरूपको ज्ञान (४) और यदि वो मार्गकी जानकारी अपनेकु नहीं है तो वा मार्गके उपदेशक-पथप्रदर्शकको ज्ञान भी आवश्यक है. तो अर्थमें अपनेमें भी ज्ञान तो है.

(वैराग्य)

वैराग्यकी बात है तो प्रभुके भीतर वैराग्य होनो बहोत सरल बात हैं. अपने अलावा कोई विषयमें अपनकु दूसरे विषय तरीके राग हो जावे वाको नाम ‘अनुराग’. विषय तरीके अपनो कोई चीज़में अनुराग नहीं होवे तो ‘विराग’ है.

(राग-अनुरागकी स्वरूपमीमांसा)

अनुराग बहोत मीठो शब्द हैं. अपने वेदान्तके सन्दर्भमें मोकुं अनुरागकी जो व्याख्या सटीक लगे है वो ये है के “नवा अरे सर्वस्य कामाय सर्व प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय सर्व प्रियं भवति.” (बृह.उप.२।४।५) अपने बारेमें अपनकु राग हैं तो अपन् दूसरेके प्रति अनुराग प्रकट कर सकें हैं. अनुराग=वा रागके पीछे चलवेवालो राग. यदि आत्मराग नहीं है तो कोई विषयके प्रति अनुराग कैसे प्रकट कर सकें? मोकुं मेरे प्रति राग नहीं है तो विषयके प्रति राग कैसे रख सकुंगो आत्मरागके पश्चात् जो आवेवालो राग, वाको नाम ‘अनुराग’ है. मैं यहां अनुरागकी स्वरूपमीमांसा बता रह्यो हूं. वाकी कारणमीमांसा नहीं बता रह्यो

हूं. जब भी दूसरे विषयके प्रति अनुराग नहीं रख पावे तो विराग है. अपनके लिये अपने अलावा हर विषय हर वस्तु दूसरो विषय है. प्रभु भी अपने लिये पहेले अपने आत्मानुरागसु अनुरागके विषय बनके आवे है. वेदान्त भागवत यासु उलटी बात कहे है के तुमकु तुम्हारी आत्मामें भी अनुराग है, राग तो तुमकु परमात्मामें ही है. जो परमात्मा तुमकु अनुभूत नहीं हो रह्यो है वो परमात्मा तुम्हारे भीतर बैठ्यो भयो है. वाको राग अनुरागके रूपमें आत्मामें प्रकट होवे है. आत्माको अनुराग देहमें अनु-अनुराग तरीके प्रकट होवे है. दियाकी लॉ जल रही है वहां जितनो तेज है वासु दीपकी प्रभामें तेज कम हो जावेगो. दीपकी प्रभामें जो तेज है वासु कम तेज दीपके आलोकमें रहेगो. वासु भी कम तेज दीपके परावर्तित प्रकाशमें होवेगो.

(अपने अनुराग-विरागकी क्षुद्रता)

अपनो विषयमें विराग है तो वा विषयमें अनुरागकी मात्रा कितनी क्षुद्र है वासु विराग भी गवर्न (नियन्त्रित) हो रह्यो है. याही लिये विषय अपनकु झांसा कैसे देवें? थोड़ोसो विषय अपनकु माफक आवे तो अनुराग हो जावे. माफक आनो बन्ध हो गयो तो विराग हो जावे. ठंडमें गरम कपड़ामें अनुराग होवे है, पर अपन् ओढ़ रहें हैं और ठंड उड़ नहीं रही तो लगे फेंको, का कामको है? तुरत विराग आ जावे. अपने विषयके अनुराग और विराग कितने क्षुद्र है वो समझ सकें. पैदा हो जावे और कितने जलदी खत्म हो जावे. वस्तुतः अनुराग नहीं है अनु अनु अनु राग हैं. यदि मूलमें अनुराग होवे तो इतनी जलदी खतम कैसे हो सके? ये डायल्युट होके आयो है

एक उदाहरण देके समझाऊं. जहां सूरज उग्यो और धूप आयी, वहां प्रकाशके साथ वाकी गर्मी भी आवे है, जब अपन् साक्षात् सूर्यके नीचे होवे तब, पर छतके नीचे बैठे होवे तो क्या होवे? प्रकाश घर झील ले है, वाको प्रताप भी घर झील ले. अपने तक प्रकाश और प्रताप सीधो नहीं आवे. पर वा प्रकाश और प्रताप को उजाला या गर्मी नहीं आवे ऐसो केह सके? जहां सूरजकी धूप नहीं आ रही है वहां सूरजको उजाला तो आ ही रह्यो है. जा सूरजके धूपकी गर्मी महेसूस नहीं हो रही है पर थोड़ी बहोत गर्माहट तो आवें हैं. ये बात अनु अनु हो गई. वो घटतो चल्यो जावे पर खतम नहीं हो रह्यो है. खतम नहीं हो रह्यो है करके घट नहीं रह्यो है ऐसी बात नहीं है. जैसे जैसे वाकु अनु अनु करते गये वैसे वैसे घटतो

जावेगो. यासु समझ सकें के कोई भी विषयमें अपनो अनुराग न इतनो प्रबल है, न अपनो विराग इतनो प्रबल है. पेड़की एक डालीपे सूखे पत्ताकी तरह अनुराग और विराग लटके भये हैं. हवा चले तो टूटके उड़ जावें, हवा नहीं लगे तो रहे जावें. गीले पत्तामें अपनी डालीके प्रति अनुराग ज्यादा होवे. अपने अनुरागकी और विरागकी दोनोन्की ये स्थिति हैं. जहांसु अपनू विरक्त हैं वहां थोड़ोसो अनुरक्त हो जावे तो अनुराग हो जावे. अनुराग करते होवें और अपनकु दगा भयो है तो विराग हो जावे. अपने बारेमें राग घट्यो तो दगा करे के न करे, अपनेकु विराग हो जावे. अपनेमें राग नहीं रह्यो तो विषयमें अनुराग नहीं रहे जावे.

ऐसे ही परमात्मामें राग नहीं रह्यो तो अपनेमें भी अनुराग नहीं होवे. ये बातकु वेदने बहोत ही अच्छे ढंगसु समझाई हैं. सब इन्द्रियनमें स्पर्धा भयी के या शरीरमें तेरो क्या महत्व? अन्तमें प्राणकु पूछी के तेरो क्या महत्व? तो प्राणने कही के कहो तो निकलके बताउं. जब प्राण निकलवे लगे तो सब इन्द्रियें निकलके बहार आगयी. तो सब इन्द्रियनने मान लियो कि हमलोग खोटी शेखी मार रहें हते, प्राण है वो मुख्य है. प्राण मुख्य है वाके कारण हमारो जो विषयानुराग है वो प्राणानुराग है, करके इन्द्रियनको विषयानुराग है. प्राणानुराग यदि नहीं रह्यो तो कोई इन्द्रियनकु विषयानुराग रह्यो नहीं जावे. जीवेकी तमन्ना है तो बहोत कुछ पावेकी भी तमन्ना है. जीवेकी तमन्ना खतम भयी तो पावेकी तमन्ना भी खतम हो जावे है. अपनो विराग और अनुराग को या तरीकेको लफड़ा है. अपनमें 'मैं' और 'परायो' को अनुभव हो सके है करके अपनकु अनु अनु अनुराग लगे है.

(प्रभुको आत्मराग होवे, अनुराग नहीं)

प्रभु तो लोकनाथ, इतनो ही नहीं लोकात्मक हैं. प्रत्येक रूपमें अपनो अभेद तो अनुभव कर ही रहें हैं तो प्रभु विरक्त होवेंगे कहांसु. कोई चीज़सु भी न तो अनुरक्त हो सके है न विरक्त हो सकें हैं, वो तो आत्मरक्त हैं. प्रभुमें आत्मरति होयवेके कारण आत्मराग है अनुराग नहीं है. अपनेमें अनुराग प्रकट होवे है ऐसे प्रभुमें अनुराग प्रकट नहीं होवे है. प्रभुको अपने अलावा कोई चीज़को अनुभव ही नहीं है. अनुराग नहीं होयवेके कारण प्रभुको जो विराग है वो कितनो पोज़िटिव विराग है.

(प्रभुके गुण आनन्दात्मक होवे, अपने गुण सुख-दुःखात्मक होवे)

वो अपनेकु हांसिल नहीं होवें हैं. ये विराग अपनेकु हांसिल नहीं होवे, पर थोड़ो बहोत विराग अपनेकु हांसिल हो रह्यो है. तो अपनू ये समझ सके के अपनो ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य ये गुण अपनेमें हैं, पर इनमें आनन्दात्मकता नहीं है. प्रभुके ये छह गुणन् आनन्दात्मक क्यों हैं? क्योंकि प्रभुको ऐश्वर्य कोई दूसरेको तो है नहीं के जाके सामने कोई रिवोल्ट करे

मेरो ऐश्वर्य दुःखी कब हो जावेगो? जब मैं बच्चाकु कहूं के ये काम कर और बच्चा कहे के नहीं करूं, तो ऐश्वर्य काम नहीं आवे करके दुःखी हो जावे. मेरेमें कोई सामर्थ्य है वो सामर्थ्यसु मैं कोई काम करवे जाउं, वो काम इतनो टेढ़ो है के मेरी सामर्थ्यसु पूरो ही नहीं होवे तो मेरो वीर्य दुःखद हो जावे. फेमस् फिल्मस्टार्सको यश आनन्दात्मक नहीं रहेके दुःखात्मक हो जातो होवे है. कोईकी श्री कोईकु दुःखात्मक हो जावे है. प्रभुकी श्री ज्ञान वैराग्य कभी दुःखात्मक नहीं होवे हैं. क्योंकि वो सारे षट्गुण आनन्दके धर्म तरीके प्रकट हो रहें हैं. अपनेमें आनन्दके धर्म तरीके नहीं पर अनुरागके धर्म तरीके प्रकट हो रहें हैं. अनुरागकी फाउन्डेशनके ऊपर अपनो ऐश्वर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य को मकान खड़ो कियो गयो है. अब वो अनुराग जा बखत खिलवे लगे वा बखत वो भी सब खिलवे लग जातें होवें.

(भगवान्को स्वरूप=सच्चिदानन्द)

भगवान् सच्चिदानन्द होवेंके कारण भगवान्के ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य सत् हैं. सर्वत्र सर्वदा है. चित् है वाको मतलब क्या? भगवान्के ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य को रूप ऐसो नहीं हो सकें के जा ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य को खुदकु भान न होवे. अपनो ऐश्वर्य कुछ होवे, पर अपनेकु खुदकु भान नहीं होवे. वीर्य होवे पर वाको भान अपनेकु नहीं होवे. यश श्री ज्ञान को भान अपनेकु नहीं होवे है. ज्ञानको भान कब होवे? जब अपनेकु कोई अज्ञानी मिल जावे तब ज्ञानको भान हो जावे है. अपनेसु ज्यादा ज्ञानी मिल जावे तो अपनको अज्ञानको भान होवे लग जावे है. पर या तरीकेके लफड़ा भगवान्के ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य में नहीं है. वो 'है' मतलब सर्वत्र है, सर्वदा है. उनकु होवेको भान उनकु खुदकु हो रह्यो है. या लिये वो दुःखात्मक भी नहीं है. अपनेमें ये गुण

नहीं है ऐसी बात नहीं है पर वो सच्चिदानन्दात्मक नहीं है. भगवान्‌के ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य जो हैं वो सच्चिदानन्दात्मक हैं. या दृष्टिस्‌ जब अपन्‌ आनन्दकु देखें तो वा बखत एक ओर बात समझवेकी होवे के भगवान्‌ सच्चिदानन्द हैं ये भगवान्‌के स्‌वरूपको वर्णन है.

(भगवान्‌की लीला=सत्य ज्ञान और अनन्त)

पर भगवान्‌की लीलाके वर्णनमें श्रुति ये समझावे है के भगवान्‌ सत्य ज्ञान और अनन्त हैं. 'सत्‌' मतलब कोई चीज़को होनो. कोई चीज़ है तो कोई न कोई देशमें है कोई न कोई कालमें है. कोई रूपसु है, कोई रूपसु नहीं है. जैसे पुस्तक, पुस्तक है पर कलर्‌ नहीं है. पुस्तक यहां है अभी है पर प्रवचनके बाद नहीं होवे. कोई भी चीज़ जो है वो देश काल स्‌वरूप के बन्धनसु है. प्रभुको होनो देश काल रूप के बन्धनमें नहीं हैं. देश काल और स्‌वरूप प्रभुमें प्रकट भयें हैं. जो भी वस्तु प्रभुमें प्रकट भयी है, नाम रूप कर्म, उनके दोनों रूप हो सकें हैं. वो जा रूपसु जा देशमें जा कालमें है, वो दूसरे रूपसु वा दूसरे देशमें वा दूसरे कालमें प्रकट नहीं भी होवे. नहीं है वाको मतलब 'है ही नहीं' ऐसो नहीं ले सके उपनिषद्‌ ना पाड़े के 'है ही नहीं' ऐसो अर्थ नहीं लेनो. 'है' पर प्रकट नहीं है 'अप्रकट' है. जैसे या हवामें नमी है के नहीं? बरसात पड़ती होवे तो हवाकी नमी अनुभूत होवे. पर बरसात नहीं होवे तो भी हवामें थोड़ी बहोत नमी तो होवे ही है. तो नमी 'है' पर 'प्रकट नहीं है'. कुछ नाम रूप प्रकट है, कुछ नाम रूप प्रकट नहीं होवे है. प्रकट और अप्रकट कु याने सत्‌ और त्यत्‌ कु जोड़ो तो 'सत्य' कहेवावे. जा वस्तुके दोनों पहेलु होवें, कुछ प्रकट पहेलु होवे कुछ अप्रकट पहेलु भी होवे वाको नाम 'सत्य'. 'असत्य' को मतलब के जाको कुछ भी प्रकट या अप्रकट पहेलु नहीं होवें. सत्‌=प्रकट होनो. त्यत्‌=अप्रकट होनो. सत्य=जो वस्तु प्रकट और अप्रकट रह सकती होवें. असत्य=जो वस्तु प्रकट और अप्रकट न रह सकती होवें वो असत्य.

(प्रभुकी सत्यलीला चित्‌लीला और आनन्दलीला)

लीलामें प्रभुको सत्‌ है वो सत्यके रूपमें प्रकटे है. मतलब कोई रूप प्रभु प्रकट करे है कोई रूप प्रकट नहीं कर रहे है. (देश-काल-स्‌वरूपसु) अपनेमें चित्‌ है तो ज्ञान कैसो है? ज्ञान विज्ञान भी हो सके है और अज्ञान भी हो सके है.

क्योंकि जामें चित्‌ नहीं है वाकु अपन्‌ अज्ञानी कहेंगे? या चोकीमें चैतन्य नहीं है तो वाकु अज्ञानी कैसे कहेंगे? जामें चैतन्य होवे वो ज्ञानी हो सके है अज्ञानी हो सकें हैं. ब्रह्मको जो चित्‌ स्‌वरूप है वामेंसु ज्ञान प्रकट हो रह्यो है. वो ज्ञान कैसो है जामें अज्ञान और विज्ञान दोनोकी सम्भावना है. जामें न अज्ञानकी सम्भावना है न विज्ञानकी सम्भावना है वो वस्तु चित्‌ नहीं हो सके है अचित्‌ हो जावेगी. अपनेमें अज्ञान और विज्ञान दोनों प्रकट हो सकें हैं. लीलामें प्रभुको चित्‌ है वो विज्ञानकी तरह प्रकट भयो और प्रभुको आनन्दको स्‌वरूप-ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य जो वाके गुण हैं-वो लीलामें अनन्तताको स्‌वरूप है. जाकु श्रुति यों कहें "एकोऽहं बहुस्याम्‌" में एक अनेक हो जाउं. वो अनन्ततामें प्रकट भयो. 'अनन्तता' याने नामकी रूपकी देशकी कालकी क्रियाकी अनन्तता. ये पांचो तरहकी अनन्तता प्रभुमें प्रकट भयी हैं. जो भी वस्तु प्रकट भयी है वो अनन्ततामें प्रकट भयी हैं.

('विज्ञान'को अर्थ)

या लिये कोई एक वस्तुको प्रभुके रूप तरीके ले रहे है तो वामें दो तरीकेकी सम्भावना है. एक रूपको अज्ञान है के विज्ञान है? जब अपन्‌कु ज्ञान है तो सिर्फ‌ या वस्तुको जान रहे है. विज्ञान कायको नाम है? वस्तुको, ब्रह्मको रूप, ब्रह्मको नाम, ब्रह्मके कर्म तरीके जाननो वो 'विज्ञान' है. वस्तुको जाननो माने जैसे सोनाके बने कटोराकु, कटोरा तरीके भी जान सकें हैं और कटोरा सोनाको बन्यो है वो भी जान सकें है. जब कटोरा सोनाको बन्यो है वो जान सकते होवें तो 'विज्ञान' हैं. खाली चमचा कटोरा तरीके जान रहें हैं तो 'ज्ञान' है. ज्ञान है पर अपन्‌ याकु सोना तरीके जान ही नहीं पा रहे होय तो अज्ञान प्रकट होवेगो.

या तरहसु प्रभुके मार्गपि चलवेमें कभी अपनो ज्ञान प्रकट होवे है, कभी अपनो अज्ञान प्रकट होवे है, कभी अपनो विज्ञान प्रकट होवे है. विज्ञान यदि प्रकट होवे तो क्या स्थिति होवे? कोई भी मार्गपि अपन्‌ चलते होवे तो मार्गपि अपन्‌ चल पावे या लिये के या मार्गसु प्रभु अपन्‌कु मिलनो चाहे हैं. या तरहसु मार्गपि चले तो या मार्गको विज्ञान है. या मार्गपि अपन्‌ चल रहे है, पर अपन्‌कु ये आश्‌वास्तता नहीं है के प्रभु या मार्गसु मोकु मिलनो चाहें हैं तो मार्गको ज्ञान है, पर विज्ञान

तो नहीं है. कौनसो मार्गपि चलनो ये तो नहीं जान रहे है. तो मार्गको अज्ञान भी हो सके है, मार्गको ज्ञान भी हो सके है, मार्गको विज्ञान भी हो सके है.

(विज्ञान परमात्मरागमूलक होवे है)

जा वस्तुकु अपन् प्रभुके पास पहुँचवेके उपाय तरीके समझ रहे हैं वाको ज्ञान होनो तो पहेली शर्त है. अज्ञान नहीं होनो वासु भी पहेली शर्त है. ज्ञान होनो दूसरी शर्त है, पर वाको विज्ञान होनो सबसु छेल्ली शर्त है. या मार्गसु प्रभु मोकुं मिलनो चाहें वो विज्ञान होनो चाहिये. या विज्ञानके साथ कोई चीज़ पकड़ रहे होय तो न कोईके प्रति अनादर है, न कोईके प्रति अपनो द्वेषभाव है. न अपने ज्ञानमें कभी दुःख प्रकट होवेकी सम्भावना है. क्योंकि ये अनुरागमूलक नहीं होके परमात्मरागमूलक विज्ञान प्रकट होवेगो. गंगामें स्नान करवेमें गंगाके घाटको अज्ञान भी हो सके है. गंगाको कोई ज्ञान भी हो सके है. पर जा घाटपे अपन् नहा रहे होय और जा घाटपे अपन् नहीं नहा रहे है वहां सर्वत्र गंगा है तो घाटपे नहाते भये भी विज्ञान है. वा विज्ञानके साथ एक घाटकु पकड़्यो तो तो अपनेकु गंगा मिल सकें है. पर ज्ञानसु पकड़े तो थोड़ी बहोत मिलेंगी, पाछी खो जावेकी डर रहे.

ये बात समझ पावें तो तीनों वार्ताको रहस्य समझ पावेंगे. इनने कोई-कोई घाट पकड़े हैं. कोईने महाप्रभुजीकी धर्मनिष्ठाको घाट पकड़्यो, भगवान् तक पहुँचवेके लिये. इनकु विज्ञान नहीं हतो ऐसो नहीं है. महावनकी क्षत्राणी स्पष्ट यों केह रही है के आपकी सेवा तो मैंने पहले भी करी है. महाप्रभुजीको विज्ञान भी है, ज्ञान भी हो रह्यो है, अज्ञान वाकु नहीं है करके याने महाप्रभुजीकी धर्मनिष्ठाके घाटको ज्ञान प्रकट कर लियो तो कोई लफड़ाकी बात नहीं है.

(प्रभुकी मुख्यताके ज्ञानसु भक्तिमार्गमें चलनो है)

पर यदि प्रभुको विज्ञान नहीं है और अपन्ने महाप्रभुजीको धर्मनिष्ठाको घाट पकड़्यो या धर्मनिष्ठाको घाट पकड़्यो, पर वहां प्रभुकी विद्यमानताको विज्ञान अपन्कु नहीं है तो उपदेशको भी पूरोपूरो असर नहीं होवेगो. कैसे? जैसे मैंने श्रवणभक्तिको घाट पकड़्यो, मैंने कीर्तनभक्तिको घाट पकड़्यो, मैंने स्मरणभक्तिको घाट पकड़्यो. प्रभुकी दिव्यताके प्रवाहमें मैंने जो भी घाट पकड़्यो वामें मोकु

अज्ञान है विज्ञान है के सिर्फ ज्ञान हैं यदि सिर्फ मोकु ज्ञान है तो क्या सम्भव होयगो? वामें अपनी प्रधानता दीखेगी के मैं श्रवण कर रह्यो हूं. मैं कीर्तन कर रह्यो हूं, मैं वन्दन कर रह्यो हूं वामें अपनी प्रधानता दीखेगी. प्रभुको विज्ञान है तो लगेगो के प्रभुको मोसुं श्रवण हो रह्यो है, प्रभुको मोसुं कीर्तन हो रह्यो है. प्रभुके प्रति मोसुं वन्दन हो पा रह्यो है. प्रभुको मैं अर्चन कर पा रह्यो हूं. प्रभुको सख्य दास्य आत्मनिवेदन कर पा रह्यो हूं. प्रभुकी मुख्यतासु ज्ञान अपनेकु होवेंगो. प्रभुकी मुख्यताके ज्ञानमें अपनो आत्मज्ञान खो भी जावेगो तो मुख्यता प्रभुकी रहेगी. वाको कारण क्या? “भृत्यस्य भृत्य इति माम् स्मर लोकनाथ” लोकनाथ होवेके कारण प्रभु वा रूपसु भी एवेलेबल् हो सकें हैं, नहीं हो सकें ऐसो नहीं हैं. पर वो मोकु भी याद रहेनो चाहिये और प्रभुकु भी याद रहेनो चाहिये. मेरी नवधाभक्ति नहीं हो पा रही है श्रवणभक्ति हो पा रही है. श्रवणभक्तिके घाटपे आनन्दकी सरितामें गोता खानो चाह रह्यो है. या कीर्तनभक्तिके घाटपे मेरे आनन्दकी सरितामें गोता लगानो चाह रह्यो है. ऐसे स्मरण अर्चन वन्दन सख्य दास्य आत्मनिवेदन मेंसु कोई एक घाटमें गोता लगानो चाह रह्यो हूं.

(प्रभुरागमूलक साधनामें अनुराग होनो चाहिये)

प्रभु यदि ये बात याद रखें के या घाटसु मेरेमें आनन्दकी सरितामें गोता लगानो चाह रह्यो हैं. तो मोकु भी वा घाटपे गोता लगावेमें प्रभुकी आनन्दसरिताको अनुभव होवेगो. अपनी अहंकारकी साधनाको अनुभव नहीं होवेगो, प्रभुकी कृपाको अनुभव होवेगो. जब प्रभु मोसु या तरीके याद नहीं रखते होय तो मोकु अपने अहंकारको अनुभव होवेगो. मैं या घाटपे प्रभुको श्रवण कर रह्यो हूं. मैं या घाटपे प्रभुको कीर्तन कर रह्यो हूं. तो मैंने अपनी प्रधानता बनाके प्रभुकु गौण कियो. जैसे ही प्रभुको आनन्द गौण कियो वाके बाद मेरे श्रवण कीर्तन स्मरण वन्दन सख्य दास्य आत्मनिवेदन मोकु दुःख भी दे सके है. जब प्रभु मोसु ले रहे है तो दुःखकी कोई बात नहीं है. क्योंकि मैंने प्रभुके प्रति अनुराग प्रकट नहीं कियो है, पर वाके प्रति राग प्रकट कियो है. राग मेरो प्रभुमें है वा रागके कारण मेरो अनुराग श्रवणमें है. वो अनुराग प्रभुके रागके कारण है तो विज्ञान प्रकट हो रह्यो है पर श्रवणमें मोकु राग है और वाके कारण प्रभुमें अनुराग है तो प्रभुकु विषयकी तरह ट्रीट करूंगो. वाके कारण प्रभुमें विराग भी आ सके है. इन सारी वार्तान्को रहस्य ओझल रहे है. पढ़े तो जलदीसु ख्यालमें नहीं आवे है. ये रहस्य है के प्रभुमें

रागके कारण-श्रवण कीर्तन स्मरण कथा सेवा तीर्थ सेवनकी साधनामें अनुराग होना चाहिये. विरहकी साधनाको स्वरूप भी ऐसी है. विरहकी भी साधनामें प्रभुमें राग होयवेके कारण प्रभुके विरहमें भी अनुराग होवे. अपने यहां कह्यो है “हों जानी पियके मिले विरह अधिक सुख होय मिलते मिलिये एकसों विरहे सब जग सोय” तो प्रभुमें रागके कारण विरहमें अनुराग होवे तो बहोत अच्छी बात होवे.

(प्रभुमें रागके कारण विरहमें अनुराग ही ‘विरह’ है.)

विरहमें राग, वाके कारण प्रभुमें अनुराग हो रह्यो है मतलब आप नहीं चाह रहे हो के भगवान् मोसुं मिले तो प्रेम खंडित हो गयो. मैं भगवान्सु बिछड्यो भयो रहूं वैसो नहीं चाह रह्यो पर मैं भगवान्सु मिलुं ऐसे चाह रह्यो हूं. भगवान् नहीं मिल रह्यो है और मोकु विरह हो रह्यो है तो ये भगवान्को दियो भयो विरह है. ये विरह भी मोकु प्यारो है. तो प्रभुमें रागके कारण विरहमें अनुराग अच्छी बात है और विरहमें रागके कारण प्रभुमें अनुराग पाछो घोटाला है. ये सूक्ष्म अन्तरको ख्याल अक्सर लोग देखें नहीं हैं. नवधाभक्तिकी सेवाभक्तिकी कथाभक्तिकी सभी प्रकारकी भक्तिन्में, इवन् कर्म-ज्ञान-प्रपत्तिके प्रसंगमें भी प्रभुमें रागके कारण इन साधनाके प्रकारन्में अनुराग होना चाहिये.

(धर्मिनिष्ठाके कारण धर्मनिष्ठा होनी चाहिये)

प्रपत्तिमें राग है करके प्रभुमें अनुराग है के प्रभुमें राग है करके प्रपत्तिमें अनुराग है तो प्रभुमें रागके कारण प्रपत्तिमें अनुराग है तो अपना भार प्रभुपे ज्यादा हो गयो. और मैं शरणागत हूं, मोकु शरणागति करनी है क्योंकि मेरो राग तो शरणागतिमें है. तो अपनेकु साधनाभिमान आ गयो. धर्मको अभिमान हो गयो, धर्मीको अभिमान नहीं रह्यो. धर्मीमें निष्ठा खंडित हो गई. भक्ति कोई भी रूपमें होवे वामें आवश्यकता हर वक्त धर्मनिष्ठाके बजाय धर्मिनिष्ठाकी ज्यादा है. ये बतोर सिद्धान्त कही जावे. धर्मिनिष्ठाके कारण अपनेकु धर्मनिष्ठा होना चाहिये. धर्मिनिष्ठाके कारण हम शरणागति ले रहे होय तो अलग प्रकारकी शरणागति है. दूसरे दस शरण (शरण्य) हैं तब भी मोकु प्रभुको ही शरण लेना है तो शरणागतिमें आपकी धर्मिनिष्ठा प्रकट हो गई. कोई मेरे शरणप्रतिपालक नहीं है तो कौनके

शरण जाऊं? प्रभुकी शरणागति ले ली तब धर्मनिष्ठाकी शरणागति है. ये दोनोन्में महद् अन्तर हो जावें हैं.

धर्मिनिष्ठा ये तीनों भगवदीयन्को कॉमन् फिचर् है. धर्मिनिष्ठाके वश कोई कोई धर्ममें निष्ठा प्रकट करी है. धर्मन्में रागके वश धर्मीमें अनुराग प्रकट नहीं कियो हैं. प्रभुमें रागके कारण कोई धर्ममें अनुराग प्रकट कियो. महावनकी क्षत्राणीने महाप्रभुजीमें अनुराग प्रकट कियो. दिनकरसेठने कथामें अपना अनुराग प्रकट कियो. ऐसे ही दिनकरदास मुकुन्ददासकी वार्तामें गजबकी बात आ रही है.

(वार्ताप्रसंग और वार्ताविवेचना)

वामें भावप्रकाश और वार्ता दोनोन्कुं मिलाते भये प्रकरणकु तो महाप्रभुजीके दो वचनामृत आवे हैं. खाली वार्ताकु पढ़ें तो एक वचनामृत है. भावप्रकाशमें इनकु नन्दरायजीके भाई बताये गये हैं और इनको जन्म कायस्थके रूपमें भयो. कायस्थ आज तो जाति तरीके ट्रीट करी जाय. पुराने जमानेमें कायस्थ जाति नहीं हती, गवर्नमेन्ट सर्विस्को प्रोफेशन हतो. बादमें प्रोफेशन वाकी जाति बन गई. दक्षिणमें वोही काम करवेवालेकु हम ‘नियोगी’ ब्राह्मण केहते हते. ये सब शास्त्रके भेद नहीं है अपने किये भेद हैं.

मूलमें पुष्टिजीव भगवद्रूप सेवार्थके लिये प्रकट भयो है वो भगवान्की सेवा करते-करते जन्म ले नहीं सके ऐसी बात नहीं है. क्योंकि भगवन्मार्ग स्थापनाके लिये भी भगवद्रूपसेवामें कराये जीव जन्म ले सके है. कोई श्रापवश भी जन्म ले सके है. मार्ग स्थापनार्थ भी जन्म ले सके है. कोई अपराधके वश भी जन्म ले सके है. दो-चार वार्तान्में अपराधकी आ गई तो दो-चार वार्तामें श्रापकी आ गई. दो-चार वार्तामें कुछ नहीं है तो अपनेकु चिन्ता हो जावे के ये नन्दरायजीके भाई होते भये कायस्थ क्यों भये कायस्थ तो बहोत बुरी बला है पर कायस्थकु नीचो मानना जरूरी नहीं है. गवर्नमेन्ट सर्वन्ट होवेको वो काम करते हते. आजकी तारिखमें सभी कायस्थ हैं. वामें बहोत चिन्ताको विषय नहीं है के नन्दरायजीके दोनो भाई होते कायस्थ कैसे भये?

एक दृष्टिसे देखो तो नन्दरायजी ग्वाला हते तो वो भी नीची जातिके हते. कायस्थ है तो वामें बुरी मानवेकी बात क्या है? ग्वाल तो शूद्र जातिके कहवावे. कायस्थ तो शूद्रसु ऊपर होवें. वार्तामें इनके चरित्र देखके श्रीहरिरायजीने कुछ कुछ भावना करी. वामें चिन्ताकी बात नहीं है. वो भावना करवेसु लीलाको बोध अच्छी तरहसु होवे है. ये प्रश्न इतिहासको नहीं होके भावनाको है. गोबरकु जमा करके जब गिरीराजजीकी भावना करे तो वामें इतिहासको विषय नहीं है वामें भावनाको विषय है. 'इतिहास=इति ह आस'. ऐसे भयो वाको नाम 'इतिहास'. इति=ऐसे, ह=निश्चय, आस=भयो. ऐसे ही भयो वाको नाम 'इतिहास'. पर वो जैसे भी भयो वामें मैंने मेरे घरमें भावना करी वो 'इतिहास' नहीं कहेवावेगो, 'भाव' कहेवावेगो. वो इति ह भावयामास है. ऐसे अपनूने भावना करी. यहां भावप्रकाशमें भावनाकी बात है इतिहासकी बात नहीं है.

पर या भावप्रकाशमें आचार्यचरणको एक वचनमृत मिले है. वो वचनमृत काफी महत्वपूर्ण है. वो या तरीकेको है. "श्रीआचार्यजीके पास रहिके मार्गकी रीति सब सीखें पाछे बिनती किये 'महाराज', आज्ञा होई तो घर जैये. हमको अब कहा कर्तव्य है? तब श्रीआचार्यजी ब्रह्मसम्बन्धकी पत्री लिखि हस्ताक्षर दिये और कहे के इनकी सेवा करियो. जो कछु खान-पान करो सों इनकु भोग धरीके लीजो." ये इतनो सो वचनमृत है.

(ब्रह्मसम्बन्धमन्त्रसु उद्धार या कृष्णसु?)

या वचनमृतकी, प्रकरणके अन्तर्गत कितनी जबरदस्त महत्ता है. इनने ब्रह्मसम्बन्ध लियो. या तरीकेके वचनमृतके परेलल् षोडशग्रन्थमें एक भी वचन नहीं है जो या बातकु जस्टीफाय् करतो होवे. "सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो ब्रजाधिपः" ये बात कही है. "कृष्णसेवा सदा कार्या" ये बात कही है. "कृष्णात्परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम्" ये बात कही है. "एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत्" यहां पर कृष्णकी बात कही है. ब्रह्मसम्बन्धको पत्र देवेकी बात कहां कही है? कहीं भी नहीं कही है. वा दृष्टिसे देखो तो महाप्रभुजीको अपूर्व वचनमृत है. अपनू यों नहीं केह सकें के षोडशग्रन्थमें दी गई आज्ञा है वो ही आज्ञा सिद्धान्तकी आज्ञा है. ये आज्ञा नहीं होके सिद्धान्तकी अवज्ञा है. अपनू यों भी नहीं केह सकें के उनकु ठाकुरजी नहीं पधराये वाको

कारण उनको कायस्थ होनो हतो. ये इतने चतुर है के महाप्रभुजीकी बोलती पहेले ही बन्ध कर दी है. आचार्यजीकु दंडवत् करी कहे "महाराज हम महाअपराधी हैं, संसारके सुखदुःखमें परे हैं तो हमारो उद्धार करो". तो महाप्रभुजीने कही "तुम कायस्थ हो तो पुष्टिमार्ग कैसे सधेगो? अपनूकु लगे के आचार्यचरण कायस्थकी निन्दा कर रहे हैं. वो कायस्थजातिकी निन्दा नहीं कर रहे है. पर जा तरहको तुम्हारो प्रोफेशन है वामें पुष्टिमार्ग कैसे निभा पाओंगे? इश्यु ये है. ये बात जातिपे जाती बात नहीं है प्रोफेशनपे जाती बात है. वो चतुर है. तब मुकुन्ददासने कही "महाराज, आपकी कृपासु सब सधेगो. आपकी कृपा शूद्र चांडाल पर होई तो वासों सब सधे. आपकी कृपा बड़े पंडित ब्राह्मणनपर न होई तो वासों न सधेगो." आचार्यचरणकी बोलती बन्ध हो गई हैं. 'तातें आप हमकु कृपा करिके शरणी लेउं. सों शरणके कृपासु हमारो कल्याण होवेगो'. तब आचार्यजी प्रसन्न होयके कहे 'हम जाने के ये कृष्णदास मेघनको काम है' मुकुन्ददासको न्हवायीके नामनिवेदन कराये, सो कछुक दिन वहां आचार्यजीके पास रहिके मार्गकी रीति सब सीखें. पाछे विनती करी 'महाराज, आज्ञा होय तो घर जाय. अब हमको कहा कर्तव्य है?' तब महाप्रभुजीने कही 'तुम ये ब्रह्मसम्बन्धको पत्र ले जाओ. या मन्त्रकी तुम सेवा करो'.

(कृष्णसु ही उद्धार भयो)

यामें आचार्यचरण कृष्ण तक पहुँचवेको घाट दिखा रहे हैं. अपनू उलटो न सोच लें के आचार्यचरणके कागजपे लिखे भये मन्त्रसु वाकु उद्धार हो गयो. आचार्यचरणकी सामर्थ्यपे शंकाको तो अवकाश ही नहीं है. तब प्रश्न ये आवे के आचार्यचरणके लिखे पत्रकी सामर्थ्यसु उद्धार हो गयो जो कृष्णसु होवे तो वल्लभपंथी वामेंसु खोटो अर्थ निकाल ले के आचार्यचरण पत्रपे कुछ लिख दें तो वो भी कृष्ण बराबर है. कृष्ण तो सब कछु है. "सहु बराबर कृष्ण छे नथी कृष्ण बराबर कोय" दयारामजी कहे के कृष्णके बराबर तो सब कछु है. ब्रह्मसम्बन्धको पत्र यदि लिखके दियो तो वो कृष्णके बराबर नहीं परन्तु श्रीकृष्ण सबके बराबर हैं.

(कृष्णभक्तिकी सरितामें नामात्मकमन्त्रके घाटपे स्नानके कारण निरुद्धता)

जब महाप्रभुजीने ब्रह्मसम्बन्ध मन्त्र लिखके दियो वो उनकु कृष्णकी लीलासरितामें बेहवेको एक घाट दिखायो है. घाट दिखाके कही के जो तुम खान-पान करो या मन्त्रकु धरके लीजियो क्योंकि गवर्नमेन्ट सर्विसकी लाईफ् स्टाइलमें कब कितनी अर्जन्सीसु जानो पड़े, कब इमर्जन्सीसु वहां रहनो पड़े, वामें प्रभुसेवा घरमें कैसे कर सके? नहीं कर सके. प्रभुको स्वरूप पधारवे तो प्रभुकु परिश्रम होवे. नहीं पधारवे तो इनकु दीक्षित कियो और प्रभुके तरफ मुड़यो नहीं तो चेला बनायो ऐसो हो जावे. इन दोनों बातनको उपाय महाप्रभुजीने कैसे काढ्यो वो देखो. प्रभुको दियो भयो मन्त्र है वा घाटपे भक्तिकी सरितामें आनन्दसु गोता खाओ तुमकु प्रभु मिलेगो. विज्ञानसु रहित नहीं कियो है. विज्ञानसु सम्पन्न कियो है. केवल मन्त्रज्ञान उनकु नहीं दियो, पर मन्त्रको विज्ञान उनकु दियो. ये मन्त्र जाको है वाकु तुम भोग धरो. वा मन्त्रकु अपन् भोग धर रहे है और वाको प्रसाद ले रहे है तो कृष्णकु अपन् भूले नहीं हैं. कृष्णके रागके कारण मन्त्रमें अनुराग प्रकट कर रहे है. सिद्धान्तकी दृष्टिसु ये नामानुराग भयो, रूपानुराग नहीं भयो. नाम जो है वो कृष्णको रूप है के नहीं “नमो भगवते तस्मै कृष्णायानुत्तकर्मणे रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यतः” (शा.प्र.१) अनेक रूप धारण करके क्रीड़ा करे हैं अनेक नाम धारण करके भी क्रीड़ा करे हैं. अनेक लीलानके द्वारा भी क्रीड़ा करे हैं. तो या मन्त्रके रूपमें भी प्रकट भये. मन्त्र नामात्मक है करके वो नामके रूपसु प्रकट भये. भगवान्के नामके घाटपे निरुद्ध करवेके लिये महाप्रभुजीने मन्त्र दियो है. ये वार्ताको रहस्य है.

महाप्रभुजीके शरणमें आये, महाप्रभुजीने नामनिवेदन करायो और ब्रह्मसम्बन्धको मन्त्र लिखके दियो और कही के मन्त्रकी सेवा तुम ऐसे ढंगसु करो जैसे ठाकुरजीकी. वो सेवा अपने यहां षोडशग्रन्थमें नहीं मिलेगी. ये बात सुबोधिनीमें आचार्यचरणने समझाई है “तव परि ये चरन्ति अखिलसम्बन्धनिकेतया” ‘तव परि ये चरन्ति’में तव=तेरी परिचर्या. साक्षात् तेरी परिचर्या या तेरेसु सम्बन्धित जो कछु है वाकी परिचर्या जैसे अपन् वार्तामें देखें के साक्षात् प्रभुकी परिचर्या नहीं करते हते. प्रभुको नाम प्रतिदिन लेते हते. पर एक दिन उनकु भावना जगी के प्रभु गाय चराके पधारेंगे तो कांटा-कंकड़ सब हटा दउं. वा दिन गुसाईंजी

पहेलीबार उनसु बोले. वा दिन प्रभुके परिचर्याकी भावना भयी. यहांसु प्रभु पधारेंगे तो प्रभुके मार्गकु सजावेकी भावना भयी. तो गुसाईंजी प्रसन्न हो गये.

ब्रह्मसम्बन्ध नामात्मक मन्त्र है वो प्रभुके पधारवेको मार्ग है. रूपकु पधारवेको मार्ग नाम बने है. नामकु पधारवेको मार्ग रूप बने है. महाप्रभुजी तक ये नाम साक्षात् रूपसु पधार्यो है अपने तरफ ये नाम पधारे तो या मार्गसु अपन् रूप तक पहुँच सकें. वो नामसु रूप तक पहुँचावेकी यात्रा है वाके लिये महाप्रभुजीने कही के या मन्त्रकु भोग धरके लीजियो. प्रभुके रागके कारण मन्त्रमें अनुराग है. मन्त्रमें रागके कारण प्रभुमें अनुराग नहीं है. उनकु ज्ञान अज्ञान नहीं है, पर भगवद्विज्ञान है. वाकु गुणगुनावेसु प्रभु तक पहुँच्यो जा सके है. ये भावप्रकाशमें आते वचनमृतको स्वारस्य है.

(तीर्थ प्रभुके प्राकट्यके कारण तीर्थात्मक होवे है-मुकुन्ददासजी तीर्थात्मक हते)

अन्तमें जो वचनामृत आयो यामें “जब इनकी देह छूटी तब सबनने कही उनकु अवन्तिका मिली”. देह अवन्तिकामें छूटी सो अवन्तिका तीर्थ मिल्यो. तो महाप्रभुजीने कही “ऐसे नहीं बोलनो, अवन्तिकाकु ये मिले ऐसे बोलो”. क्यों? बात ध्यानसू समझो. महाप्रभुजीको स्पष्ट अभिप्राय है के जा बखत प्रभु प्रकट होके कहीं भी कुछ भी लीला करें. तो वो काल रूप नाम सारे प्रभुके तीर्थ हैं. कोई नदीरूप है कोई पर्वतरूप है कोई भूमिरूप है. कोई नाम वेदात्मक पुराणात्मक मन्त्रात्मक दीक्षात्मक नाम हैं. प्रभु जिनमें प्रकट होके अपने साथ क्रीड़ा कर रहे हैं वो तीर्थ हैं. प्रभु अपने भीतर प्रकट होके अपने साथ कुछ क्रीड़ा कर रहे हैं. वा प्राकट्यको अपन् महत्त्व देंगे के अपने साथ प्रकट नहीं होके दूसरेके साथ प्रकट होके प्रभुने कुछ लीला करी वाको महत्त्व देंगे? गुजरातीमें कहावत है ‘घरना छोकरा घंटी चाटे पाडोसीने आटो’ प्रभु आपके घरमें हृदयमें प्रकट भये वाकी महत्ता नहीं दे रहे हो, दूसरे ठिकाने प्रकट भये वाकी महत्ताके गीत गा रहे हो मतलब प्रभुको ज्ञान हैं, पर विज्ञान तो नहीं हैं. जा घाटपे बहोत आरती हो रही है वा घाटपे गंगाजी बहोत प्रकट है और जा घाटपे आरती नहीं हो रही है तो लगे के गंगा है के कोई ओर है जहां छप्पनभोग कुनवारा हो रह्यो है वहां लगे के साक्षात् ठाकुरजी हैं. एक तो प्रभु आपके घर बिराजे और छप्पनभोग कुनवारा आप नहीं करो तो आपकी लाचारी हैं के भगवान्की लाचारी हैं याको दंड खुदकु

नहीं देके ठाकुरजीकु दो. तो यामें प्रभुको ज्ञान है पर विज्ञान नहीं है. प्रभुमें राग नहीं है, राग छप्पनभोग कुनवारा में है, राग आरतीमें ताम-जाममें है प्रभुमें तो अनुराग है.

प्रभुसु जुड़े भये जो नाम हैं, प्रभुसु जुड़ी भयी मन्त्रदीक्षा हैं वामें अपनेकु अनुराग होनो चाहिये. वो प्रभुके रागके कारण होवे तो अनुराग सच्चो. इनकु ब्रह्मसम्बन्धदीक्षाको अनुराग इतनो प्रकट भयो तो वार्तामें आवे है के प्रभुको विप्रयोग इतनो भयो के तीन-चार महिनामें ही विरह करते भये नित्यलीलामें पहुँच गये. इनके भीतर नामको अनुराग महाप्रभुजीने प्रकट कियो, प्रभुके रागके कारण, वाके कारण इनने भागवतके १८००श्लोकको अनुवाद करके 'मुकुन्दसागर' ग्रन्थ बनायो. अपने दुर्भाग्यसु मिल्यो नहीं ओर कहीं हस्तलिखित संग्रहमें होवे तो पता नहीं. प्रकाशित तो नहीं है. सुबोधिनी इनकु इतनी तैयार हती. दो दिन तक एक ही श्लोकको अर्थ चलतो रह्यो. पंडितन्ने कही के तुमकु भागवत सुनानी फिजुल है. हम इतनो अर्थ नहीं जाने जितनो अर्थ तुम जानो हो. नामके घाटपे भगवान्की लीला सरितापे गोता लगावेको लाभ कितनो भयो वैसे कायस्थ हते पर या बाजु इनको सामर्थ्य स्वभावमें प्रकट भयो. मुकुन्दसागर और सुबोधिनी जैसो ग्रन्थ वो प्रकट कर सकतें हतें और लगा सकते हते. प्रभुके ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य के कारण अपनेमें प्रकट होते ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य जो हैं वाकु अपन् यों केह सकें-वो अन्वैश्वर्य है, अनुवीर्य है, अनुयश है, अनुश्री है, अनुज्ञान है, अनुवैराग्य है. प्रभुके वैराग्यको अनुसंक्रमण भयो है. आनन्दात्मक गुण है वो कैसे ढंगसु प्रकट भये. याके लिये महाप्रभुजीने टोक दियो क्योंकि अवन्तिका तो सबकु मिल सकती हती. तीर्थकी निन्दा नहीं है, पर जा कारणसु तीर्थ तीर्थ है और इनके हृदयमें नामात्मक प्रभुको प्राकट्य भयो है, वो प्राकट्यको अपन् कम अर्थ नहीं आंके. या बातकु समझावेके लिये, प्रभुको विज्ञान समझावेके लिये कही के इनने तीर्थ पायो ऐसे जरूरत नहीं क्योंकि वो स्वयं तीर्थात्मक हते. तीर्थने उनकु पायो है. तीर्थ प्रभुके प्राकट्यके कारण तीर्थात्मक है, इनमें प्रभुको प्राकट्य है तो ये भी तीर्थात्मक है. अब तीर्थकु तीर्थ मिल्यो है वामें याकु वो मिल्यो के याकु वो मिल्यो. केहवेकी क्या जरूरत है? वा दृष्टिसु देखें तो या वचनामृतको आखो अलग पहेलु है.

(उपसंहार)

महावनकी क्षत्राणीमें स्मरणनिष्ठा हती, दिनकरसेठमें श्रवणनिष्ठा है ऐसे मुकुन्ददासकी वार्तामें नामनिष्ठा है. नामनिष्ठा कितनी प्रबल है के जो मन्त्र उनकु मिल्यो वाकु प्रभुको साक्षात् स्वरूप समझ रहे हैं. वो तो लोकनाथ होयवेके कारण मन्त्रमें प्रकट हो सके हैं. मन्त्रमें देशमें कालमें रूपमें भी प्रकट हो सके हैं तो नाममें प्रकट क्यों नहीं हो सके हैं? प्रभु अपना प्राकट्य नाममें भी कर सकें हैं वो नाममें प्रकट करके बतायो है. या तरहसु ये वार्ता आचार्यचरणकी महिमाकुं समझावे हैं.

दृढ इन चरणन केरो भरोसो॥

श्रीवल्लभनखचन्द्रछटा बिन सब जग मांझ अन्धेरो॥१॥

साधन और नहीं या कलिमें जासों होत निवेरो॥

सूर कहा कहे द्विविध आंधरो बिना मोलको चरो॥२॥

॥अमृतवचनावली॥

(१/क) “पाछे श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्धनधरसों पूछें जो “महाराज कृष्णदासकी तो देह छूटी...सो हम कौनको अधिकार देके बीगार करें? तासों आपु कहो ताको अधिकारी (ट्रस्टी) करें. तब श्रीगोवर्धननाथजी कहे जो “हमहु कौन जीवको बिगार करें? जो कोई अधिकार लेयगो (ट्रस्टी बनेगो) ताको बिगार होयगो तासों तुम एक काम करो जो अधिकारको दुसाला ले सबके आगे कहो (जो) जाकों अधिकार करनो (ट्रस्टी बननो) होय सो दुसाला ओढ़ो. तब जो आयके कहे ताकों देऊ. सो जाको गिरनो होयगो सो आपु ही आयेगो.”

(श्रीगोवर्धननाथजी, ८४वैष्णव वार्ता, कृष्णदासकी वार्ता, प्रसंग-१०)

(ख) सो एक दिन एक वैष्णवने किसोरीबाईकों कछू सामग्री दीनी हती. तब किसोरीबाईने सिद्ध करिके श्रीठाकुरजीकों भोग समर्प्यो. ता दिन श्रीठाकुरजी आरोगवेकों पधारे नहीं. तब किसोरीबाई मनमें बहोत खेद करन लागी. तब श्रीठाकुरजी बोले जो तेमें मेरेलिये सामग्री क्यों लीनी? सो हम कैसे आरोगे?

भावप्रकाश : यामें यह जताये जो औरकी सत्ता-सामग्री अपने श्रीठाकुरजीकों आरोगावनी नहीं. और कछू वैष्णवपेटें ले के श्रीठाकुरजीकों विनियोग न करावनी. सो श्रीठाकुरजी अंगीकार न करें.

(२५२ वै.वार्ता, किसोरीबाई वा.प्र.२)

(२) जो कटोरी (गहने) धरिके सामग्री आई सो तो भोग श्रीठाकुरजी आप ही के द्रव्यकुं आरोगे सो आप ही को भयो. जो श्रीठाकुरजीको द्रव्य खायगो सो मेरो नाहिं अरु मेरो सेवक भगवदीय होयगो सो देवद्रव्य कबहुं न खायगो जो खायगो सो महापतित होयगो. ताते वा प्रसादमेंते भोजन करिवेको अपनो अधिकार न हतो याकेलिए गोअन्कों खवायो अरु श्रीयमुनाजीमें पधरायो. यह सुनिके सब वैष्णव चुप होय रहे.

(महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य.घरुवार्ता-३)

(३) ...श्रीआचार्यजीको वैष्णवने आई कही, “महाराज श्रीद्वारकानाथजी वैभव सहित पधारे हैं.” ता समें श्रीगोपीनाथजी ठाड़े हते (तब) श्रीगोपीनाथजी कहें

“लक्ष्मी सहित नारायण पधारे हैं” तब श्रीआचार्यजी कहे तब श्रीआचार्यजी कहें “वैभव ठाकुरको देखि के तिहारो मन प्रसन्न भयो है? (तब) श्रीगोपीनाथजी कहे, तिहारो कहाइके श्रीठाकुरजी की वस्तुमें अपनो मन करेगो ताको निरमूल नाश जायगो”. तब श्रीआचार्यजी कहें “हमारो मारग तो ऐसोई है.”

(श्रीगोपीनाथप्रभुचरण, ८४ वैष्णव वार्ता, दामोदरदास संभलवारेकी वार्ता).

(४/क) धनादिकी कामनाकी पूर्तिकेलिये जो शास्त्रविहित श्रवण-कीर्तन-सेवा आदि किये जाते हैं उनको कर्ममार्गीय समझना चाहिये अपनी आजीविका चलानेकेलिये धनोपार्जनके रूपमें जो हैं उनको तो खेती-बाड़ी जैसे व्यवसायकी तरह ‘लौकिक कर्म ही कहना चाहिये (धर्म-भक्ति सर्वथा नहीं). मलप्रक्षालानार्थ गंगाजलका उपयोग करनेवालेको उसके मलकी सफाईसे अधिक गंगास्नानका फल मिलता नहीं है. इतना ही नहीं ध्यान देनेलायक बात यह है कि गंगा जैसी पवित्र नदिके जलका ऐसा घृणित कार्यकेलिये उपयोग करनेके कारण वह पापी बनता है इसी तरह प्रभुकी सेवा-कथाके माध्यमसे पैसे कमानेवालेको सेवा-कथाका कोई भी (धार्मिक-भक्तिमार्गीय) फल तो प्राप्त नहीं ही होता है प्रत्युत ऐसे अधम आचरणके कारण वह पापका ही भागी होता है.

(श्रीविठ्ठलनाथप्रभुचरण. भक्तिहंस)

(४/ख) तब श्रीगुसांईजी आपु कहे : “जो हम कौनसे जीवको कहें, जो कौनसे जीवको बिगार करें सुधारनो तो बहोत कठिन है और बिगारनो तो तत्काल है तासों श्रीगोवर्धनधरको अधिकार (ट्रस्टीपद) कौनकों देय? कौनको बिगार करें?...पाछें श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्धनधरसों पूछें जो “महाराज कृष्णदासकी तो देह छूटी...सो हम कौनको अधिकार देके बिगार करें? तासों तुम एक काम करो जो अधिकारको दुसाला ले सबके आगे कहो (जो) जाको अधिकार करनो (ट्रस्टी बननो) होय सो दुसाला ओढ़ो. तब जो आयके कहे ताकों देऊ. सो जाकों गिरनो होयगो सो आपु ही आयेगो”.

(श्रीविठ्ठलनाथप्रभुचरण, ८४ वैष्णव वार्ता, कृष्णदासकी वार्ता प्रसंग-१०)

(५) अपने सेव्य-स्वरूपकी सेवा आप ही करनी और उत्सवादि समयानुसार अपने वित्त अनुसार करने वस्त्रभूषण भांति-भांतिके मनोरथ करी सामग्री करनी.

(श्रीगोकुलनाथप्रभुचरण २४ वचनामृत)

(६) यहां भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें सेवोपयोगी स्थानके रूपमें निज घरको विधान उपलब्ध होयवेसूं, अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवा छोड़के दूसरी जगह (अर्थात् हवेलीनमें, जैसे आजकल, भेट-सामग्री पधराके नित्य या मनोरथनकी झांकी कर लेनो वैष्णवन्ने पुष्टिमार्गमें परमधर्म मान लियो है वैसे) भगवत्सेवा करवेवालेनकुं कभी भक्ति सिद्ध नहीं हो सके हे.

(श्रीवल्लभात्मज-श्रीबालकृष्णजी, भक्तिवर्धिनीव्याख्या-२)

(७) जब सन्तदासको सगरो द्रव्य गयो तब श्रीठाकुरजीकी सेवामें मंडान श्रीठाकुरजीके द्रव्यसों राखे और श्रीठाकुरजीके द्रव्यमेंते चौबीस टका पूंजी करि कोडी बेचते. सो श्रीठाकुरजीकी पूंजीमेंते तो कासिदको दियो न जाई सो कमाईको टका दिये. तब इनकी मजूरीको राजभोग न भयो सो महाप्रसाद हू न लियो. टकाके चूनको न्यारो भोग धरते सो राजभोग जानते, महाप्रसाद लेते, ओर नित्यको नेग बहोत श्रीठाकुरजीके द्रव्यसों होतो ताते आपुनी राजभोगकी सेवा सिद्ध न भई (जाने). कासिदको दिये सो नारायणदासको लिखें जो “तुम्हारी प्रभुतातें एक दिन राजभोगको नागा पर्यो जो मेरी सत्ताको भोग न धर्यो” या प्रकार सन्तदास विवेकधैर्याश्रयको रूप दिखाये. विवेक यह जो श्रीगुसांईजीको हंडी पठाई-आपुनी सेवा न भई-राजभोगको नागा माने, धैर्य यह जो श्रीठाकुरजीके द्रव्यमेंते खान-पान न किये. आश्रय यह जो मनमें आनन्द पाये-दुःखक्लेश न पाये.

(श्रीहरिराय महाप्रभु, भावप्रकाश ८४वैष्णवनकी वार्ता-७६)

(८) पारिश्रमिकके रूपमें वित्त दे के कोई दूसरेके द्वारा सेवा कराई जावे तो चित्तमें अहंकार तो बढ़े ही है परन्तु ऐसी खरीदी भई सेवासु चित्त भगवान्में कभी चोंट नहीं सके है. भगवत्सेवार्थ कोई दूसरेसूं पारिश्रमिकके रूपमें धनादिक लिये जावेपे तो, जैसे पंडा-पुरोहितनकुं यज्ञ-यागादिको फल नहीं मिले है परन्तु यजमाननकुं ही मिले है वैसे ही सेवाकर्ताकी सेवा निष्फल बन जाय हे शंका:यजमान जैसे

दक्षिणा दे के पुरोहितनके द्वारा यज्ञयाग करा लेवे है वैसे ही भगवत्सेवा (आजकल जैसे पुष्टिमार्गीय हवेलीनमें वैष्णवगण गुसांई-मुखिया-भीतरिया-समाधानीकी बटालियनसूं करवा लेवे हैं वा तरह:अनुवादक) करा लेवेमें क्या बुराई है? समाधान:या शंकाको ये समाधान जाननो जो कर्ममार्गमें ऐसो करनो विहित होवेसुं पुरोहितनसूं कर्म सम्पन्न करा लेनो आपत्तिजनक नहीं है. भक्तिमार्गमें, परन्तु, या तरहसूं भगवत्सेवा करा लेवेको कहीं विधान उपलब्ध नहीं होयवेसूं कोई दूसरेकुं धन दे के सेवा करानो अनुचित ही हे. भक्तिमार्गमें तो भगवदुक्त प्रकारसूं (निज घरमें निज परिजननके सहयोगद्वारा निजी तन-मन-धनसूं ही भगवत्सेवा करनी चाहिये.

(गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण, सिद्धान्तमुक्तावली विवृतिप्रकाश-२)

(९) लौकिक अर्थकी इच्छा राखिके जो भगवद्भजनमें प्रवृत्त होय सो सर्वथा क्लेश पावे हे. इतने कछू भेट-सामग्री मिलि जाये ऐसे लाभकेलिये पूजादिकमें प्रवृत्त होय सो पूजादिकमें प्रवृत्त होय सो ‘पांखड़ी’ ओर ‘देवलक’ कह्यो जाय हे. तासूं लाभपूजार्थ सिवाय जामें निषेध नहीं हे ऐसी रीतिसूं “मेरो लौकिक सिद्ध होय” ऐसी इच्छासूं जो भजनमें प्रवृत्त भयो होय सो ‘लोकार्थी’ कह्यो जाय हे.

(नि.ली.गो.श्रीनृसिंहलालजी महाराज, सिद्धान्तमुक्तावली-टीका श्लोक १६-१७)

(१०) जो श्रीवल्लभकुल हैं वे तो आपुने सेव्यस्वरूपमें कैसो स्नेह राखत हैं जो एक ठौर द्रव्यकी ढेरी करो और दूसरी ठौर श्रीठाकुरजीकों पधरावो तो श्रीवल्लभकुल वा द्रव्यकी ओर देखेंगे हु नाहीं अरु श्रीठाकुरजीकों अतिस्नेहसों पधराय लेंगे. परि जो या कलिको जीव है वाकुं तो द्रव्य बहुत प्रिय है. तासों वो तो श्रीठाकुरजी सन्मुख हु नाहीं देखेगो अरु केवल वैभवकुं देखेगो अरु मोहित होय जायेगो.

(नि.ली.गो.श्रीमट्टुजी महाराज, ३२ वचनामृत वचनामृत-५)

(११) श्रीउदयपुर दरबारकुं आशीर्वाद याके द्वारा सूचित कियो जावे हे कि चल-अचल सम्पत्तिके आर्थिक तथा स्वामित्वकी व्यवस्थाके बारेमें योग्य व्यक्तिकी एक सलाहकार समिति नियुक्त कर ली गई हे सेवा आदि विषयनमें पुरातन तथा प्रवर्तमान प्रणालिके अनुसार काम कियो जायेगो ओर यदि पुरातन परम्पराको बाध

न होतो होयगो ओर समिति कोइ तरहके सुधारकी इच्छा रखती होयगी तो ऐसे सुधार भी स्वीकारे जायेंगे. ओर श्रीठाकुरजीको द्रव्य अपने व्यक्तिगत उपयोगमें नहीं वापर्यो जायेगो जेसी कि परम्परा आज भी हे ही ओर याकुं निभायो जायेगो. तो भी मेरे पूर्वजन्के समयसूं चले आ रहे मेरे स्वामित्वके हक्क वा ही तरह कायम रहेंगे.

(गोस्वामी तिलकायत नि.ली.गो.श्रीगोवर्धनलालजी महाराज,
श्रीनाथद्वारा, डेक्लेरेशन मिति भाद्रशुक्ला पञ्चमी वि.सं.१९४८=ता.५-९-
१८९३)

(१२)...या ही तरह अपने यहां जो सन्मुखभेंट धरी जाय हे वो भी देवद्रव्य होवे हे; और वा सामग्रीकुं काममें नहीं लियो जाय है. श्रीगोकुलनाथजी और श्रीचन्द्रमाजी के घरमें आज भी ये नियम पाल्यो जाय हे. वहां जो सन्मुखभेंट आवे हे, वाकुं कीर्तनीया-महावनीया ले जावे हे. वो वल्लभकुलको श्रीयमुनाजीको पंडा हे. दूसरो कोई वाको अनुकरण करे तो वो अनुचित है...हम श्रीनाथजीके सामने जो सन्मुख भेंट धरे हैं वो श्रीमहाप्रभुजीकी पादुकाजीकुं घरे हैं फिर भी वो आभूषणन्में वापरी जावे है, सामग्रीमें नहीं. सन्मुखभेंट धरवेमें बहोत अनाचार होवे है. या तरहसूं आयो द्रव्य 'देवद्रव्य' बने हे...वाकुं लेवेवालेकी बुद्धि बिगड़े बिना नहीं रहे है.

(नि.ली.गो.श्रीरणछोड़लालजी महाराज, राजनगर, वचनामृत.४८४-८७).

(१३) महाराजकुं जो आमदनी वैष्णव आदिनसूं होवे हे वामेंसूं घरखर्चाके रूपमें महाराज ठाकुरजीकी सेवाको खर्चा निभावे हैं. ठाकुरजीकेलिये चल या अचल सम्पत्ति अलगसूं निकालके वामेंसूं ठाकुरजीकी सेवाको खर्च निभायो नहीं जावे हे. ठाकुरजीके वैभवको, नेगभोगको, आभूषण-वस्त्र आदिको खर्च महाराज स्वयं अपनी आमदनीके अनुसार निभावे हैं... ठाकुरजीके सन्मुख भेंट धरी नहीं जा सके... ठाकुरजीकी भेंट देवमन्दिरमें भेजनी पड़े हे महाराज वा भेंटकुं अपने उपयोगमें ला नहीं सकें.

(नि.ली.गो.श्रीवागीशलालजी महाराज, अमरेली, श्रीवागीशलालजीके आम-मुखत्यार: "अमरेलीहवेली व्यक्तिगत है या सार्वजनिक" मुद्देपर सन्१९०९-१०में गायकवाडी बड़ौदा राज्यकी कोर्टमें दी गई जुबानी)

(१४) जैसे अपने पूर्वपुरुष स्वयं अपने धर्मके सत्यस्वरूप तथा शुद्धाद्वैतसिद्धान्त कुं पूर्णतया समझके वैष्णवधर्मको यथार्थ उपदेश लोगनकुं देते हते; और मध्यवर्ती कालमें जो सम्पत्ति आदिके कारणनसूं हमने बहोत हद तक छोड़ दिये हैं; या कारणसूं अधिकांश लोगनमें साधारण सेवा और केवल वित्तजा भक्ति की ही रूढ़िके अनुसार जानकारी बच गयी हे.

(पञ्चमगृहाधीश नि.ली.गो.श्रीदेवकीनन्दनाचार्यजी, कामवन मुंबईके वैष्णवनकुं लिखित पत्र: 'आश्रय' अप्रिल ८७ के अंकमें प्रकाशित)

(१५) वकील: यदि कोई भी पुष्टिमार्गीय मन्दिरमें वैष्णव श्रीठाकुरजीकी सेवा और नेग-भोग केलिये और श्रीठाकुरजीकी सेवाकुं निभावेकेलिये; भेंट आदि दे के वित्तजा सेवा करते होंय और वा मन्दिरमें तनुजा सेवा भी करते होंय तो वो "मन्दिर पुष्टिमार्गीय नहीं होवे" ऐसे आपको कहनो हे?

पू.पा.महाराजश्री: पुष्टिमार्गीय वैष्णवनकेलिये स्वतन्त्रतया तनुजा या वित्तजा सेवा करवेकी कोई प्रक्रिया नहीं हे. और ऐसी सेवा की जाती होय तो वाकुं साम्प्रदायिक मन्दिर नहीं कह्यो जा सके.

(नि.ली.गो.श्रीव्रजरत्नलालजी महाराज सुरत "नडियादकी हवेली वैयक्तिक हे या सार्वजनिक" विवादमें पुष्टिमार्गके विशेषज्ञ साक्षीके रूपमें दी जुबानी)

(१६) हमारा प्रमुख सिद्धान्त है 'असमर्पित त्याग'. उत्तम उपाय तो यही है कि घरमें जो भी रसोई बने वह प्रभुको भोग धरके बादमें ही महाप्रसाद लिया जाय....जहां तक असमर्पितका त्याग नहीं होगा वहां तक बुद्धि अच्छी नहीं हो सकती. सानुभावता कब सिद्ध हो सकती है? जब हमारी बुद्धि निर्मल हो...आज हम हीरे(घरमें बिराजते सेव्य प्रभु)को परख नहीं सकते. सच्चे हीरेको जौहरी ही परख सकता है. स्थिति क्या है कि हम जूठे हीरेको सच्चा मानकर उसीके पीछे (हवेली-मन्दिरोंमें) दौड़ लगा रहे हैं. श्रीमहाप्रभुजीने तो निधिरूप सच्चा हीरा हमको दिया है. भगवान् गीतामें कहते हैं कि "दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमेश्वरम्". भगवान्को पहचाननेकेलिये तो दिव्यता प्राप्त होनी चाहिये.

दिव्यता ही आत्मबल है....अतः मेरा तो आप लोगोंसे साग्रह अनुरोध है कि आत्मबल प्राप्त करनेकेलिये अपना कुछ दैनिक नियम बनाईये. षोडशग्रन्थके पाठका नियम लीजिये.

(द्वितीयगृहाधीश नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी महाराज, इन्दौर-नाथद्वारा, श्रीमद्वल्लभ अने श्रीहरिरायजी जीवनदर्शन भाग-२, वचनामृत ७, पृष्ठ.१२४)

(१७/क) और जब जनरल पब्लिक ट्रस्ट है तब ठाकुरजीकुं गोस्वामीके सम्बन्धसू पृथक् करके, ठाकुरजीकुं सब सम्पत्ति अर्पण करके अर्थात् भेंट करके रिलीजिअस एंडोमेन्टके रूपमें भये वे ट्रस्ट हैं. ऐसी अवस्थामें इन ट्रस्टन्सू जो नेग-भोग चलायो जावे है, वो देवद्रव्यसू चलायो जा रह्यो है. देवद्रव्यको उपभोग करनेवालो अन्तमें देवलक ही होवे है. श्रीमदाचार्यचरणने प्रभुकी सोनेकी कटोरी गिरवी रखके जब भोग अरोगायो तब आपने वा द्रव्यसू समर्पित सारोको सारो प्रसाद गायन्कुं खवा दियो. ये है साम्प्रदायिक सिद्धान्त. या प्रकारके आदर्शरूप सिद्धान्तको जा (सार्वजनिक मन्दिर-हवेलीकी) प्रथासू विनाश होवे, आचार्यन्कुं देवलक बनायो जाय, वा प्रथाकुं जितनी शीघ्र सम्प्रदायसू हटा दी जाय, उतनी ही श्रेय यामें गोस्वामिसमाज तथा वैष्णवसमाज को निहित है.

(१७/ख) भगवत्सेवा सम्प्रदायकी आत्मरूप प्रवृत्ति है. आचार सेवाको अंग है, सेवाके अनुकूल आचारको पालन कियो जानो चाहिये. आचार-पालनकुं प्रमुखता देके भगवत्सेवाको त्याग भी उचित नहीं है. भगवत्सेवा जैसे भी बने (अपने घरमें) करो...गुरुघरन्में मत भेजो...यदि हम भगवद्द्रव्यकुं पेटमें डालेंगे तो वो अपराध है. ग्रन्थन्के अध्ययनके प्रति हमकुं समाजकुं आकृष्ट करना चाहिये.

(नि.ली.गो.श्रीदीक्षितजी महाराज, मुंबई-किशनगढ़ (१७/क) “आचार्योच्छेदक ट्रस्ट प्रथासे पुजारीपनकी स्थापना घोर सिद्धान्तहानि एवं घोर स्वरूपच्युति” लेख.पृष्ठ.७, १७/ख.लेख ‘श्रीवल्लभविज्ञान अंक ५-६ वर्ष १९६५में प्रकाशित वक्तव्य)

(१८/क) वैष्णवन्के पास जो भी परम पदार्थ है वाको अस्तित्व आजके ही दिनको आभारी है. कालकी भीषणता और परिस्थितिकी विषमता के अत्यन्त विकट युगमें श्रीमत्प्रभुचरणन्के दिव्य सिद्धान्तन्के ऊपर अटल रहवेपर ही जीवमात्रको

ऐहिक और पारलौकिक कल्याण हो पावेगो. अन्याश्रयके त्यागकी भावनापे जगत्के जीव दृढ़ रहें तो वैष्णव-हवेलीन्के वैभवके कारण जो वैष्णव घरसेवाकुं भूल चुके हते, संयोगवशात् उन हवेलीन्में श्रीके दर्शन आज बन्द भये हैं यासुं अब वैष्णवन्के घर पुनः भगवत्सेवासू किलकिलाते हो जायेंगे. ये लाभ सम्प्रदाय और सम्प्रदायीन् केलिये मामूली नहीं रहेगो. ईश्वरेच्छा अनाकलनीय होवे है. मोकुं तो श्रद्धा है के या कठिन परीक्षामें हम सभीन्को श्रेय ही सिद्ध होवेवालो है.

(१८/ख) मेरे अनुयायीन्कुं दो प्रकारकी दीक्षा दउं हूं. प्रथम कंठी बांधनी तथा दूसरी ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा. कंठी-बांधनी साधारण वैष्णवन्कुं ही दी जावे हे तथा ब्रह्मसम्बन्ध विशेषरूपसू उन अनुयायीन्कुं, जो सेवामें विशेषरूपसू आगे बढ़नो चाहे हैं. पहली दीक्षाकुं ‘शरण-दीक्षा कहें हैं तथा दूसरी दीक्षाकुं ‘आत्मनिवेदन कहें हैं. शरणदीक्षासू वैष्णव सिर्फ नामस्मरण करवेको ही अधिकारी बने है तो सेवावाले वैष्णवकुं ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा लेवेके बाद ही अधिकार मिले हे. ब्रह्मसम्बन्ध लेवे वालो वैष्णव अपने घरमें ही सेवाको अधिकारी होवे हे...हम स्वरूपकी सेवा नन्दालयकी भावनासू करें हैं. यालिये हम सातोंके सात पुत्रन्के घर ‘घर’ ही कहलावे हैं ओर हमारे घरकी सृष्टि ‘तीसरे-घरकी-सृष्टि’ कहलावे है.

(१८/ग) श्रीआचार्यचरणके सिद्धान्तोंमें भगवत्सम्बन्ध और भगवत्सेवा को ही प्रधानता दी गयी थी. बादमें, परिलक्षित होता है कि, उसमें भी कुछ अन्तर आ गया....श्रीआचार्यचरणके और श्रीप्रभुचरणके, सेवक हम देख सकते हैं कि सभी प्रकारके हैं. ऐसा नहीं है कि अमुक विशिष्ट व्यक्ति ही भगवत्सेवाकेलिये योग्य होता है और अमुक परिस्थितिमें ही भगवत्सेवा हो सकती हो ऐसा कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है. अनेक प्रकारके जीव भगवत्सेवा करते थे. उनमें स्मशानवासी वेश्या आदिसे लेकर अच्छे विद्वान् ब्राह्मण भी थे आजके समयमें मुझे प्रतीत होता है कि हम उन चरित्रोंको भूल कर पीछेसे मुख्य बन गये ऐसे केवल भावात्मक रूपको ले कर बैठ गये हैं कि जो आज भी वैष्णवोंमें प्रचलित है....मैं मानता हूं कि चरित्रोंका विचार करनेमें सिद्धान्तोंकी आवश्यकता होती है.

(तृतीयगृहाधीश नि.ली.गो.श्रीब्रजभूषणलालजी महाराज, कांकरोली (क) श्रीमत्प्रभुचरण प्राकट्योत्सव=ता.२४-१२-४८के दिन मुंबईके पुष्टिमार्गीय वैष्णवन्की सभामें अध्यक्षीय प्रवचन. (ख) बयान:मूर्तिबा कार्या.सहा.कमि. देवस्थानविभाग. खंड.उदयपुर एवं कोटा बजरिये कमिशन मु.कांकरोली.फाईल

संख्या.१-४-६४. श्रीद्वारकाधीशमन्दिर दिनांक ७।११।६५. (ग) श्रीमद्वल्लभ अने श्रीहरिरायजी जीवनदर्शन भाग-२, वचनमृत २०मुं पृष्ठ.१४६,१४९).

(१९) आज मोकुं अपने हृदयके उद्गार कहवे दो, मेरो हृदय जल रह्यो हे मन्दिरन्में मात्र द्रव्यसंग्रहकी प्रवृत्ति बच गई हे; ओर वोही अनर्थन्की जड़ है. ऐसे मन्दिरन्के अस्तित्वसूं कोई लाभ नहीं है. हमारो सम्प्रदाय सामुहिक नहीं वैयक्तिक है. सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक अवश्य है परन्तु सार्वजनिक नहीं. “करत कृपा निज दैवी जीवनपर” या उक्तिमें ‘निज शब्दको प्रयोग कियो गयो है. दैवीजीव कहीं भी हो सके हैं परन्तु सार्वजनिक रूपसूं नहीं. आज हम ‘पुष्टि’को नाम लेवेके भी अधिकारी नहीं हैं...आजको हमारो जीवन चार्वाक-जीवन हो रह्यो हे. क्या हम आज जा प्रकारको सम्प्रदाय हे वाकुं जिवानो चाहें हैं? यदि सच्चे सम्प्रदायकुं चाहो हो तो स्वरूपसेवा घर-घरमें पधराओ एवं नामसेवापे भार रखो... भक्तिकी प्राप्ति स्वगृहमें सेवा करवेसूं ही होयगी. आजके इन मन्दिरन्सूं कोई लाभ नहीं है क्योंकि इनमें द्रव्यसंग्रहकी प्रधानता आ गयी है; ओर जहां द्रव्य इकठो होय है वहीं अनर्थ हो जावे है. आज सम्प्रदायको विकृत स्वरूप याके कारण ही है.

(नि.ली.गो.श्रीकृष्णजीवनजी महाराज, मुंबई-मद्रास ‘वल्लभविज्ञान’अंक ५-६ वर्ष.१९६५)

(२०/क) जैसे स्वरूपसेवा स्वार्थबुद्धिवश और लौकिक कार्य समझके नहीं करवेकी श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा है, वैसे ही नामसेवा भी वृत्त्यर्थ नहीं करनी चाहिये, ऐसी आज्ञा श्रीमहाप्रभुजी निबन्धमें करें हैं... वृत्त्यर्थ सेवा करवेसूं प्रत्यवाय(दोष) लगे है. जैसे गंगा-जमुना जलको उपयोग गुदाप्रक्षालनार्थ नहीं कियो जा सके है, वैसे ही सेवाको उपयोग भी वृत्त्यर्थ नहीं करनो चाहिये.

(२०/ख) तन और वित्त प्रभुकेलिये वापर्यो जाय तो मन भी प्रभुमें अवश्य लगे ही है अतएव श्रीवल्लभने उपदेश कियो है के “तत्सिद्धयै तनुवित्तजा”. मानसी जो परा है वो सिद्ध करनी होय तो तनुवित्तजा सेवा आवश्यक है. तन और वित्त कहीं एकत्र लगायो जाय तो चित्त भी वहां दिन-रात लग्यो रह सके है. दलालीको व्यवसाय करवेवालेके व्यवसायमें केवल तनसूं श्रम कियो जावे है. परन्तु वामें वित्त स्वयंको लगायो नहीं जावे है अतएव बजारके भावन्की घट-बढ़में दलालकुं तनिक भी मानसिक चिन्ता होवे नहीं है...कोई बच्चाको पिता केवल ट्युशन फी

देके समझ ले है के बच्चा परीक्षामें पास हो ही जायेगो. इन तीनोंकुं फलप्राप्ति होवे नहीं है क्योंकि तनुजा-वित्तजा दोनों नहीं लगी. अब तनुवित्त दोनों लगावेवालेके चित्तप्रवण होवेको उदाहरण देखें: एक दुकनदार दुकान और माल की खरीदीमें पूंजी लगाके व्यापार शुरु करे सुबहसूं रात तक वहां उपस्थित रहके जब तन भी व्यापारमें लगावे है तो या कारणसूं दिनरात वाकुं व्यापारके ही विचार आते रहे हैं : अच्छी तरह व्यापार कैसे करूं कैसे व्यापार बढ़े...अतः पुष्टिमार्गमें प्रभुमें आसक्ति सिद्ध होवेकेलिये मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया समझायी गयी है कि भावपूर्वक भक्तकुं तनुवित्तद्वारा सेवा करनी चाहिये.

(नि.ली.गो. श्रीगोविन्दरायजी महाराज पोरबन्दर : (२०/क) ‘सुधाधारा पृ.११४. (२०/ख) ‘सुधाबिन्दु पृ.७३)

(२१) “अति धन्यवादार्ह हे कि आपने इतनी महेनत करके सम्प्रदायके सिद्धान्तनूक कोर्टमें समझाये”-“हमारो यामें पूरो सहयोग रहेगो तनमनधनसे...हमारे सभी चि.बालक या कार्यमें सहयोग करवेकुं तैयार हैं”.

(नि.ली.गो.-श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज,जामनगर, : गो.श्याम मनोहरजी(पार्ला-किशनगढ़ कुं भेजे दि.२६-१०-८६ और ७-११-८६ के पत्रन्में).

(२२/क) ट्रस्ट हवेली-मन्दिर यानि पुष्टिभावोंकी मौत :

भगवान्-स्वधर्म पूंजीसे बंधकर नहीं चलते; वे श्रद्धा और प्रेमपरवश होकर चलते हैं. आज जो (मन्दिरों-हवेलियोंके) ट्रस्टोंकी या न्यासोंकी प्रणाली चल रही है वह पूंजीवादकी एक अभिनव दास्तां है जिसमें भगवान्, गाय, गुरु और धर्मानुयायियों पर एकछत्र साम्राज्य करनेकी लालच समायी हुई है. इस तरहसे आदर्शका जामा पहने हुए इस धनलिप्सा और धनिकों की दास्तांमें वह प्रेम नहीं है जो एक अकिंचन भक्तके “रहिये मेरे ही महल अनत न जैये...” इस आत्मीयता भरे मीठे बेंनोंमें झलकती है. यह प्रेमभरा अनुनय है और आजका ट्रस्टी और सत्ता भगवान्को पूंजी या सत्ता के जोर पर यह कहते हैं कि “इस स्थानसे जरासा भी नहीं हिलना, ध्यान रखना, मैं तुम्हारा व्यवस्थापक, ट्रस्टी हूं, चाहो या न चाहो, तुमको मुझपर भरोसा करना ही होगा, समझे” लोग समझते हैं कि यह धर्मरक्षाका ही एक सर्वश्रेष्ठ रूप है, किन्तु... इसमें भी प्राणोंकी उतनीही

असुरक्षा है जो मौतसे कम नहीं...वल्लभाचार्यने ऐसे जकड़े हुवे ईश्वरको दामोदर माननेसे भी इंकार कर दिया.

ठाकुरजीको ट्रस्टमें पधरानेवालोंने ठाकुरजीको बेच दिया है :

...अच्छी तरह सोचो कि ऐसी कौन माता होगी जो अपने लड़केको धनकी लालचमें बेच दे; या कोई प्रेमी कभी भी प्रत्यक्ष तो क्या सपनेमें भी ऐसा करना तो दूर रहा, सोच या देख भी नहीं सकता, इस विषयमें एक कहानी याद आती है...एक बार रुपये पैसेवाली बांझ औरत (आधुनीक दर्शनीया वैष्णव और ट्रस्टी)ने एक गरीब(गोस्वामी गुरु)का बच्चा(ठाकुरजी) खिलानेके लिये लिया. कुछ दिनों बाद बच्चेकी मांने जो गरीब थी बच्चा मांगा तो अमीर औरतने कहा कि ये तो मेरा ही बच्चा है, तेरा नहीं है. जो तुझसे हो सके वह करले. बैचारी गरीब मां...न्यायकी मांग करने लगी...मगर सभी(वैष्णव, आमजनता, सरकार) लोग उस गरीबके खिलाफ गवाही देने चले आये.

इस तरह धनने ईमान खरीदा, भगवान् खरीदा और उस उन्मुक्त बालककी गुंजती किलकारियां हमेशा-हमेशा के लिये चुप हो गई. लोगोंने कहा कि अब भगवान् बोलते नहीं, हंसते नहीं, खेलते नहीं हैं. किन्तु यह आशा उससे की जा सकती है जो जीवित हो, किसीके प्यारमें बन्धा हो. फिर उस खूबसूरत बच्चेकी नुमाईश और प्रदर्शन करने लगा, जैसे बेबी मिल्कके डिब्बेका चित्र या मोडेलका चित्र होता है.

ट्रस्टीओं द्वारा की जाती सेवा पूतनाके प्रेमके समान है :

रोज यह सोचा जाने लगा कि इससे क्या आमद हुई, कितनी बिक्री हुई. और सभी व्यवस्थापक इसकी निगरानी करने लगे. जब कोई आता देखने तो उसे दुलार किया जाता. लोग समझते हैं कि यह प्यार है, भक्ति है. मगर था तो वह व्यवसाय ही, जिसका रूप पूतनाके प्रेमकी भांति सच्चाईको छिपा गया और भोली यशोदाने लाल उसे खिलाने दे दिया.

मन्दिर-हवेलियां दुकान बन चुके हैं :

कितनी बिक्री हुई इसका हिसाब रखा जाने लगा धर्म और धर्मस्वरूप यह बालक भगवान् जो प्यारसे भक्तोंके लिये भोला बन गया था. लोगोंने उससे फायदा उठाया और कह दिया-यह सार्वजनिक ईश्वर है. उस सर्वशक्तिमानको स्वार्थका साधन बना दिया और जगन्नियन्तापर धननियन्ता शासन करने लगे. हालत यह हुई कि कौन उसको खिलाये-पिलाये? वह तो सार्वजनिक था

मन्दिर-हवेलियोंके ठाकुरजी जड़ बन चुके हैं :

द्वारकाधीशको भी यह छूट थी कि वह विदूरके घर साग खा सकता था किन्तु यह तो नितान्त निष्क्रिय बन गया, केवल दिखावा मात्र

...क्या यह सिद्धान्त किसी प्रियतमके लिये प्रियतमा या माता को मान्य होगा? किन्तु यह आज मान्य है और मान्य करना होगा. केवल पैसेकेलिये अपना दिल नहीं, दुनियाका दिल बहेलानेको, वारांगनाकी भांति, जिसमें हृदय नामकी कोई वस्तु रह नहीं सकती और है तो बह मानी नहीं जाती. सभीका अधिकार है उसपर, जैसे वह सम्पत्ति हो, जो चाहें खरीदें, जो चाहे प्रयोगमें लायें, जैसा चाहे वैसा करे उसको करना ही होगा. कैसी अनोखी है यह भक्ति और प्रेम की परिभाषा फिर भी स्वतन्त्रताका घोष किया जाता है क्या यह ही वह भक्ति है जिसे श्रीवल्लभ “महात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह” कहते हैं? आज इस भक्तिका माहात्म्य ये ही है कि किस भगवान्के यहां कितनी आमद होती है

ट्रस्ट मन्दिर पुष्टिप्रभुके लिये जेलखाना :

...अब कोई प्यारसे यह नहीं कह सकता कि मेरा बालक देरसे सोया है, जल्दी मत जगाना. सूरदासका पद भगवान्को जगानेकेलिये दुलार नहीं रहा, न कलेउके पदमें ममताका अनुनय है; यह तो कम्पलसरी ब्रेकफास्ट है जिसे समय पर कैदीकी तरह ईश्वरको करना पड़ता है. मानो एक जेलखानेमें उठने या खाने की घंटी बजी हो ठाकुरजी बिक रहे हैं; मनोरथी-दर्शनार्थी भक्त नहीं ग्राहक हैं.

...श्रीवल्लभाचार्यने जीवनमें अपने कलेजेके टुकड़े अपने आराध्यको कभी दूर नहीं होने दिया. आज वो बिक रहा है धनिकोंके हाथों और जकड़ा है सरकारी शिकंजेमें, पब्लिक पोलिसीके अंदर, और अब उसे म्युझियमकी शोभा बनानेका समय निकट आ रहा है.

धर्म और भगवान् की दशा किसी कोल्लगर्ल्से भी बदतर है :

बेचारे धर्म और भगवान् की दशा किसी कोल्लगर्ल्से भी बदतर है...भगवान्की सुंदर विनिन्दितमुक्ता-दंतपंक्ति बगला भगतोंको देखकर खिल जाती है. सदानन्द निरानन्द होकर इन ईमान खरीदनेवालोंके हाथों खुल्लेआम बेचा जा रहा है...सबको सहारा देनेवाला स्वयं बेसहारा होकर बैठा है अपने धनिक ग्राहकोंकी प्रतीक्षामें हवेली-मन्दिरमें देवद्रव्यका प्रसाद खाना मतलब नरककी टिकिट कटवाना :

धर्मशास्त्रमें जिस बुद्धिमान् ब्राह्मणको देवलकवृत्तिसे अधम माना गया है...आज उस देवलकवृत्तिका धन चटकारे लेकर वैष्णवसमाज खा रहा है. नाथद्वारेमें क्या चिज स्वादिष्ट है...ये ही विवेचन करता है...किन्तु मेरा कर्तव्य क्या है यह कभी नहीं सोचता. श्रीनाथजीमें अब धनिकोंका साम्राज्य है.

...नाथद्वारामें आजकल पैसा अधिक आ रहा है, क्योंकि वहां इन धनिकोंका साम्राज्य है. इनके दलाल श्रीनाथजीकी महिमा बढ़ाते हैं...गरीबोंकेलिये ठहरनेवाला भगवान् अब धनिकोंकेलिये ठहरता है.

श्रीवल्लभके आदर्शोंके स्मशान जैसे मन्दिर-हवेलियां :

भगवन्नाम भागवतसे अस्पतालोंकेलिये करोड़ोंकी रकम जमा होती है, और जामनगरमें आदर्श स्मशान भी है, किन्तु यहां तो स्मशानसे भी आदर्श गायब होता जा रहा है शायद आदर्शका स्मशान है यह ट्रस्ट और सरकारी देवालय.

मन्दिरका प्रसाद खाया नहीं जा सकता है :

...वल्लभमतमें ये सिद्धान्त गलत है ओर ऐसे देवस्थानोंका चढावेका प्रसाद भी नहीं खाया जा सकता. क्योंकि वहां देवलकवृत्ति ही प्रधान है.

दर्शन-मन्दिर धर्मप्रचारका माध्यम नहीं हो सकते :

जहां तक भगवत्स्वरूप या मूर्तिका प्रश्न है, धर्मप्रचार उनसे सम्बन्धित नहीं है और न उसे उचित कहा जा सकता है. क्योंकि भगवान्ने धर्मकी व्यवस्थाकेलिये वेदव्यासादि अनेक ज्ञानावतार और अंशावतार धारण करके ही धर्मरक्षा की है. आजकी (सार्वजनीक हवेली-मन्दिरकी) व्यवस्था आचार्योचित और धार्मिक या भारतीय ही नहीं है तब वल्लभाचार्यसम्मत होनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता...हमारा इस विषयमें सुझाव है कि एक अलग व्यवस्था...करनी चाहिये जिससे वल्लभसिद्धान्तोंकी रक्षा हो सके. यदि ऐसी व्यवस्था नहीं कि जाती तो देवद्रव्य होता है. जिसका सेवन करनेसे आचार्य स्पष्ट कहते हैं कि नरकपात होगा.

नकली बैठके :

बैठकोंकी भावगंगा तो अब घरबैठे ही मनुष्यको पवित्र करने अपनी उत्ताल तरंगोंसे सारे घर-बारको ही सराबोर करने लगी है...८४ बैठकोंसे काम नहीं चला तो अब महाप्रभु श्रीवल्लभको मुसलमानोंके खेतोंमें अपनी झारी और अन्य चिन्ह प्रकट करनेको विवश होना पड रहा है

(“हमारी धार्मिक स्थितिका वर्तमान स्वरूप एवं भविष्यकी व्यवस्थाहेतु प्रतिवेदन” दिनांक. २५।२।८१)

(ख) श्रीवल्लभाचार्यने सेवाको खरीदनेकी बात नहीं कही है कि खरीद आओ रुपये देकर. नहीं ‘तनुवित्तजा’पदका अर्थ ही यह है कि वह समस्त पद है. जहां तन लगे वहीं धन लगे तब ही सेवा हुई. परन्तु धन लगे और तन न लगे तो सेवा हुई नहीं कहलाती है. (प्रथमेशवाक्सुधा-१, पृ.५९)

(ग)...“सेवाऽपि कायिकी कार्या” यह नहीं कि पैसे दे दिये. पैसे देकर घरमें विवाहिता पत्नीको नहीं लाया जाता है, वैश्याको लाया जाता है. वैश्यासे घर नहीं बसता है यह स्पष्ट है. अतः साफ बात है कि भगवत्सेवा और वरण में पति-पत्नीका दृष्टान्त देते हैं कि जिनमें आत्मीय सम्बन्ध है. (प्रथमेशवाक्सुधा-१, पृ.७४)

(घ) भेंट भी आचार्यके सन्मुख ही होती है. प्रभुके सन्मुख भेंट नहीं होती है. देवलकवृत्तिसे बचनेकी विधि और वैदिक व्यवस्था को सम्हालकर रखना चाहिये अन्यथा बुद्धि बिगड़ेगी. ऐसा करनेसे पतन होता है, और हुवा है. (वहीं पृ.१७१)

वस्त्र-अलंकारोंमें मन अधिक जाता हो तो ऐसा साहित्य रखनेकी आवश्यकता नहीं है. ऐसा करनेसे लौकिक बढता है और धर्मभावना नष्ट होती है...अतः वैभव बढ़ानेकी श्रीगुसांईजीने ना कही थी. और श्रीमहाप्रभुजीने नावको डुबोकर पुरुषोत्तमको ही घरमें पधराया था. (वहीं पृ.१८०)

(ङ) धर्म की परम्परा प्रदर्शनपर आधारित नहीं है पर एक यथार्थ जीवनका उज्ज्वल पक्ष है...कुनवारा और अन्य मनोरथों...का रूप आगे चलकर महाप्रभु श्रीवल्लभकी आचार-परम्परा और सम्प्रदायकी मर्यादा को आहत करनेवाला होगा जिसकी आज कल्पना भी की नहीं जा सकती है. (वहीं पृ.१९७)

(नि.ली.गोस्वामी श्रीरणछोडाचार्यजी प्रथमेश.)

(२३/क) प्रश्न:‘देवद्रव्य कायकुं कहे हैं?’ ‘देवद्रव्य’को मतलब देवको द्रव्य. ऐसो द्रव्य या पदार्थ जो देवकुं ही उद्देश्य बनाके अर्पण कियो गयो होवे वाकुं ‘देवद्रव्य कहे हैं. याही प्रकार गुरुकुं उद्देश्य बनाके अर्पण किये गये द्रव्यकुं ‘गुरुद्रव्य’ कह्यो जाय है....मन्दिरन्में ठाकुरजीके सन्मुखमें भेंट धरे जाते द्रव्यकुं

और ट्रस्टकी ऑफिसमें आते द्रव्यकुं तो स्पष्ट शब्दन्में 'देवद्रव्य' कह्यो जा सके है; और वा द्रव्यसूं सिद्ध होती सामग्रीमें भगवत्प्रसादी होवेके बाद महाप्रसादपनो तो आवे है परन्तु वाके साथ वामें देवद्रव्यपनो भी रहे ही है. याही कारण वैष्णवनकुं ऐसे महाप्रसादकुं देवद्रव्य समझके ही व्यवहार करनो चाहिये. ऐसे महाप्रसादकुं लेवेमें देवद्रव्यको बाध तो रहे ही है.

(२३/ख) मन्दिरके स्थलके फेरबदलके बारेमें श्री गो.पू.१०८ श्रीबालकृष्णलालजीने कह्यो कि पुष्टिमार्गमें सार्वजनिक मन्दिरकी परम्परा नहीं है यामें व्यक्तिगत स्वरूप निजी स्वरूप की ही बात है; और याही कारण पुष्टिमार्गमें सेवाप्रकार देवालयेके प्रकार जैसो नहीं है. मन्दिरको निर्माण भी घर जैसो होवे है कहीं भी ध्वजा-शिखर नहीं होवे है वैष्णव भी घरमें ही सेवा करे है तथा वाकुं 'मन्दिर ही कहे है...

(नि.ली.गो.श्रीबालकृष्णलालजी महोदय, सुरत, (क) 'वैष्णववाणी अंक.३, वर्ष मार्च १९८३.(ख) 'गुजरात समाचार अंक २५-५-९३में प्रकाशित)

(२४) पुष्टिमार्गकी आज उपेक्षा होती जा रही है. उसकी परम्परा ही अब टूटती जा रही है. इसके मूलमें यदि कुछ है तो वह है आजकी साधन-सम्पत्ति. वही हमारे संस्कार बिगाड़ रही है. अभी भी जिस घरमें अलौकिक (प्रभु) सेवा होगी वहां पुष्टिमार्ग जरूर निभेगा. श्रीमदाचार्यचरणके मतानुसार गृहसेवा और अपने माथे बिराजते ठाकुरजीका अति स्नेहसे जतन करना ही सच्चे संस्कारका मूल है...श्रीगुसांईजीके समयमें छप्पनभोग जैसे मनोरथोंकी शुरुआत करनेके समय (उनमें) केवल लौकिकता ही बढ़ेगी ऐसी स्पष्ट सूचना दी गयी थी...आजकल...मंदिरोंका उपयोग यश-किर्ती प्राप्त करनेके लिये होने लगा है. मंदिरोंमें प्राधान्य मनोरथीका होने लगा है. श्री(ठाकुरजी), गुरु तथा सेवाभावना का उपहास होने लगा है. जबसे मार्गीय सिद्धान्तोंका उपहास होने लगा है तबसे मंदिरकी उसके संचालकोंकी वृत्ति ही पलट गई है. आडंबर और यश को पुष्ट करनेकेलिये...दर-दर भटकनेकी स्थिति पैदा हो गयी है...इन सबका सच्चा उपाय इस कलिकालमें अपने सन्तानोंको जरूरी संस्कार अपने घरसे ही दिये जायें ये ही है.

...मंदिरोंका सम्पूर्ण व्यापारीकरण होने लगा है...सम्पत्ति...प्राप्त करनेकी लालच बढ़नेसे प्रभु(स्वरूपसेवा)को भी हम व्यापार स्वरूपमें परिवर्तित करने लगे हैं.

(जुलाई-२००७, पृ.६)

ठाकुरजीकी सेवा चोरकी तरह करनी चाहिये...सेव्यस्वरूपका मैं सेवक हूं उसका ढिंढोरा पीटना या उसका प्रदर्शन करना वह भी जीवके दैन्यमें विक्षेप उत्पन्न कर सकता है....अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवामें भी इतनी गुप्तता जरूरी है. "प्रीत हियेंमें राखिये प्रकट करे रस जाय" की रीतिसे तुम्हारे प्राणप्रेष्ठ तुमको जिस रसकी प्राप्ति करातें हैं उसे कभी भी प्रकट नहीं किया जा सकता है.

(सप्टेंम्बर-२००४, पृ.७)

आजतो श्रीनाथजी-नाथद्वारा, चंदबावा-कामवन और अन्य ठाकुरजीके दर्शन करते ही अपने माथे बिराजते ठाकुरजी भुला जाते हैं. पुष्टिमार्गमें तो 'श्रीजी'का अर्थ ही अपने माथे बिराजते ठाकुरजी होता है. जिसमें 'तिरु'का अर्थ श्री और 'पति'का अर्थ नाथ (यानि श्रीनाथ) ही होता है. अर्थात् अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीमें ही अपने सर्वस्वका दर्शन होना चाहिये. उनको आरोगाया मतलब समस्त जगतको प्रसाद लिवा दिया ऐसा भाव सिद्ध होना चाहिये. यहां तो उससे उलटी गंगा बह रही है. अपने सेव्य ठाकुरजीमें सभी निधिस्वरूपोंके दर्शन होनेके बदले अब तो अरे, वहां तक कि जीवमात्रमें अपन अपने ठाकुरजीका दर्शन करनेका विचार कर रहे हैं और फिर बुद्धिकी चतुराई भी वापर रहे हैं कि सभीमें ठाकुरजीका अंश है इसलिये घरमें प्रभुकी सेवा करें या अन्योकी करें एक ही बात है अतः अन्यसेवामेंसे सन्तोष लेना शुरु किया. इससे शरीर, पैसा, कीर्ति सबकी रक्षा हो और ऊपरसे परम भगवदीय कहलाने लगे (सप्टेंम्बर-२००७, पृ.७)

(पंचमगृहाधीश.नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी महाराज, कामवन-विद्यानगर, वैष्णवता-'सांचे बोल तिहारे', प्रकाशक:पं.पी.गो.श्रीवल्लभलालजी महाराज)

(२५/क) हम श्रीवल्लभाचार्यजीकी आज्ञाको पालन कहां कर रहे हैं? अपने यहां गृहसेवा कहां (रह गयी) है? केवल मन्दिरन्में दर्शनसूं क्या लाभ है?

श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा है “कृष्णसेवा सदा कार्या” . यदि श्रीमहाप्रभुजी मन्दिरकुं मुख्य मानते तो अपनी तीन परिक्रमानुमें अनेक मन्दिर स्थापित कर देते. श्रीगुसांईजीने श्रीगिरधरजीकुं सातस्वरूपके मनोरथ करते समय या प्रकारकी चेतावनी दी थी. मन्दिरस्थापन करते समय उनकुं डर हतो के घरमेंसूं ठाकुरजी मन्दिरमें पधार जायेंगे. मेरे पिताजीने कल (उपर्युद्धत वचनमें) जो कह्यो वो अक्षरशः सत्य है तुम अपने घरन्में ठाकुरजीकुं पधराओ और सेवा करो.

(२५/ख) पुष्टिमार्गीय प्रणालिकाके अनुसार ट्रस्ट होनो उचित नहीं है. श्रीआचार्यचरणने प्रत्येक ब्रह्मसम्बन्धी जीवकुं आज्ञा दी है “गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः” (भक्तिवर्धिनी) अर्थात् गृहमें रहके स्वधर्माचरण करनो चाहिये गोस्वामी बालक भी आचार्य होवेके बावजूद वैष्णव भी हैं. अतः आचार्यश्रीकी उपरोक्त आज्ञाकुं पालनो उनको भी कर्तव्य है...अतः मेरो तो माननो यही है के आचार्यचरणके सिद्धान्तके अनुसार वैष्णवन्कुं स्वयंके घरमें श्रीठाकुरजीकी सेवा करनी चाहिये और धर्मग्रन्थन्को पठन-पाठन करनो चाहिये. नहीं के मन्दिरन्में जाके...ट्रस्ट तो पुष्टिमार्गीय प्रणालिकासूं संगत होवेवाली बात नहीं है प्रत्युत अपनी प्रणालीको भंग करवेवाली बात है.

(नि.ली.गो.श्रीव्रजाधीशजी महाराज दहिसर-मुबई, क-‘वल्लभविज्ञान’. अंक ५-६ वर्ष १९६५, ख-‘नवप्रकाश अंक ८ वर्ष ८)

(२६) क्योंकि श्रीनाथजी स्वयं वाके भोक्ता हैं किन्तु वैष्णव-वृन्द तथा सेवकगण भी वा महाप्रसाद लेवे तकके अधिकारी नहीं हैं. यह आचार्यचरणके इतिहाससूं प्रत्यक्ष प्रमाणभूत है वाके महाप्रसाद लेवेको केवल गायकुं ही अधिकार है. अन्यथा वा देवद्रव्यके उपभोग करवेसूं निश्चय ही अधःपतन है... सब प्रकारके दान-चढ़ावा व वसूल वसूली करवेको उल्लेख कियो गयो है, वो भी सम्प्रदायके सिद्धान्तसूं नितान्त विरुद्ध है अपने सम्प्रदायकी प्रणालीके अनुसार जो अपने सम्प्रदायके सेवक हैं, उनकोही द्रव्य गुरु-शिष्यके सम्बन्धसूं लेके सेवामें उपयोग करायो जा सके है. सम्प्रदायमें सब प्रकारके दान-चढ़ावान्को उपयोग सेवामें नहीं कियो जाय है; ओर कदाचित् कहीं कियो जातो होय तो वो सम्प्रदायके नियमन्सूं विरुद्ध होवेके कारण बन्द कर देनो चाहिये.

(सप्तमगृहाधीश पू.पा.गो.श्रीघनश्यामलालजी, कामवन “श्रीनाथद्वारा ठिकानेके प्रबन्धकी दिल्ली-योजनाकी आलोचना ता.१-२-५६”)

(२७/क)...ब्रह्मसम्बन्ध लेके सेवा करवेसूं प्रत्येक इन्द्रियन्को भगवान्में विनियोग होवे है...मन्दिर-गुरुघर केवल उपदेशग्रहण करवेकेलिये हैं सेवा अपनकुं अपने घरन्में करनी है.

(‘वल्लभविज्ञान’अंक ५-६ वर्ष १९६५)

(ख) आज बहुत घरोंमें सेवा होती है, पर क्या हम विश्वास पूर्वक कह सकते हैं कि यह सेवा वास्तविक सेवा है? क्या आजकी सेवा “चेतस्तत्प्रवणं सेवा” (चित्तका प्रभुमें प्रवण हो जाना वह सेवा है)का अक्षरशः सार्थक स्वरूप है?

वस्तुतः हम खुद वल्लभवंशज गोस्वामी भी यह दावा नहीं कर सकते हैं कि आज हम वास्तविक सेवा कर रहे हैं. यह कहनेमें मुझको लेशमात्र भी संकोच नहीं हो रहा है, क्योंकि मैं दम्भका संरक्षण करना नहीं चाहता हूं, अतः स्पष्ट है कि यदि हम गोस्वामीओंमें सेवाकी और श्रीमहाप्रभुजीद्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तोंके पूर्ण परिपालनकी क्षमता होगी तो ही हमारे अनुयायी स्वयं सेवा और सिद्धान्त के परिपालनमें सक्षम हो पायेंगे, अन्यथा नहीं. क्योंकि हम गोस्वामी और वैष्णव एक ही तत्वके दो प्रकार हैं. वल्लभकुल बिन्दुसृष्टि है तो वैष्णव नादसृष्टि है. इस स्थितिमें श्रीमहाप्रभुजी और श्रीगुसांईजी प्रभुचरण द्वारा की गयी आज्ञा वल्लभकुल और वैष्णव दोनोंकेलिये परिपालनीय है.

(पू.पा.गो.श्रीमथुरेश्वरजी महाराज, बडौदा-सुरत, पुष्टिबोध भाग.१-२, वि.सं.२०३४)

(२८/क) प्रश्न : आज चल रहे जो डिस्प्युट हैं वामें कितनेक सिद्धान्त चर्चित हो रहे हैं जैसे कि नये मन्दिर नहीं खोलने, ट्रस्ट-मन्दिर नहीं बनाने, ठाकुरजीके नामपे द्रव्य नहीं लेनो, ठाकुरजीके दर्शन नहीं कराने तथा बिना समझे-सोचे कोईकु ब्रह्मसम्बन्ध नहीं देनो, इन सब विषयमें आपको अभिमत क्या है?

उत्तर : देखो मन्दिरकी जहां तक स्थिति है तो ये बात सत्य है के पुष्टिमार्गीय प्रकारसुं मन्दिर तो मात्र एक ही है; ओर सब घरकी स्थिति हती ...आज मन्दिर जितने हैं अथवा जिन स्थानन्कुं अपन मन्दिर समझे हैं वो स्थान...वाकु अपन मर्यादापुष्टि मन्दिर कह सके हैं पुष्टिमन्दिर नहीं पुष्टिको प्रकार तो मात्र गृहसेवामें ही है.

(‘आचार्यश्रीवल्लभ’, ऑगस्ट १९९४, अंक. ५, पुष्टिमार्ग-वर्तमान. प्रश्न-उत्तर. ४, पृ. ७)

(ख) आजसे डेढ़सो वर्ष पूर्व, श्रीमहाप्रभुके समयसे तब तक, पुष्टिमार्गमें भगवन्मन्दिर खोलनेकी प्रणाली नहीं थी. प्रत्येक वैष्णवके घर-घर भगवत्सेवा हो उसका आग्रह रखा जाता था. वैष्णव अपने घरमें श्रीठाकुरजीके स्वरूपको सेव्य कराकर पधराकर गुरुघरकी प्रणालिका अनुसार सेवा करते थे. (ब्रज मोंहे बिसरत नांही, पृ. १४०-१४१)

(ग) खेतमें भरे हुवे जलको पी नहीं सकते...वो अनाज तो पैदा कर सकता है. वो अपने पेट भरनेका साधन मात्र करता है. वो किसी दूसरेके ओर उपकारका नहीं होता है...अपना पेट पालनेकेलिये भगवद्गुणगान करते हैं वो उस प्रकारके होते हैं कि जैसे खेतमें भरा हुआ पानी होता है. पद्मनाभदासजी...आचार्यचरणके निबन्धका श्लोक समझाने पर ही उन्होंने अपनी पौराणिक वृत्तिको छोड़ दिया...अपने मकानमें बरतन धोनेके पनाले हैं उसमें जो जल जाता है वो एक गढ़ढेमें इकट्ठा हो जाता है...वो पानी तो केवल गंध ही मारता है...भगवद्भाव होते हुवे भी जिनके स्वभावमें दुःसंगके द्वारा दोष उत्पन्न हो जाता है ऐसे मनुष्य उस गंदे गढ़ढेके समान बन जाते हैं कि जिसमें पानी भरा हुआ तो होता है लेकिन वो पानी किसी उपयोगका नहीं होता. वो भरा हुआ पानी केवल दुर्गन्ध पैदा करता है...पांचवे (भगवद्गुणगान करके अपनी आजीविका चलानेवाले नीच वक्ताओंके भाव) गटरके समान दुर्गन्धयुक्त...अस्पृश्य होते हैं. (जलभेद प्रवचन, वड़ोदरा)

(तृतीयगृहाधीश पू.पा.गो.श्रीब्रजेशकुमारजी महाराज, कांकरोली-वड़ोदरा)

(२९) श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के दुनियामें भटकते रहेते अपने मन-चित्त(कुं) श्रीठाकुरजीके सङ्ग जोडिके विनकी तनु-वित्तजा सेवा करनी. तनुवित्तकी सेवा अर्थात् स्वयं उपार्जित अपने धनसों अपने ही घरमें श्रीठाकुरजीकी अपने ही शरीरसों सेवा करनी सो.

(पू.पा.गो.चि.श्रीवागीशकुमारजी, वड़ोदरा-कांकरोली
‘वल्लभीयचेतना’,

ऑक्टोबर १५ २००३, पृ. ४)

(३०) जो घरमें रहकर प्रभुकी सेवा करते हैं वे स्वयं तो कृतार्थ होते ही हैं किन्तु उनके परिवारके परिजन भी कृतार्थ होते हैं....सभी इन्द्रियसे अन्तःकरणसे भजनानन्दका अनुभव घरमें रहकर श्रीठाकुरजीकी सेवासो होता है....इसलिये घरमें आचार्य श्रीगुरुचरणसे पुष्ट करके श्रीठाकुरजी पधराओ और समयको सेवामय बनाओ....श्रीठाकुरजी घरमें बिराजते हैं तो घर घर नहीं रह जाता, वह प्रभुकी क्रीडाका स्थल बन जाता है...नन्दालयकी लीलाका स्थल बन जाता है.

...मुकुन्ददास...रामदास सांचोरा...किशोरीबाई...जीवनदास...इन महानुभावोंने...श्रीनाथजी तथा घरके श्रीठाकुरजीमें भेद नहीं समझा.

...श्रीठाकुरजी अपने निधि अर्थात् सर्वस्व हैं....ऐसे पूर्णपुरुषोत्तम श्रीनन्दराजकुमारको श्रीमहाप्रभुजीने हमारी गोदमें पधराकर हमें भाग्यशाली बनाया है. यह अलौकिक निधि(धन) देकर हमें धन्य बनाया है. इससे बड़ा दूसरा कौनसा फल हैं

...जो सांसारिक कामनासे श्रीठाकुरजीका भजन अर्थात् दर्शन स्मरण सेवा करता है उसे क्लेश ही हाथ लगता है....इसी तरह जो अपने माथे श्रीठाकुरजी घरमें बिराजते हैं उन्हें हम चाहे जैसे नये-नये पुष्टिमार्गीय मनोरथ करके सामग्री सिद्ध करके लाड़ लड़ा सकते हैं परन्तु यह अधिकार किसी दूसरे ठिकाने थोड़ी मिल सकता है. अतः “घरके ठाकुरके सुत जायो नन्ददास तहां सब सुख पायो”.

श्रीनाथजीको भी देवालयकी लीला छोड़कर नन्दालयकी लीला करने हेतु श्रीगुसांईजीके घर पधारना पड़ा. “व्याजं लौकिकमाश्रित्य श्रीविट्ठलेशगृहे अगमत्”. अतः श्रीनाथजीका यह पाटोत्सव ही मुख्य माना गया है जो फाल्गुन कृष्ण सप्तमीको आता है.

अतः घरके ठाकुरजीका स्वरूप समझना बहुत आवश्यक है. कोई पत्नी अपने पतिकी सेवा न करे, उसके गुणगान ही करती रहे...तो क्या पति सन्तुष्ट होगा? इसी प्रकार...जो सेवा न करे, कृष्ण-कृष्ण गुणगान करते रहे हैं, परन्तु सेवा स्वधर्मसे विमुख रहते हैं वे हरिके द्वेषी हैं (विष्णुपुराण) सेवासो सेव्यको सन्तोष मिलता है यही वैष्णवका स्वधर्म है.

(पू.पा.गो.श्रीगोकुलोत्सवजी महाराज, इन्दौर-नाथद्वारा,
२५२वैष्णव वार्ता, खंड-२की भूमिका पृ. १५-३६)

(३१/क) गो.श्रीहरिरायजी : जरा ध्यानसे सुनें....“तत्र अयम् अर्थः लाभपूजार्थयत्नस्य उपधर्मत्व-देवलकत्वादि” स्पष्ट सुनें, “सम्पादकत्वात्”...लाभ-

पूजार्थ यत्न करता है जो सेवा करके, जब वो लाभ-पूजार्थ प्रयत्न करता है तो वो उपधर्म हुवा; देवलकत्व आदि जो दोष हैं वो उसमें प्रविष्ट होंगे ...

गो.श्रीश्याममनोहरजी : अर्थात् यह खास ध्यानमें रखना कि जिस स्वरूपकी भावप्रतिष्ठा की गयी हो उस स्वरूपकी भी लाभ अथवा पूजा केलिये यदि सेवा की जाती है तो सेवा करनावाला देवलक(पापी बन रहा है...

गो.श्रीहरिरायजी : और उपधर्मत्व होता है...और ये निषिद्ध है...

गो.श्रीश्याममनोहरजी : इस स्थितिमें गुरु अपने लाभ अथवा पूजा केलिये शिष्यसे कुछ भी ठाकुरजीकेलिये मांगता है तो वह...शास्त्रनिषिद्ध होनेसे...दान होनेसे देवद्रव्य होनेसे उपयोग करने योग्य नहीं होता है.

गो.श्रीहरिरायजी : हां बिलकुल...ये तो बिलकुल स्पष्ट है...‘स्ववृत्तिवाद’से भी स्पष्ट होता है.

(‘पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा विस्तृत विवरण पृष्ठ १६४, १९३)

(ख) श्रीमदाचार्यचरणने “तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा” यह कहा है. कारणके दो अलग अलग व्यक्ति तनुजा वित्तजा करते हैं तो मानसी सिद्ध नहीं होती...इसी अभिप्रायको समझानेकेलिये आचार्यचरणने ‘तनुवित्तजा’ यह समस्तपद कहा है...वेतनके रूपमें वित्त लेकर या देकर दो पुरुषों द्वारा की गई ऐसी तनुजा-वित्तजा सेवाएं मानसीकी साधक नहीं होती यही अभिप्राय बतानेकेलिये तनुवित्तजा समस्तपद कहा गया है. अन्यथा तनुवित्तजा न कह कर तनुजा वित्तजा ही कहते...यदि दो अलग-अलग व्यक्ति तनुजा और वित्तजा करें तो दोनों सेवाओंकी एक संयुक्त अवस्था तनुवित्तजा नहीं बन पाती. अतएव मानसी सिद्ध नहीं होती.

(ग) जहां तक लाभपूजार्थत्वका सवाल है तो वह तो किसी भी कोटिका भक्त करेगा तो देवलक ही होगा...यदि कोई स्वलाभपूजार्थ दर्शन-मनोरथ-महाप्रसाद आदि करता है तो अवश्य देवलक है...अन्यके घरमें, अन्यके वित्तसे, अन्यके ठाकुरजीके भोगका महाप्रसाद लेना घोर सिद्धान्तविरुद्ध है.

(घ) अब रहा सबाल ट्रस्टकी इन्कम और प्रोफिट यानी आय और लाभ का, तो ट्रस्टके आय-लाभ हम नहीं लेते. उलटा भगवत्शास्त्रोक्त सर्वलाभोपहरण न्यायसे ट्रस्टका सारा लाभ भगवदर्थ या गो-ब्राह्मणार्थ लगा देते हैं....हमारे प्रभुको नित्यनेगभोग हम स्ववित्तजासे अरोगाते हैं.

(ङ) पुष्टिमार्गीय वैष्णवके लिये श्रीभागवतकथा करके वृत्ति करना निषिद्ध है.

(पु.सि.सं.शि.पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी महाराज, जामनगर,
अनिर्दिष्टपृष्ठसंख्याक ‘तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा’)

(३२) अपने सम्प्रदायमें इतना अधिक सिद्धान्तवैपरीत्य हो गयो है कि गुजरातके एक गांवमें...अपने सम्प्रदायके ही दो मन्दिर हैं और मन्दिरनकी दीवार भी एक ही है; परन्तु...इतना लोकार्थित्व समाजमें उत्पन्न हो गया है...सवेरो होते ही चन्द्रमाजीवाले वैष्णव बालकृष्णलालको जो मेवा होवे है वो चन्द्रमाजीमें ले जावे हैं और बालकृष्णजीवाले जो वैष्णव होवे हैं वो चन्द्रमाजीको जो मेवा और प्रसाद होवे है वाकु बालकृष्णलालजीमें ले आवे हैं ऐसी जबरदस्त होंसातोंसी वैष्णवसमाजमें पैदा हो गई है के मानों एक-दूसरेके संग स्पर्धा करते होवें. ऐसी ईर्ष्या-द्वेषको वातावरण जब सेवाके क्षेत्रमें उत्पन्न हो जावे तो वासूं बढ़के लोकार्थित्व ओर क्या हो सके है...ऐसे सभी सिद्धान्तवैपरीत्यकी फज़ीहत यदि सर्वाधिक कहीं होती होय तो गुजरातमें होवे है. भागवतमें भी लिख्यो है के “गुजरी जीर्णतां गताः” भक्ति गुजरातमें आके बूढ़ी हो गई है. अन्धानुकरण बढ़ा हो तो वह गुजरातमें बढ़ा है...अतः सिद्धान्तकी सत्यनिष्ठा...और श्रीमहाप्रभुजीके पुष्टिसिद्धान्तों के सद्जागरणकी कहीं आवश्यकता है तो...गुजरातमें.

(पू.पा.गो.श्रीद्रुमिलकुमारजी, सुरत “पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा दि.१०-
१३जनवरी, ९२. पार्ले-मुंबई विस्तृतविवरण” पृ. ३१७-३१८)

(३३) प्रश्न : अपने सम्प्रदायमें मन्दिरकुं ‘मन्दिर न कहके ‘हवेली क्यों कह्यो जावे है?

उत्तर : सामान्यतया इतर हिन्दु-सम्प्रदायमें ‘मन्दिर शब्द देवालयके अर्थमें प्रयुक्त होवे है परन्तु ऐसे देवालयके रूपमें मन्दिर जैसी संस्थाको पुष्टिमार्गमें अस्तित्व ही नहीं है. क्योंकि पुष्टिमार्गमें अपने माथे जो प्रभु पधराये जावे हैं वे प्रभुस्वरूप और उनकी सेवा हरेककु व्यक्तिगतरूपमें वाकी भावनाके अनुसार पधराये जावे हैं. स्वयंके श्रीठाकुरजीकी सेवा पुष्टिमार्गीय जीवको एकमात्र स्वयंको कर्तव्य बन जातो स्वयंको ही धर्माचरण है. पुष्टिमार्गमें सेवा सामुहिक जीवनको विषय नहीं परन्तु व्यक्तिगत जीवनको विषय है. जेसे लोकमें पत्नी अथवा माता को पति अथवा पुत्र की सेवा या वात्सल्य प्रदान करवेको वाको व्यक्तिगत धर्म उत्तरदायित्व और अधिकार होवे है. वा ही तरह जा सेवकके जो सेव्यस्वरूप होवे हैं वा

सेव्यस्वरूपकी सेवा वाको व्यक्तिगत धर्म और अधिकार होवे है. सेवा कोई सार्वजनिक कार्य या सार्वजनिक प्रवृत्ति नहीं परन्तु सेवा तो स्वयंके आन्तरिक जीवनके साथ सम्बन्ध रखवेवाली बात होवेसूँ स्वयंके जीवनकी स्वयंके घरमें की जावेवाली धर्मरूप प्रवृत्ति है...अतः इतर हवेलीनकी तरह जैसे 'श्रीनाथजीको मन्दिर' शब्द रूढ़ हो गयो होवेसूँ प्रयोग कियो जावे है. वस्तुतः तो सामुहिक दर्शन या सेवा जहां की जाती हो ऐसे अन्यमार्गीय सार्वजनिक-देवस्थान जैसो वो मन्दिर नहीं है.

(पू.पा.गो.श्रीवल्लभरायजी महाराज, सुरत 'पुष्टिने शीतल छांयडे पृ.सं.१५७-१५८)

(३४) श्रीमहाप्रभुजीने अलग-अलग मन्दिरन्की प्रणाली खड़ी नहीं करी; परन्तु यामें जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्यकी एक दूरदृष्टि हती...प्रत्येक वैष्णवको घर नन्दालय बननो चाहिये...कोई मन्दिरके पड़ौसमें एक बहन रहे है वाकुं मन्दिरकी आरतीके घंटानाद सुनाई पड़े हैं. सेवा करवेकुं बैठी भई वो बहन ठाकुरजीके वस्त्र बड़े करके स्नान करावे जा रही हती ऐसेमें आरतीके घंटानाद सुनाई दिये. वो ठाकुरजीकुं वहीं वाही अवस्थामें छोड़के मन्दिरकी तरफ दौड़ गई. थोड़ी देरके बाद लौटके घर आई. अब विचार करो कि या तरहसूँ कोई सेवा करे तो वामें आनन्द कभी आ सके है क्या? यहां तो प्रत्येक वैष्णवको घर नन्दालय है.

(पू.पा.गो.सुश्रीइन्दिरा बेटीजी, वडोदरा 'वैष्णवपरिवार अंक.जून ९०)

(३५) तनुजा सेवा और वित्तजा सेवा एक ही व्यक्ति करे तब कहीं जाकर वह मानसीको सिद्ध करती है. केवल तनुजा करली या केवल वित्तजा करली तो अहन्ता-ममता दूर नहीं होगी....कैसे? मैं आपको एक उदाहरण देता हूं...जो घरसेवा करते हैं उनकेलिये तो को प्रश्न नहीं है. लेकिन यदि कोई वित्तजा सेवा करेगा तो समझ लीजिये कि उसने मन्दिरमें भेंट दी, मनोरथ किया. उसकी आप रसीद लेंगे...तब आप कहेंगे “मैंने सेवा लिखायी है”. आप कहते हैं “मैंने सेवा लिखायी है” तब अहन्ता कहां दूर हुई? अब आप मेहताजीसे क्या मांगोगे? “ये मेरी रसीद है मेरा प्रसाद लाओ”. तो देखीये अहन्ता-ममतामें हम और बंध गये. तो ऐसी सेवा संसारको दूर नहीं करेगी. संसारमें बांधेगी...केवल यदि हम वित्तजा करते हैं तो हमारे अहंकारको बढ़ाते हैं. और अहन्ता दूर न होगी ममता दूर न होगी तो मानसी कैसे सिद्ध होगी? क्योंकि सभी बन्धनका मूल अहन्ता-ममता ही है.

(पू.पा.गो.श्रीद्वारकेशलालजी महाराज, कामवन-सुरत सिद्धान्तमुक्तावली प्रवचन भरूच जनवरी २००५)

(३६) पुष्टिमार्ग गुप्त है दिखावाकेलिये तो है ही नहीं, भक्त और भगवान् के बीच आन्तरिक सम्बन्ध दृढ़ करवेको मार्ग है...दोनोंके संबंध ऐसे होने चाहिये कि कोई तीसरेकुं वाकी जानकारी न हो पाये. अपने अपने भगवान्के साथ क्या सम्बन्ध है याकुं दूसरे कोई व्यक्तिकुं जतावेकी आवश्यकता ही क्या है? प्रशंसा पावेकुं स्वयंकी महत्ता बढ़ावेकुं? ये तो सभी कुछ बाधक है.

(पू.पा.गो.चि.श्रीद्वारकेशलालजी, अमरेली-कांदीवली 'पुष्टिनवनीत' पृ.१२)

(३७) चित्त भगवत्प्रेममें परिपूर्ण होइ जाय, पूर्णतः भगवान्में लगि जाय, तन्मय अरु तल्लीन होइ जाय है. तब परासेवा होत है. याकों मानसी सेवा कह्यो जाय है. याके सङ्ग मनुष्यों शरीरसों हु सेवा करनी चाहिये...तनुजा सेवासों शरीरकी शुद्धि होत है. अहन्ता-अहंपनेको नाश होत है. धनसों करी जाती सेवा 'वित्तजा'सेवा है. वासों ममता-मेरोपेनेको नाश होत है. अहन्ता अरु ममता एक-दूसरेके सङ्ग जुडे भये रहत हैं तासों तनुजा अरु वित्तजा सेवा एकसङ्ग करनी चाहिये यामें प्रधानता तनुजा सेवाकी है. केवल धन दे देवेसों सेवा होत नाहीं है वासों तो (चित्तमें) राजसी वृत्ति होत है.

(षष्ठगृहाधीश पू.पा.गो.चि.श्रीद्वारकेशलालजी वडोदरा श्रीमद्भगवद्गीता पुष्टिदर्शन पृ.१२५)

(३८/क) “श्रीमहाप्रभुजी वल्लभाचार्यजीके पुष्टिसम्प्रदायमें दो दीक्षाएं दी जाती हैं. दोनों दीक्षाओंका प्रयोजन और तत्पश्चात् कर्तव्य का भी विचार बहुत आवश्यक है. केवल शिष्येष्टणासे प्रेरित होकर शिष्य बनानेकेलिये दी जाती दीक्षासे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है. जो भगवत्सेवा करनेकेलिये तैयार नहीं है उसको कदापि ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा लेनी नहीं चाहिये. परन्तु श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तोंमें यदि निष्ठावान् है तो उसे केवल नामदीक्षा लेनी चाहिये और अन्याश्रयका त्याग करके श्रीकृष्णका आश्रय दृढ़ करनेकेलिये प्रयत्नशील होकर

नामसेवारत रहना चाहिये. परन्तु ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा लेनेके बाद श्रीकृष्णकी सेवा करनी अनिवार्य है.

श्रीकृष्णकी सेवा भी श्रीमहाप्रभुजीद्वारा दिखलाई गयी रीतिके अनुसार ही हो सकती है. अपने घरमें अपने परिवारके सदस्योंके साथ अपने ही द्रव्यसे भगवत्सेवा करनी चाहिये. किसीको द्रव्य देकर अथवा किसीसे द्रव्य लेकर की जाती सेवा वह भगवत्सेवा तो कदापि नहीं ही है परन्तु श्रीमहाप्रभुजीका द्रोह होनेसे गुरु-अपराधसे ग्रसित बनाकर आरुढपतित बनाती है और इस भक्तिमार्गसे भ्रष्ट करती है. आजीविका चलानेकेलिये की जाती व्यावसायिक सेवासे तो चांडालके समान हीन देवलक बन जाते हैं. अतः भगवत्सेवा अपने घरमें अपने द्रव्य और तनसे ही की जा सकती है.

सेवाकी ही तरह भगवत्कथा-कीर्तन भी स्वयं अथवा निष्काम भगवदीयोंके साथ करने चाहिये. व्यावसायिक कथाकारोंको द्रव्य-दक्षिणा देकर अथवा लेकर करायी जाती कथा राखमें घी होमनेके तुल्य है. ऐसी कथा, पारायण, कीर्तन अथवा सप्ताह पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तसे सर्वथा विरुद्ध हैं. अतः सेवा और कथा दोनों द्रव्य देकर अथवा लेकर करनेसे किसी भी तरहके अलौकिक पुष्टिफलकी प्राप्ति किसी तरहके अलौकिक पुष्टिफलकी प्राप्ति स्वप्नमें भी नहीं हो सकती है. हां, बहिर्मुख अवश्य होते हैं.

(ख) “अमे तो राजना खासा खवास मुक्ति मन न आवे रे” ब्रजाधिपका सेवन करनेवाले हम मुक्ति नहीं मांगते हैं फिर भी पुष्टिमार्गी वैष्णव भागवत सप्ताह बैठकर अपने पितृओंको मोक्षके मार्गपर भेजते हैं पितृमोक्षार्थ भागवत सप्ताह, कोई एकसो आठ कोई एक हजार आठ...अपने पितृ तो गोलोकमें जाते हैं उनको वापिस मोक्षमें क्यों भेजते हो...भागवत सप्ताह पूरी हो जानेके बाद माला पहारामणी (सौराष्ट्रकी एक वैष्णव परम्परा)की जाती है और कहते हैं कि अब गोलोक धाम...अब गोलोक धाममें भोजना है मतलब यह हुवा कि पितृओंको यहां से वहां सिर्फ धक्के हि खिलवाने हैं हमारा कोई ध्येय ही निश्चित नहीं है हमने श्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थोंको खोला नहीं है उसका यह दुष्परिणाम है कि जिसे हमारे पूर्वजोंको भुगतना पड़ रहा है.

(पू.पा.गो.चि.श्रीपुरुषोत्तमलालजी, जुनागढ, श्रीयमुनाष्टक प्रवचन राजकोट २००६)

संयुक्तघोषणापत्र : सुप्रिमकोर्ट

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर, यह स्पष्टतम शब्दोंमें घोषित करते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है....अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढ़ाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्भजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्भजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्भजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्भजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है...सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धान्ततः प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें....सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें बिराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें “बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु”.

हस्ताक्षर कर्ता:

गो शरद अनिरुद्धजी (मांडवी-हालोल)
गो किशोरचन्द्र (मांडवी-जुनागढ)
गो अजयकुमार श्यामसुंदरजी (मद्रास)
गो मनमोहन (मुंबई)
गो श्यामसुन्दर मुरलीधरजी (बोरीवली)
गो हरिराय कृष्णजीवनजी (मुंबई)
नि.ली.गो.श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीकृष्णजीवनजी (मुंबई)
गो वल्लभलाल श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो हरिराय श्रीगोविंदरायजी (पोरबंदर)
नि.ली.गो.श्रीब्रजाधीषजी श्रीकृष्णजीवनजी (दहिसर)
गो ब्रजेशकुमार श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
नि.ली.गो.श्रीकृष्णकुमार श्रीरमणलालजी (कांदीवली-कामवन)
गो राजेशकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो विजयकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो योगेश्वर मथुरेश्वरजी (वडोदरा-सुरत)
गो रघुनाथलाल श्रीरमणलालजी (कामवन-गोकुल-पार्ला)
गो देवकीनन्दनाचार्य (गोकुल-अमदावाद)
गो नवनीतलाल श्रीगोविंदलालजी (कामवन-भावनगर)
गो मुरलीमनोहर श्रीब्रजाधीशजी (दहिसर)
नि.ली.गो.श्रीमाधवरायजी श्रीगोकुलनाथजी (मुंबई-नासिक)
गो रमेशकुमार श्रीगोपीनाथजी (मुलुंड-नासिक)
गो कल्याणराय (कन्हैयाबावा (वीरमगाम-अमदावाद)
गो योगेशकुमार (मुंबई)
गो ब्रजप्रिय मुरलीधरजी (बोरीवली)
गो नीरजकुमार श्रीमाधवरायजी (मुंबई-नासिक)

गो शरदकुमार (शीलूबावा श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)

गो चन्द्रगोपाल (चंदुबावा श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)

नि.ली.गो.श्रीनृत्यगोपालजी श्रीकृष्णजीवनजी (मुंबई)

पत्रद्वारा सम्मति:

नि.ली.गो.श्रीबालकृष्णलालजी श्रीगोविंदरायजी (सुरत)

नि.ली.गो.श्रीब्रजभूषणलालजी महाराज (जामनगर)

पञ्चमपीठाधीश्वर नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी (कामवन-वल्लभविद्यानगर)

नि.ली.गो.श्रीगोविंदलालजी (कोटा)

गो.श्रीअनिरुद्धलालजी श्रीद्वारिकेशलालजी (मांडवी-हालोल)

गो.श्रीमधुसूदनजी श्रीकृष्णचन्द्रजी (चेन्नई)

गो.श्रीब्रजभूषणलालजी (जामनगर)

गो.श्रीविठ्ठलनाथजी श्रीब्रजभूषणलालजी (चापासेनी-जुनागढ-जामनगर)

गो.श्रीहरिरायजी श्रीब्रजभूषणलालजी (जामनगर)

गो.श्रीब्रजरत्नजी श्रीब्रजभूषणलालजी (नडीयाद-जामनगर)

गो.श्रीनवनीतलालजी श्रीब्रजभूषणलालजी (जुनागढ-जामनगर)

गो.श्रीबालकृष्णजी श्रीब्रजभूषणलालजी (जेतपुर-जामनगर)

(“महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यवंशज गोस्वामीओंका संयुक्त-
घोषणापत्र” १९८६ पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा संक्षिप्त विवरण पृष्ठ.४९-७८,
फोटोकोपी देखें : सचित्र अमृतवचनावली, संयुक्तप्रकाशन, सन.२००८)

॥सिद्धान्तवचनावलीके अंश॥

कोई पुरुष कृष्णसेवामें तत्पर है कि नहीं, दम्भादि दुर्गुणोंसे रहित है कि नहीं;
और श्रीमद्भागवत पुराणके मर्मका विज्ञ है कि नहीं यह सर्वप्रथम देखना चाहिये
और तभी किसी जिज्ञासुको ऐसे व्यक्तिमें गुरुबुद्धि रखकर उसके पास जाना
चाहिये.

...ऐसे गुणोंसे युक्त गुरु बलवान् कलियुगके कारण न मिलें तो...स्वयं ही भगवत्सेवामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये. पात्रापात्रका विवेक रखे बिना यदि नामदीक्षा प्रदान की जाती है तो भगवन्नामविक्रयका दोष लगता ही है जिसके कारण दीक्षादाता अपराधी बनता है.

...एक प्रकार सेवाका यह भी हो सकता है वह वित्त देकर किसी अन्य पुरुषद्वारा करा ली जाये; और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि वह सेवा किसी दूसरेसे वित्त लेकर की जाये. ऐसे दोनों प्रकारोंसे की जाती सेवाओंसे चित्त कभी कृष्णप्रवण हो नहीं सकता...वह...यदि किसी अन्य तनुजासेवाकर्ता (गोस्वामी-मुखीया-ट्रस्टी)को वेतन-तनुजासेवामुल्य-के रूपमें वित्त देकर करायी जाती है तब वह वित्तजा सेवा हुई जो चित्तको राजसभाव=दर्प-दम्भादिसे युक्त बना देती है, पर कृष्णप्रवण नहीं बना पाती. यदि किसी अन्यसे वेतन-तनुजासेवामुल्य-के रूपमें वित्त ग्रहण करके तनुजासेवा की जाती है तब पुरोहितोंको जैसे यज्ञ-यागका फल नहीं मिलता है वैसे ही दूसरेके वित्तसे तनुजा सेवा करनेवालेको भी कृष्णप्रवणतारूप फल कभी नहीं मिलता.

...जो अपने स्वजन हो और भक्त हो ऐसोंको ही श्रीठाकुरजीके दर्शन कराने चाहिये.

...११वां अपराध:अवैष्णवके समक्ष अपने घरमें बिराजते श्रीठाकुरजीका प्रदर्शन करना. फल:एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त:श्री ठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराना.

...३६वां अपराध:श्रीठाकुरजी (या श्रीभागवतजी या श्रीयमुनाजी) के नामसे (भेट, सामग्री, पोथीसेवा, या न्योछावर) मांगना. फल:सेवा सर्वथा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित्त:जितना मांगा या बटोरा हो उससे पांचगुना नैवेद्यका प्रभुको दान (न कि समर्पण) करना.

...आजीविका कमाने या यश पानेके लिये भी भजन (सेवा) करता हो तो उसकी क्या गति होगी?...वह व्यक्ति भी क्लेश ही पाता है ऐसा श्रीमहाप्रभुके वचनका साफ-साफ अर्थ है. न केवल उसे ऐहिक (पारिवारिक-समाजिक-साम्प्रदायिक) क्लेश ही होता है प्रत्युत उसके सारे पारलौकिक अधिकार एवं फल भी नष्ट हो जाते हैं ऐसे निषिद्ध आचरणके कारण...अत्यल्प भी ज्ञान हो वह तो ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता है.

...भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें घरमें सेवा करनेका विधान किया गया होनेसे यह सूचित होता है कि अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवाको छोड़कर अन्य कहीं दर्शन-सेवा-कीर्तनादि करनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती है.

...भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कंठमें क्यों न अटक जाये परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके ओर जैसे भी अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये.

...मुख आदिके प्रक्षालनमें प्रयुक्त अपवित्र जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें जो गढ़दे खोदे जाते हैं उनके जैसे निम्न गानोपजीवी होते हैं...इससे यह आशय प्रकट हुआ कि प्रक्षालनोच्छिष्ट गर्तपूरित जलकी तरह इन गानोपजीवीओंका भाव सत्पुरुषोंके लिये ग्राह्य नहीं होता...पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य होते हैं...

हे श्रीवल्लभ आपके कहे हुवे वचनसे विपरीत जो कोई कुछ कहते हैं वे सभी भ्रान्त केवल अन्धतम नरकको पानेवाले सहज आसुरी जीव हैं.

(पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत की गई सिद्धान्तवचनावलीके अंश, हस्ताक्षरोकी फोटोकॉपी देखें:सचित्र अमृतवचनावली, संयुक्त प्रकाशन, २००८)

सम्मतिमें हस्ताक्षर करनेवाले गोस्वामी महानुभाव :

गो.श्रीअनिरुद्धलालजी द्वारकेशलालजी (मांडवी-हालोल)

गो.श्रीकिशोरचन्द्रजी पुरुषोत्तमलालजी (जुनागढ़)

गो.श्रीकन्हैयालालजी चन्द्रगोपालजी (विरमगाम-अहमदाबाद)

गो.श्रीकृष्णकान्तजी कृष्णचन्द्रजी (इचलकरंजी)

गो.श्रीकृष्णकुमार श्रीरमणलालजी (कांदीवली-कामवन)

पंचमपीठाधीश्वर नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी (कामवन-वल्लविद्यानगर)

गो.श्रीगोपिकालंकारजी श्रीवल्लभलालजी (राजकोट-माणावदर)

चतुर्थपीठाधीश्वर गो.श्री.देवकीनन्दनाचार्यजी (गोकुल)

गो.श्रीद्रुमिलकुमार मथुरेश्वरजी (वडोदरा)

गो.श्रीद्वारकेशलालजी गोविन्दरायजी (कामवन-सुरत)
 गो.श्रीनवनीतलालजी गोविन्दरायजी (कामवन-भावनगर)
 गो.श्रीमथुरेशजी चन्द्रगोपालजी (विरमगाम-अहमदाबाद)
 गो.श्रीमाधवरायजी मुरलीधरजी (वेरावल)
 गो.श्रीरधुनाथलाल श्रीरमणलालजी (कामवन-गोकुल-पार्ला)
 गो.श्रीरघुनाथजी रमेशकुमारजी (मुलुंड-नासिक)
 गो.श्रीरवीन्द्रकुमारजी दामोदरलालजी (राजकोट-मांडवी)
 गो.श्रीरसिकरायजी द्वारकेशलालजी (उपलेटा-पोरबंदर)
 गो.श्रीराजेशकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
 गो.श्रीवल्लभलालजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
 गो.श्रीवल्लभलालजी गिरिधरलालजी (कामवन-विद्यानगर)
 गो.श्रीवल्लभलालजी देवकीनन्दनजी (गोकुल-अहमदावाद)
 गो.श्रीविजयकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
 गो.श्रीविठ्ठलनाथजी लालमणीजी (कोटा-मुंबई)
 गो.श्रीब्रजरायजी रणछोडलालजी (अहमदावाद)
 गो.श्रीब्रजेशकुमार श्रीगोविंदलालजी (कडी-अहमदावाद)
 गो.श्रीब्रजेशकुमार चन्द्रगोपालजी (कडी-अहमदावाद)
 गो.श्रीशरदकुमार (शीलूबावा) श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)
 गो.श्रीमधुसूदनजी श्रीकृष्णचन्द्रजी (चेन्नई)

संयुक्तघोषणापत्र : अमदावाद

आज फेरि वो समय आयो है वासों हु कठिन समय आयो है. वा समय तो अन्यमार्गीय लोग मतनुकुं प्रस्तुत करिके भ्रम उत्पन्न करत हते. परि आज तो अपने सम्प्रदायके ही 'सुज्ञजन' श्रीमहाप्रभुजीकी वाणीको विपरीत अर्थ करि रहे हैं. लोगनूकूं पथभ्रष्ट करि रहे हैं. दैवीजीवनके सङ्ग घोर अन्याय करि रहे हैं. तासों ही

अभी महाप्रभु श्रीवल्लभाधीशके वंशज पुष्टिमार्गीय युवा आचार्यनूने एक 'संवादस्थापकमण्डल'की स्थापना करिके मुम्बईमें...चार दिवस पर्यन्त एक पुष्टिसिद्धान्त चर्चासभाको आयोजन कियो हतो...सभामें ३५ महानुभाव आचार्य उपस्थित हते २८ गोस्वामी आचार्य महानुभावनूने गो.श्रीश्याम मनोहरजी महाराश्री (किशनगढ-पार्ला)के 'सिद्धान्तवचनावली'के भावानुवादकुं सहमति दीनी हती...पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी ब्रजभूषणलालजी महाराजश्री जामनगरवारेनूने पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी महाराजश्रीके सङ्ग विनने करे भावानुवादके मुद्दानुपे चर्चा प्रारम्भ कीनी हती...समयके अभावके कारण चर्चा निर्णयपे पहुंच न सकी. परन्तु वर्तमान(में) कितनेक चर्चास्पद, संशयास्पद मुद्दानुकी स्पष्टता या चर्चामें प्राप्त भयी जो वस्तुतः एक बड़ी सिद्धि है. इतनो ही नहीं परन्तु नीचे बताये मुद्दानुके विश्लेषणमें पूज्य श्रीश्याम मनोहरजीके सङ्ग सहमत होयके पूज्य श्रीहरिरायजीने अपने सम्प्रदायकी उत्तम सेवा कीनी है:

१. पुष्टिमार्गीय सेव्यस्वरूप पूर्णपुरुषोत्तम स्वरूपसों ही बिराजे हैं, वे स्वरूप पाछें चाहे गुरुके सेव्य होवें के शिष्य (वैष्णव)के सेव्य होवें दोउ(स्वरूपन)मेंतें कोउमें हु पुरुषोत्तमपनों न्यूनाधिक होत नाहीं.

२. पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त अनुसार कृष्णसेवा करिवेको स्थान गृह ही होइ सकत है सार्वजनिक (स्थल) नाहीं.

३. पुष्टिमार्गीय भगवत्सेवाकु धनकी प्राप्तिको साधन बनानो नहीं चाहिये.

४. देवलक (=भगवत्सेवाकु धनप्राप्तिको साधन अथवा आजीविकाको साधन बनायवेवारे) व्यक्तिकी सेवा निषिद्ध कक्षाकी होयवेसों (वो) सेवा करवे योग्य नाहीं है.

५. श्रीठाकुरजीके ताई काहु प्रकारके दान-भेंट मांगने अथवा स्वीकारने वो शास्त्रद्वारा निषिद्ध है इतनो ही नाहीं परि लाभ-पूजाके हेतुसों अपने लिये द्रव्य अथवा काहु वस्तुको स्वीकारनो वो शास्त्रकी दृष्टिमें ऋणानुबन्धी दोषकों उत्पन्न करिवेवारो होयवेसों बन्धनकारी है.

६. पुष्टिमार्गके सिद्धान्तानुसार श्रीठाकुरजीकुं निवेदन करे पदार्थनूको ही समर्पण होइ सकत है अरु समर्पित पदार्थनूको ही भगवद उच्छिष्टरूपमें प्रसाद लेइ सकत हैं श्रीठाकुरजीके लिये दान अथवा भेंट के रूपमें आयी भयी सामग्रीकुं प्रसादके रूपमें ली नहीं जा सके है क्योंकि श्रीठाकुरजीके लिये दान अथवा भेंट के रूपमें

प्राप्त भये पदार्थ (द्रव्य)सों आयी सामग्रीकुं प्रसादके रूपमें पाछी लेवेसों 'दत्तापहार'को पाप लागत है.

७. सेवा तो शास्त्रको विषय है. तासों सेवाके सम्बन्धमें शास्त्रसोंह्वश्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थन्सों ही सर्व निर्णय होइ सकत है, अन्य काहु प्रकारसों नाहीं.

(“संयुक्तघोषणापत्र : अमदावाद”, मिति फाल्गुन सुदि ७, श्रीवल्लभाब्द ५१४, दि. ११ मार्च १९९२, देखें : पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा, संक्षिप्तविवरण, १९९३)

हस्ताक्षर:

नि.ली.गो. श्रीव्रजरायजी-श्रीनटवरगोपालजी महाराज (अहमदाबाद)

पू.पा.गो.श्रीव्रजेन्द्रकुमारजी महाराज (अहमदाबाद)

च.पी.पू.पा.गो.श्रीदेवकीनन्दनजी (गोकुल)

पू.पा.गो.श्रीव्रजेशकुमारजी महाराज(अहमदाबाद-कडी)

पू.पा.गो.श्रीराजेशकुमारजी महाराज(अहमदाबाद-कडी)

पू.पा.गो.श्रीवल्लभलालजी महाराज(अहमदाबाद-कडी)

पू.पा.गो.श्रीजयदेवलालजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)

पू.पा.गो.श्रीमथुरेशजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)

पू.पा.गो.श्रीकन्हैयालालजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)

पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)